मध्यकालीन हिन्दी-कविता
पर
शैवमत का प्रभाव

(राजस्थान विश्वविद्यालय द्वारा पी एच डी की उपाधि के लिए
स्वीकृत शोध प्रबंध)

डॉ० कमला भण्डारी,
एम ए पी, एच डी

पचशील प्रकाशन, जयपुर

प्रकाशक
मूलचंद गुप्ता,
सचालक
पचशील प्रकाशन
फिल्मकालोनी चौडा रास्ता, जयपुर-३

प्रथम सस्करण १६७१

मूल्य तीस रुपया मात्र

मुद्रक
जयपुर मान प्रिंटस,
वाणवालों का दरवाजा जयपुर-३

भूमिका

मुझे हर्ष है कि डा० श्रीमति कमला भंडारी का शोध अध्यवसाय उपाधि के साथ मे सफल होकर आज प्रकाशित रूप मे विद्वानों के हाथो मे आगया है। यह कृति लेखिका की रुचि और उसके परिश्रम का फल तो है ही, साथ ही उनके स्वर्गीय पति श्री रामचन्द्र भंडारी एडवोकेट की प्रेरणा का प्रतीक भी है। आज श्री भंडारी इस लोक मे नहीं है किन्तु उनकी प्रेरणा का यह आलोक वदूष्य के गगन मे सदव जगमगाता रहेगा। अपने मित्र के प्रेरणालोक' का मैं हृदय से अभिनन्दन करता हू।

डा० श्रीमति कमला भंडारी परिश्रमशीला होने के साथ साथ भावुक महिला हैं। अतएव उनकी मनीषा को हृदय का पूरा सहयोग मिला है। इसम सदेह नहीं कि आलोचना गवेषणा की प्रतिष्ठा है। प्रस्तुत कृति मे दोनो का समन्वय है, किन्तु लेखिका की भावुकता के सयत योग से अभिव्यक्ति मे 'मणि काचन योग' प्रस्तुत हो गया है। शोध ग्रन्थ माला की यह मणि' कितनी मूल्यवान है इसका निर्णय तो विद्वान पाठक ही करेंगे, किन्तु मैं इतना कह सकता हूँ कि इसम 'शवमत के सम्बन्ध मे जितनी सामग्री प्रस्तुत की गयी है उस सबको लेखिका ने मध्यकालीन हिन्दी कविता के साथ बडे साहस और धय से सम्बन्धित किया है।

शवमत' की पीठिका बडी प्राचीन है। भारतीय सस्कृति के आदिम सूत्रो की खोज मे शवमत' का इतिहास अपना अमोघ सहयोग देता रहा है। वदिक देव रुद्र' मे इस मत के सूत्रा को खोजने की बात पुरानी पड गयी है। गवेषणा की भूमि पर इस दिशा मे गवेषक और गहरी खोज करके इस निष्कर्ष पर पहुँच रहे हैं कि देव-पद पर भारत मे शिव की बडी प्राचीन और लोकप्रिय प्रतिष्ठा रही है। किसी मतवाद के क्षेत्र में 'शिव' कब लाये गये, यह बिलकुल दूसरी बात है।

'वष्णव मत और 'शव मत' को एक ही साथ तोलना औचित्यपूर्ण नही होगा क्योकि वष्णव मत वदिक मत का बहुत परवर्ती स्वरूप है जिसम आदिम मान्यताओ का नियतीकरण है। शव सस्कृति सस्कृति के प्रवाह क

पाषाण का आदिम, अनगढ रूप प्रस्तुत करती है और वष्णव सस्कृति शालि ग्राम का रूप प्रस्तुत करती है। सस्कृति के इतिहास मे दोनो का अपना अपना गौरव है। मुझे ऐसा लगता है कि शवमत' की गति मे प्रसार के लक्षण रह हैं और 'वष्णव मत की गति म प्रचार के लक्षण। विकृतिया के सक्रमण से दोनो ही मुक्त न रह सके, यह तथ्य है।

भारतीय धर्मों की यह विशेषता रही है कि आडबरो के चक्र मे पडकर भी वे 'भावना और व्यवहार का पार्थक्य स्वीकार न कर सके। भावना का प्रारभिक प्रतीकीकरण मानव सस्कृति के विकास की स्वाभाविकता का परिचायक है किन्तु प्रतीकीकरण की आचरणमूलक अगडाइयो मे भावना का धार्मिक इतिहास भी निहित है। प्राय सभी धर्मों की गति मे यह इतिहास देखा जा सकता है। फिर शवमत' को इस नियति स मुक्त करके कमे देखा जा सकता है। श्रीमती मडारी ने शवमत के इतिहास मे इसी 'गति और नियति' का विवेचन किया है किन्तु आलोचना की औपाधिक मर्यादा म।

सामान्यतया मत और 'धम म विशेष अन्तर नही माना जाता, किन्तु विशेषीकरण की भूमि पर दोना मे अन्तर है। 'मत' सिद्धान्तपरकता व्यक्त करता है और 'धम श्रद्धा और विश्वास आचरणपरकता व्यक्त करता है। डा० मडारी न शवमत के अन्तगत 'मत और 'धम दोना की विवेचना की है।

इस शोध-ग्रन्थ को लेखिका ने छ अध्याया म विभाजित किया है जिनम विकास का इतिहास' और 'उपसहार भी सम्मिलित है। पचम अध्याय के क', 'ख और 'ग अश मूलत एक ही अध्याय की विकृति हैं जिनकी पृथक पृथक व्यवस्था शोध की दृष्टि से आवश्यक है। इस महाकृति का विषय परक सक्षेपण चार भागों म किया जा सकता है—१ शवमत का इतिहास, २ शव सिद्धान्तों की विवेचना ३ मध्यकालीन हिन्दी कविता पर शव मत का प्रभाव तथा ४ मध्यकालीन हिन्दी कविता पर शव साहित्य का प्रभाव।

शवमत के विकास का इतिहास बडा जटिल है और, सिद्धान्तो का प्रतिपादन तो और भी जटिल है। इस जटिल काय को जिस धय और क्षमता मे डा० भडारी न सम्पन्न किया है वह श्लाघ्य है। मध्यकालीन कविता के वन मे शवकाव्य की खोज गगा की वालुका मे मुक्ता की खोज स कुछ कम कठिन नहीं है। लेखिका ने इस खोज का निर्वाह भी बडी कुशल दृष्टि मे किया है।

लेखिका की विवेचन शली बडी सरल और रोचक है जिसमे स्पष्ट अभिव्यक्ति को समुचित व्यवस्था मिली है पारिभाषिक शब्दावली की प्रतीक्षात्मक दुरुहता लेखिका की विवशता है किन्तु रोचकता से वह परीमार्जित हो गयी है। *शब्दों म उपयुक्त सगति और अथ शक्ति विद्यमान है।*

अपने ढग का यह अनूठा काय अपनी अभिनवता से विद्वद्भूमि की तृप्ति करेगा मुझे पूण विश्वास है। मैं यह आशा करता हूँ कि लेखिका का यह श्रम साकार होकर उसका नव्य प्रेरणाएँ देकर अग्रिम शोघ काय की दिशा देगा।

अरुण कुटीर
जयपुर
११-७-७१

सरनामसिह शर्मा अरुण
प्रोफेसर एव अध्यक्ष हिन्दी विभाग,
राजस्थान विश्वविद्यालय जयपुर।

प्राक्कथन

भारतीय भक्ति के दो प्रमुख अंग शैव और वैष्णव मत हैं। भारतीय साहित्य पर इनका व्यापक प्रभाव रहा। वैष्णव मत पर तथा वैष्णवों के आराध्य राम अथवा कृष्ण से सम्बन्धित मध्ययुगीन हिन्दी काव्य पर अनेक शोध प्रबन्ध लिखे गये हैं। वैसे तो आंग्ल भाषा में शैवदर्शन पर आलोचना ग्रन्थ प्राप्त होते हैं तथापि हिन्दी साहित्य में आज तक उनका अभाव सा ही है। शैवमत पर डा० यदुवंशी कृत शैवमत का हिन्दी में अनुवाद हुआ है। उक्त रचना में लेखक ने वैदिक देवता रुद्र और उनके परिवार का इतिहास तथा विहंगम दृष्टि से तेरहवीं शताब्दी तक के शैवमत की रूपरेखा प्रस्तुत की है। डा० हिरण्मय के शोध प्रबन्ध— हिन्दी कन्नड में भक्ति आन्दोलन का तुलनात्मक अध्ययन में दक्षिण में प्रचलित वीर शैवमत तथा शुद्ध शैवमत और उनके साहित्य का विवेचन हुआ है। डा० उमेश मिश्र का ' 'लिंगायत-मत तथा धर्मवीर भारती का सिद्ध साहित्य आदि और ग्रन्थ भी मिलते हैं जिनमें शैवमत का प्रतिपादन हुआ है। इन्होंने शैवमत के अध्ययन को पर्याप्त गति प्रदान की है किन्तु मध्यकालीन हिन्दी कविता पर शैवमत का प्रभाव' शीर्षक के अन्तर्गत केवल मत के प्रभाव की गवेषणा ही नहीं की गयी है अपितु मत से सम्बन्धित साहित्य की भी गवेषणा की गयी है। सामान्यतः मत का तात्पर्य दार्शनिक सिद्धान्तों से जोड़ा जाता है किन्तु जिस साहित्य में मत सुरक्षित है उसकी भी सामान्यतः उपेक्षा नहीं की जा सकती बिल्कुल उसी प्रकार जिस प्रकार कि ग्रन्थ को सुरक्षित रखने वाले आवरण-वस्त्र की उपेक्षा नहीं की जा सकती।

यह ठीक है कि शैव दर्शन की एक परम्परा रही है जिसमें काल क्रम में अनेक विकास सूत्रों ने मिल कर परम्परा के विकास में अपना योग भी दिया है जिस प्रकार शैवदर्शन में शिव के स्वरूप, जीव, जगत् कर्म, मुक्ति आदि अनेक समस्याओं पर एक विचार परम्परा दृष्टिगोचर होती है उसी प्रकार शैव साहित्य में शिव के स्वरूपों सम्बन्धी घटनाओं के परिवेश में भी बहुत कुछ मान्यताएं विकसित होती चली आ रही हैं जिनके प्रति शैव भक्तों की विश्वास और श्रद्धा की धाराएं अविरल रूप से उमड़ती आ रही हैं।

भावो की अभिव्यञ्जना के लिये भक्तो ने अनेक पद्धतियो और शलियो को न केवल जन्म दिया वरन् उनका अनुसरण भी किया। इसी का परिणाम साहित्य मे रस अलकार आदि की व्यवस्था है जिनके सम्बन्ध मे शवो का एक नियत दृष्टिकोण रहा है। उनकी मान्यता रही है कि शिव से सम्बन्धित जिन जिन अपमान और रसो का विनियोग होता आ रहा है उन्ही की परम्परा बनी रहे। इस दृष्टि से शव कथाओ म लिपटे हुए शवमत के साथ रस और अल कार की भूमिका को भी भुलाया नही जा सकता। इसी कारण मध्यकालीन हिन्दी कविता पर शवमत का प्रभाव देखते समय उक्त विषयो की प्रभाव की गवेषणा उपयुक्त ही नहीं आवश्यक भी समझी गयी है।

शवमत के परिवेश म जिन सिद्धान्तो को देखा गया है वे भारतीय सस्कृति के दाशनिक परिच्छेद के अनिवाय उपकरण है। भेदोपभेदो मे उछलते डूबते वे सिद्धान्त किसी भी दशा म सस्कृति के पल्ले को नही छोड रहे हैं। इसीलिए साहित्य क पहलू मे भी भारतीय दशन अटूट प्रेम का भाजन रहा है। वह अपनी तात्त्विक रक्षा साहित्य मे अधिक सबल रूचिरता से बनाए हुए है इसीलिये प्रस्तुत निबन्ध मे शवदशन के साथ साथ उनके आधार भूत साहित्य की भी यथास्थान मीमासा की गयी है।

साहित्य क्या है यहा यह कहने की आवश्यकता नही है किन्तु वह जीवन का एक मनोरम प्रतिबिम्ब है। इसको तो छिपाया भी नही जा सकता। उसमे हमारी चेतना के प्रत्येक पक्ष के साथ साथ भावना के अनेक पक्ष मिलते है। जहा चिन्तन रुचिर और मोहक बनने की कल्पना करता है वही भावना के योग से कोई न कोई आधार लेकर किसी वस्तु या विषय का चयन करके—साहित्य अपने रूप को सवार ही देता है। जो कथाए हमे साहित्य म मिलती हैं अथवा जो कल्पनाए चिन्तन को तरल सरस एव शब्दकाव्य बनाने का प्रयत्न करती हैं वे किसी कथावस्तु के सृजन मे भी बडी सहायक होती हैं। न जाने ऐसी कितनी कल्पनाओ के पुट ने वदिक रुद्र को शिव तक लाने का प्रयत्न किया और न जान कितनी कथाओ को जन्म दिया। मध्यकालीन हिदी कविता उन्ही कल्पनाओ की परम्परा का एक शन्लोक है जिसका अपना कथा परिवार रस परिवार और अपमान परिवार है। यद्यपि इन परिवारो क सदस्य भिन्न हैं फिर भी उनकी कुछ सामान्य परिस्थितिया या प्रवृत्तिया भी है जो उन सब को, उनके पूवज वदिक रुद्र दव म सन्निहित करती है।

इन सब उपकरणो की मीमासा क निमित्त प्रस्तुत निबन्ध म छ अध्यायो की व्यवस्था का गयी है जिनक अन्त म सक्षिप्त उपसहार जुडा हुआ

है। ऋग्वेद मे 'रुद्र' के लिए शिव शब्द का प्रयोग हुआ है एवं रुद्र के विशेषण के रूप म शिव श द उक्त वेद मे अनेक स्थानों पर आया है। प्रस्तुत प्रब ध के प्रथम अध्याय मे वैदिक तथा उत्तर वदिक साहित्य मे शिव के नाम-रूप-गुण उपासना, वाहन उनके परिवार के स्वरूप आदि का उल्लेख है। शिव तथा उनके परिवार से सम्बद्ध पौराणिक कथाओ पर आधारित विभिन्न कथाओ का परिचय दिया गया है। इस अध्याय मे शैवमत का निरूपण करते हुए उसके भेदोपभेदो का सक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया गया है। यह अध्ययन इस दिशा मे नवीन और मौलिक प्रयास है, जो शवमत की मूल प्रवृत्तिया और प्रेरणाओ के विकास की दिशा को समझने मे सहायक होगा।

द्वितीय अध्याय मे शव-सिद्धा तो का सागोपाग विवेचन प्रस्तुत किया गया है। शव सिद्धा त में चि तन, योग और भक्ति तत्त्व आते हैं। अतएव अध्ययन की सुविधा के लिये इस अध्याय के 'क, ख, ग भागों में उक्त तीना पक्षो का विवेचन प्रस्तुत किया गया है। चि तन पक्ष मे दशन का क्षेत्र, शैव दशन और उसकी सीमाए तथा निरूपण दिया गया है। शैव मत के तात्विक विश्लेषण मे उस के छत्तीस तत्त्वो की विशद व्याख्या प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है जिसम शिवतत्त्व, शक्ति तत्त्व विद्यातत्त्व-सदाशिव, ईश्वर, शुद्ध विद्या, और आत्मतत्त्व के इकतीस तत्त्वा का विश्लेषण है। इस अध्याय मे शव साहित्य म प्रतिपादित शवमत के विभिन्न सम्प्रदायो मे मा य च तनिक विचार धारा की रूप रेखा को प्रस्तुत किया गया है। निष्कष म मध्यकालीन कविता पर शवदशन के प्रभाव की ओर सकेत किया गया है। शवदशन का अध्ययन हि दी पाठको के लिये अछूता सा रहा है। शवमत की दाशनिक गुत्थिया सुल झाने और पारिभाषिक शब्दावली को समझने में पाठका को इस अध्ययन से पर्याप्त सहायता मिलेगी।

इस अध्याय के ख' भाग म योग का इतिहास, योग के प्रकार, शव योग शव योग म अ य योगो का विनिवेश और अनेक भूमिकाओ पर पल्लवित शव योग धारा का विवेचन प्रस्तुत किया गया है। इस अध्याय का लक्ष्य शव-योग परक साहित्य में प्रतिपादित योग धारा की रूप रेखा प्रस्तुत करना है। मध्य कालीन हि दी सत कवियों की योग-परक-रचनाओ पर शवयोग धारा के प्रभा वान्वेषण के लिय उक्त अध्ययन अपेक्षित है।

द्वितीय अध्याय के 'ग' भाग मे शवमत का भक्ति दशन विवेचनीय रहा है। भक्ति दशन मे उसके तीन प्रमुख पक्ष उपासक, उपास्य और उपासना की अलग अलग व्याख्या की गयी है। उपासक पक्ष म उपासक उपासक के

लक्षण, गुण, शवोपासक, उनके उपभेद शवोपासकों का प्रसार तथा उपासना की अनेक भूमिकाओं पर उपासक को प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। उपास्य पक्ष मे उपास्य, नाम–नामी सम्बन्ध, शिव के नाम और उसकी मीमांसा, शिव–स्वरूप, मूर्तिया मे शिव स्वरूप, शिव परिवार और शिवलीला का अव लोकन हुआ। उपासना मे भक्ति तत्त्व की व्याख्या भक्ति का इतिहास भक्ति के साधन, लक्ष्य, उत्कृष्टता के अतिरिक्त शवो की बाह्य एव आभ्यंतरिक पूजा, शवों के तीर्थ, शैवों की पूजा–विधि बतलायी गयी है। इस अध्याय मे शव सिद्धान्तों के निरूपण म नवीन वज्ञानिक प्रणाली को देखा जा सकता है।

शोध प्रबन्ध के तृतीय अध्याय मे शवमत के आधार पर पल्लवित साहित्य का परिचय दिया गया है। इस अध्याय मे मध्यकाल पयन्त शवसाहित्य का सकलन, उत्तरोत्तर उसके विकास एव उत्तरवर्ती साहित्य पर उसके प्रभाव की रूप रखा प्रस्तुत करने के लिये आवश्यक समझ कर किया गया है। मध्य काल पयन्त शवसाहित्य की विस्तृत नामावली से शवमत की प्राचीनता एव व्यापकता का ज्ञान होता है। विस्मृति के गम म छिपे उक्त साहित्य का अनु सन्धान एव अध्ययन की अपेक्षा है।

चतुथ अध्याय मे मध्यकालीन हिन्दी साहित्य पर शवमत के प्रभाव की दिशा और दशा की ओर सकेत किया गया है। पचम अध्याय मध्यकालीन हिन्दी साहित्य पर, शवमत के प्रभाव पक्ष सम्बद्ध है। इस अध्याय म प्रस्तुत अभिलेख के द्वितीय अध्याय का क्रियात्मक प्रभाव दिखलाया गया है। उक्त अध्याय के सदृश ही पचम अध्याय को क ख ग तीना भागो म विभक्त किया गया। 'क' भाग मे मध्यकालीन हिन्दी कविता पर शवदशन के प्रभाव का विवेचन किया गया है जिसमें सवत् १३७५ से १८५० तक के साहित्य की विविध धाराओं पर प्रभावान्वेषण को लक्ष्य रखा है। इसी प्रकार ख' भाग मे मध्यकालीन हिन्दी कविता पर शव योग धारा के अनुकूल एव प्रतिकूल प्रभाव का विवेचन प्रस्तुत किया गया है। उसम आलोच्य युग के सन काव्य म योग की विभिन्न भूमिका पर पल्लवित योग धारा पर शवयोग धारा क प्रभाव का अन्वेषण हुआ है। सन्त कवियों के योग–परक काव्य की प्रेरणा एव प्रवृत्तिया तथा योग की पारिभाषिक शब्दावली के मूल स्रोतो का अध्ययन किया गया है जो भावी–अध्ययन म सहायक सिद्ध होगा। 'ग' भाग म मध्यकालीन हिन्दी काव्य म प्रस्तुत उपास्य शिव क नाम–रूप–गुण और उपासना के स्वरूप–विवे चन द्वारा उस पर शैव भक्तिदशन के प्रभाव क अन्वेषण का प्रयास किया गया है।

षष्ठ अध्याय म हिन्दी साहित्य पर शव साहित्य के प्रभाव को दिखलाया गया है। उसमे शव साहित्य के प्रभाव की विभिन्न धाराओ का विवेचन हुआ है।

उपसहार मे शवमत के विभिन्न एव प्रमुख दाशनिक सिद्धान्तों एव मध्यकालीन हिदी कविता पर उसके प्रभाव का सक्षेप में पर्यालोचन हुआ है। इसके साथ ही शैवमत की सास्कृतिक, दाशनिक एव साहित्यिक उपयोगिता एव उसके नतिक मूल्यों के अवदान की ओर सकेत किया गया है। इस प्रकार अपने शोध प्रबन्ध में कतिपय दोषा और अभावा के रहते, मैं इस निष्कर्ष पर पहुची हू कि शवमत भारतीय घम साधना का प्रमुख अग है और साहित्यिक अन्वेषण में उसके योग की अपेक्षा कदापि नहीं की जा सकती। वैष्णव घम के सदृश इसका मध्यकालीन साहित्य पर महत्वपूर्ण प्रभाव रहा है।

इस ग्रन्थ के तैयार करने मे मुझे अनेक स्थानो के विद्वानों, पुस्तकाध्यक्षों एव महात्माओ से भी बडी सहायता मिली है। मैं उनके प्रति अपना आभार प्रकट करती हू। मेरे निदेशक डा० सरनाम सिंह शर्मा 'अरुण' ने जिस तन्मयता और लगन से मेरी कृति को प्रेरित किया है, इसके लिए मैं उनकी कृतज्ञ हू। इस कृति मे जिन विद्वाना के ग्रथों से सहायता ली गई है उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापन भी मेरा कतव्य है। पुस्तक के सुरुचिपूर्ण प्रकाशन के लिए मैं पचशील प्रकाशन के सचालक श्री मूलचन्द गुप्ता की भी आभारी हूँ। अन्त में उन सभी महानुभावों को धन्यवाद दिये बिना नहीं रह सकती जिन्होंने मुझे इस काय मे सहयोग दिया।

१० जुलाई, १९७१

प्रधानाचाय
महारानी सुदशना कालेज
बीकानेर

कमला भण्डारी

विषय-सूची

कुण्डलिनी-उद्बोधन, नाद-बिन्दु, राज योग। शवयोग शवयोग म अन्य योगों का विनिवेश, शवयोग की अनेक भूमिकाए, कायिक भूमिका-यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्राण, प्राणायाम के अग, षटकम, मुद्रा, नाडी विचार, कुण्डलिनी उत्थापन, चक्र वर्णन-मूलाधार चक्र, स्वाधिष्ठान चक्र अनाहत चक्र, विशुद्ध चक्र, आज्ञाचक्र सहस्र दल कमल, प्रत्याहार-प्रत्याहार के साधन। मानसिक भूमिका-चित्त, चित्त के रूप चित्त की भूमिया, चित्त की वृत्ति और प्रकार, सस्कार, वृत्ति-निरोध-उपाय, चित्त विक्षेप-कारण, चित्त के क्लेश, धारणा, ध्यान, ध्यान क भेद, समाधि-समाधि के भेद। शैवयोग की आध्यात्मिक भूमिका-शवयाग और गुरु, महत्त्व, निष्कष।

(ग) शव भक्ति —उपासक-उपासक के लक्षण, उपासक के गुण-श्रद्धा, विश्वास, अहिंसा, सत्य, शौच, दया। शवोपासक-वीरशवा के उपभेद पाशुपत शवो के उपभेद, शुद्ध शव तथा काश्मीरी शव, दशनामी। शवो पासको का प्रसार। उपासना की अनेक भूमिकाओ पर उपासक। शवो पासक की कायिक भूमिका-वेशभूषा, आभूषण-मेखला, शृ गी, अधारी, कण, मुद्रा, जनेऊ, रूद्राक्ष, खप्पर, दण्ड, तिलक, अन्य चिन्ह। उपासक आचार-वीर शवोपासको के असामान्य आचार, दीक्षा, अष्टा वरण-लिंग, गुरु, जगम, पादोदक प्रसाद, पचाचार, गोरखपथी उपासको के असामान्य आचार-रहनी, दीक्षा सस्कार। शवोपासको की मानसिक भूमिका-शवोपासको की आध्यात्मिक भूमिका, निष्कष।
उपास्य -नाम नामी सम्बन्ध, शिव के नाम और उनकी मीमासा, शिव रूप भयकर, सोम्य। मूर्तियो मे शिव रूप-मानवकार मूर्तियां, लिंग मूर्तिया अर्धनारीश्वर मूर्तियां, नटराज मूर्तिया। शिव परिवार-पावती, स्कन्द गणेश। शिव लीला, शिव-सती लीला, पावती प्रसग से शिव लीला, नटराज रूप, ब्राह्मण रूप, हनुमान रूप, किरात रूप, शिव अवतार, निष्कष।

उपासना—भक्ति (व्युत्पत्ति एव अथ), भक्ति प्रयोग क्षेत्र, भक्ति का इति हास, भक्ति का स्वरूप, भक्ति के भेद, भक्ति के साधन, भक्ति का लक्ष्य भक्ति की उत्कृष्टता। बाह्योपासना-शिवपूजा के उपकरण, उपकरणो का फलाकाक्षा से सम्बन्ध, उपासना के विशेष दिन। शवो के प्रमुख तीथ-स्थान। पूजा विधि-नमक चमक पूजा विधि, पार्थिव पूजा, आभ्यातरिक पूजा, शवतान्त्रिकों की आभ्यातरिक उपासना। निष्कष।

अध्याय १

शैवमत-विकास

भारतीय धर्म ग्रन्थों में शिव को मंगलकर देव के रूप में स्वीकार किया गया है। इस नाम का कोई क्रमबद्ध इतिहास तो हमारे सामने प्रस्तुत नही है किन्तु आज जो रुद्र नाम शिव का पर्यायवाचक माना जाता है उसी को हम शिव' नाम का उद्भव बीज भी मान सकते हैं। 'रुद्र' नाम का बीजपात ऋग्वेद मे दृष्टिगोचर होता है।

ऋग्वेद मे रुद्र' के अनेक पर्यायी शब्द मिलते हैं जिनमे अर्थ का एक विकासक्रम मिलता है। रुद्र बलवान हैं इसलिए वृषभ,[1] वैदिक काल मे नाम आकाश मे निवास करने से दिवोवराह[2] भयकर अग्नि रूप होने से कल्पलीकिन,[3] वर्षा करने वाले होने के कारण मेघपति,[4] शीतल एव गुणकारी औषधियो के स्वामी होने के कारण औषधीश,[5] वज्र धारण करने से वज्रधारी कहे गए हैं।[6] उन्हे भीम

---

१ एव बभ्रो वृषभ चेकितान यथा देव न हृणीषे न हंसि।
हवन श्रुतो रुद्रेहि बोधि बृहद्वदेम विदथे सुवीरा ॥
—ऋग्वेद २।३३।१५

२ दिवो वराहम् रुव कपर्दिन, त्वष रूप ममसा नि ह्वयामहो
हस्ते विभ्रदभेषजा वार्याणि शम वम छर्दिरस्मभ्य यसत।
—ऋग्वेद १।११४।५

३ प्र बभ्रवे वृषभाय श्वितीचे, महो महीं सुष्टुतिमीरयामि।
नमस्या कल्पलीकिन नमोभिगृ णीमसि त्वेष रुद्रस्य नाम ॥
—ऋग्वेद २।३३।८

४ ऋग्वेद १।४३।४।

५ वही, ५।४२।११।

६ वही, २।३३।१

उपहत्नु[1] जलाष और जलाषभेषज[2] स्वयशस[3] प्रचेतस्,[4] कवि और प्रभु जगत् का ईशान[5] भी भाख्यात किया गया है। एक स्थान पर रुद्र के लिए 'शिव'[6] का प्रयोग भी हुआ है।

ऋग्वेद में शिव शब्द का प्रयोग सम्भवतः बहुत कम हुआ है और वह भी विशेषण के रूप में किन्तु यजुर्वेद में रुद्र के लिए और ऐसे विशेषणों का प्रयोग मिलता है जो लौकिक संस्कृत में शिव' के भी विशेषण हैं। वे पिनाकी[7] आततायी, कपर्दी[8] नीलग्रीव[9] (नीलकण्ठ) निश्यकर्मा (लोहित वर्ण वाले) त्र्यम्बक[1] आदि अनेक नामों से अभिहित हुए हैं। इसमें सन्देह नहीं कि यजुर्वेद ने रुद्र के नामों का पर्याप्त विकास किया। इनमें से अधिकांश का सम्बन्ध लौकिक संस्कृत में शिव से ही रहा है। ऋग्वेद में जिन नामों का व्यवहार हुआ उनमें से बहुत से तो वहीं रह गये और कुछ आगे बढ़े जिनमें से कुछ ने अर्थ परिवर्तन कर लिया और कुछ मूल अर्थ को लेकर ही चलते रहे जैसे पिनाकी त्र्यम्बक आदि।

---

१ स्तुहि श्रुत गर्तसद युवान, मृग न भीममुपह त्नुमुग्रम।
मृला जरित्रे रुद्र स्तवानोऽन्य ते अस्मन्नि वपन्तु सेना ॥
—ऋग्वेद २।१३।११

२ ऋग्वेद १।४३।४, २।३३।७।

३ तद्रुद्राय स्वयशसे —ऋग्वेद १।१२६।३।

४ कद्रुद्राय प्रचेतसे मीलहुष्टमाय तव्यसे। — ऋ० १।४३।१।

५ ऋग्वेद २।३३।६।

६ स्तोम वो अद्य रुद्राय शिक्वसे क्षयद्वीराय नमसा दिदिष्टन।
येभि शिव स्ववाँएवयावभिर्दिव सिषक्ति स्वयशा निकामभि ॥
—ऋग्वेद १०।९२।९।

७ मीढुष्टम शिवतम शिवोन सुमनाभव। परमेवक्ष आयुध
निधाय कृत्तिवसानऽआचर पिनाक बिभ्रदागहि। —शु० य० २६।५१।

८ विज्य धनु कपर्दिनो विशल्यो बाणवाँ उत
अनेशन्नस्य या इषव आभुरस्य निषगधि ॥ —शु० य० १६।१०।

९ नमोस्तु नीलग्रीवाय सहस्राक्षाय मीढुषे। ना० स०—
—य० शे० १६।१।६६।८।

अथववेद न इस नाम परम्परा को और आगे वढाया और जहा महादेव[1] शव मव,[2] मन्त्रदाता आदि नामो की वृद्धि हुई वहा सहस्राक्ष,[3] व्युक्तकेश[4] आदि नाम भी प्रयुक्त हुए। अय वदा के कई नामा की भांति अथववेद के अनेक नामा न भी अय परिवतन का माग ग्रहण किया। सहस्राक्ष जस नाम रुद्र और शिव मध्य की शृखला की कडी न रहकर भिन्नाय बन गये।

ब्राह्मणो ने 'रुद्र नाम की व्याख्या की दिशा मे एक कदम आगे वढाया और रुदन करने के कारण उनको रौद्र[5] वतलाया। रुद्र का दवत्व अधिक विकसित हुआ। रुद्र और अग्नि म अभेद हो गया।[6] याज्ञवल्क्य द्वारा परिगणित तत्तीस देवा म रुद्रा न ही ग्यारह स्थान घेर लिये तथा इन्द्र, आदित्य वसु और प्रजापति के साथ दवत्व पथ पर आसीन हुए।[7]

---

१ सोऽवधत स महानतमभवत स महादेवोऽभवत। अथ० वे० १५।१।४।

२ भवाशवाविद घूमो रुद्र पशुपतिश्चय ।
इषूर्या एषा सविदम ता न सन्तु सदा शिवा ।।
—अथ० वे० १०। ६। ६।

३ अस्त्रा नीलशिखण्डेन सहस्राक्षेण वाजिना ।
रुद्र णावकापतिना तेन मा समरामहि ।। अथ० वे० ११।२।७।

४ अथ० वे० ११ २।

५ तमब्रवीद रुद्रो सीति तयदस्य तन्नाम्ना करोत ।
अग्निस्तद्रूपमभवत अग्निवे रुद्रो ।
यदरोदीतस्माद्रुद्र । सोऽब्रवीत् ज्यायान्वान्वतो
ऽस्मिधेह्येव मे नामेति । —शत० ब्रा० ६।१।३।१०।

६ अग्निवो स देव तस्यैतानि नामानि शवइति
यथाप्राच्या आचक्षते भवति । यथा वाहीका
पशुनापती रुद्रोऽग्निरिति ।
—शत० ब्रा० १।७।३।८।

७ स होवाच महिमान एवैषामेते त्रयस्त्रिंश त्वेव
देवाऽइति कसमे ते त्रयस्त्रिंशत इत्यष्टो वसव
एकादश रुद्रा द्वादशादित्यास्तऽएक त्रिंशत्
इन्द्रश्चव प्रजापतिश्च त्रयस्त्रिंशाविति ।
—शत० ब्रा० १४।३।७।३।

शतपथ ब्राह्मण की भांति अन्य ब्राह्मणों ने भी रुद्र के महत्त्व को प्रतिपादित करने में अपना अपना गौरव बतलाया। कौषीतकी ब्राह्मण ने रुद्र को उत्तर दिशा[1] का अधिपति यहा कर माना यम के स्थान पर भी बठा दिया।

उपनिषदों ने भी रुद्र नाम के विकास में अपना पर्याप्त योग दिया। श्वेताश्वतर उपनिषद् ने रुद्र को गिरिशन्त गिरित्र[2] ही नहीं कहा वरन् शिव शब्द से अभिहित किया। एक ओर नामावली में विकास किया और दूसरी ओर नाम की परम्परा को अक्षुण्ण भी रखा। शिव शब्द इसी का द्योतक है। एक प्रकरण में रुद्र को अग्नि सूर्य वायु ब्रह्म, प्रजापति व महेश्वर[3] भी कह डाला।

छान्दोग्य उपनिषद् में रुद्र को वसुओं से अधिक महत्वशाली बतलाया गया। उपनिषद् ने कहा— जितने समय में आदित्य पूर्व से उदित होता है और पश्चिम में अस्त होता है उससे दुगुने समय में वह दक्षिण से उदित होता है और उत्तर में अस्त होता है। इतने समय पर्यन्त वह रुद्रों के ही आधिपत्य एवं स्वराज्य को प्राप्त होता है।" अर्थात् वसुओं की अपेक्षा रुद्रों का भोग काल दूना है। इसी उपनिषद् में एक स्थान पर' उपजीवन्तीन्द्रेण मुखेनव 'कह कर रुद्र और इन्द्र का सम्बन्ध व्यक्त किया गया है।[4]

माण्डूक्योपनिषद् मे ओंकार के लिए 'शिव' शब्द का प्रयोग किया गया है। वहां "द्वैतस्योपशम शिव" कह कर शिव शब्द के अर्थ को व्यक्त किया गया है। शांकरभाष्य मे इसका अर्थ सम्पूर्ण द्वैत का उपशम स्थान" होने से ओंकार को शिव' (मंगलमय) कहा गया है। इससे यह स्पष्ट है कि ऋग्वेद के शिव का अर्थ उपनिषदों ने भी सुरक्षित रखा।

---

१ कौशीतकी ब्राह्मण ३।४, ६।१,

२ यो देवानां प्रभवश्चोद्भवश्च विश्वाधिपो रुद्रो महर्षि ।
 यामिषु गिरिशन्त हस्ते बिभर्ष्यस्तवे ।
 शिवां गिरित्र तां कुरु मा हिंसी पुरुषं जगत ।
 —श्वे० उ० ३।३, ३।४, ३।५ ३।६, ३।७ ।

३ यो देवो अग्नौ यो अप्सु यो विश्वं भुवनमाविवेश ।
 य ओषधीषु यो वनस्पतिषु तस्मै देवाय नमो नम
 श्वे० उ० २।१७ ।

४ छान्दोग्य उपनिषद-३।७।१७।

रामायण महाभारत और पुराण ग्रन्थों में शिव शब्द कहीं कहीं विशेषण के रूप में भी प्रयुक्त हुआ किंतु उसका प्रयोग

उत्तर वैदिक काल में नाम

बहुधा देव विशेष के लिए ही हुआ है। वदिक साहित्य में रुद्र के अनेक विशेषण शिव के पर्यायी भी बन गये थे, किन्तु 'शिव किसी कथा के पात्र होकर कहीं भी हमारे सामने नहीं आते। शिव सम्बन्धी कथाओं को जन्म देने और विकसित करने में रामायण व महाभारत के साथ पुराणों का बड़ा योग रहा है। इन्हीं ग्रन्थों में शिव के सम्बन्ध की कथाएं भी प्रचलित होती हैं। शिव विष्णु[1] और शिव ब्रह्मा[2] का सम्बन्ध विकसित होता हुआ शिव परिवार भी विस्तार को प्राप्त होता है। देव सम्बन्ध के ये प्रसग भारतीय लौकिक साहित्य के लिए पुराणादि की अनुपम देन हैं। अन्य देव कथाओं की भाँति शिव कथाओं में वर्णाश्रम धर्म के साथ साथ भक्ति भावना का स्वरूप भी प्रखर हो उठा है।

तन्त्रों में शिव[3] नाम अपना स्पष्ट अर्थ लेकर आया है बिलकुल उसी प्रकार का पुराणों में मिलता है, किन्तु कथा प्रसंग का वहाँ अभाव सा है। उनमें तो साधना विषयक कुछ प्रस्थापना है और कुछ तन्त्रों में उपासना पद्धति का निरूपण है। जो हो तन्त्र साधना अथवा उपासना दोनों में शिव नाम अवतीर्ण हुआ है।

वदिक काल से पौराणिक काल तक शिव के स्वरूप में पर्याप्त विकास पाया जाता है। ये निराकार से साकार हो गये हैं। शिव

वैदिक काल में रूप

के स्वरूप का विकास ऋग्वेद में वर्णित रुद्र के स्वरूप से प्रारम्भ होता है। इसमें इनके दो रूपों का उल्लेख मिलता है — एक भयकर और दूसरा कल्याणकारी। भयकर रूप में इन्हें वज्रधारी[4]

---

१ येय मूर्तिभगवत शकर आस स्वय हरि।
—वराह पुराण ६।७।

२ शकरो भगवान शोरिभू तिर्गौरी द्विजोत्तम
नमो नमो विशेयस्त्व त्व ब्रह्मा त्व पिनाकधक॥
—वा० पु० २।८।२१।

३ अस्ति देवी परब्रह्म स्वरूपो निष्कल शिव।
सवज्ञ सवकर्ता च सर्वेशो निमलाशय॥
अथ ज्योतिरनाद्यन्तो निर्विकार परात्पर।
निगुण सच्चिदानन्दस्तदसा जीवसज्ञका॥
—कुलार्णव तत्र १।११–१२।

४ ऋग्वेद २।३३।१।

रूप म चित्रित किया गया है तथा गोघ्न और पुरुघ्न इनके क्या के नाम बतलाये गये हैं[1]। इनका रूपप भीपण है। अपने सौम्य रूप म रुद्र औपधीश हैं।[2] इनके वरणीय औपधवाले हाथ को यशस्कर एवं पीयूषमय[3] बतलाया गया है।

यजुर्वेद म रुद्र को बलवान् सुसज्जित योद्धा के रूप म चित्रित किया है। उनके हाथ म पिनाक[4] नामक धनुष तथा बाण है और बाणों को रखने के लिए तूणीर भी है। उनके पास सहस्रों प्रकार के खड्ग और आयुध हैं। उनकी तलवार का नाम निस्त्री है तथा उसका रखने के लिए निम्भषी भी है।[5] व शृग वज्र भी धारण करते हैं। सिर की रक्षा क लिए शिरस्त्राण व शरीर की रक्षा के लिए वम और कवच भी धारण करत हैं।[6] व अपन भक्तो के दुश्मनों का मारने के लिए सिर पर बिलम (शिरस्त्राण) कवच एव वम धारण कर, सावधान करके, रथासीन होकर मैदान म उतरते हैं। ये जटाधारी भी हैं।[7] यजुर्वेद म रुद्र अम्बिका सहित यज्ञ भाग ग्रहण करत बतलाये गये हैं।[8] वे अपने कल्याणकारी रूप म केवल पुण्य फल के दाता हैं। इसी वेद क

---

१ आरे त गोघ्नमुत पुरुघ्न, क्षयद्वीर सुम्नमस्मे ते अस्तु।
मृला च नो अधि च ब्रूहि देवाधा च न शर्म यच्छ द्विबर्हा।
—ऋ० वे० १।११४।१०।

२ ऋग्वेद ५।४२।११।

३ क्व स्य ते रुद्र मृल्याकुर्हस्तो, यो अस्ति भेषजो जलाष।
अपभर्ता रपसो दैव्यस्याभी नु मा वृषभ चक्षमीथा॥
—ऋग्वेद २।३३।७।

४ शु० य० सं० १६।५१।

५ वही, १६।२१।

६ महीधर भाष्य क अनुसार 'कवच' और 'वम' मे अन्तर है। लोहे का बना शरीर रक्षक 'वम' कहलाता था। कपास भर कर कपडे का सिला शरीर रक्षक वस्त्र विशेष कवच कहलाता था। कवच के ऊपर वम' पहिना जाता था। यथा—

पटस्यूत कार्पासिगर्भ देहरक्षक कवचम्।
लोहमय शरीर रक्षकम वम॥
—शु० य० वे० १५।३५ पर महीधर भाष्य।

७ शु० य० सं० मा० स० १६।१।६६।६ १०।

८ एष ते रुद्र भाग सहस्वस्राम्बिकया त जुषस्वस्वाहा
एष ते रुद्रभागऽस्मारवृते पशु। —शु० य० सं० ३।५७ से ६३।

अनुसार रुद्र की ग्रीवा नीली है, वे नीलकण्ठ हैं, सहस्रनेत्र हैं[1] तथा मेघस्वरूप हैं। वे वल्कल धारण करते हैं वृषभ पर बठने वाले लोहितवर्ण विश्वकर्मा भी हैं।

अथर्ववेद म रुद्र का स्वरूप और भी स्पष्ट हो गया है। इनके मुख, चक्षु त्वक अग, उदर जिह्वा तथा दाता का वर्णन भी इसमे किया गया है। इनके सहस्रनेत्र और नीली गदन का भी उल्लेख मिलता है।[2] इनके सिर पर जटाजूट का वर्णन मिलता है तथा साथ ही व्युक्त केश भी कहे गये हैं। इनके केशो का रग लाल और नीला है तथा शरीर का रग बबुलीश (कपिल) है और अतरिक्ष मे निवास[3] करते हैं। इनका मयूरपिच्छ से विभूषित स्वर्णमय धनुष सकडो बाणो से सुशोभित है।[4]

उपनिषदो में रुद्र के स्वरूप का वर्णन मिलता है। इनम रुद्र को समस्त मुखो वाला, समस्त सिरोवाला, समस्त ग्रीवावोवाला समस्त जीवो के अन्त करण मे स्थित, सवव्यापी सवगत् और मगलकारी रूप मे वर्णित किया गया है।[5] अग्नि, सूय वायु चन्द्रमा, शुक्र ब्रह्म प्रजापति आदि नामो से उनके रूप का भी इगित मिलता है।[6]

---

१ नमोऽस्तु नीलग्रीवाय सहस्राक्षय मीढुषे।
—शु० य० वे०, वा० स० १६।१।६६।८।

२ मुखाय ते पशुपते यानि चक्षूंषि ते भव।
त्वचे रूपाय स॒ दृश प्रतीचीनाय ते नम ॥
अस्त्रा नीलशिखण्डेन सहस्राक्षेण वाजिना।
रुद्रेणार्धकघातिना तेन मा समरामहि ॥
—अ० वे० ११।२।५,७।

३ पुरस्तात ते नम कृण्म उत्तरादधरादुत।
अभीवर्गात दिवस्पय-तरिक्षाय ते नम। —अथ० वे० ११।२।४।

४ धनुर्बिभर्षि हरित हिरण्यय सहस्रघ्नि शतवध शिखण्डिनम।
रुद्रस्येषुश्चरति देवहेतिस्तस्य नमो यतमस्या दिशीत।
—अथ० वे० ११।२।१२।

५ सर्वाननशिरोग्रीव सवभूतगुहाशय।
सव यापी स भगवान्स्मात्सवगत शिव ॥ —श्वे० उप० ३।११।

६ मैत्रायणी उपनिषद् ५।८।

वदिक साहित्य की तरह उत्तर वदिक साहित्य म भी इनके रूप के विकास क्रम का पता चलता है। इस काल म

उत्तर वदिक काल से रूप

इनके रूप का विकास अपनी चरम सीमा पर पहुच गया था। बौधायन धम सूत्र म रुद्र की पत्नी, पुत्र और पापदा का भी उल्लेख मिलता है।[१]

यह तो अन्यत्र कहा ही जा चुका है कि हम शिव के दो रूपा के दशन होते है— रुद्र रूप तथा शिव रूप। जिस प्रकार शिव का रुद्र रूप वदा में प्रधान रहा उसी प्रकार उत्तरवदिक काल म रुद्र का शिव रूप प्रधान हो गया। रुद्र और शिव दोना ही भक्ता की सम्पति हैं, किन्तु रुद्र बहुधा अनिष्टदेव के रूप म ही सामने आय हैं जबकि शिव का स्वरूप इष्ट देव का ही रहा है। भक्त लोग शिव के प्राय सगुण रूप मे ही दशन करते हैं। सगुण शिव का एक परिवार है। वे उसी म रहते हैं। व शिवा से कभी विलग नही होते। यहा तक कि उनका आधा शरीर ही शिवा है। इसीलिए वे अधनारीश्वर भी हैं।[२] उनके एक पुत्र देवसेनापति और दूसरे देवा म अग्रपूज्य हैं। परिवार के सभी लोगो की विशेषताए हैं। शिव पचानन [३] भी कहे जाते हैं पर पुत्र एक और कदम आगे बढ़ कर षडानन हो गये है[४] और गणेशजी केवल गजानन ही नही, लम्बोदर भी हैं।[५] पत्नी शिवा पवत की पुत्री न जाने कितने अवतार और रूप धारण करने वाली हैं। सबके वाहन भी अपने अपने है। शिवजी का वाहन वृषभ है। कभी कभी तो शिवा, शिव के साथ वृषभासीन दिखाई पडती हैं। ऐसी बात नही है कि शिवा का अपना कोई वाहन नही है। वह अपने दवी रूप म सिहवाहिनी हैं। उस समय वह अष्टभुजा धारिणी भी हैं। इसी प्रकार स्वामी कार्तिकेय का वाहन मयूर है। इन वाहना की इतनी विशेषता नही जितनी लम्बोदर गजानन के वाहन की है। मूषक पर आसीन हाकर जब

---

१ बौ० ध० सू० २।५।६।

२ अधनारीशरीराय अव्यक्ताय नमोनम ।

—लिंग पु० १।१८।३०।

३ न्यसेत सिंहासने देव शुक्ल पचमुख विभुम ।
दशबाहु म खण्डेन्दु दधान दक्षिण कर ॥

—अग्नि० पु० ७४।५०।

४ अग्नि पुराण १।१०८।२८ ३०।

५ वही ३१२।४, ३१७।१६।

गणनायक निकलते हैं तो देव समाज मे उपहास्य होने के स्थान पर वे पूज्य ही दृष्टिगोचर होते हैं। शिव कलास पर निवास करते हैं। वे त्रिनेत्र हैं। उनके तीसरे नत्र की ज्वाला से ही मदन[1] दग्ध होता है। गगावतरण[2] उनकी जटाग्रो की सघनता एव विस्तृति सामने ला देती है। जो शिव शशि भूषण है वही शिव ग्रहि भूषण भी है। जो ग्रवढरदानी ग्रौर शकर हैं, वही प्रलयकर ग्रौर भयकर भी हैं जो ग्रपन सौम्य रूप मे मोहक हैं वही ग्रपने रुद्र रूप मे भयकर भी हैं।

सौम्य ग्रौर भयकर य दोनो रूप पुराणो ने[3] वडे विस्तार से वर्णित किये है। लास्यमुद्रा मे व वडे ग्राकर्षक हो जाते हैं ग्रौर ताण्डव नृत्य से दिग्गजो तक को प्रकम्पित करते हैं। उनका रुद्र रूप दुष्टो के लिए है ग्रौर शिव रूप ग्रपने उपासको के लिए। सस्कृत साहित्य पर पौराणिक शिव रूप का वडा गहन प्रभाव पडा है। इनके दोनो रूपो से साहित्य ने तो ग्रपने को पल्लवित पुष्पित किया ही है साथ ही उससे ग्रनक लोक कथाए भी विकसित हो गई हैं। शिव पावती ग्रौर उनके परिवार को लेकर न जान कितनी कहानिया दादी नानी के मुख से विकसित हुई हैं। उन सभी म रुद्र या शिव के प्राचीनतम रूप सुरक्षित हैं।

वैदिक काल मे गुण

शिव के नाम ग्रौर रूप मे उनके गुणों को ग्रलग नही किया जा सकता। वल्कि रुद्र रूप मे भयकरता भी थी ग्रौर सौम्यता भी थी। ऋग्वेद ने तो उन्ह बहुधा ग्रभिष्ट दव के गुणो से ही ग्रनुपत किया है। ग्रन्य वेदो ग्रथवा उत्तरवदिक साहित्य न भी उनके रौद्र रूप को चित्रित किया है किन्तु रामायण-महाभारत काल म शिव रूप ही प्रधान हो गया है। उससे शिव सवधित गुणो का ग्रधिक विकास हुग्रा है।

वेदो ने रुद्र के वलवान दृढ ग्रजेय ग्रभेय शक्तिवाले रूप का वर्णन करके उनके पोषक ग्रौर हन्ता रूप का एक ही साथ समावेश कर दिया है।

---

१ वा० रा० वा० का० स० २३।१०।

२ (१) वही ४३।२-११।

(२) महा० भा० वन० पव० ८५।२२ २५।

३ (क) 'विश्वरूपाय करालाय विकृतरूपाय।

—ग्रग्नि पुराण २३३।१३।

(ख) ब्रह्म पुराण, ग्रध्याय ३५।३७।

ऋग्वेदोत्तर वेदों में रुद्र के सौम्य गुण स्पष्ट होने लगे। वे प्रलयकर होने के अतिरिक्त कल्याणकारी, शांत एवं मुक्तिदाता के गुणों से उपेट भी हो गये। मन्त्रोपदेष्टा कह कर यजुर्वेद और अथर्ववेद ने ब्रह्म को महत्व देकर शिव के गुणों को सुरक्षित रखते हुए भी उन्हें ब्रह्म का प्रतीक बना दिया।[1]

उपनिषदों ने शिव[2] और ब्रह्म में अभेद स्थापित करने का अतुल प्रयत्न किया है, किन्तु उत्तरवैदिक काल में शिव अपने सगुण रूप में ही व्यक्त हुए हैं। इसका एक विशेष कारण उपासना पद्धति का विकास रहा है। रुद्र को सूत्रग्रन्थों ने व्याधिहर्ता पालक और रक्षक के गुणों से युक्त बतलाकर[3] उनको शिवत्व प्रदान किया। तन्त्रों में तो रुद्र स्पष्टतः शिव रूप में परिणत हो गये। उपनिषदों की अभेद दृष्टि में दृष्टि डाल कर तन्त्रों ने शिव को परब्रह्म निष्कल्प, सर्वज्ञ सर्वकर्त्ता सर्वेश निर्मलाशय ज्योतिस्वरूप निर्गुण निर्विकार सच्चिदानन्द आदि अनेक गुणों से आपूर्ण कर दिया।[4]

आराध्य या उपास्य के रूप में शिव के गुणों का विस्तार ही होता चला गया। अपने भक्तों या उपासकों के लिए वे विषप गंगाधर आदि भी बन गये। इस प्रकार के अनेक गुणों का विकास होता रहा और भक्तों ने अपनी तरल भावना की तरंगों में शिव को 'बहुगुणी' बना दिया। जिस प्रकार रुद्र नाम शिव में विलीन होता गया उसी प्रकार रुद्र के गुण भी शिव के गुणों में विलीन या समाविष्ट होते गये।

---

१ (क) नमो रुद्राय हरये ब्रह्मणे परमात्मने।
प्रधानपुरुषेशाय सर्गस्थित्यन्तकारिणे॥
—लिंग पुराण १।१।१।

(ख) वेदेषु च महान देवो महादेवस्ततः स्मृतः।
सर्वेशत्वाच्च लोकानामवश्यत्वात् तथेश्वरः॥
—वायु पु० ५।३८।

(ग) त्वामेकमाहुः पुरुषं पुराणम् आदित्यवर्णं तमसः परस्तात्
—सौर पुराण २६।३१।

२ (क) एको हि रुद्रो न द्वितीयाय तस्थुर्य
इमाँल्लोकानीशत ईशनीभिः। —श्वे० उ० ३।२।

(ख) ततः परं ब्रह्म परं बृहन्तम्। श्वे० उ० ३।७।

३ व्याधिप्लाय रुद्राय　　शा० श्र० सू० ३।४।८।

४ कुलार्णव तन्त्र १।११-१२।

वदिक काल से पौराणिक काल तक जिस प्रकार शिव के नाम, रूप एव गुण का विकास होता गया उसी प्रकार उपासना पद्धति म भी विकास हुआ।

वेदा के 'रुद्र की उपासना भावमयी थी। वहा केवल प्राथनाम्रा द्वारा ही इनकी उपासना की जाती थी परन्तु ब्राह्मणकाल म इन्हे अपना इष्टदेव मान कर यज्ञ भाग भी दिया जान का विधान मिलता है।[१] कौशीतकी ब्राह्मण मे वे भव और शव नाम स अलग देव भी माने जान लगे और इनकी मूर्तिया भी बनने लगी।[२] लाटायन श्रौत सूत्र के त्र्यम्बक सोम प्रसग मे विधान है कि यज्ञ के बाद खडे होकर उपस्थान करना चाहिए और यज्ञ म रुद्र भाग अवश्य कल्पित हाना चाहिए।[3] बौधायन धर्मसूत्र म ता स्पष्ट उल्लेख है कि "मैं भव देव को तृप्त करता हू उग्र रुद्र भीम महान् को भी तृप्त करता हू तथा उनकी पत्नी, सुत तथा पार्षदा को भी तृप्त करता हूँ। वे हमारे प्राण हैं हम उनके लिए हवन करें और वे हमारी रक्षा करें।[४] मानव गह्य सूत्र मे उल्लेख है कि अमगल को दूर करने के लिए 'रुद्र का जाप करना चाहिये और उनके निवास का भी ध्यान करना चाहिए।[५]

उत्तरवदिक काल म उपासना विधि का और भी विकास हुआ। इनम शिव के विभिन्न रूपा की अनेक विधि से पूजा का विधान है। पुराणो मे शिव के साथ उनकी पत्नी पुत्रो व गणा आदि की पूजा का[६] निरूपण भी मिलता है। यहीं से उपासना विधियो मे बहुरूपता आगई। तन्त्रा म शिव उपासना विधि का विस्तारपूर्वक वर्णन मिलता है। इनमे शिव व शिवा के निमित्त करने

---

१ (क) तैत्तिरीय ब्राह्मण—१।६।१०।
   (ख) शतपथ ब्राह्मण १ ७।३।१ ८।
२ कौ० ब्रा० ४।४।
३ लाटयायन श्रौत सूत्र ५।३।
४ ओं भव दव तर्पयामि। ओं शिव देव तर्पयामि
   ओम ई शान ओ पशुपति —बौ० धम० सू० २।५।६।
५ अमगल्य येद प्रतिशनति अमुनार्यत्विति जयति
   —मा० ग० सू० १।१३।१ १४।
६ अग्नि पुराण—३२२।

योग्य विभिन्न पूजा विधियों का विधान है।[1] महानिर्वाण तन्त्र में शिव के साथ पार्वती की उपासना का भी विधान उपलब्ध होता है।[2] इसी काल में कौल उपासना पद्धति का भी प्रचार शुरु हो गया था।

इस प्रकार वेदों की मानसमयी उपासना धीरे धीरे विकसित हो कर मूर्ति पूजा में परिणित हो गई। यही रूप आज भी उपलब्ध होता है।

शिव सम्बन्धी प्रमुख कथाएं

वैदिक साहित्य में रुद्र के निर्गुण, निराकार स्वरूप की प्रतिष्ठा थी और वैदिक कवियों ने उनके इसी रूप की आराधना की किन्तु कथा विकास उत्तर वैदिक साहित्य में रुद्र शिव में परिणत हो गए और उनकी निर्गुण उपासना के साथ सगुण एवं साकार उपासना भी आरम्भ हो गयी। वैदिक रुद्र की पत्नी रुद्र के पुत्र तथा रुद्र के पार्षद सम्बन्धी कथाएँ भी उत्तर वैदिक साहित्य में चित्रित होने लगी।

रामायण महाभारत तथा पुराणों में शिव और उनके परिवार तथा उनसे सम्बद्ध अनेक प्रमुख तथा अप्रमुख कथाएँ भी प्राप्त होती हैं। शिव और सती की कथा इसी क्रम की प्रमुख कड़ी है। इसका उल्लेख रामायण महाभारत[3] ब्रह्मपुराण[4] ब्रह्माण्ड पुराण[5] मत्स्य पुराण[6] लिंग पुराण[7] वराह पुराण,[8] सौर पुराण[9] तथा शिव पुराण[10] आदि में मिलता है। कथा का

१ आधानशैव जननीमरविन्दयोने विष्णो शिवस्य च वपु प्रतिपादयित्री। सृष्टि स्थितिक्षयकरी जगता त्रयाणाम। स्तुत्वा गिर विमलयाम्यहमम्बिके त्वाम।

— काली तंत्र ५।२।२।

२ त्व परा प्रकृति साक्षात ब्रह्मण परमात्मन। त्वत्तो जात जगत्सर्व त्व जगज्जननी शिवे॥

— महा० नि० त० ४।१०।

३ महा० भा० सौप्तिक पर्व १८।१-२३।

४ ब्रह्मपुराण ३४।१-३५।

५ ब्रह्माण्ड पुराण, २।१३।४५।

६ म० पु० ७२।११।

७ लिंग पुराण १।९९।१३-५०।

८ व० पु० २१।४-६६।

९ सौ० पु० ७।१०-३४।

१० शि० पु०, रुद्र स०, अध्याय १२, १४, १५, १६ १७।

प्राधार, उसके विकास का क्रम प्राय सवत्र समान है ।

शिव पुराण मे कहा गया है कि प्रजापति दक्ष न क्षीर सागर के उत्तर तट पर जगदम्बिका शिवा को पुत्री रूप म प्राप्त करने की इच्छा तथा उनके प्रत्यक्ष दशन की लालसा से तपस्या की। उनकी निरन्तर साधना मे प्रसन्न होकर शिवा ने दशन दिए और दक्ष की इच्छा पूण करन का वचन दिया । कालान्तर मे राजा दक्ष के यहाँ पुत्री उत्पन्न हुई जो सती के नाम से प्रसिद्ध हुई । सती का विवाह शिव म सम्पन्न हुआ । वस्तुत शिवा शिव की अनन्य शक्ति हैं, सदव अविनाभाव मे उनके साथ ही निवास करती हैं । परब्रह्म शिव की इन कथाओ म उनके अनन्य सम्बन्ध की सवत्र सुरक्षा हुई है ।

दक्ष कथा

सती से सम्बद्ध सती त्याग[1] और दक्ष यज्ञ विध्वस की कथाएँ साहित्य के आकषण केन्द्र हैं । रामायण की कथा के अनुसार राम के चरणो मे शिव की अनन्य भक्ति देख कर सती को विस्मय हुआ तथा उन्होने शिव से इसका कारण पूछा । भगवान शिव न राम के परब्रह्म स्वरूप का वणन किया किन्तु सती का विस्मय दूर नही हुआ और उन्होने राम की परीक्षा लेनी चाही । अत शिव से स्वीकृति लेकर वे सीता का रूप धारण कर, राम की परीक्षा लेन गयी । इस वेष म राम की परीक्षा लेने के कारण शिव न उनका मानसिक त्याग कर दिया।

सती त्याग

सती के इस मानसिक त्याग के प्रसग म ही दक्ष-यज्ञ विध्वस[2] की कथा भी आती है। सती अनामन्त्रित ही दक्ष के यज्ञ मे गयी वहाँ शिव का अनादर देख कर उनका हृदय विक्षुब्ध हो उठा और क्रोध के कारण वे यज्ञस्थल म ही योगाग्नि स भस्म हो गयी। इस

दक्ष यज्ञ विध्वस

---

१ (क) रुद्र सहिता, शिव पुराण अध्याय २४ २५, २७ ।
(ख) मत्स्य पुराण, १३।१२, १८ १९ ।
(ग) वराह पुराण २२।१,२ ।

२ (क) महाभारत, सौ० प० १८।१-२३ ।
(ख) वही, अनु० प० १५०।२५-३१ ।
(ग) वा० पु० ३०।४०, २८१ ।
(घ) म० पु० १३।१२, १८, १९ ।
(च) ब्र० पु० ३९।३१, ४०।५, ८, १८ ।
(छ) शि० पु० अ० ४१, ४२ ।
(ज) वराह पुराण २२।१,२ ।

पर वीर भद्र तथा शिव के अन्य गणों ने दक्ष यज्ञ का विध्वंस कर डाला तथा यज्ञ में आए हुए ऋषियों और देवताओं का संहार आरम्भ कर दिया। इस दुर्दशा का देख कर अन्य ऋषियों ने शिव की स्तुति की, शिव ने स्तुति से प्रसन्न होकर, यज्ञ भूमि में उन्हें दर्शन दिये। शिव ने प्रजापति के धड़ में यज्ञ पशु—बकरे का सिर जोड़, उनको नव जीवन दिया तथा इसी प्रकार अन्य ऋषियों और देवताओं को भी पुनर्जीवित किया।

पार्वती विवाह तथा मदन दहन

शिव के सम्बन्ध से एक और प्रसिद्ध कथा पार्वती की[1] कथा है। शिव भक्तों के अनुसार शिव की शक्ति दक्ष की पुत्री सती, जो दक्ष-यज्ञ भूमि में भस्म हुई वे ही राजा हिमवान् के यहाँ अवतरित हो कर पार्वती कहलायीं। पार्वती के जन्म, शिव को प्राप्त करने के लिए उनकी तपस्या, तथा पार्वती विवाह आदि प्रसंगों के आधार पर अनेक संस्कृत और हिन्दी ग्रन्थों का सृजन हुआ। इस कथा के विकास का श्रेय भी रामायण, महाभारत और पुराणों को है। शिव विवाह के प्रसंग में ही 'मदन दहन'[2] की कथा आती है। सती के भस्म होने पर शिव कैलाश पर्वत पर जाकर तपस्या करने लगे। इसी बीच तारकासुर के वध के लिए देवताओं को सेनापति की आवश्यकता हुई। शिव से उत्पन्न उनके पुत्र ही इस कार्य को कर सकते थे। अतः देवताओं ने शिव को पार्वती से विवाह के लिए प्रेरित करने का कार्य मदन को सौंपा। मदन शिव के क्रोध का पात्र बने। शिव ने अपने तीसरे नेत्र से मदन का दहन किया।

---

१ (क) ब्रह्माण्ड पुराण ३।६७।३५।
(ख) लिंग पुराण १।१०२।१-६२।
(ग) शि० पु० अ० २२, २३, २४ २८, २९, ३१, ३२, ३३।
(घ) रामायण आ० कां० ३६।५-२६।
(च) महाभारत, वन पर्व-१८३।५-५६, १८८।८-५०।
(छ) वही, शल्य पर्व-४४।६-३७।
(ज) वा० पु०-७२।२०-२६।
(झ) वराह पुराण-२३।७ २३।१३-२८।
(ञ) वही, २५, ३२, ३३, ३४।

२ (क) रामायण-बा० का० २३।१०।
(ख) महाभारत, अनु० प०-११२।२६-३४।
(ग) ब्र० पु० ७१।३६, ७१।४०, ४१, ४२।
(घ) लि० पु० १।१०१।१६-४३।

शिव का यह त्रिनेत्र स्वरूप वेदों मे भी प्रतिपादित है त्रिनेत्र स्वरूप से ही मदन की कथा का विकास हुआ है।

शिव नीलकण्ठ हैं उनके इस नीलकण्ठ विशेषण से ही सागर मथन और विषपान की कथा का प्रतिपादन हुआ है।[1]

शिव द्वारा विष पान उत्तर-वदिक-साहित्य की मान्यता के अनुसार शिव विषपान करने के ही कारण नीलकण्ठ कहलाये हैं।

इस प्रकार उत्तर वदिक साहित्य म, शिव के वदिक विशेषणा के आधार पर ही कथाग्रो का विकास हुआ। इन कथाग्रो म शिव के गुणा के विकास की परम्परा भी अक्षुण्ण है, शिव त्रिगुणातीत भी हैं त्रिगुणाश्रय भी। वे अपन भक्ता के लिए गुणो से युक्त होकर साकार होते हैं और उन पर अनेक प्रकार से अनुग्रह भी करते हैं। उत्तर वदिक साहित्य मे, उनके पारिवारिक जीवन से सम्बन्धित सती तथा पावती की कथा के समान ही, उनके उदार चरित्र को अभिव्यक्त करने वाले भी अनेक प्रसग प्राप्त होते है।

इनमे कुबेर की मैत्री[2] की कथा प्रसिद्ध है। काम्पिल्य नगर के राजा यज्ञदत्त के पुत्र का नाम गुणनिधि था। गुणनिधि को

कुबेर मैत्री कथा उसके दुश्चरित्र के कारण, पिता ने घर से निकाल दिया। घर से निकलकर गुणनिधि शिव मन्दिर म नवेद्य चुरान के लिए गया। वहा उसने अपने वस्त्र को जलाकर प्रकाश किया। मन्दिर मे चोरी करने के कारण वह पकडा गया। चोरी की सजा मे उसे प्राणदण्ड मिला। शिव मन्दिर में वस्त्र जला कर प्रकाश करने के कारण भगवान शिव उससे प्रसन्न थे। अत प्राण दण्ड के उपरान्त उस शिवलोक प्राप्त हुआ। यही गुणनिधि कालान्तर म कलिंगराज 'दम' बना। इस जीवन म भी उसने शिव की अनन्य भक्ति की, शिवालया म दीप जलवाये। भक्ति के फलस्वरूप उसे दिक्पाल पद प्राप्त हुआ। ये ही गुणनिधि ब्रह्मा के मानस पुत्र 'विश्रवा के यहा वश्रवण नाम से उत्पन्न हुए। इन्होन शिव लिंग की प्रतिष्ठा कर दुष्कर तपस्या की।

---

१ (क) रामायण–बा० का० ४५।१८ २६।
(ख) महाभारत, व० प०–१३।२२ २६।
(ग) वा० पु० ५४।४८, ५८, ६७।
(घ) ब्रह्माण्ड पुराण २।२५।६०।
(च) शि० पु०–अ० १८, १६।

२ (क) शिव पुराण–अ० २०।
(ख) ब्रह्म पु०–३६।४६।

कठोर तपस्या से इनके शरीर म अस्थि और चम मात्र ही अवशिष्ट रह गए। उनकी तपस्या से प्रसन्न होकर शिव और पार्वती ने दशन दिए। भगवान शकर के तेज से उसकी आखें चौंधिया गयी शकर की कृपा से वह पुन नेत्र ज्योति प्राप्त कर सका। यज्ञदत्त के पुत्र, गुणनिधि की वामा की ओर घूर घूर कर देखने के कारण, बायी आख फूट गयी। गुणनिधि के इस चरित्र से पार्वती को बड़ा क्रोध आया। शिव के अनुरोध से उमा न शात होकर उस कुबेर का पुत्र रूप मे स्वीकार किया और कहा कि तुम्हारी एक आख तो फूट ही गयी है, अत एक ही पिंगल नेत्र स युक्त रहो मेरे रूप से ईर्ष्या होने के कारण तुम्हारा नाम 'कुबेर' होगा। शिव और पार्वती की अनुकम्पा से, भगवान शिव के चरणो में अनन्य भक्ति के साथ गुणनिधि ने कुबेर पद प्राप्त किया। भगवान शिव आशुतोष हैं उनकी कृपा से भक्त सदव आनन्द प्राप्त करते हैं।

दधीच कथा

मुनि दधीच की प्रसिद्ध पौराणिक कथा है। मुनि श्रेष्ठ दधीचि ने दीर्घ काल तक महामृत्युंजय का जप तथा तपस्या कर उदार एव भक्तवत्सल शिव स तीन वर प्राप्त किए—'मेरी हड्डी वज्र हो जाय मेरा कोई वध न कर सके तथा मैं सदव अदीन रहू।"

शिव कल्याणकर हैं असुरो का सहार करने वाले हैं। शिव द्वारा "त्रिपुर दाह"[१] की कथा का उल्लेख महाभारत एव अनेक पुराणो म मिलता है।

दत्यो के त्रिपुर का दाह

यह कथा शिवपुराण म विस्तार के साथ दी गयी है। त्रिपुरवासी दत्यो से सतप्त होकर देवताओ ने, शिव से दत्यो के वध के लिए विनय की। शिव ने देवताओ की प्राथना स्वीकार कर, दत्यो के त्रिपुर को नष्ट करने के लिए देवताओ को दिव्य रथ, सारथि धनुष उत्तम बाण आदि तयार करने का आदेश दिया। सारथि धनुष, उत्तम बाण आदि से युक्त हो, भुवनेश विरूपाक्ष शिव ने त्रिपुरदाह के लिए पहले गणेश का स्तवन किया। जिससे उन्ह तारक पुत्र महामनस्वी दत्यो के तीनो नगर सयुक्त रूप म आकाश म स्थित दीख पडे। शिव ने अभिजित मुहूर्त म पाशुपतास्त्र नामक जाज्वल्यमान शीघ्रगामी बाण स त्रिपुर निवासी दत्यो को दग्ध कर दिया। इन तीनो पुरो का वध करने के कारण ही शिव त्रिपुरारी" कहलाए। त्रिपुरारी शब्द उनके नाम

१ (क) महाभारत–वन पव २४।४८–७३, २५।१७–२५।
(ख) म० पु० १३१।१३, १८८।५७।
(ग) लिंग पुराण–१।७२।१।
(घ) शि० पु०–रुद्र संहिता य० ६ १०।

का ही पर्यायी बन गया। इस शब्द का प्रयोग इनकी स्तुतिया म अनेक वार हुआ है।

शिव के नाम, रूप, गुण, और उपासना का प्रतिपादन करने वाली इन कथाओ का निरन्तर विकास होता रहा है। ये कथाएँ मध्यकालीन साहित्य की अनुपम निधि हैं। लोक साहित्य मे भी इनका सुविस्तृत और आकर्षक रूप देखने म आता है। इस प्रकार ये कथाएँ पौराणिक काल से ही साहित्य की वृद्धि म योग देती रही हैं। भक्ति रस से परिपूर्ण इन कथाओ का आध्यात्मिक रूप अधिक मान्य है।

शैव

पूर्वोक्त शिव एव शिव से सम्बन्धित कथाओ से स्पष्ट है कि वदिक एव उत्तर वदिक काल म शवो की प्रचुरता रही है तथा शिव एव उनके परिवार के अनन्य भक्त भी हो गय हैं। शिव भक्त ही शव कहलाते हैं।

'शव शब्द की व्युत्पति शिव मे 'अण' प्रत्यय लगने से मानी गयी है। 'शव' शब्द से 'शिवस्यइदम् शवम्'[1] तथा "शिवस्य यम् शव" अर्थात् शिव सम्बन्धी वस्तु तथा शिव का भक्त और उपासक, अथ लिया जाता है। शव शब्द विशेषण है जो अपने विशेष्य के साथ शिवपरकता व्यक्त करता है। शिव की उपासना करने वाले, शिव तत्व का समझने वाले, शिव से प्रेम रखने वाले शिव की स्तुति करने वाले शिव की पूजा करने वाले सभी शव कोटि मे रखे जा सकते हैं। वदिक कालीन रुद्र के उपासको को एकदम शव कहना तो उचित नही है किन्तु उनको अशव कहना भी एक समस्या है।

पुराणकाल मे शवो का प्राबल्य हो चला था। इसी कारण शिव, वामन, स्कन्द आदि पुराणो के आधार पर शवो के स्वरूप का विवेचन किया जाता है। शिवपुराण मे शिव का ही परतत्व माना गया है। शिव पुराण मे जहा सदाशिव के चतुर्व्यूह का उल्लेख है वहाँ ब्रह्म कालरुद्र और विष्णु को शव माना गया है।[2] शिव पुराण के एक अन्य स्थल पर कहा गया है कि शक्ति और शक्तिमान से प्रकट होने के कारण यह सारा जगत् शाक्त और शव है।

कुमार सम्भव के प्रणेता महाकवि कालिदास स्वय परम शव थे। उनके कुमार सम्भव मे प्रथम सग से लेकर सप्तम्श सग पर्यन्त शिव चरित रसात्मक शली म वर्णित है। द्वितीय सग म इन्द्रादि देव ब्रह्म-साक्षात्कार करते हैं तब

---

१ तस्येदम-पाणिनिसूत्र-१।

२ शिव पुराण वा० स० पूर्वखण्ड-अध्याय १० श्लोक ६-१०।

परम शव ब्रह्मा न उन्हे शव सिद्धात का ही पान कराया ग्रौर शिवाराधना का प्रशस्त माग निर्दिष्ट किया ग्रौर कुमार जन्म की पावन कथा का ग्रविर्भाव हुग्रा।[1]

दण्डी के दशकुमार[2] चरित नामक ग्रन्थ म शव साधुग्रो का उल्लख मिलता है। शव साधुग्रो का उल्लेख ग्रानन्दगिरि ने शकर शकर विजय[3] नामक ग्रन्थ म भी किया है। इसी प्रकार सस्कृत साहित्य म शव साधुग्रो का उल्लेख मिलता ग्रा रहा है। प्रबोध चन्द्रोदय नामक नाटक म नव शावत कापालिको का सकेत किया गया है।[4] रामानुजाचाय के श्रीभाष्य म कालमुख ग्रौर कापालिक नामक शव सम्प्रदायो का उल्लेख मिलता है। उन्होने कालमुख साधुग्रो का वणन करत हुए शवमत के उक्त सम्प्रदाय म प्रचलित कई प्रकार के ग्राचरणो का उल्लेख किया है। कापालिक सम्प्रदाय का कालमुख सम्प्रदाय से केवल साधना सम्बन्धी भेद ही नही था वरन उन दोनो की वेषभूषा मे भी ग्रन्तर होता था।[5] श्री रामानुजाचाय का कथन है कि कालमुख सम्प्रदाय के ग्रनुयायी त्रिपुण्ड मे कालाभ्रश रखते थे ग्रौर कापालिको का त्रिपुण्ड केवल लाल ही होता था। वे कपालो की माला ग्रवश्य पहिनते थ। इस कापालिक सम्प्रदाय से ही गोरख का नाथ पथ निकला।

यह नाथ परम्परा या कनफटी परम्परा ग्रत्यन्त प्राचीन है ग्रौर इसका सम्बन्ध पाशुपत लाकुलीश मत से जोडा जाता है। गोरखनाथ ने योगमाग को एक व्यवस्थित रूप दिया। गोरखनाथ मे पूव की ग्रनेक शव धाराए इसम समन्वित हो गइ।[6] गोरखनाथ ने ग्रासाम से पेशावर के ग्रागे तक तथा कश्मीर व नपाल स महाराष्ट्र तक की यात्राए करके ग्रपने मत का प्रचार किया ग्रौर ग्रनेक केन्द्र स्थापित किये। जिससे भिन्न भिन्न शाखाए चल निकली। इनम से कम से कम बारह ग्राज भी प्रसिद्ध है[7] जो वस्तुत ग्रशव नही हैं।

---

१ कालिदास कुमार सम्भव—द्वितीय सग।
२ जनरल ग्राफ दी ग्रमेरिकन ग्रौरियण्टल सोसायटी भाग ४४, पृ० २०६—२०७।
३ वही पृ० २०६—२०७।
४ प्रबोध चन्द्रोदय टेलर द्वारा ग्रनुदित प्रथम सस्करण, पृ० ३६।
५ वेदान्त सूत्र विद रामानुजस कमेन्टरी, पृ० ५२०—२१।
६ डा० धमवीर भारती, सिद्ध साहित्य पृ० ३२३।
७ श्री परशुराम चतुर्वेदी, उत्तरी भारत की सन्त परम्परा, पृ० ५८।

शैवमत भेदोपभेद

वेदा की उपासना पद्धति पुराणा के आविर्भाव काल म सामान्यत तीन रूपा मे विभक्त पाते हैं — शिवोपासना वष्णवोपासना व ब्रह्मोपासना। कहने की आवश्यकता नही कि शव पुराणा म अन्य देवा की अपेक्षा शिव का प्रमुख स्थान प्रदान किया गया किन्तु अन्य पुराणो की भावमयी छाया म भी शिव का एक स्थान सुरक्षित रहा।

शवमत

वदा न जिस भावमयी उपासना का जन्म दिया था उसे आगे चलकर दशन का सामना करना पडा और इसी दार्शनिक वातावरण स शवमत का भेदीकरण होन लगा। यह पहिले दो भागा म विभक्त हुआ—आगमिक और पाशुपत। आगमिक का शवागम भी कहत हैं। आगमिक दशन का पाशुपत की अपेक्षा वदिक विचारधारा से अधिक सबधित माना जाता है। इसके अनक भेदोपभेद हैं जिनम शव सिद्धात प्रतिभिज्ञान्शन और वीर शवमत अधिक प्रसिद्ध हैं। पाशुपत मत म कालक्रम से कई अवदिक तत्त्व आ जान के कारण इस वेदबाह्य बतलाया गया। इसके भी कई भेद हो गये जिनम पाशुपत या नकुलिश कापालिक रसेश्वर गोरखनाथी आदि प्रमुख हैं।

पाशुपत

तान्त्रिक शव मता म पाशुपत मत सबसे प्राचीन माना गया है। अवान्तर उपनिषद्काल म ही इसका विकास होने लगा था।[1] इसके ऐतिहासिक संस्थापक का नाम लकुलीश या नकुलीश बतलाया जाता है। इनकी मूर्तिया अब भी गुजर, राजस्थान, मालवा तथा गौड प्रदेश म मिलती हैं जिनमे वे एक हाथ म लकुटी धारण किये हैं। इन लकुटीश का समय मथुरा शव स्तम्भ के शिलालेख के आधार पर डॉ० भण्डारकर ने, द्वितीय शताब्दी का उत्तरार्द्ध माना है। इसी समय कुशानवशी हुविष्क की मुद्राओ पर लकुटीश शिव की मूर्तिया मिलती हैं। पशुपति शब्द से ही पाशुपत शब्द व्युत्पन्न हुआ है। पाशुपत दशन म जगत् के बन्धन म फसा हुआ जीव पशु है। यह रूपक बद्ध पशुओ से लिया गया है।[2] इस मत म जगत को पाश या मल कहा गया है। जीव को मुक्त करने वाले शिव को ही पशुपति कहा गया है। पशुपति स सबधित शास्त्र पाशुपत कहलाता है। जीवा की बद्धता की भावना

---

१ हिन्दी साहित्य का बृहत इतिहास, प्रथम भाग, स० राजबली पाण्डेय, पृ० ५१२।

२ हिन्दी की निर्गुण काव्य धारा और उसकी दार्शनिक पृष्ठभूमि, डा० गोविन्द त्रिगुणायत पृ० १८१।

के उदय होने पर शनमत म पशुपति नाम और अधिक प्रचलित हुआ और दशनशास्त्र म पाशुपत दशन को अधिक महत्व प्राप्त हुआ।[1] पाशुपत धम का वणन महाभारत व पुराणा म भी मिलता है।[2]

शव सिद्धात का मत

इस मत का प्रचार एव प्रसार क्षेत्र-तामिल प्रदेश रहा है। इस मत म भक्ति की अच्छी मायता रही है। इसीलिए तामिल म उच्चकोटि के शव मत उत्पन्न हुए थ। इस दशन के प्रतिपाद्य तीन तत्व हैं—शिव, शक्ति और बिदु। शिव ससार के रचियता, शक्ति सहायिका और बिदु उपादान माने गये हैं। सता पर इस दशन के दो प्रभाव स्पष्ट दिखाई पडते हैं। एक मोक्ष धारणा विषयक और दूसरा बिदु धारणा सम्बधी। इस दशन के आचार्यों के अनुसार मोक्ष प्राप्ति के पश्चात मुक्तात्मा को कहीं आना जाना नही पडता।

वीर शव

शवा का एक अय मत वीर शव नाम से प्रसिद्ध है। वी अथ जीव तथा शिव एक्य बोधिका विद्या और र का अथ रमण करने वाला है। अत जीव तथा शिव की एकता म रमण करन वाला व्यक्ति वीरशव कहलाता है। वीर शवो की प्रधानता बेलगाव बीजापुर धारवाल जिला व मसूर राज्य आदि मे रही है।[3] इसका प्रचार दक्षिण म तांत्रिक साधना के रूप म अधिक प्रचलित था। इसे लिंगायत सम्प्रदाय या शक्ति विशिष्टाद्व त से अभिहित किया जाता है।

प्रत्यभिज्ञा दशन

प्रत्यभिज्ञा दशन शव दशन की अद्व तवादी शाखा है। यह शाखा काश्मीर म उत्पन्न हुई। इस मत के प्रधान आचार्यों मे श्री अभिनवगुप्ताचाय श्री सोमानन्द व श्री वसुगुप्त आदि विशेष प्रसिद्ध हैं। इस दशन म पति, पशु और पाश तीन पदार्थों का विवेचन हुआ है इस कारण इसे त्रिक या षडय दशन भी कहते हैं। डा० भण्डारकर के अनुसार इसके दो भेद हैं—स्पदशास्त्र और प्रत्यभिज्ञाशास्त्र। स्पद शास्त्र के प्रचारक वसुगुप्त और प्रत्यभिज्ञा शास्त्र

---

१ कल्याण वेदात अक पाशुपत सिद्धात और वेदात डा० राजबली पाण्डेय पृ० ४४७।

२ हिंदी की निगुण कायधारा और उसकी दाशनिक पृष्ठभूमि डा० गोवि द त्रिगुणायत पृ० १८१।

३ दिनकर, सस्कृति के चार अध्याय, पृ० २८६।

के प्रवनक सोमानन्द हैं। प० गोपीनाथ कविराज के अनुसार यह विभाजन ऐतिहासिक दृष्टि से कुछ तत्रा में सत्य हान पर भी भ्रान्ति मूलक है।[१]

कालामुख, कापालिक आदि

उपयु क्त प्रसिद्ध शव मता के अतिरिक्त रसेश्वर कालामुख, कापालिक सम्प्रदाया की प्रसिद्धि है। मध्य युग मे इनका भी अच्छा प्रचार था। कापालिक सम्प्रदाय से ही आग चल कर गोरखनाथी पथ निकला जिसका प्रचार समस्त भारत मे हुआ। हिन्दी के निगु ण कवियो का इस सम्प्रदाय से सीधा सम्बन्ध है। इस पथ के अनुयायी योगी कनफटा, दशनी गारखपथी आदि विविध नामो से प्रसिद्ध हैं।

इस प्रकार शवमत एक विशिष्ट मत न रह कर विभिन्न मतो मे विभाजित होता गया और आज भी इनकी शाखाएँ फलती जा रही हैं। परन्तु इनकी दाशनिक पृष्ठभूमि अद्व त द्व त व विशिष्टाद्व त पर ही आधारित हैं।

शव साहित्य

शिव की उपासना वन्दिक काल स ही प्रचलित है। इस सम्बन्ध मे शतरुद्राय अध्याय की पर्याप्त प्रसिद्धि है।[२] तत्तिरीय आरण्यक म समस्त जगत् रुद्र रूप बतलाया गया है।[३] कौशीतकी ब्राह्मण[४] मे भगवान् रुद्र की उत्पत्ति का वणन है। भगवान् शिव सर्वानन् शिरोग्रीव सवभूत गुहाशय भवव्यापी तथा सवगत माने गए हैं।[५] अथवशिरस उपनिषद् म पाशुपतव्रत, पशु पाश आदि तत्र के पारिभाषिक शब्दा की उपलब्धि सवप्रथम होती है।[६] वाजसनेयी संहिता मे अम्बिका और शिवा, जमिनी ब्राह्मण म ब्रह्मविद्यास्वरूपिणी ' उमा , हमवती और तत्तिरीय आरण्यक मे ' कन्या कुमारी' ,"कात्यायना ,दुर्गा आदि की चर्चा है। इस प्रकार प्राय सारा प्राच्य साहित्य भगवान् भवानी शकर के यशोकीतन से देदीप्यमान है। रामायण तथा महाभारत म भी शव मता का वणन है। वामन पुराण मे शवा के चार विभिन्न सम्प्रदाय बतलाये गए हैं — शव,

---

१ कल्याण शिवाक, काश्मीरीय शव दशन के सम्बन्ध मे कुछ बातें, प० गोपीनाथ कविराज–पृ० ८१।

२ भारतीय दशन, बलदेव उपाध्याय पृ० ५७०।

३ तत्तिरीय आरण्यक १०।१६।

४ कौशीतकी ६।१।

५ श्वेताश्वतर उपनिषद ३।११।

६ ब्र० सू० २।२।३७ का भाष्य।

पाशुपत काल दमन तथा कापालिक ।[1] शंकराचार्य ने माहेश्वरों तथा उनके पंच पदार्थों का उल्लेख किया है ।

शैवमत के जितने अनुयायी हैं—(जो भगवान् शंकर के विविध स्वरूपों एवं आकारों की उपासना करते हैं) उतने और किसी देव के नहीं हैं। पुराणों, तन्त्रों, भरटकद्वात्रिंशिका क्षेमप्रकृत नममाला माध्वाचार्य रचित सर्वदर्शन-संग्रह हरिभद्रसूरि प्रणीत षडदर्शन समुच्चय की गुणरत्न विरचित टीका तथा विविध देशी भाषाओं के ग्रन्थों में भी इनके सम्बन्ध में बहुत उपयोगी वृत्तांत इतस्ततः बिखरा हुआ मिलता है। महर्षि बादरायण प्रणीत ब्रह्मसूत्र के शंकर भाष्य पर वाचस्पति मिश्र ने 'भामती' नामक टीका में दूसरे अध्याय की सैंतीसवें सूक्त की व्याख्या में शैव पाशुपत, कारुणिक सिद्धान्ती एवं कापालिक आदि सम्प्रदायों का वर्णन किया है। उसी सूत्र की टीका पर भास्कराचार्य ने कारुणिक सिद्धान्तियों के स्थान में इनका 'काठक सिद्धान्ती' नाम दिया है। निम्बार्क सम्प्रदाय के अनुयायी श्री निवास ने अपनी वेदान्त कौस्तुभ नामक टीका में तथा पांचरात्र प्रामाण्य नामक टीका में उसी सूत्र की व्याख्या करते हुए काठक या कारुणिक के स्थान में कालामुख नाम का निर्देश किया है। इस प्रकार शिव के सम्बन्ध से अनेक सम्प्रदाय थे, जिनका विभिन्न रूप से साहित्य में वर्णन हुआ है।

शिव पुराण लिंग पुराण स्कन्द पुराण मत्स्य पुराण कूर्म पुराण और ब्रह्मांड आदि पुराणों को शैव पुराण ही माना है। इतिहासों और पुराणों के अतिरिक्त तन्त्र ग्रन्थ और स्मृतियों में भी शैव मत का उल्लेख हुआ है। तन्त्रों में भगवान् शंकर की अनेक विद्याओं और रहस्यों का वर्णन आया है। स्मृतियों में भी कर्मकाण्ड सम्बन्धी विषयों में शिवोपासना का विषय आया है। वीर मित्रोदय में शिवोपासना और लिंगार्चन का विस्तृत वर्णन है।[2]

तान्त्रिक श्रुतियों में भी परब्रह्म परशिव और स्थल आदि भिन्न भिन्न नामों से पुकारा गया है। अतः श्रौतागम रूप शैव संहिताओं को भी शिव-स्मृति', शैव शास्त्र, शैवागम शैव तन्त्र, सिद्धान्त शास्त्र आदि नामों से पुकारते हैं। समस्त युगावर्तों में योगाचार्यों के व्याज से भगवान शंकर ही शैवाचार्य होते हैं और वहां शिष्य परम्परायें जो चलती हैं वे ही शैवाचार्य होते हैं। भगवान

---

१ वामन पुराण ६।८६।९१ ।

२ कल्याण शिवांक लिंग रहस्य रामदास गौड़ पृ० १४० ।

शकर के अठाइस अवतार योगाचाय के रूप मे मिलते हैं[1] और प्रत्येक के शात चित्तवाले चार चार शिष्य हुए हैं। इस प्रकार शवाचार्यों की सख्या एक सौ बारह हो जाती है।[2] ये सब मिद्ध पाशुपत हैं। इनका शरीर भस्म से विभूषित रहता है। ये सम्पूर्ण शास्त्रों के तत्त्वज्ञ, वद और वेदागो के पारगत विद्वान् शिवाश्रम म अनुरक्त शिवज्ञान परायण सब प्रकार की आसक्तियो म मुक्त एक मात्र भगवान शिव मे ही मन को लगाये रखन वाले सम्पूर्ण द्वन्द्वो को सहने वाले धीर सवभूतहितकारी कोमल स्वस्थ्य, क्रोध शून्य और जितेंद्रिय होत हैं। रुद्राक्ष की माला ही इनका आभूषण है। उनके मस्तक पर त्रिपुण्ड अकित होते हैं। कोई तो शिखा के रूप में ही जटा धारण करत हैं तो किन्ही के सारे केश ही जटारूप मे होते हैं तथा कोई कोई जटा नही भी रखते हैं। कितन ही सदा माथा मुडाये रहते हैं प्राय कदमूल का आहार करते हैं। प्राणायाम साधना म तत्पर होते हैं। मैं शिव का ही हूँ इस अभिमान से युक्त होते हैं। सदा

---

१ शिव पुराण-वायवीय सहिता, अध्याय ६।
श्वेत सुतार, मदन सुहोत्र कक लोगाक्षि महामायस्वी जयगीश्व्य-दधिवाह ऋषभ मुनि, उग्र, अत्रि सुपालक, गौतम वेदशिरामुनि, गोकर्ण, गुहावासो, शिखण्डी, जटामाली, अट्टहास, दारुक, लागुली, महाकाल, शूली, दण्डी, मुडोश, सहिष्णु, सोमशर्मा नकुलीश्वर।

२ शिव पुराण-वायवीय सहिता अध्याय ९—
नाम —श्वेत श्वेत शिख, श्वेताश्व, श्वेत लोहित दुदुभि, शतरूपक, ऋचीक, केतुमान विकोश, विपाश पाशनाशन सुमुख दुमुख, दुतिक्रम, सनत्कुमार, सनक सनन्दन सनातन, सुधामा, विरजा, शख, अण्डज सारस्वत मेघ, मेघवाह, सुवाहक, कपिल, आसुरी, पचशिख, वाष्कल पराशर, गग, भागव, अगिरा, बलबन्धु, निरामित्र सेतुश्रृग, तपोधन, लम्बोदर, लम्ब, लम्बात्मा, लम्बकेशक सवज्ञ सम्बुद्धि, साध्य सिद्धि, सुधामा कश्यप, वशिष्ट विरजा, अत्रि, उग्र, गुरुश्रष्ट श्रावण, श्रविष्ठक, कुणि कुण बाहु, कुशरीर, कुनेत्रक, काश्यप उशन, च्यवन बृहस्पति उतथ्य, वामदेव, महाकाल महानिल, वाच श्रवा, सुधीर, श्यावक, यतीश्वर, हिरण्यनाभ, कौशल्य लोकाक्षि, कुथुमि सुमन्तु जमिनी, कुबन्ध, कुशकन्धर, पलका, दारमायणि, केतुमान, गौतम भल्लवी, मधुपिंग श्वेतकेतु उशिज, बहदश्व देवल कवि, शालिहोत्र युवनाश्व शरद्वसु छगल, आश्वलायन अक्षपाद, कणाद कुलुक, वत्स कुशिक, गर्ग, मित्रक, और रुष्टि।

शिव में ही चित्त में लगे रहते हैं। उन्होंने गमार स्मी विष पुष्प के मधु को मथ डाला है। ये गण परमधाम में जाने के लिए कटिबद्ध रहते हैं।

प्राचीन काल में शैवागम प्रवक्ता श्री रेवणसिद्ध श्री उपमन्यु प्रादि न सिद्ध तथा महर्षियों ने महात्माओं से दिव्य ज्ञान प्राप्त कर शैवमत का अनुसरण किया। श्री रेवणसिद्धि से अगस्त्यादि महर्षियों ने शिवज्ञानामृत को प्राप्त किया। पद्म पुराण के अन्तर्गत शिव गीता से ज्ञात होता है कि अगस्त्य महर्षि ने रामचन्द्र जी को शिव दीक्षा दिलवाकर शैव धर्माचरण का उपदेश दिया। श्री उपमन्यु से श्रीकृष्ण ने दिव्यदीक्षा व शिवव्रताचरण को प्राप्त किया।[1] इसका उल्लेख महाभारत के अनुशासन पर्व में भी है। इस प्रकार शैवागम तथा उसमें प्रतिपाद्य शैव धर्माचरण वैदिक श्रुति के समान मान्य है।

परवर्ती काल में प्रायः शैवाचार्यों ने इन तत्त्वों के सिद्धान्त का प्रतिपादन करने का श्लाघनीय प्रयत्न किया है। इनमें आठवीं शताब्दी में आविर्भूत आचार्य सद्योज्योति का नाम विशेष उल्लेखनीय है। इनके गुरु का नाम उग्रज्योति था। सद्योज्योति के महत्वपूर्ण ग्रन्थ नरेश्वर-परीक्षा रौरवागम की वृत्ति स्वायम्भुव आगम पर उद्योत तथा तत्व-संग्रह तत्व त्रय भोगकारिका, मोक्षकारिका परमोक्षनिरासकारिका हैं। ग्यारहवीं शताब्दी में हरदत्त शैवाचार्य नामक विशिष्ट शैवाचार्य हुए। अपने श्रुति सूक्त माला चतुर्वेद-तात्पर्य संग्रह में वेद वेदान्त का तात्पर्य शिव महिमा के प्रतिपादन में बतलाया है। शिव लिंग भूप ने (पन्द्रहवीं शती) इस पर रमणीय टीका लिखी। श्री कण्ठ और अप्पय दीक्षित ने इस ग्रन्थ को अपना उपजीव्य माना है। अभिनव गुप्त से पहिले बृहस्पति शंकर नन्दन विद्यापति देवबल द्युताचार्य आदि शैव आचार्य हुए हैं। इनका उल्लेख तन्त्रालोक में मिलता है।[2]

शैव सिद्धान्त मत आचार्य और साहित्य

नारायण कण्ठ के पुत्र रामकण्ठ (ग्यारहवीं शती का आरम्भ) ने सद्योज्योति के ग्रन्थों पर पाडित्यपूर्ण व्याख्याएँ तथा मौलिक ग्रन्थ भी लिखे हैं। जिनमें प्रकाश (नरेश्वर परीक्षा टीका) मातंगवृत्ति, नादकारिका मोक्षकारिका वृत्ति परमोक्ष निरासकारिका वृत्ति प्रसिद्ध हैं। श्री कण्ठ सूरि ने 'रत्नत्रय' लिखा है। उत्तुंग शिवाचार्य के शिष्य भोजराज रचित तत्व प्रकाशिका माननीय ग्रन्थ है। उत्तुंग शिवाचार्य के शिष्य अघोर शिवाचार्य' (बारहवीं शती का मध्य) ने तत्व प्रकाशिका तथा नाद

---

१ शिवपुराण वायवीय संहिता अध्याय ६।

१ श्री बलदेव उपाध्याय, भारतीय दर्शन पृ० ५६०।

कारिका पर वृत्तिया लिख कर इन ग्रथा को वाधगम्य बनाया। सद्योज्योति के अन्तिम पाँच ग्रथ, भोजराज की तत्वप्रकाशिका रामकण्ठ की नादकारिका, श्रीकण्ठ का रत्नत्रय–आठ ग्रथ 'अष्ट प्रकरण' के नाम से विख्यात हैं।[1]

वीर शव मत, आचाय और साहित्य

वीर शव मत के अनुयायियों का नाम लिंगायत या जगम है। कर्नाटक मे इस मत के आद्य प्रचारक का नाम 'वसव' (बारहवी शती) माना जाता है। ये कलचुरि नरेश विज्जल के मन्त्री बतलाये जाते हैं। वीर शवो के अनुसार रेणुकाचाय दारुकाचाय एकोरामाचाय, पण्डिताचाय तथा विश्वाराध्य आदि पाच आचार्यो ने क्रमश सोमेश्वर सिद्धेश्वर रामनाथ मल्लिकार्जुन तथा विश्वेश्वर(विश्वनाथ)नामक प्रसिद्ध शिव लिंगो से आविर्भूत होकर शव धम का प्रचार किया। श्री शिव योगी शिवाचाय का सिद्धात शिखा-माग वीर शव मत का माननीय ग्रथ है।

दसवी-ग्यारहवी शताब्दी म मयकन्द देवुर' नाम के प्रख्यात सत और विद्वान दक्षिण मे हुए। उन्होने तत्कालीन समस्त शव सिद्धात का सार केवल वारह सस्कृत अनुष्टुप पद्यो मे किया है। आपकी यह कृति 'शिवज्ञानबोधम्' के नाम से प्रसिद्ध है। शवो मे इसका वही स्थान है जो वष्णवो म भगवद्गीता का है। शवमत के दाशनिक पक्ष का सम्पूण विकास इस ग्रथ म प्राप्य है और इसी से उसके निश्चित रूप का भी ज्ञान होता है। उसको शव सिद्धात का अतिम मौलिक ग्रथ माना जाता है। अन्य शेष ग्रथ प्राचीन ग्रथो की टीका के रूप म ही हैं।

कर्नाटक प्रदेश मे होयसल वश के राजाओ के समय मे वीर शव और काल-मुख सम्प्रदायो का विशेष प्रचार हुआ।[2] इस युग के वीर शवो मे पाल्कुरिकि सोमनाथ महान आचाय थे। इन्होने प्रताप देव द्वितीय की सभा मे रहकर सोमनाथ भाष्य रुद्र भाष्य अष्टक पचक नमस्कार गद्य अक्षारांक गद्य पच प्राथना गद्य वसवोदाहरण और चतुर्वेद तात्पय सग्रह नामक पुस्तकें लिखी।

इसी मत के हरीश्वर या हरिहर नामक विद्वान ने शवभक्तो के चरित्र को सुदर काव्य के रूप मे लिखा। इनका गिरिजा कल्याण' अत्यन्त प्रसिद्ध है। 'राघवाक ने 'हरिश्चन्द्र' काव्य लिखा। 'पदमरस वल्लाल' नामक आचाय नरेश नरसिंह के मन्त्री थे। ये भी वीर शव धम के अनुयायी थे। इनकी दीक्षा

---

१ श्री बलदेव उपाध्याय–आर्य सस्कृति के मूलाधार पृ० ३३१।

२ आचाय सायण और माधव, पृ० १६।

बोध' गुरुशिष्य के सम्वाद रूप से शव धम के सिद्धान्तों का विवरण है। इसी समय देवकवि ने कुसुमावलि नामक आख्यायिका लिखी और सोमराज ने उद्भट काव्य का निर्माण किया।

सायण और माधव का आविर्भाव काल विक्रम की चौदहवी शताब्दी *का उत्तरार्द्ध और पन्द्रहवी शताब्दी का प्रथमार्द्ध माना जाता है। विक्रम की* सोलहवी शताब्दी तक विजय नगर के राजा शव मतानुयायी ही थे। शिव इनके कुल देवता थे जिनकी पूजा 'विरुपाक्ष नाम से की जाती थी। इन सगमवशीय नरेशो की आस्था शकराचाय के द्वारा प्रतिष्ठापित शृ गेरी मठ तथा उसके आचार्यों के प्रति विशेष थी। इस मठ क आचाय विद्यातीथ की स्मृति म, मठ को अनेक गाव दान रूप दिये और उनका नाम विद्यारण्यपुर रखा। इन नरेशो के गुरु भी शवाचाय ही थे।

सुप्रसिद्ध शवाचाय काशीविलास क्रियाशक्ति इस वश के मान्य आचाय थे। इनकी उस समय प्रभुता थी। य शिवाद्व त के प्रतिपादक तथा आगम मे निष्णात सिद्ध महात्मा थे। इनके ही पट शिष्य माधव मत्री थे जो अपन गुरु के उपदेश से शुद्ध शिवाद्वाय पद्धति से भगवान त्र्यम्बक की उपासना किया करते थे। इन्होने सूत सहिता की तात्पय दीपिका नामक पाडित्यपूण व्याख्या लिखी। सूत सहिता स्कन्दपुराण के अन्तगत एक विशिष्ट दार्शनिक अश है। इसके अतिरिक्त इनके समकालीन दूसरे शव यति श्री कण्ठनाथ थे। ये सायणकाल के एक अलौकिक सिद्ध थे व नाथ पथी महात्मा थे। भोगनाथ ने इनको करुणावतार शकर का साक्षात् प्रतिनिधि कहा है। ये उस समय के अतीव प्रख्यात माहेश्वर तत्वो के व्याख्याता शवपति प्रतीत होते हैं। श्रीकण्ठनाथ के *राजगुरु होने से सायणकालीन राजाओ का शवमतानुयायी होना सिद्ध होता है।* काशीविलास के दूसरे शिष्य का नाम त्र्यम्बक क्रिया शक्ति था जो गगदेव तथा देवराज के गुरु बतलाये गये हैं। त्र्यम्बक के शिष्य का नाम चन्द्र भूषण था। इस प्रकार विद्यारण्य युग म शवागम के आचाय अपने सिद्धान्तो का प्रचार प्रयत्नपूण कर रहे थे।

'भारतीतीथ' स्वामी विद्यातीथ के अनन्तर शृ गेरी पीठ पर मठाधीश रूप म प्रतिष्ठित हुए। कालनिणय के उपोद्घात मे माधव पर आपके उपदेशो का प्रभाव लक्षित होता है। विद्यातीथ परमात्मा तीथ के शिष्य थे। इन्होने रुद्र प्रश्न भाष्य की रचना की। य त्रिशृन्गी स्वामी थ। आचाय माधव ने न्यायमाला विस्तार म आपको परमात्मा कह कर निर्दिष्ट किया है तथा दूसरी बार भगवान शिव की अनुग्रह मूर्ति मान कर वणन किया है। माधव स्वत

शिवाद्वैत सिद्धान्त के अनुयायी थे। आप अपने समय के उपनिषन्मार्गानुयायी एक विख्यात शैव तान्त्रिक थे।[1]

पाशुपत मत–आचार्य तथा साहित्य

पाशुपतों का सम्बन्ध न्याय वैशेषिक से नितान्त घनिष्ठ है।[2] गुणरत्न ने नैयायिकों को शैव और वैशेषिकों को 'पाशुपत' कहा है। न्याय वार्तिक के रचयिता उद्योतकर ने पाशुपताचार्य उपाधि से अपना परिचय दिया है। माधवाचार्य ने सर्व दर्शन संग्रह' में इसका उल्लेख किया है। पाशुपत सूत्रों का मूल ग्रन्थ महेश्वर रचित पाशुपत सूत्र' अनन्तरायन ग्रन्थ माला में कौण्डिल्य कृत पचार्थी भाष्य नाम से अभी प्रकाशित हुआ है। इस पचाध्यायी में पाशुपतों के पाचों पदार्थों का विस्तृत तथा नितान्त प्रामाणिक विवेचन है। गोलकी मठ में पाशुपत सम्प्रदाय की प्रभुता थी। प्रताप रुद्र के समकालीन एवं विशिष्ट पाशुपत आचार्य विश्वेश्वर शम्भु का नाम मिलता है। जिन्होंने शैवों में दो भेद कर दिये—वीरभद्र और वीरमुष्टि। कालामुख सम्प्रदाय का दूसरा केन्द्र हुलियमठ था। तेरहवीं शती के अन्त में ज्ञान शक्ति और साम्ब शक्ति' इसके अध्यक्ष थे।

चन्द्रगुप्त द्वितीय के काल के मथुरा शिला लेख के अनुसार उदिताचार्य पाशुपत या माहेश्वर थे। ये उपमिताचार्य के शिष्य थे। उपमिताचार्य के गुरु कपिल और कपिल के गुरु पाराशर थे।[3] इस शिलालेख के अनुसार उदिताचार्य कौशिक के बाद गुरु परम्परा में दसवें थे। लकुलीश कुशिक के गुरु थे। इन्होंने उपमितेश्वर और कपिलेश्वर नामक शिव लिंगों की स्थापना की। पुराणों के अनुसार कौण्डिल्य की 'पाशुपत सूत्र' सूत संहिता राजशेखर कृत षड्दर्शन वृहद्वृत्ति गुणरत्न सूरि कृत में लकुलीश के प्रथम शिष्य कुशिक माने गये हैं। शिला लेखों के आधार पर कहा जा सकता है कि गार्ग्य और कुशिक लकुलीश के दो शिष्य सोमनाथ और मथुरा में बसे।

प्रत्यभिज्ञा दर्शन–आचार्य और साहित्य

आचार्य वसुगुप्त प्रत्यभिज्ञादर्शन के प्रवर्तक माने जाते हैं। कहा जाता है कि शिव ने वसुगुप्त को स्वप्न में काश्मीर में महादेव गिरि पर अंकित शिव सूत्रों के बारे में बतलाया। वहां से इनका उद्धार करके वसुगुप्त ने अपनी स्पन्दकारिका में संग्रह किया। वसुगुप्त के दो प्रधान शिष्य कल्लट

---

१ श्री बलदेव उपाध्याय आचार्य सायण और माधव, पृ० ७१।

२ " आर्य संस्कृति के मूलाधार पृ० ३२६।

३ के सी पाण्डे, भास्करी भाग ३ पृष्ठ ७६।

और सोमानन्द हुए। कल्लट ने स्पन्दशास्त्र का प्रवर्तन किया। कल्लट की सबसे श्रेष्ठ कृति स्पन्द-कारिका की वृत्ति है जो स्पन्द सर्वस्व के नाम से विख्यात है। सोमानन्द के महत्वशाली ग्रन्थों के नाम शिवदृष्टि और'परात्रिंशिकाविवृति हैं। उत्पलाचार्य (९०० ई०) सोमानन्द के शिष्य थे। इनकी ईश्वर प्रत्यभिज्ञा कारिका त्रिक सम्प्रदाय का माननीय शास्त्र है। इस ग्रन्थ के नाम पर ही यह दर्शन 'प्रत्यभिज्ञा' नाम से व्यवहृत किया जाता है। उत्पल की सिद्धित्रयी में अजड़ प्रमातृ सिद्धि ईश्वर सिद्धि तथा सम्बन्ध सिद्धि की गणना है और शिवस्तोत्रावली भक्ति रस से पूरित बड़ा ही सुन्दर स्तोत्र संग्रह है। उत्पल के प्रशिष्य तथा लक्ष्मण गुप्त के शिष्य अभिनवगुप्त का नाम दर्शन तथा साहित्य दोनों संसारों में प्रसिद्ध है।

अभिनव भारती तथा ध्वन्यालोक लोचन ने इनका नाम साहित्य जगत् में अमर कर दिया है। ईश्वर प्रत्यभिज्ञाविमर्शिणी तन्त्रालोक तन्त्रसार मालिनी विजय वार्तिक परमार्थसार परात्रिंशिका विवृति ने त्रिक दर्शन के इतिहास में इन्हें चिरस्थायी बना दिया है। इनका तन्त्रालोक मन्त्रशास्त्र का विश्वकोष है। साहित्य तथा दर्शन का सुन्दर सामंजस्य करने का श्रेय आपको है। ये अर्द्ध त्र्यम्बक मत के प्रधान आचार्य शम्भुनाथ के शिष्य और मत्स्येन्द्रनाथ सम्प्रदाय के एक सिद्ध कौल थे।

अभिनवगुप्त के शिष्य क्षेमराज (९७५-१०२५ ई०) ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ शिवसूत्र विमर्शिनी में वसुगुप्त के शिव सूत्रों की व्याख्या की है। इनके शिवसूत्र विमर्शिणी स्वच्छन्द तन्त्र विज्ञान भैरव तथा नेत्र तंत्र पर उद्योत टीका प्रत्यभिज्ञा हृदय स्पन्द सन्देश शिवस्तोत्रावली की टीका आदि प्रमुख ग्रन्थ हैं। क्षेमराज के बाद प्रत्यभिज्ञा दर्शन का विकास प्रधानतः उपर्युक्त ग्रन्थों पर टीकाओं द्वारा ही हुआ। इन टीकाकारों में सबसे बड़े योगराज हुए जो कि अभिनवगुप्त के ही शिष्य थे। योगराज के बाद बारहवीं शताब्दी में जयरथ ने अभिनव गुप्त के तन्त्रालोक पर टीका लिखी। उत्पल की स्पन्द प्रदीपिका भास्कर तथा वरदराज का शिवसूत्रवार्तिक' रामकण्ठ की स्पन्दकारिका विवृति योगराज की परमार्थ सारवृति तथा जयरथ की तन्त्रालोक पर टीका गोरख की परिमल सहित महार्थमंजरी विख्यात ग्रन्थ हैं।

दत्तात्रेय ने त्रिपुरातत्व पर अठारह हजार श्लोकों की दत्त संहिता' लिखी। परशुराम नामक आचार्य ने पचास खण्डों में तथा छः हजार सूत्रों में इस संक्षिप्त किया। हरितायन सुमेधा नामक आचार्य ने इस परशुराम कल्पसूत्र

से पुनर्वार सग्निप्त किया। इसकी टीकाएँ 'उमानन्दनाथ' की 'नित्योत्सव' है जिसे अशुद्ध समझ कर रामेश्वर ने दूसरी वृत्ति लिखी। इस त्रिपुरा मत के तांत्रिक आचार्य अपने को नाथ मतानुयायी कहते हैं।

अपनी रुचि तथा सम्मति के अनुसार भारत के विभिन्न प्रान्तों के विद्वानों में, शंकर भगवान को केन्द्र मानकर, अनेक महत्वपूर्ण आध्यात्मिक सिद्धान्तों की उद्भावना हुई है। तामिल प्रान्त के शैव गण 'शैव सिद्धान्ती' के नाम से विख्यात हैं। आध्यात्मिक दृष्टि से द्वैतवादी हैं। कर्नाटक प्रान्त का वीर शैव धर्मशक्ति विशिष्टाद्वैत का उपासक है। गुजरात और राजस्थान के पाशुपत भी द्वैतवादी ही हैं। इन सबमें दार्शनिक दृष्टि से भिन्नता रखनेवाला काश्मीर का त्रिक् या प्रत्यभिज्ञा-दर्शन है, जो पूर्णरूपेण अद्वैतवादी है।

समस्त भारतीय मान्यताओं और विचारधाराओं का एक मात्र उद्गम स्थान वेद ही है। वेदों में ऋग्वेद सबसे पुराना माना जाता है।

निष्कर्ष

ऋग्वेद में रुद्र देवता का नाम आया है। डॉ० मेक्डानल ने रुद्र को अग्नि के साम्य के कारण इसे विनाशकारी विद्युत रूप में झंझावात के विध्वंसक स्वरूप का प्रतीक माना है।[1] रुद्र और अग्नि के साम्य के कारण[2] अग्नि को ही रूप विशेष का प्रतीक माना है। कुछ विद्वानों ने उन्हें मृत्यु का देवता भी माना है। इस में जहाँ रुद्र का रूप भयानक है वहाँ सौम्य भी है। कभी वे रुद्र रूप धारण करते हैं तो कभी शापक बन जाते हैं। उनसे अपनी सन्तान व पशुओं की रक्षा के लिए भी प्रार्थना की गई है। उन्हें भिषजों में सर्वश्रेष्ठ बतलाया गया है। इनकी गणना आकाश के देवता के रूप में भी की गई है।

यजुर्वेद के आधार पर कहा जा सकता है कि इस समय रुद्र के नाम, रूप आदि का पर्याप्त विकास हुआ। यहाँ इन्हें कई प्रशंसा सूचक उपाधियाँ भी दी गईं। अथर्ववेद में रुद्र का और अधिक विकास हुआ। इस समय वे जन साधारण की आस्था के केन्द्र भी बन चुके थे। वे लोकप्रिय देवता के रूप में भी प्रतिष्ठित हो चुके थे तथा उनकी उपाधि महादेव हो गई थी।[3]

ब्राह्मण ग्रन्थों में रुद्र का पद और भी ऊँचा हो जाता है। उन्हें पशुपति नाम से पुकारा है[4] जो शिव का ही पर्याय है। यहाँ से उनके उपासकों की

---

१ डा० मेकडोनल–वदिक माइथोलोजी, पृ० ७८।

२ त्व मग्नेय रुद्रो असुरो महादिव –ऋग्वेद–२।१।६।

३ अथर्व वेद–६।४४।३, ६।५७।१, १६।१०।६।

४ शतपथ ब्राह्मण ६।१।१।१।५।

सख्या बढ़ती गई तथा उसके साथ साथ उनका भी महत्व बढ़ता गया। इस समय तक रुद्र परमेश्वर पद को पा चुके थे। ऐसा प्रमाण मिलता है कि इस काल तक रुद्र की उपासना जन साधारण से ऊपर उठकर ग्राम जाति के उन्नत और प्रगतिशील वर्ग में भी व्याप्त हो गयी थी। पहिले के शक्तिशाली रुद्र जिनका आतंक सर्वत्र छाया हुआ था ऋत् का वर्तमान स्वरूप बन गये। रुद्र का पद सर्वोच्च हो गया और वे नाम से ही नहीं अपितु अर्थ में भी महादेव बन गये तथा उन्हें देवाधिपति भी कहा गया।[१]

ब्राह्मण ग्रन्थों में रुद्र का कितना विकास हो चुका था यह उपनिषदों से स्पष्ट झलकता है। अब रुद्र को ईश महेश्वर और ईशान व शिव भी कहा जाता था।[२] सूत्र काल में इस विषय की गृह्य सूत्रों से अधिक जानकारी प्राप्त होती है। उनसे ज्ञात होता है कि जहाँ एक ओर रुद्र ने दार्शनिकों के परब्रह्म का पद पाया था तो दूसरी ओर उनकी उपासना का जनसाधारण के सरल विश्वासों से भी घनिष्ट सम्बन्ध था। यहा पुराने नामों के साथ साथ नये नाम शंकर और शिव भी प्रचलित हुए और मूर्तिपूजा का विधान भी आरम्भ हो गया था मूर्तिपूजा उपासना की अंग बन गई। यहा देवगिरि का भी उल्लेख मिलता है।[३] इसी समय शिवलिंग का भी वर्णन प्राप्त होता है।[४]

शिव के नाम रूप, गुण व उपासना आदि का पूर्ण विकास उत्तर वैदिक काल से ही जैसा आज वर्तमान है वह प्राप्त होता है। यहीं से शिव के विभिन्न रूपों की व्याख्या व भिन्न भिन्न पद्धतियों से अर्चना शुरू हुई। इस समय तक शैव धर्म के उपभेद नहीं थे परन्तु अब दार्शनिक विचारधाराओं के विकसित होने से दार्शनिकों में आपस में मतभेद शुरू हुआ और उसके फलस्वरूप शैव धर्म भी कई सम्प्रदायों में विभक्त हो गया। इन्हीं सम्प्रदायों के दर्शन का प्रभाव मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य पर पड़ा जोकि संत साहित्य के परिशीलन से स्पष्ट ज्ञात होता है।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि वैदिक रुद्र ही क्रमश विकसित होकर आज के शिव बने। साधारणतया यह धारणा बनी हुई है कि शिव' अनार्य देवता थे द्रविड थे जिन्हें बाद में आर्यों ने आत्मसात कर लिया

---

१ कौशीतकी ब्राह्मण २३।३।

२ श्वेताश्वतर उपनिषद ३३।११, ४।४० ११।

३ बौधायन गृह्य सूत्र ३।३।६।३।

४ वही ३।२।१६।१४।

निराधार ही कही जा सकती है तथा इस अनुमान को कपोल कल्पना ही मानना होगा। हड़प्पा और मोहन जोदड़ो लोथल रंगपुर, रोपड़, बहल, वालम गीरपुर तथा सौराष्ट्र व गुजरात के उन समस्त स्थलों में जहां हड़प्पा कालीन संस्कृति के अवशेष मिले हैं एक भी शिव लिंग प्राप्त नहीं हुआ है। किसी भी मूर्ति को देखकर यह नहीं कहा जा सकता कि यहां लिंग ही पूजा जाता था। सिंधु घाटी की सभ्यता जो इस समय सतलुज से लेकर नर्मदा के किनारे तक पहुँच गई है लिंगोपासक होती तो उसके अवशेष या चिन्ह अवश्य होते।[1]

श्री रामानन्द दीक्षितार ने शैवमत की प्राचीनता नामक निबन्ध में शैवमत को ईसा से तीन हजार वर्ष पूर्व का माना है।[2] यह उपरोक्त तथ्यों से सिद्ध भी हो चुका है। यह अवश्य माना जा सकता है कि 'रुद्र' की लोकप्रियता के कारण, अनेक आर्येतर जातियों के देवताओं को, इसने अपने में आत्मसात कर लिया होगा।

"वस्तुतः शैव मत वेद प्रतिपादित नितान्त विशुद्ध व्यापक प्रभावशाली तथा प्राचीनतम मत है।'[3] इसे आर्येतर देवता कहना युक्ति-युक्त नहीं है।

---

१ श्री जगदीश चतुर्वेदी, राजर्षि पुरुषोतमदास टंडन अभिनन्दन ग्रन्थ, पृ० ३८७।

२ श्री रामानन्द दीक्षितार शैवमत की प्राचीनता, कल्याण विशेषांक, पृ० १६७।

३ श्री बलदेव उपाध्याय आर्य संस्कृति के मूलाधार, पृ० ३४२।

अध्याय २

शैव सिद्धान्त

शैव दर्शन

दशन का क्षेत्र विस्तृत है। 'दशन' का ्युत्पति लम्य ग्रथ 'दृश्यते ग्रनन इति दशनम्' लिया जाता है। इसके ग्रनुसार दृश्यमान जगत् का सच्चा स्वरूप क्या है? इसकी उत्पत्ति कहा से हुई? सृष्टि का कारण कौन है? यह चेतन है या ग्रचेतन? वस्तु का सत्यभूत सात्विक स्वरूप क्या है? ग्रादि प्रश्नो का समुचित उत्तर देना दशन का प्रधान ध्येय है। दशन ग्रथवा तत्वज्ञान का जीवन से गहरा सम्बन्ध है। दशन शास्त्र के सुचिन्तित ग्राध्यात्मिक तथ्यो पर ही भारतीय धम प्रतिष्ठित है। धम के ग्राध्यात्मिक चिंतन, योग एव भक्ति तीन पक्ष हैं। धार्मिक ग्राचार के ग्रभाव म दशन की स्थिति निष्फल है। दाशनिक विचार द्वारा परिपुष्ट धर्म ही लोक मान्यता प्राप्त करता है।

दशन का क्षेत्र

दाशनिक विचारो से परिपक्व होने के कारण शवमत वदिक काल से ही प्रतिष्ठा प्राप्त करता रहता है। इस मत मे शिव ही सृष्टि के कर्ता ग्रौर कारण हैं। शवाचार्यों ने कारण काय सम्बन्ध से दाशनिक तत्वा का विश्लेषण किया है ग्रौर इसी कारण शव धम के ग्रनेक भेदा का सूत्रपात हुग्रा जिसम मुख्य पाशुपत शव सिद्धान्त वीर शव एव प्रत्यभिज्ञा ग्रादि हैं।[1] इनम सामान्य तत्वा की मान्यता स्पष्ट है।

शव दशन-
उसकी सीमाए

ग्रनक शव सम्प्रदायो ने जड व चेतन के मूल रूप को तत्व कहा है।[2] इसके ग्रतिरिक्त मोक्ष प्राप्ति म उपयोगी ज्ञान को भी तत्व सज्ञा प्रदान की गई है। शवागमा म तत्वत्रिधा विभक्त किये हैं -शिवतत्व विद्या तत्व तथा ग्रात्म तत्व। शिवतत्व मे शिव तत्व ग्रौर शक्तितत्व की व्याख्या होती है विद्यातत्व म तीन तत्त्व गृहीत हैं-सदाशिव

तत्व निरूपण

---

१ विशिष्ट विवरण के लिए देखिए प्रथम ग्रध्याय।

२ 'तस्य भावस्तत्वम्'

ईश्वर और शुद्ध विद्या आत्मतत्व मे इक्तीस म तत्व अ तभू त है–माया, कला, विद्याराग काल, नियति, पुरुप, प्रकृति बुद्धि अहकार मन, श्रोत्, त्वक, चक्षु, जिह्वा घ्राण, वाक पाणि, पाद पायु, उपस्थ, श द, स्पश, रूप, रस, ग घ, आकाश वायु वह्नि, सलिल भूमि।[1] इस प्रकार ये छत्तीस तत्व हो जाते है। इन तत्वा की समष्टि 'तत्वातीत नामक सच्चिदान द तुरीयतत्व मे है। परमशिव ही परम तत्व या तुरीय तत्व है।[2] सच्चिदान द रूप परशिव ब्रह्म मे 'अविनाभाव सम्ब घ' से विद्यमान विमश शक्ति का स्फुरण ही छतीस तत्व रूप म परिणत हाता है।

तत्व ज्ञान का साधन

छत्तीस तत्त्वा से ही यह विश्व बना है और ये प्रलय तक विद्यमान रह कर जगत् को भोग की सामग्री देते हैं। इद्रिया के ज्ञान के बाद ही विपया का नान होता है, विपया के नान के बाद मन का और उसके बाद बुद्धि का नान हाता है। इस प्रकार उतरोत्तर नान प्राप्त होने के बाद ही परमात्म तत्व का नान प्राप्त होता है।

तत्व विश्लेपण

परमात्म त व का नान आत्मतत्व के इक्तीस तत्वा को जानने के बाद ही सम्भव है। आत्मा पुरुप, प्रकृति, बुद्धि, अहकार, मन आदि आदि की भ्रमजनक अवस्था के ज्ञान के उपरान्त ही सत् अश से सानिध्य प्राप्त करता है। दशन क्षेत्र तक पहुँचने के लिए आत्म तत्व के स्तर का ऊर्ध्वोमुख करना आवश्यक है। आत्म-तत्व के बाद विद्यातत्व और उसके बाद शिव-तत्व को माना जा सकता है। शिवतत्व ही वस्तुत शव दर्शन का प्रमुख ज्ञातव्य तत्व है।

शिव तत्व

शैव दर्शन परम शिव या ब्रह्म ही विश्व के उन्मेप की कल्पना करने के कारण शिवतत्व सृष्टि का मूल तत्व है यही समस्त जगत् का निर्माता एव चिद्रूप है वह अपनी इच्छा स अपने अ तगत व्याप्त विश्व को प्रकाशित करता है।[3] ये परम शिव परम आत्मसमाहित हैं यह परम आत्म समाहित रूप ही उनका निगु ण निराकार, निष्क्रिय निष्कल रूप है। यह परम शिव परम अद्वय तत्व यामल

---

१ बलदेव उपाध्याय भारतीय दशन षष्ठ सस्करण, पृ० ५९१।

२ अभिनवगुप्त-त त्रालोक ३।३७।

३ अभिनवगुप्त, त त्रालोक, भाग ८, पृ० ८।

यह शक्ति शिव रूप का विमल आदश है। शिव की सारी इच्छा या काम को पूर्ण करने के कारण इस शक्ति का विमशरूपिणी कामेश्वरी भी कहा गया है। यह ज्ञान रूपिणी या क्रिया रूपिणी ही नहीं आनन्द रूपिणी भी है।

आनन्द रूपिणी

आनन्द रूपा शक्ति ही सब सृष्टियों का मूल है। सृष्टि की रचना मे निमित्त और उपादान कारण है। जीव विश्वसृष्टि के महानन्दमय मे अनुचरण कर, अवस्थान कर, आनन्दमयी शक्ति मे समाविष्ट हो कर भैरव को प्राप्त करता है।[1] वह आनन्द शक्ति परमशिव की स्वरूप शक्ति है। यही व्याप्य-व्यापक रूप मे ब्रह्माण्ड को व्याप्त किए हुए है। यह पराशक्ति शक्ति-चक्र की जननी है।[2] यही माया के ऊपर महामाया है[3], इसी 'आनन्द शक्ति' को चन्दवी कला की अभिधा दी जाती है।

समवायिनी

परम शिव की इस आनन्द स्वरूप शक्ति को जो शिव के साथ अविनाबद्ध भाव मे अवस्थान करती है समवायिनी शक्ति कहा गया है।[4] इसका अस्तित्व केवल शिव पर निर्भर है। माया शक्ति या प्राकृत शक्ति इसी समवायिनी शक्ति से उत्पन्न होती है। इसको सभी शक्तियों की शक्ति और सभी गुणों का गुण बतलाया जाता है किन्तु यह स्वरूप भूता समवायिनी शक्ति परम शिव को कभी आच्छान्न नहीं करती। विमर्श ज्ञान सकल्प अध्यवसाय आदि नामो से यह भिन्न भिन्न प्रकार की प्रतीत होती है। इच्छा शक्ति मे ज्ञानशक्ति अन्तरंग रूप से और क्रिया शक्ति बहिरंग रूप से रहती है।

शिव शक्ति सम्बन्ध

इच्छा शक्ति उससे उत्पन्न ज्ञान शक्ति तथा क्रिया शक्ति का आविर्भाव शिव मे ही होता है। यही ससार का निमित्तकारण एव चित् रूप है। इच्छा शक्ति से युक्त होने पर ही शिव सगुण शिव कहलाते हैं। शिव के आत्म-संहृत अद्वय रूप मे पराशक्ति नि शेष लीन हुई है, यही भावि चराचर बीज के रूप मे शिव से

---

१ विज्ञान भैरव पृ० १५५।

२ 'आसा शक्ति परा सूक्ष्मा व्यापिनी निर्मला शिवा
शक्ति-चक्रस्य जननी परानन्दामृतात्मिका'

—शिवसूत्र वार्तिक।

३ "मायोपरि महामाया त्रिकोणानन्दरूपिणी'

—कुब्जिका तन्त्र।

४ मालिनी विजयोत्तर तन्त्र ३।५।

एक होकर, शिव मे ही अवस्थान करती है। इसी कारण परमशिव शिवशक्ति का मिलन या सघट्ट है। यह सघट्ट यामल तत्व अथवा शक्ति-शक्तिमत सामरस्यात्मा है जिसमे एक ही साथ दो तत्व उत्पन्न होते हैं। सृष्टि-स्थिति उपसहार रूपा इस शक्ति को 'तद्भरेण रता' अर्थात् परम शिव का मनोरजन या तृप्ति विधान माना है। शिव तथा शक्ति दोनो तत्व शाश्वत हैं और सत्व एक रूप होकर साथ रहते हैं।[1]

शिव शक्तिमान हैं शक्ति उनकी इच्छा है जिससे वे सब कुछ कर सकते हैं। अत न शिव शक्ति रहित हैं और न शक्ति शिव से पृथक है। शक्ति के बिना शिव अपूर्ण हैं, शक्ति भी शिव के बिना अपूर्ण होती है।[2] इसी कारण शिव प्रकाश रूप और शक्ति विमर्श या स्फूर्ति रूप है। यह सम्बन्ध शिव प्रतिबिम्ब रूप भी माना गया है। जिस प्रकार चने के छिलके के अन्दर दो दल निकलते हैं उसी प्रकार परात्पर तत्व भी शिव और शक्ति रूप है। यह शक्ति ही शिव के सारे देह कृत्य करती है, अतनु चिदेकमात्र शिव का कोई देह नही है। अत शक्ति ही शिव की देह है शक्ति के द्वारा ही शिव विश्व ब्रह्माण्ड की सारी क्रियाएँ करते हैं। शक्ति और शक्तिमान मे जो भेद कल्पना है वह एक भेद का मान मात्र है[3] शक्ति की अलग सत्ता परमपुरुष का अवभासन मात्र है। वे दोनो एक ही हैं शिव विषयी हैं शक्ति विषय है शिव भोक्ता है शक्ति भोग्या हैं शिव द्रष्टा हैं शक्ति दृष्टव्य हैं। शिव आस्वादक हैं, शक्ति आस्वाद्य हैं शिव मन्ता है और शक्ति मन्तव्य है।[4] चन्द्र चन्द्रिका के तुल्य शिव शक्ति भी अभिन्न हैं।

शिव शक्ति की अवस्थाएं

यह शक्ति पाच भिन्न अवस्थाओ मे होती हुई स्फुरित होती है। स्फुरित होने की पूर्ववर्ती और प्राय उपशाति अवस्था का नाम निजा है। यह शिव की अव्यक्त एव स्फुरणोन्मुखी शक्ति से विशिष्ट अवस्था है। शिव की इस अवस्था को 'अपर पदम्' कहा है। शक्ति क्रमश स्फुरण की ओर उन्मुख हो स्पन्दित होती है स्पदित होकर ही वह सूक्ष्म अहन्ता से युक्त होती है। पूर्ण अहन्तावस्था मे वह चेतनशीला अपने पृथक अस्तित्व मे विद्यमान

---

१ सोमानन्द शिव दृष्टि पृ० ८६।

२ वही न शिव शक्ति रहितो न शक्ति व्यतिरेकिणी',
पृ० ५४, ३।८३

३ जयरथ कृत टीका तन्त्रालोक, पृ० ११० ११।

४ शिव पुराण वायवीय सहिता-उत्तरभाग ५।५६-६१।

होती है। इन अवस्थाओं को क्रमश परा अपरा सूक्ष्मा और कुण्डली कहा गया है। इन अवस्थाओं में शिव भी क्रमश परम, शून्य निरंजन और परमात्मा कहलाते हैं। परमात्मा और कुण्डलिनी अर्थात् शिव और शक्ति प्रथम का सूक्ष्म तत्व हैं।

विद्या तत्व

इस प्रथम तत्व शिव में इच्छाशक्ति की प्रधानता होने पर सदाशिव तत्व कहलाता है। ज्ञान शक्ति की प्रधानता होने पर ईश्वर तत्व और क्रियाशक्ति की प्रधानता होने पर वही परमेश्वर विद्यातत्व के नाम से अभिहित किया जाता है। शैव दर्शन में इस विद्या तत्व के अन्तर्गत सदाशिव, ईश्वर और शुद्ध विद्या तत्व आते हैं।

सदाशिव

विद्यातत्व में सदाशिव तत्व का महत्वपूर्ण स्थान है। मैं ही शिव हूं यह ज्ञान ही सदाशिव तत्व है। सदाशिव तत्व में इच्छा शक्ति की *अन्तरंग ज्ञान शक्ति की उद्रेकावस्था में क्रिया शक्ति का प्रवेश होता* है। इसी उद्रिक्तज्ञान शक्ति को आवरण करके अहमिदम् (मैं यह प्रपंच हूँ) इस प्रकार अभिमान करना ही सदाशिव तत्व कहलाता है।[1] यह सदाशिव तत्व नाद रूप है अदृष्ट शिव मूर्ति से व्याप्त स्फोट ध्वनि ही नाद है और यह नाद ही सदाशिव है।[2] संसार के निमेष या प्रलय को भी सदाशिव तत्व कहा गया है।[3] इस तत्व का अनुभव अहं–इदम् द्वारा होता है। इसमें अहं शिव का द्योतक है और इदं विश्व का परिचायक है इस तत्व को इच्छा प्रधान बतलाया है। इदन्ता के रूप में अभिव्यक्ति योग्यता ही सदाशिव तत्व है।[4] इस सदाशिव तत्व तक सब कुछ प्राकृत है इस तत्व के ऊपर प्रकृति या माया को प्रवेश करने का अधिकार नहीं है। यह सदा शिव तत्व बाह्य उन्मेष निमेषशाली है।

बाह्य उन्मेष ही ईश्वर तत्व है।[5] ज्ञान की विकासोन्मुख तीसरी अवस्था को ईश्वर तत्व कहा है। ईश्वर तत्व में इदं अर्थात्

---

१ पं० काशीनाथ शास्त्री–शक्ति विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त निरूपण, कल्याण वेदान्त अंक पृ० २३१।

२ नेत्र तन्त्र भाग २ पृ० २८७–२८८।

३ पं० काशीनाथ शास्त्री ईश्वर प्रत्यभिज्ञा विमर्शिनी भाग २, पृ०१६४ ६५।

४ ईश्वर प्रत्यभिज्ञा ३।१।६।

अभिनव कृत विवृति

५ ईश्वर प्रत्यभिज्ञा–३।१।३।

ईश्वर तत्व विश्व का स्फुट रूप से ज्ञान होने लगता है। यह तत्व सदाशिव का बाह्य रूप है इस तत्व को विकास की दृष्टि से विश्व के उन्मेष का द्योतक कह सकते हैं। जगत् को अपने भिन्न रूप में देखना ही ईश्वर तत्व है। सम्पूर्ण पदार्थों के ज्ञान के पश्चात् यह स्थिति सम्भव है।

सम्पूर्ण पदार्थों एवं परमेश्वर का ज्ञान प्राप्त कराने वाली शक्ति का नाम विद्या है।[1] इसमें शिव की क्रियाशक्ति का प्राधान्य रहता है

विद्या तत्व यहां ही जीवात्मा में अभेद तत्व का भी स्फुरण होने लगता है। ज्ञान की इस दशा में अहं तथा 'इदं' का पूर्ण समानाधिकरण्य रहता है अर्थात् दोनों की समानरूपेण स्थिति रहती है।[2]

साराश यह है कि परासंवित् का शिव शक्त्यात्मक रूप सर्वात्मक होता है। शिव तत्व में अहं विमर्श होता है सदाशिव तत्व में अहमिदं' विमर्श और ईश्वर तत्व में इदमहं विमर्श होता है। इनके प्रत्येक स्थल में परमपद की प्रधानता रहती है। सद्विद्या में अहं और इदं दोनों की समभाव प्रधानता रहती है। इस सद् विद्या तत्व में विश्व और अहं' दोनों की सत्ता रहती है किन्तु पूर्ण अभेदत्व यहां नहीं होता। सदाशिव तत्व प्रलय का द्योतक है और ईश्वर तत्व केवल उदय का द्योतक है और सद्विद्या तत्व में प्रलय तथा उदय अथवा निमेष तथा उन्मेष दोनों रहते हैं।[3]

शिव तत्व और विद्यातत्व के समान ही आत्म तत्व का भी दर्शन क्षेत्र में प्रमुख स्थान है। इस तत्व में पंच ज्ञानेन्द्रिय पंच कर्मेन्द्रिय पंच विषय और पंच भूत तथा माया कला विद्या आदि हैं। वस्तुत उक्त तत्व ही जीव के अस्तित्व को बनाए रखने में समर्थ हैं। आत्म तत्व के मुख्य तत्वों का विश्लेषण इस प्रकार है—

माया माया शब्द मा और या धातु से बनता है। 'मा' का अर्थ प्रलय काल में जगत् का अधिष्ठान तथा या का अर्थ सृष्टिकाल में अभिव्यक्त होने वाला पदार्थ है अर्थात् प्रलयकाल में जिसमें जीव लीन हो जाते हैं तथा सृष्टिकाल में जिससे उत्पन्न होते हैं उसका नाम माया है। अत जगत् की मूल प्रकृति का नाम माया है।[4] यह शैवमत में वस्तु रूपा है वेदान्त के समान अनिर्वचनीया नहीं। यह ही अशुद्ध सृष्टि

१ मृगेन्द्रतन्त्र १।१६८-१६६।
२ ईश्वर प्रत्यभिज्ञा ३।१।३।
३ ईश्वर प्रत्यभिज्ञा विमर्शिनी भाग २ पृ० १९९-१६३।
४ डा० बलदेव उपाध्याय भारतीय संस्कृति के मूलाधार पृ० ३४५-४६।

का मूल कारण है। यह एक तथा नित्य है। उपनिषदो मे ईश्वर की सृजन शक्ति जीव की अविद्या तथा आचार की कुटिलता के अर्थ म माया शब्द का प्रयोग हुआ है। शकराचाय ने भी 'माया शब्द का प्रयाग ईश्वर की सृजन–शक्ति अथवा अविद्या के उपनिषद् सम्मत अर्थ म ही किया है। इस प्रकार 'माया उपनिषदो और शकराचाय दोनो के अनुसार ईश्वर की शक्ति और अविद्या तथा उसके परिणामभूत मिथ्याचार के अर्थ मे पाई जाती है।[1] इस विश्व की एक ऐसी शक्ति माना गया है जो शिव से अभिन्न होकर भेदपूर्ण सृष्टि उत्पन्न करती है।[2] इसको जड कहा है क्योकि यह स्वय भेदरूप जड काय करती हैं। यह सूक्ष्म एव व्यापक है शिव शक्ति से अभिन्न, विश्व का मूल कारण मानी गयी है। माया के सम्बन्ध मे शैव सत्ता की धारणा है कि वह परमात्मा (सत् पुरुष) से उत्पन्न है तथा उसका काय सृष्टि का सृजन है। इसके दो रूप हैं– सत्य और मिथ्या। माया का सत्य रूप सत् पुरुष' की प्राप्ति म सहायक है तथा मिथ्या माया मनुष्य को ईश्वर स विमुख करती है। यह मिथ्या माया धोखे मे डालन वाली तथा त्रिगुणात्मक है यह जन्म, पालन और सहार भी करती है।

माया क भेद

यह माया ईश्वर की शक्ति है। परमात्मा निराकार है और इच्छा शक्ति साकार। इच्छा शक्ति द्वारा चित्रित जगत् के चित्र म माया महामाया और योगमाया का ही विवरण है।[3] उक्त 'इच्छा अथवा विमश के 'चिद्रूपा' तथा मायारूपा' दो भेद बतलाय गए हैं और चिद्रूपा तथा मायारूपा' दोनो म अविनाभाव सम्बन्ध माना गया है।[4] माया का योगमाया महामाया और माया भेद से तीन प्रकार का माना गया है। माया चिद्रूपिणी शक्ति का सगुण रूप है वह काष्ठ म अग्नि के समान ही इस चिद्रूपिणी शक्ति म प्रच्छन्न रहती है। तत्रमत म महामाया माया और मायातत्व आदि शब्द माया क के लिए ही प्रयुक्त होते हैं। दार्शनिको ने विमश के चिद्रूपा और माया रूपा भेद को ही समवायिनी और परिग्रहरूपा भी कहा है। यह परिग्रह रूपा शुद्ध

---

१ डा० रामानन्द तिवारी शकराचाय का आचार दशन पृ० ६१।

२ तन्त्रालोक, भाग ६ पृ० ५५।

३ श्री पारसनाथ माया, महामाया, योगमाया —कल्याण साधना अक, पृ० ३६६।

४ आथर एवेलेन शक्ति एण्ड शाक्त, पृ० १३६।

और अशुद्ध भेद से दो प्रकार की मानी गयी है। समवायिनी स्वाभाविकी है जो शिव में नित्य समवेत रहती है। परिग्रह शक्ति शुद्ध और अशुद्ध भेद से दो प्रकार की है। शुद्ध रूप को ही बिन्दु या महामाया कहा जाता है अशुद्ध रूप माया है।

महामाया और उसका कार्य क्षेत्र

यह शुद्ध परिग्रह रूपा महामाया या बिन्दु विभिन्न अवस्था में अभिव्यक्त होती है। इनको परा, सूक्ष्मा और स्थूला कहा गया है।[1] बिन्दु की परावस्था ही महामाया है यही परम कारण और नित्या है। इस महामाया के विक्षुब्ध होने पर शुद्ध धामों तथा उसमें निवास करने वाले मंत्रों अथवा मंत्रेश्वरों का जन्म होता है। इसमें रौद्री ज्येष्ठा और वामा शक्तियाँ उत्पन्न होती हैं इस शक्ति के रुद्र शिव रूप से रुद्र ब्रह्मा और विष्णु उत्पन्न होते हैं और इनके क्रमिक संयोग से अग्नि चन्द्र सूर्य तमस् रजस् सत् ज्ञान इच्छा और क्रिया आदि का जन्म होता है। इसे ही विकास का पहला क्रम कहा गया है। माया इससे सर्वथा भिन्न है।

माया और उसका कार्य क्षेत्र

माया अशुद्ध परिग्रह शक्ति का नाम है। यह महामाया की सूक्ष्म या दूसरी अवस्था है। अशुद्ध अध्वा का उपादान कारण यही है। श्रोत् त्वक् चक्षु जिह्वा घ्राण आदि पाँच ज्ञानेन्द्रिय वाक पाणि पाद पायु उपस्थ पाँच कर्मेन्द्रिय शब्द स्पर्श रूप रस,गंध पाँच विषय आकाश वायु, वह्नि सलिल भूमि-पंच भूत तथा कला एवं कंचुक अशुद्ध अध्वा के ही अन्तर्गत हैं। यह सब माया का कार्य है। कलादितत्व समूह का अविभक्त स्वरूप माया है। इससे ही तत्व एवं भुवनात्मक कलादि तथा प्रकृति आदि साक्षात् या परम्परागत रूप में उत्पन्न होते है। संक्षेपतः समग्र अशुद्ध अध्वा का मूल कारण यही माया है। इसे जननी तथा मोहिनी भी कहा है। यह शुद्ध और अशुद्ध परिग्रहा शक्ति आत्म तत्व की अभिव्यक्ति में प्रमुख अंश है। इनके समान ही चिद्रूपा अथवा समवायिनी शक्ति का शिव के सम्बन्ध के कारण अनन्य महत्व है। परिग्रह शक्ति अचेतन और परिणाम शीला है।

सारांशतः समवायिनी शक्ति दृक् शक्ति (ज्ञान शक्ति) तथा क्रिया शक्ति (कुण्डलिनी) भेद से दो प्रकार की मानी गया है। कुण्डलिनी जननी महा कुण्डलिनी परावाक् शब्द ब्रह्म स्वरूप सर्वत्र व्यापक और तत्वज्ञान का साधन

१　श्री गोपीनाथ कविराज तान्त्रिक दृष्टि, कल्याण साधना अंक,
पृ० ४८१।

भूत चिन्मस्वरूपा भी कही गइ है।[1] यही आत्म विमूर्त पुरुषा के बन्धन का हेतु है योगाभ्यास द्वारा जाग्रत कर लने पर वही मोक्ष प्राप्ति म सहायक होती है। इसके चिद् और जड दो अश हैं। इसका अचिद् अश माया कहलाता ह जिसको शवमत म विच्छाला चिद्‌मिणी माना गया है। यह अनन्त रूपा अनन्त-ज्योतिमयी शक्ति विश्व चतना ह जो प्रकृति और प्रधान नाम म अभिहित हुइ है।

यह प्रकृति महामाया की स्थूल अथवा तीसरी अवस्था है।[2] यह जड रूपा महामाया चिद्रूप महाकुण्डलिनी म अन्तर्निहित रहती ह और

प्रकृति

प्रसग शिव का चिद्रूप शक्ति म अधिष्ठित होकर सकल ब्रह्माण्ड को उत्पन्न करती है।[3] सृष्टि के विकास के समय प्रकृति कुण्डलिनी शक्ति को आच्छादित कर लती है। इसी कारण यह विश्व प्रकृति आद्या शक्ति भी है।

द्वत विशिष्ट रहने से यह शक्ति अविद्या और द्वत प्रपच रहित रहन मे शुद्ध विद्या अथवा ब्रह्म विद्या कहलाती है। अविद्या बन्धन

विद्या अविद्या

और शुद्ध विद्या मोक्ष का हतु होती है। अभेद भावना को ही ब्रह्म विद्या, महाविद्या शुद्धविद्या तथा राजविद्या नामो म पुकारा गया है। यह विद्या भगवान की आत्मभूता पराशक्ति है और लोक विमोहिनी अविद्या अपरा शक्ति है। पराशक्ति द्वारा अपरा शक्ति माया नष्ट होती है और पराशक्ति के स्पदन म अपरा शक्ति जाग्रत होती है। अपरा शक्ति के जाग्रत होन पर पराशक्ति का नाश नही होता। अपरा शक्ति क्रिया प्रधान है। इस प्रकार शुद्ध बिन्दु क्षुब्ध होकर शुद्ध रूप इद्रिय भोग और भुवन के रूप म परिणत होता है जिस शुद्ध अध्वा कहते हैं। यही दूसरी ओर शब्द की उत्पत्ति भी करता है।

शब्द दृष्टि म भी पहले शब्द सृष्टि होती है। शब्द सूक्ष्म नाद अक्षर बिन्दु और वर्ण भेद से तीन प्रकार का है। सूक्ष्म नाद अभिधेय

शब्द प्रपच

बुद्धि का कारण। यह ही बिन्दु का प्रथम प्रसार है यह चिन्तन शून्य है। इसका परामर्श ज्ञान एव कार्य स्वरूप हो अक्षर बिन्दु है। अक्षर बिन्दु म स्थूल वाणी का सम्पूर्ण वचिन्य अव्यक्त रूप म अभिन्न होकर

१ सिद्ध सिद्धात पद्धति पृ० ४३।

२ श्री गोपीनाथ कविराज तान्त्रिक दृष्टि कल्याण साधना अक पृ० ४८१।

३ श्री गोरखनाथ सिद्ध सिद्धात पद्धति पृ० १६।

रहता है। इस भाँत ग्राह्य स्थूल शब्द की उत्पत्ति आकाश और वायु से होती है।[1] तान्त्रिकों के अनुसार परमेश्वर जनित महामाया या बिन्दु का क्षोभ होने पर शब्द की उत्पत्ति होती है। यह शब्द परव्योमस्वरूपा महामाया कुण्डलिनी का परिणाम है। पञ्चभूत आकाश जिस प्रकार अवकाश दान तथा स्थूल शब्द के अभिव्यंजन में सूर्य चन्द्र आदि ज्योतिमण्डल का भोग एवं अधिकार सम्पादन करता है उसी प्रकार बिन्दुरूप परमाकाश भी अवकाशदान तथा शब्द व्यंजन के द्वारा शुद्ध जगत् के भोग तथा अधिकार का कारण बनता है। इस प्रकार ये विविध शब्द मिल कर सृष्टि का विकास करते हैं।

नाद एवं बिन्दु — सृष्मनाद अभिधेय बुद्धि का कारण तथा स्वयं क्रिया रूप है जिसकी परनाद रूपी ब्रह्म से उत्पत्ति मानी जाती है। नाद के रूप में प्रस्फुटित आत्मा ही, जीव की प्राण वायु से प्रेरित होकर अक्षरों का रूप धारण करता है। यह नाद सारे विश्व में व्याप्त है। तन्त्र ग्रन्थों में कुण्डलिनी को भी नाद रूपा माना गया है नाद से बिन्दु की उत्पत्ति मानी है। नाद एवं बिन्दु में क्रियाशक्ति निहित है,[2] इनको सृष्टि को जन्म देने के लिए उन्मुख शक्ति की अवस्था माना है। बिन्दु के भी कई भेद किये गए हैं। इनमें पराबिन्दु का ही विशेष उल्लेख मिलता है। पराबिन्दु भी नाद और जीव' में विभाजित हो जाता है। आगम शास्त्र में बिन्दु को शिव' तथा बीज को शक्ति और नाद को उन दोनों का समवाय स्वरूप माना है। पराबिन्दु में बिन्दु और बीज अर्थात् शिव और शक्ति की *अवस्थिति समवाय सम्बन्ध से रहती है यही सम्बन्ध नाद है।*

त्रिबिन्दु — बीज बिन्दु और नाद की समन्वित अवस्था को त्रिबिन्दु कहा गया है। यह प्रकाश और विमर्श का समष्टि रूप भी कहा जाता है इसकी उत्पत्ति पराबिन्दु से मानी गयी है। पराबिन्दु शिव और शक्ति की अविभाजित अवस्था है। नाद बिन्दु और बीज क्षोभावस्था का परिणाम होता है जिसे दोनों का आन्तरिक सम्बन्ध भी कहते हैं। यह पराबिन्दु शक्ति वाक् रूपा है।

बिन्दु की शब्दात्मिका वृत्ति — बिन्दु की शब्दात्मिका वृत्ति अथवा वाक् शक्ति वैखरी मध्यमा पश्यन्ती भेद से तीन प्रकार की है। बिन्दु परा, पश्यन्ती आदि शब्दात्मिका वृत्तियों से अविकल्प ज्ञान उत्पन्न होता है। विकल्प ज्ञान का अनुभव बिन्दु

---

१ गोपीनाथ कविराज—तान्त्रिक दृष्टि कल्याण का साधना अंक पृ० ४८०।
२ आर्थर एवेलेन—दा गारलैण्ड आफ लैटर्स पृ० १७५।

के साथ शब्द की सहकारिता से ही होता है। वाचक से पृथक वाच्य की सत्ता है ही नहीं, केवल वाचक ही विद्यमान है, नाद मात्र ही वाक् स्वरूप है। यह नाद ही मिश्र वाक् शक्तियों में अभिव्यक्त होता है।

वैखरी — अश्रवाचक श्रोत ग्राह्य स्थूल शब्द ही वैखरी है। कण्ठ आदि स्थानों से आघात होने पर वायु वर्ण का आकार धारण करता है यह शब्द प्राण की वृत्ति का आश्रय करके प्रयुक्त होता है भौतिक कानों से इसे सुना जा सकता है। इसके उद्भव में वायु और आकाश सहायक होते हैं[1] यह सभी व्यंजन ध्वनियों की प्रतीक है। वैखरी के द्वारा ही, व्यक्त और अव्यक्त वर्ण साधु और असाधु शब्द तथा इसी प्रकार के अन्य शब्दों का द्योतन होता है।[2] इन्द्रियों के अभिघात से प्राण में स्थूल वृत्ति का उदय होने पर वैखरी वाक् का उदय होता है। कण्ठ, तालु आदि के स्थान से वस्तुतः वैखरी के नाम से पश्यन्ती ही अभिव्यक्त होती है।

पश्यन्ती — वाक् शक्ति नाभि प्रदेश से ऊपर जब स्थूल वर्ण रूप को धारण करती है तब उसका नाम पश्यन्ती हो जाता है। इसके साथ मन का भी सम्बन्ध रहता है इसे अक्षर बिन्दु भी कहा है यह स्वयं प्रकाश होती है[3] यह क्रम हीन है अर्थात् इसका प्रधान लक्षण यह है कि यह 'प्रतिसंहृतक्रमा' होती है। यह चल और अचल दोनों है, अर्थात् शब्द की अभिव्यक्ति में गति के कारण यह चला है, अपने विशुद्ध रूप में निःस्पन्द रहने के कारण यह अचला कहलाती है।[4] इसके अनेक भेद होते हैं परन्तु अपने मूल रूप में यह क्रम रहित स्वप्रकाश तथा सविद्रूप है इसी मूल तत्व को सत्ता या प्रतिमा भी कहा गया है इस ही 'शब्दब्रह्म' के रूप में भी स्वीकार किया गया है। यही शब्द तत्व विश्व का आधार है हेतु और कारण है शब्द ब्रह्म और शुद्ध ब्रह्म में कोई अन्तर नहीं है पूर्ण एकत्व है। इस प्रकार यह पश्यन्ती शक्ति स्वयंप्रकाश है और मध्यमा से भी सूक्ष्मतर होती है।

मध्यमा — वाक् की अन्तः सन्निवेश शक्ति ही मध्यमा है। यह अन्तः सकल्प रूपिणी है तथा वैखरी की अपेक्षा सूक्ष्म होती है इसका व्यापार भीतरी होता है। यह सूक्ष्म प्राण शक्ति के द्वारा परिचालित होती है। वक्ता

---

१ डा० गोविन्द त्रिगुणायत—हिन्दी की निर्गुण काव्यधारा और उसकी दार्शनिक पृष्ठभूमि पृ० २१५।

२ बलदेव उपाध्याय—भारतीय दर्शन पृ० ५७५।

३ डा० गोविन्द त्रिगुणायत हिन्दी की निर्गुण काव्यधारा और उसकी दार्शनिक पृष्ठभूमि, पृ० २१६।

४ श्री बलदेव उपाध्याय भारतीय दर्शन (छठा संस्करण), पृ० ५७६।

रहता है। इस श्रात ग्राह्य स्थूल शब्द की उत्पत्ति आकाश और वायु से होती है।[1] तान्त्रिको के अनुसार परमेश्वर जनित महामाया या बिन्दु का क्षोभ होने पर शब्द की उत्पत्ति होती है। यह शब्द, परव्योमस्वरूपा महामाया कुण्डलिनी का परिणाम है। पचभूत आकाश जिस प्रकार अवकाश दान तथा स्थूल शब्द के अभिव्यजन से सूर्य चन्द्र आदि ज्योतिमण्डल का भोग एव अधिकार सम्पादन करता है उसी प्रकार बिन्दुरूप परमाकाश भी अवकाशदान तथा शब्द व्यजन के द्वारा शुद्ध जगत् के भाग तथा अधिकार का कारण बनता है। इस प्रकार ये विविध शब्द मिल कर सृष्टि का विकास करते है।

नाद एव बिन्दु सूक्ष्मनाद अभिधेय बुद्धि का कारण तथा स्वय नित्य रूप है जिसकी परनाद रूपी ब्रह्म से उत्पत्ति मानी जाती है। नाद के रूप मे प्रस्फुरित आत्मा ही जीव की प्राण वायु से प्रेरित होकर अक्षरो का रूप धारण करता है। यह नाद सारे विश्व में व्याप्त है। तन्त्र ग्रन्थो मे कुण्डलिनी को भी नाद रूपा माना गया है नाद से बिन्दु की उत्पत्ति मानी है। नाद एव बिन्दु मे क्रियाशक्ति निहित है[2] इनको सृष्टि को जन्म देने के लिए उत्सुक शक्ति की अवस्था माना है। बिन्दु के भी कई भेद किये गए है। इनमे पराबिन्दु का ही विशेष उल्लेख मिलता है। पराबिन्दु भी नाद और 'बीज' मे विभाजित हो जाता है। आगम शास्त्र मे बिन्दु को शिव तथा बीज को शक्ति और नाद को उन दोनो का समवाय स्वरूप माना है। पराबिन्दु मे बिन्दु और बीज अर्थात् शिव और शक्ति की अवस्थिति समवाय सम्बन्ध से रहती है यही सम्बन्ध नाद है।

त्रिबिन्दु बीज बिन्दु और नाद की समन्वित अवस्था को त्रिबिन्दु कहा गया है। यह प्रकाश और विमर्श का समष्टि रूप भी कहा जाता है इसकी उत्पत्ति पराबिन्दु से मानी गयी है। पराबिन्दु शिव और शक्ति की अविभाजित अवस्था है। नाद बिन्दु और बीज क्षोभावस्था का परिणाम होता है जिसे दोनो का आन्तरिक सम्बन्ध भी कहते हैं। यह पराबिन्दु शक्ति वाक् रूपा है।

बिन्दु की शब्दात्मिका वृत्ति बिन्दु की शब्दात्मिका वृत्ति अथवा वाक् शक्ति बखरी मध्यमा पश्यन्ती भेद से तीन प्रकार की है। बिन्दु परा पश्यन्ती आदि शब्दात्मिका वृत्तियो से अविकल्प ज्ञान उत्पन्न होता है। विकल्प ज्ञान का अनुभव बिन्दु

---

१ गोपीनाथ कविराज—तान्त्रिक दृष्टि कल्याण का साधना अक, पृ० ४८०।

२ आर्थर ऐवेलेन—दी गारलण्ड आफ लटर्स, पृ० १२५।

के वाक् शब्द की सहकारिता से ही होता है। वाचक से पृथक् वाच्य की सत्ता है ही नहीं, केवल वाचक ही विद्यमान है, नाम मात्र ही वाक् स्वरूप है। यह नाद ही भिन्न वाक् शक्तियों में अभिव्यक्त होता है।

वैखरी श्रवण वाचक स्रोत ग्राह्य स्थूल शब्द ही वैखरी है। कण्ठ आदि स्थानों में आघात होने पर वायु वर्ण का आकार धारण करता है यह शब्द प्राण की वृत्ति का आश्रय करके प्रयुक्त होता है लौकिक कानों से इसे सुना जा सकता है। इसके उद्भव में वायु और आकाश सहायक होते हैं[1] यह सभी व्यक्त ध्वनियों की प्रतीक है। वैखरी के द्वारा ही व्यक्त और अव्यक्त वर्ण साधु और असाधु शब्द तथा इसी प्रकार के अन्य शब्दों का द्योतन होता है।[2] इन्द्रियों के अभिघात से, प्राण में स्थूल वृत्ति का उदय होने पर वैखरी वाक् का उदय होता है। कण्ठ तालु आदि के स्थान से वस्तुतः वैखरी के नाम से पश्यन्ती ही अभिव्यक्त होती है।

पश्यन्ती वाक् शक्ति नाभि प्रदेश में आकर जब स्थूल वर्ण रूप को धारण करती है तब उसका नाम पश्यन्ती हो जाता है। इसके साथ मन का भी सम्बन्ध रहता है इस प्रकार बिन्दु भी कहा है, यह स्वयं प्रकाश होती है[3] यह क्रम हीन है अर्थात् इसका प्रधान लक्षण यह है कि यह प्रतिसंहृतक्रमा होती है। यह चल और अचल दोनों है, अर्थात् शब्द की अभिव्यक्ति में गति के कारण यह चला है अपने विशुद्ध रूप में निस्पन्द रहने के कारण यह अचला कहलाती है।[4] इसके अनेक भेद होते हैं परन्तु अपने मूल रूप में यह क्रम रहित, स्वप्रकाश तथा संविद्रूप है इसी मूल तत्व को सत्ता या प्रतिभा भी कहा गया है इसे ही 'शब्दब्रह्म' के रूप में भी स्वीकार किया गया है। यही शब्द तत्व विश्व का आधार है हेतु और कारण है शब्द ब्रह्म और शुद्ध ब्रह्म में कोई अन्तर नहीं है पूर्ण एकत्व है। इस प्रकार यह पश्यन्ती शक्ति स्वयप्रकाश है और मध्यमा से भी सूक्ष्मतर होती है।

मध्यमा वाक् की अन्तःमनिवेश शक्ति ही मध्यमा है। यह अन्तःसंकल्प होती है तथा वैखरी की अपेक्षा सूक्ष्म होती है इसका व्यापार भीतरी होता है। यह सूक्ष्म प्राण शक्ति के द्वारा परिचालित होती है। वक्ता

१ डा० गोविन्द त्रिगुणायत–हिन्दी की निर्गुण काव्यधारा और उसकी दार्शनिक पृष्ठभूमि पृ० २१५।

२ बलदेव उपाध्याय–भारतीय दर्शन, पृ० ५७५।

३ डा० गोविन्द त्रिगुणायत हिन्दी की निर्गुण काव्यधारा और उसकी दार्शनिक पृष्ठभूमि, पृ० २१६।

४ श्री बलदेव उपाध्याय भारतीय दर्शन (छठा संस्करण), पृ० ५७६।

की बुद्धि में शब्द क्रम रूप में प्रतिभासित होते हुए प्रतीत होते हैं। चिंतन का कार्य मध्यमा वाक् करती है, भौतिक कान इसे सुन नहीं सकते इसी का नाम परामर्श ज्ञान है। यह शुद्ध बुद्धि का परिणाम है और क्रम विशिष्ट है। यही स्थूल शब्द का कारण है। शब्द के उच्च मन्द उपांशु परमोपांशु तथा सूक्ष्मतम आदि पांच औपाधिक भेद होते हैं। इनमें उच्च तथा मन्द का सम्बन्ध वैखरी से और उपांशु तथा परमोपांशु का सम्बन्ध मध्यमा से है। सूक्ष्मतम का सम्बन्ध पश्यन्ती से है।

इस प्रकार पश्यन्ती वाक् को भी परब्रह्म स्वरूपिणी माना है। अक्षर, शब्द ब्रह्म परावाक् इसी के नामान्तर हैं। परावाक् से ऊपर इच्छा क्रिया और ज्ञान रूपात्मक त्रिबिन्दु से अनेक मातृकाएं उत्पन्न होती हैं। ये ही वाक् परस्पर मिल कर मूल त्रिकोण अथवा महायोनि के रूप में परिणित होते हैं। पश्यन्ती इसकी वाम रेखा है वैखरी दक्षिण रेखा है और मध्यमा सरल अग्ररेखा है। मध्यस्थ महा बिन्दु ही अभिन्न विग्रह शिव और शक्ति का आसन है त्रिकोण का प्रत्येक स्तर ही प्रकाश तथा विमर्शमय अर्थात् शब्द और शब्दमय है। प्रत्येक चक्र में अ कार से लेकर क्ष कार पर्यन्त वर्णमाला तथा शिव से लेकर पृथ्वी पर्यन्त तत्व समूह अभिव्यक्त होते हैं। पंचतत्व मन चित् अहंकार के द्वारा शरीर और जड़ जगत् तक पहुंचा जा सकता है।

कारण कार्य सम्बन्ध

इस प्रकार कहा जा सकता है कि शुद्ध तत्वमय-कार्यात्मक शुद्ध जगत् का उपादान 'बिन्दु' है तथा 'कर्ता' शिव है और 'करण' शक्ति है। अशुद्ध तत्वमय जगत् में भी परम्परा से शिव और शक्ति ही 'कर्ता' एवं करण है तथा निवृत्ति आदि कलाओं के द्वारा बिन्दु आधार है। ये शिव ही अपनी अचिन्तीय शक्ति समूह के द्वारा लोकों के ईश्वर हैं देवताओं के स्रष्टा और पालक हैं ये ही सर्वव्यापी शिव हैं। ये ही परब्रह्म हैं, सत्-असत् सभी वस्तुएं शिव से उत्पन्न होती हैं। ये ही ब्रह्मा विष्णु और शिव नाम धारण कर सृष्टि स्थिति और संहार करते हैं। प्रलय काल में ये कार्य-कारण के चक्र के संचालन कर्म से विरत हो जाते हैं 'कुल' और 'अकुल' के भेद से परे हो जाते हैं शक्ति भी परम शिव में तत्वरूपा होकर अवस्थान करती है। शक्तिमय शिव शान्तावस्था में विराजमान रहते हैं। अपने सार्वतृत्व रूप का अनुभव करने के लिए ही परमेश्वर इस शक्ति रूपिणी मूल प्रकृति को बार बार क्षुब्ध कर उसे सृजन के लिए उन्मुख करते हैं अतएव वे स्वयं अपने को भय और भाता के

रूप म विभक्त कर लेते हैं अर्थात् वे स्वय ही शिव हैं और सृष्टि का सृजन करने वाले सृष्टा भी हैं। नेम सपदा नाना का उन्मुख है अत वह कभी भी नाना की स्वतन्त्रता का खण्डन नही करता।

नेम रूप म, नाना रूपो के द्वारा अविच्छिन्न घटादि के रूप म अभिव्यक्त सृष्टि परमेश्वर की शक्ति का ही नाम है। शक्ति द्वारा सृजित यह विश्व ब्रह्माण्ड परमेश्वर के अपने विभक्त सवित् म अपना ही प्रतिबिम्बन मात्र है अपनी चेतना म अपने को ही दृश्य रूप मे देखना है। शक्ति के द्वार पर अपने ही अन्दर जब तक अपना प्रतिफलन नही होता तब तक अपने का आप दिखाई नही पडता अत शक्ति के रूप म द्रष्टा शिव अपने को दृश्य बना देता है। इस प्रकार यह विश्व परम शिव का चिद्रूप स्वच्छ अम्बर मे प्रतिबिम्ब स्वरूप है जो स्वय शिव के अपने प्रमाण म ही सम्भव है। शक्ति के द्वारा परमशिव के इस चिद्रूप प्रतिबिम्ब को काम कला कहा गया है। शिव ही काम हैं और शक्ति कला हैं। इस कला क रूप म शिव शक्ति के सामरस्य से ही सृष्टि का विकास होता है।

जगत

जगत् रूप मे शक्त्यात्मक विभु ही प्रस्फुरित होते हैं। सारी सृष्टि ही परमेश्वर का लीला स्पन्दन है। धारामयी शक्ति के कल्लोल के अन्दर से ही जगत् रूपी लहरी जाग्रत होती है। जिस प्रकार दूध म घृत सूक्ष्म रूपस रहता है तथा घृत काय के प्रति दूध अव्यक्त कारण कहलाता है इसी प्रकार जगत् काय के प्रति पराशक्ति अव्यक्त कारण कहलाती है अपनी उत्पत्ति क पूव जगत् इसी पराशक्ति म लीन रहता है। यह पराशक्ति स्वच्छा स अपने स्फुरण को स्वय देखती है तभी विश्व की सृष्टि होती है। इस दृष्टि अथवा सृष्टि व्यापार म शिव तटस्थ रहते हैं उनकी स्वातत्र्य शक्ति ही सब कुछ करती है। ससार का मूल भूत कारण प्रकृति ही मानी गयी है। प्रकृति सत्व रजस और तमस आदि तीन गुण सम्पन्न हैं। प्रकृति पुरुष के सयोग से इन गुणो म क्षोभ अथवा चचलता उत्पन्न होती है और वहा से सृष्टि का विकास क्रम आरम्भ होता है।[1] वस्तुत ब्रह्म की इच्छा ही इस सम्पूर्ण प्रपच शक्ति का कारण है।

ब्रह्म और जगत

ब्रह्म के आनन्द और चिद् धम क तिरोधान से उसका सन्श जगत् है। यह जगत् अनेक रूपात्मक है परन्तु यह अनेक रूपता ब्रह्म के एक सद् अश का ही परिणाम है। ब्रह्म का अश होने के कारण यह सत्ता सत्य है और अपनी आदि अवस्था म यह ब्रह्म से

---

१ धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी-सतमत का सरभग सम्प्रदाय, पृ० १६।

अभिन्न है। ब्रह्म कारण है और जगत् काय। यह जगत् काय कारण ब्रह्म म तिरोभूत रहता है स्वेच्छा स परिणाम को धारण करने पर जगत् रूप काय अलग प्रादुभूत हो जाता है।[१] इस प्रकार ब्रह्म और जगत् के सम्बन्ध का विवेचन करते समय ब्रह्म को जगत् का कारण और जगत् को काय अथवा ब्रह्म का परिणाम भी माना गया है।

परिणामवाद परिणाम अथवा परिवतन दो प्रकार का माना गया है अविकृत और विकृत। अविकृत परिणाम क अनुसार पदाथ रूप बदलने पर भी अपने पहले स्वरूप को प्राप्त कर सकता है। परिणाम म परिणाम स पूव परिणाम के समय और परिणाम के बाद कारण और काय म किसी प्रकार का अयथा भाव उत्पन्न न होने पर वह परिणाम अविकृत परिणाम कहलाता है। मकडी अपनी इच्छा से ही तन्तु निकालती है उसम रमण करता है फिर उस अपने म ही समाविष्ट कर देती है, इसी प्रकार शुद्ध ब्रह्म ही जगत् रूप मे अविकृत परिणाम को प्राप्त होता है। इस जगत् की उत्पत्ति ब्रह्म की इच्छा से होती है इसका लय भी उसी की इच्छा के अधीन होता है। शिव की इच्छा म समस्त जगत् की सृष्टि होती है और उसी म सब कुछ लीन हो जाता है अर्थात् कारण ब्रह्म और काय जगत् दोनो सत्य हैं। शवमत के वीर शव सम्प्रदाय ने भी ब्रह्म और जगत् के सम्बन्ध मे अविकृत परिणाम वाद को ही मायता दी है। इनके अनुसार पर शिव इस जगत् का एक समय म विकास करते हैं और दूसर समय मे सकोच करते हैं ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार कछुवा एक समय म अपने परो को बाहर निकाल कर पानी म चलता रहता है तथा दूसर समय उन परो का अपने म छिपा कर चुपचाप बठा रहता है। इस प्रकार इस मत म एक ही स्वरूप का आविर्भाव और तिरोभाव होना रहता है। अतएव इनके अनुसार यह जगत् सत्य है।

सत्कायवाद सृष्टि के सम्बन्ध म सत्कायवाद का प्रयोग होने पर,जगत् की वास्तविक सत्ता तथा ब्रह्म के साथ एकत्व सम्बन्ध की व्यजना होती है। वदान्त क अनुसार भी कारण काय का मूल और आश्रय है कारण क अभाव म काय की सत्ता सम्भव नहीं। काय और कारण का अपृथक तादात्म्य है किन्तु एकत्व नहीं।[२] आचाय शकर ने काय और कारण का अपृथक तादात्म्य तथा उसी म अनुगत जगत् और ब्रह्म क

---

१ डा० दीनदयाल गुप्त—अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय पृ० ४३५।

२ डा० रामानन्द तिवारी—श्री शकराचाय का आचार दशन, पृ० ३८।

अपृथक भाव पर विशेष बल दिया है। आपके अनुसार कारण से पृथक कार्य की सत्ता सम्भव नहीं है, कार्य कारण में अन्तर्भूत है कारण कार्य से नहीं।[1] शंकर के अनुसार कार्य के रूप में परिवर्तन केवल मानसिक आरोप है जिसे अध्यास कहते हैं समस्त आकार मिथ्या है उन्होंने कारण के इस असत्य और काल्पनिक परिवर्तन को विवर्त कहा है।[2] रामानुजाचार्य के अनुसार ईश्वर की सृष्टि उतनी ही वास्तविक तथा सत्य है जितना स्वयं ईश्वर। आपने शंकर के समान विवर्त को सृष्टि व्यापार में स्थान देकर परिणाम के सिद्धान्त की ही मान्यता दी है। शैवाचार्य श्री कण्ठाचार्य का सिद्धान्त रामानुज सिद्धान्त के नितान्त अनुकूल है। इस प्रकार जगत् रूप कार्य और ब्रह्म कारण के सम्बन्ध का विवेचन करते हुए कहा गया है कि ईश्वर धर्मी है और उसके अप्राकृत धर्म अभिन्न हैं। अतः सच्चिदानन्द ब्रह्म धर्म और धर्मी दोनों स्वरूपों में स्थित रहता है।

अंशांशी भाव

ब्रह्म का धर्म नित्य है स्वाभाविक है। जड़ जगत् और जीव सृष्टि सच्चिदानन्द ब्रह्म के अंश हैं। ब्रह्म का आनन्दांश अन्तरात्मा रूप में सब व्यापक है। जगत् के प्राणी और वस्तुओं में उसी महान् अन्तर्यामी के अंश हैं। अभिनवगुप्त ने परमेश्वर और जगत् का परस्पर सम्बन्ध दर्पण बिम्बवत् माना है। दर्पण में ग्राम, नगर वृक्षादि पदार्थ प्रतिबिम्बित होने पर मूल तत्त्व से अभिन्न होने पर भी दर्पण में तथा परस्पर भी भिन्न प्रतीत होते हैं इसी प्रकार संविद्रूप परमेश्वर में प्रतिबिम्बित यह विश्व ब्रह्म से अभिन्न होने पर भी घटपटादि रूप से भिन्न अवभासित होता है। लोक में प्रतिबिम्बित पदार्थ की सत्ता बिम्ब पर अवलम्बित है, परन्तु त्रिक्दर्शन में परमेश्वर की स्वातन्त्र्य शक्ति के कारण बिना बिम्ब के ही, जगत् रूप बिम्ब स्वतः उत्पन्न होता है। ब्रह्म और जगत् की अद्वैत भावना ही वास्तविक है। इस आभास को मानने के कारण त्रिक दर्शन की दार्शनिक दृष्टि 'आभासवाद' के नाम से पुकारी जाती है अर्थात् ब्रह्म और जगत् के सम्बन्ध को आभास माना गया है।

इस प्रकार यह सृष्टि शिव से अभिन्न प्रकाश रूप है। शिव का उन्मीलन चिति (शक्ति) की इच्छा पर निर्भर है। अतः जडाजडात्मक विश्व वैचित्र्य तथा सृष्टि की जाग्रत आदि अवस्थाएँ परमेश्वर की शक्ति के प्रसार हैं। प्रलय काल में यह जगत् सूक्ष्म रूप से परशिव में निहित रहता है वह

---

१ डा० रामानन्द तिवारी—श्री शंकराचार्य का आचार दर्शन पृ० ३८।

२ बलदेव उपाध्याय—भारतीय दर्शन पृ० ५७६।

बीज म वट-वृक्ष के समान हो यह सृष्टि अपना आश्रय परमशिव म प्रलय काल म और उसके पूर्व भी उसम विद्यमान रहती है।[1] शैवमत के अनुसार शिव अपनी शक्ति के द्वारा इच्छा होने पर इस ससार का आविर्भाव तिरोभाव किया करते हैं आद्या शक्ति जो ससार का सृजन करती है नित्य पदार्थ है अत नित्य पदार्थ का विनय और प्रादुर्भाव होता है। विमर्श शक्ति का पुरुष म लय और प्रादुर्भाव बतलाते हुए इसकी तुलना उस व्यक्ति म की गयी है जो एक समय म अपनी सप की केंचुली के समान स्वच्छ और सूक्ष्म चादर को ओढ लेता है। उससे आच्छन्न वह अपने प्रकाश से आवरण को प्रकाशित करता है और उसको समेट लेने पर अनावृत्त शुद्ध स्वरूप को प्रकट करता है। वस्तुत न चादर के समटने पर उसका विनाश होता है और न ओढने पर उसकी उत्पत्ति। वह नित्य है पुरुष से किसी भी दशा म उसका वियोग नहीं होता।[2]

साराशत ईश्वर अपनी माया शक्ति के द्वारा जगत् की सृष्टि करता है इस माया से युक्त होने से परमेश्वर को मायी कहा गया है।[3] वही ज्ञेय और ज्ञाता रूप मे व्यक्त होते हैं। प्रभु ईश्वर आन्तरिक सकल्प के द्वारा शिव स्वय निर्माण करते हैं और यह निर्मित जीव उनका अश है।[4]

जीव और शिव

प्रकृति से अविच्छिन्न चैतन्य जीव है।[5] सच्चिदानन्द अक्षर ब्रह्म के चिद् अश से जीव की उत्पत्ति मानी गयी है। परशिव की एक से अनेक होने की इच्छा से उसके अश रूप जीव की उत्पत्ति होती है अर्थात् सच्चिदानन्द शिव आनन्द शक्ति का तिरोभाव कर चित् और सत् धर्म से अनेक जीवो का आविर्भाव करता है।[6] वेदान्त म चेतना के मित-तत्व को जीव की सज्ञा दी है जीव म अमिना

---

१ श्रीकृष्ण काशीनाथ शास्त्री-आत्म तत्त्व विद्यातत्त्व शिवतत्त्व, तुरीयतत्त्व-कल्याण-साधना अक पृ० २८६।

२ त्रिपुरागम मे अद्वैत तत्त्व कल्याण वेदान्त अक।

३ डा० रामानन्द तिवारी-श्री शकराचार्य का आचार दर्शन पृ० ५६।

४ प्रविभज्यात्मनात्मान सृष्ट्वा भावान् पृथग्विधान्।
सर्वेश्वर सर्वमय स्वप्ने भोक्तृप्रवते।
—ईश्वर प्रत्यभिज्ञा १।५।१५ १६।

५ रगनाथ, षड्दर्शन पृ० ११२।

६ दीनदयाल गुप्त अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय, पृ० ४२१

अध्यात्म तत्व निहित रहता है वही जीव का चरमाश्रय है।[1] आचार्य शङ्कर जीव को अनादि सत्तावान् माना है अर्थात् वह अखिल व्यापक अध्यात्म तत्व से भिन्न नहा है। जीव और शिव अभिन्न हैं एक हैं। नाम रूप की उपाधि म शिव ही जीव अभिधा धारण कर लेता है। उपाधिवश समार मे फसा हुआ जीव अपने को शिव म भिन्न समझता है। जीव और शिव म वास्तविक भेद न होकर औपाधिक भेद है।[2] उपाधि और उपाधि के वशीभूत जीवा का नियम न ईश्वर का धम है। जीव स्वरूपत नित्य विभु चेतन एव अन्याय शिव धम स युक्त होने पर भी समारावस्था म इन सबका अनुभव नही कर पाता। उसकी चैतन्य शक्ति शिव की शक्ति क समान ही है भेद केवल इतना है कि शिव के स्वरूप म यह सदा अनावृत रहती है और जीव म सम्ब वनमान रहने पर भी वह पाशसमूह स अवरुद्ध रहती है।

जीव का स्वरूप रामानुजाचाय के अनुसार चित् या जीव ज्ञान स्वरूप है इसका स्वरूप ज्ञानमय है। वह इद्रिया की सहायता के अभाव म भी विषय का ज्ञान प्राप्त करन म समथ है इसी कारण वह प्रज्ञानघन स्वयज्योति तथा ज्ञानमय कहा गया है। जिस प्रकार सूय प्रकाशमय भी है और प्रकाश का आश्रय भी उसी प्रकार जीव ज्ञान स्वरूप भी है और ज्ञानाश्रय भी। जीव कर्ता है और प्रत्यक दशा म वह कर्ता ही रहता है।[3] जीव ही हस है वही व्यापक परशिव है और भुक्ति तथा मुक्ति दाता का प्रणाता है। आत्मा का आत्मा ही बाधता और आत्मा ही मुक्त करता है। आत्मा ही आत्मा का गुरु है और वही प्रभु है।[4] जीव परिमाण म अणु तथा सख्या म अनेक हैं।[5]

अनेक शवमत म प्रत्यभिज्ञानदशन की विशेषता यह है कि वह जीवा का एक मात्र चिति का प्रस्फुरण बतलाता है। आत्मा सदा पच कृत्यकारी है यह विश्वातीण, सच्चिदानन्द एक सत्य अनत सृष्टि स्थिति-लय का कारण भाव अभाव विहीन तथा सूय कतृत्व से युक्त है। ज्ञान और क्रिया उसके लिए एक समान है और वीर शैव मत जावा का शिव का अश एव शक्ति से विशिष्ट मानता है। साथ ही वीर शवमत शिव और जीव म पारमार्थिक

---

१ रामानन्द तिवारी शंकराचाय का आचार दशन पृ० ३६ ४०।
२ डा० विमल कुमार जन सूफीमत और हिन्दी साहित्य पृ० १०६।
३ बलदेव उपाध्याय भारतीय दर्शन पृ० ४६६।
४ हजारी प्रसाद द्विवेदी, नाथ सम्प्रदाय, पृ० ६६।
५ बलदेव उपाध्याय, भारतीय दशन पृ० ५०१।

भेदाभेद सम्बन्ध स्थापित करता है। शवमत म वेदात का जीव ही पशु नाम स अभिहित किया गया है। प्रकाशरूपता के साथ पशु की अनेक रूपता भी प्रतिष्ठित है। नान और निया शक्ति स युक्त होने के कारण उसे कर्त्ता भी कहा गया है। पशु ही पास स मुक्त होने पर शिव स्वरूप हो जाता है।[1] पाशुपत मत मे पशु (जीव) को पति (शिव) और जगत् स भिन्न बतलाया गया है। पशु और पति —जीव और शिव दोनो क गुण एक ही है। ईश्वर के अचित् पक्ष (ससार) म जीवात्मा चित् पक्ष है।[2]

जीव और माया

ईश्वर का चतन्य अश जीव मायाजनित भ्रम क कारण ससार चक्र मे घूमता है। चनन्य अणुत्व और शुद्धता उसके स्वरूप गुण है अनन्तता दुख और अशुद्धता प्रकृति और उसके परिणाम के कारण जीव अविद्याग्रस्त रहता है।[3] ईश्वराद्वयवाद (प्रत्यभिज्ञादर्शन) मे माया को आत्मा का स्वातन्त्र्य मूलक अपनी इच्छा स परिगृहीत रूप माना है।[4] माया के कारण ही जीव भ्रमवश प्रपच म पडा हुआ अपने को ईश्वर से भिन्न समझता है। भ्रम रूप बन्धन क कारण उसका सवतत्व सवक्तृत्व आदि पाश स आवद्ध रहते है।

जीव के भेद

पाशो के तारतम्य के कारण विभिन्न मता न पशु को विभिन्न रूपा म देखा है। शव सिद्धात मत ने विनानाकल प्रलयाकल और सकल भेद से जीव क तीन प्रकार माने हैं। वीर शैव मत न अग रूपी जीव को त्यागाग भोगाग और योगाग नाम स तीन प्रकार का माना है।[5] इसी प्रकार पाशुपत सिद्धात म जीव का साजन और निरजन भेद म दो प्रकार का माना है[6] यह जीव भेद प्राय सभी सम्प्रदाया म मल के विभिन्न स्तर पर आधारित है। आचाय वल्लभ ने जीव को शुद्ध मुक्त और ससारी भेद म तीन प्रकार का माना है। उनके अनुसार आनन्द का तिरोधान और अविद्या म सम्बद्ध होने से पूव जीव शुद्ध और अविद्या स सम्बन्ध होने पर ससारी कहलाता है। देव और असुर भेद से व दो प्रकार क होते हैं। इसी

---

१ डा० त्रिगुणायत हिं० की नि० का० धा० और उ० दा० पृ० १८६।
२ डा० विमल कुमार जैन सूफीमत और हिन्दी साहित्य पृ० १७७।
३ डा० यदुनाथ सिन्हा भारतीय दशन, पृ० ३६६।
४ बलदेव उपाध्याय भारतीय दशन, पृ० ५६६।
५ काशीनाथ शास्त्री शक्ति विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त निरूपण
कल्याण वेदात अङ्क पृ० २३३।
६ राजबली पाण्डेय, पाशुपत सिद्धान्त और वेदान्त —वही पृ० ४५०।

प्रकार निम्बार्क ने जीवकी दो दशाएं—बद्ध और मुक्त, स्वीकार की हैं,[1] माध्व ने मुक्तियोग्य नित्य संसारी और तमोयोग्य आदि तीन प्रकार के जीव माने हैं।[2] इस प्रकार गुणों के तारतम्य के कारण जीव भिन्न भिन्न श्रेणियों में अन्तर्भुक्त किया गया है।

सारांशतः शैवमत की द्वैताद्वैत शाखा में पशु को पति और जगत् से भिन्न माना गया है। अद्वैत शाखा में पशु और पति अंशांशी भाव से युक्त कहा गया है तथा विशिष्टाद्वैत प्रधान शाखाओं में जीव को ब्रह्म की विशिष्ट शक्ति से अनुस्यूत माना गया है। जीव और जगत को ब्रह्म की ही सत्य शक्ति से युक्त होने के कारण सत्य माना है। माया नित्य, विभु और एक है नित्य चैतन्य जीव को आच्छन्न किए रहती है। सद्विद्या के द्वारा ही जीव अपने शुद्ध स्वरूप को पहिचानता है बाह्य दृष्टि से मनुष्य पशु से अधिक नहीं माना गया है।[3] अपने संस्कारवश भाव से बद्ध होने के कारण वह स्वयं को महेश्वर से भिन्न समझता है। जीवात्मा में लगा हुआ मल ही दोष है।[4]

पाश

पाश का अर्थ है बन्धन, जिसके द्वारा स्वयं शिव रूप होने पर भी जीवों को पशुत्व की प्राप्ति होती है। शैवमत में ये पाश— मल, कर्म, माया और रोध शक्ति नाम से चार प्रकार के बतलाये गए हैं। किन्तु जीवात्मा को आच्छादित करने वाले मल तीन ही (अविद्या कर्म और माया) माने गए हैं।

अविद्या को ही आणव मल कहा है। इसके कारण चैतन्य आत्मा अपने को शान्त शरीर बद्ध परिमित ज्ञान शक्ति वाला समझता है।[5]

आणव

आणव मल के कारण पशु का ऐश्वर्य लुप्त हो जाता है। इसी को अज्ञान भी कहा है आगम शास्त्र में इसे अख्याति कहते हैं इस पाश को पशुत्व, पशुनीहार, मृत्यु, मूर्च्छा मल अंजन आवृत्ति, ग्लानि, रुज पाप, क्षय आदि भी कहा गया है।[6]

कर्म

दूसरा पाश कर्म अविद्या का परिणाम है। चेतना आत्मा और अचेतन शरीर के संघात का कारण है। मनुष्यों की क्रिया शक्ति से उत्पन्न होने के कारण इसको कर्म कहा गया है। यह अदृष्ट और भाग्य

१ बलदेव उपाध्याय भारतीय दर्शन पृ० ५०१।
२ वही पृ० ४६४।
३ डा० द्वारिका प्रसाद कामायनी काव्य में संस्कृति और दर्शन, पृ० ४८७।
४ "आत्माश्रितो दुष्ट भावो मल"
५ राजवली पाण्डेय, पाशुपत सिद्धान्त और साहित्य पृ० ४५०।
६ वही, पृ० ४५०।

है। इसी से शरीर का जन्म और धारण होता है। यह मानसिक, वाचिक और कायिक तीन प्रकार का होता है यह प्रलय काल में परिपक्व होता और कल्प के आदि मे प्रगट होता है और प्रलय काल मे पुन परमेश्वर की माया म पुन विलीन हो जाता है।[१]

तीसरा मल माया है इसी स कर्म मल की उत्पत्ति होती है।[२] माया दुख का कारण विश्व का बीज शक्तिमती आकर्मात जीव की

माया मल बाधक सवव्यापी और अक्षय तथा विश्व का उत्पादन कारण है।

पाशुपत मत म जड माया जड जगत का उपादान है किन्तु वह असत्य एव मिथ्या नही है। वह अक्षय और सनातन है।[३]

साराशत पाश सम्बन्धी ये सिद्धात शव और अन्य म प्राय अन्य सम्प्रदायो से समानता रखते है। पाशुपत मत के अनुसार कर्म के स्वामी महेश्वर है भोग के पश्चात् वह उन्ही मे मिल जाता है। वेदान्त के ब्रह्म का कर्म स कोई सम्बन्ध नही वह स्वत कर्म स निर्लिप्त और उसके सचालन से परे है। महेश्वर जीवो पर अनुग्रह करके उनकी मुक्ति के लिए, मलो का प्रवर्तन और विकास करते है।

इन मलो को ही प्रत्यभिज्ञादर्शन म कचुक कहा है जो कला विद्या राग काल और नियति आदि नामो से अभिहित होते हैं।

कचुक *कला तत्व की उत्पत्ति माया स होती है। यानिवग कला शरीरम्* के अनुसार ससार की समस्त चराचर वस्तुओ मे प्रविष्ट क्रिया शक्ति के सकुचित कर्तृत्व को कला कहा है। यह शक्ति पुरुष के ऐश्वय को सकुचित रूप म प्रकट करती है।[४] वही चेतनाश्रित निश्चतन तत्व है। आगम ग्रन्थो म इसे अमृता कला वर्सागिकी सदाख्या चित्कला और अमा-कला कहा है।[५] वही वन्दी भी कहलाती है।[६] इसके कारण जीव को अपने किंचित कर्म और ज्ञान का अनुभव होता है। वही दीपक के समान मायाजन्य अधकार का दूर करती है।[७]

---

१ राजबली पाडेय पाशुपत सिद्धान्त और वेदान्त, कल्याण वे० अ० ४५० ।
२ गोपीनाथ कविराज तान्त्रिक दृष्टि कल्याण शा० अ० पृ० ४६० ।
३ राजबली पाडेय पाशुपत सिद्धात और वेदान्त क० वे० अ० पृ० ४५० ५१ ।
४ शिवशकर अवस्थी कला-कल्याण, जून १९५४ ।
५ कला तत्व स दोह ।
६ ईश्वर प्रत्यभिज्ञा विमर्शिनी-भाग २ पृ० २०८ ।
७ मृगेन्द्र तन्त्र १।१०।८-५ ।

'कला से विद्या तत्त्व की उत्पत्ति होती है विद्यातत्त्व से जीवात्मा मे ऐश्वर्य स्वभाव प्रकाशित होता है[1] जिससे बुद्धि मे भावों के प्रतिबिम्ब उपस्थित होते हैं। उसी से बुद्धि का अपना ज्ञान होता है।[2] विषयों का आवरण ही रागतत्त्व है वही भाग्य पदार्थ एवं चित् शक्ति के लिए अभिलाषा उत्पन्न करता है।[3] जीवात्मा को परिमित बनाने वाला तत्त्व कला तत्त्व' है इसी के कारण घट क्रिया' और पट क्रिया का विभाजन होता है इसी तत्त्व के द्वारा निमेष मुहूर्त घडी आदि प्रत्ययों का ज्ञान होता है।[4] जीव को अपने अपने कर्मों मे सलग्न करने वाले को नियति तत्त्व कहा गया है यही नियामक तथा कार्य का निष्पादक तत्त्व माना गया है।[5] उसी से जीव की सर्वव्यापकता सकुचित हो जाती है।[6] कहने की आवश्यकता नहीं कि कचुकावृत्त होने से ही आत्मा परिमित हो जाता है कचुक या मलापसरण ही जीव का लक्ष्य है।

मलापसरण

मल की निवृत्ति होने पर जीव का पशुत्व दूर हो जाता है मल से चित् और अचित् का अविवेक उत्पन्न होता है मल—बाधु ज्ञान द्वारा सम्भव नहीं है। मल तो द्रव्यात्मक है। ईश्वर के दीक्षा सज्ञक व्यापार के द्वारा इसकी निवृत्ति होती है अर्थात् दीक्षा ही मल को दूर करती है। मल की शक्तियां अपने अपने रोध और अपसरण मे ईश्वर की शक्ति के आधीन हैं उपचार रूप मे भगवान् की शक्ति ही अनेक रूप मे व्यवहृत होती है। मल शक्तियां अपने आने वाले अधिकार के समय चैतन्य का रोध किये रहती हैं भगवान् की शक्ति उनका परिणाम करते हुए निग्रह व्यापार का अनुसरण करती है[7] अर्थात् मल अधिकार समाप्ति परिणाम की अपेक्षा से होता है परमेश्वर की अनुग्रह शक्ति के प्रभाव से ही परिणाम होता है।

---

१ ईश्वर प्रत्यभिज्ञा विमर्शिनी — भाग २, पृ० २०२–२०३।

२ तन्त्रालोक भाग ६, पृ० १५६।

३ डा० द्वारिका प्रसाद कामायनी काव्य दर्शन और उसकी दार्शनिक पृष्ठभूमि पृ० ४२२।

४ प० काशीनाथ शास्त्री शक्तिविशिष्टाद्वैतसिद्धान्त निरूपण पृ० २३३।

५ डा० द्वारिका प्रसाद का० का० द० औ० उ० दा० पृ० भू० पृ० ४२३।

६ हजारी प्रसाद द्विवेदी नाथ सम्प्रदाय पृ० ६७।

७ गोपीनाथ कविराज, तान्त्रिक दृष्टि पृ० ४८६–८७।

शक्तिपात

यह अनुग्रह ही शैवमत मे शक्तिपात कहलाता है इसके लिए दीक्षा तत्व की आवश्यकता है भगवद्रूप गुरु दीक्षा द्वारा शिष्य का उद्धार करता है। शक्तिपात सर्वथा माया निरपेक्ष है। माया से निवृत जीव शक्तिपात के प्रभाव मे भोग अथवा मोक्षरूपा सिद्धि प्राप्त करता है कर्मादि सारे उपाय माया के ही अतंगत हैं। ईश्वर माया से पर हैं, ईश्वर की स्वतंत्र इच्छा ही मोक्ष का कारण होती है जिसमे अनुग्रह का विशेष स्थान है।[1]

भक्ति

परम शिव के अनुग्रह को प्राप्त करने के लिए वीर शैव मत मे भक्ति आवश्यक साधन है। परमशिव के अनुग्रह से ही जीव उसे प्राप्त कर सकता है। गुरु की कृपारूपिणी दीक्षा भक्ति की बडी आवश्यकता होती है। दीक्षा प्राप्त कर लेने पर जीव शिवत्व को प्राप्त कर लेता है।[2]

मोक्ष

इस प्रकार भक्ति एव दीक्षा द्वारा प्राप्त शक्तिपात के प्रभाव से देह का नाश नही होता केवल अज्ञान की निवृत्ति होती है तदनन्तर अक्षय भोग और मोक्ष का स्वातन्त्र्य प्राप्त होता है। आचार्य शंकर के अनुसार जीव का 'ब्रह्म' मे लय हो जाना मोक्ष है। जीव अपने दिव्य स्वरूप को प्राप्त कर लेता है। यह न तो शारीरिक मानसिक और धार्मिक कर्मों पर निर्भर है और ही उत्पन्न होता है।[3] शंकर के अनुसार मोक्ष आत्मा का प्राप्य स्वरूप हैं। इसमे आत्मा का ब्रह्म मे अभेद नही होता वह ईश्वर के ऐश्वर्य का भोग करता है इसमे प्राप्त आत्मानंद के उपभोग मे जीव के ब्रह्म के साथ साम्य होता है।

प्रत्यभिज्ञा दर्शन और मोक्ष

काश्मीर शैव-दर्शन मे आत्मानन्द ही को मोक्ष कहा गया है वही चिदानन्द और कभी सामरस्य एव स्वातन्त्र्य कहलाता है। उसकी प्राप्ति अन्त महेश्वर के तादात्म्य के साथ होती है।[4] आनन्द हृदय मे स्थित है। प्राणवायु के प्रवेश मे प्रवेश पाने पर ही परानन्द की प्राप्ति होती है। आत्मा क्रमश चिदानन्द प्राप्त करता है। वह चिदानन्दावस्था ही मोक्ष है। यही शिवानन्दम्" की स्थिति है जिसे प्राप्त करने पर उस अनित्य या अमंगलकारी दशा की ओर लौट

---

१ गोपीनाथ कविराज, शक्तिपात रहस्य पृ० ६० ।

२ बलदेव उपाध्याय, भारतीय दर्शन, पृ० ५८२ ।

३ यदुनाथ सिन्हा भारतीय दर्शन, पृ० ३५५ ।

४ डा० त्रिगुणायत, हि० नि० का० धा० और उ० दा० पृ० भू०, पृ० १११ ।

कर नहीं माना पडता।[1] वह अखण्ड आनन्द रस मे लीन हो जाता है। यही जीव की अनुत्तरावस्था है वही शिवत्व है। आनन्द की प्राप्ति होने पर, रस की चरमावस्था म हृदय समान अनुभूति से आप्लावित रहता है। प्रत्यभिज्ञा दर्शन म समरसता का सिद्धान्त महत्वपूर्ण माना गया है। मन आनन्दपद म लीन होकर समरसता को प्राप्त करता है। वही सामरस्य कहलाता है।[2]

लिंगायत दर्शन के अनुसार समरसता ही मोक्ष है। जीवात्मा अपने ही रूप म स्थित होकर समरसता का अनुभव करता है।[3]

लिंगायत दर्शन और मोक्ष

साधना के उपरान्त जिस आनन्द की प्राप्ति होती है उसे समरस और उस अवस्था का सामरस्य कहा है। दूध का दूध म मिलना नीर का नीर से मिलना ही सामरस्य है। जिस प्रकार घटाकाश वृहदाकाश म लीन होता है उसी प्रकार आत्मा भी परमात्मा मे लय हो जाता है। वेदान्त म भी समरसता के सिद्धान्त का अपनाया गया है। प्रत्यभिज्ञा दर्शन मे ही केवल समरसता के प्राप्त होने पर जीवात्मा के अखण्ड आनन्द की बात कही गयी है। वह स्वतन्त्रावस्था ही परमात्म भाव की सूचक है विषमता की सकुचित अवस्था म सुख और दुख दोनो रहते हैं समरसता की अवस्था म केवल आनन्द ही आनन्द रहता है।

आनन्द की प्राप्ति दुख की आत्यन्तिक निवृत्ति है। पाशुपत मत मे यह दुखान्तावस्था दो प्रकार की मानी गयी है—अनात्मक और

पाशुपत मत और मोक्ष

सात्मक। दुख की निवृत्ति के साथ सिद्धियां भी मिलती हैं। सांख्य दर्शन म भी मुक्ति की यही परिभाषा दी गयी है वेदान्त के अनुसार अज्ञान की निवृत्ति ही मुक्ति है अज्ञान ही सब दुखो का मूल है। दुखो का अत्यन्त उच्छेद अनात्मक मुक्ति है और ऐश्वर्य प्राप्ति सात्मक मुक्ति है।[4] शैव भक्त दुखो से निवृत्ति और शिव के परम ऐश्वर्य रूप आनन्द की प्राप्ति को ही मोक्ष मानते हैं। गोरखनाथ ने भी निर्विकल्पना को ही मुक्ति माना है यह द्वैत प्रपच की शान्ति से होती है, यह दशा ही अखण्ड आत्म बोध रूप दशा है यही आत्मजागरण है।[5]

---

१ मृगेन्द्र तन्त्र योगपाद पृ० ४२।

२ (क) स्वच्छन्द तन्त्र—भाग २, पृ० २७६–२७७।
   (ख) आनन्द शक्ति विश्रान्ते योगी समरसो भवेत।

३ लिंगधारण चन्द्रिका—भूमिका पृ० १७८।

४ राजबली पाडेय पाशुपत सिद्धान्त और वेदान्त, पृ० ४५१।

५ दादू की मुक्ति का रहस्य सन्तवाणी (अंक ४), पृ० १५७।

साराशत स्वविमर्श अर्थात् स्वरूपानुभूति ही मोक्ष है। आगम में विमर्श तत्व जिसको आद्याशक्ति भी कहा है प्रसारशील नही है उसे नित्य माना है नित्य होने पर भी उसका विलय होता है।[1] न्यायागम के अनुसार मुक्त जीव चेतन और सत्य कामादि गुणो से अलकृत होता है।[2]

इस प्रकार कहा जा सकता है कि शैवमत की आधार भूमि छत्तीस तत्व हैं। इसकी प्रत्यक शाखा मे पाच ज्ञानेन्द्रिया पाँच कर्मेन्द्रिया पाच तन्मात्रा और पाच स्थूल महाभूत आदि पन्द्रह तत्वो की मान्यता है। शिव शक्ति सदाशिव ईश्वर सद्विद्या माया कला विद्या राग काल नियति पुरुष प्रकृति तथा बुद्धि से पृथ्वी तक सभी तत्वो का विवेचन हुआ है। साख्य के समान ही यहा प्रकृति से बुद्धितत्व बुद्धि से अहकार अहकार से मन-पाच ज्ञानेद्रिया पाच कर्मेन्द्रिया पाच तन्मात्राए और उनसे पचभूत आदि की उत्पत्ति मानी गयी है।[3] जीवात्मा के साथ शरीर का सम्बन्ध ही मुख्य माना गया है। आगम ग्रन्थो के अनुसार यह विश्व और इसमे वसने वाले समस्त प्राणी शरीर हैं जिनकी आत्मा शिव है जीवात्मा अगम्य और शाश्वत हैं। ये सब परम शिव के अश है। शरीर से सलग्न होकर जीवात्मा अविद्या काम और माया के विविध बन्धन मे फस जाता है। परमशिव के अनुग्रह से उसकी इस बन्धन से मुक्ति होती है। इस प्रकार आत्मा कर्मबन्धन से विमुक्त हो आवागमन के चक्कर से निवृत शिव समान होकर उन्ही के सान्निध्य से परमानन्द को प्राप्त करता है। सभी आगमो मे जीव बन्धन और ईश्वर का विवेचन मिलता है। उक्त सामान्य दार्शनिक तत्वो पर ही शैवमत के प्राय सभी पूर्वोक्त सम्प्रदाय आधारित हैं तथापि अपनी विशिष्ट मान्यताओ के कारण अलग महत्ता लिये हैं।

शैव सम्प्रदायो की ऐतिहासिक विवेचना से यह स्पष्ट हो जाता है कि

निष्कर्ष सैद्धान्तिक मान्यताओ के भेद से अनेक शैव सम्प्रदायो की तात्विक एकता बाधित नही होती। अद्वैत विशिष्टाद्वैत द्वैताद्वैत आदि सम्प्रदायो की भिन्नता भी केवल मौलिक एकता को प्रमाणित करती है। तामिल प्रान्त के शैवगण जो शैवसिद्धान्ती नाम से विख्यात है द्वैतवादी हैं। वीर शैव शक्ति विशिष्टाद्वैत के उपासक है। गुजरात और राजपूताने के पाशुपत द्वैतवादी है। इन सब मे दार्शनिक दृष्टि से भिन्नता रखने वाला काश्मीर

१ ललिता प्रसाद डबराल-त्रिपुरागम मे अद्वैत तत्व पृ० ४६७।

२ श्रीकृष्ण दत्त भारद्वाज – ब्रह्म सूत्र के अनुसार मुक्त आत्मा का स्वरूप, —कल्याण, वेदान्त अक, पृ० १४५।

३ डा० द्वारिका प्रसाद, कामायनी काव्य मे संस्कृति और दर्शन, पृ० ४२५।

का त्रिक् या प्रत्यभिज्ञादशन है जो पूणरूपेण अद्व तवादी है। इन सब की पृष्ठ भूमि म मौलिक एकता व्याप्त है।

प्रत्यभिज्ञादशन के अनुसार एक ही अद्वय परमेश्वर परमतत्व है जो शिव तथा शक्ति का, कामेश्वर–कामेश्वरी का सामरस्य है। चत यस्वरूप आत्मा जगत् के सभी पदार्थों म अनुस्यूत है। परमशिव चत य आ मा का ही अ य नाम है। परमेश्वर विश्वात्मक रूप से प्रत्यक वस्तु म व्याप्त है कि तु विश्वोत्तीर्ण रूप मे सब पदार्थों का अतिक्रमण भी करता है। परमेश्वर के य दोनो रूप अ यो या श्रित हैं। अतएव इनके पार्थक्य का अनुमान करना उचित नही है। परमेश्वर मे सृष्टि और सृष्टि म परमेश्वर है। उनमे कारण काय सम्ब ध है। कारण रूप म भी परमेश्वर और काय–जगत् रूप म भी परमश्वर ही है। यही परमेश्व रता है।

परमश्वर क अभेद सम्ब ध को अनक प्रकार से प्रतिपादित किया गया है। अभेदाभिव्यक्ति का विश्लेषण करते हुए कहा गया है कि जस नाली द्वारा तालाब और खेत के जल का एकीभाव होता है उसी प्रकार विषयावच्छिन्न चत य और अ त करणावच्छिन्न चत य का वृत्ति द्वारा एकीभाव होता है। इस अभेदाभिव्यक्ति म उपाधि के रहने पर बिम्ब और प्रतिबिम्ब म भेद के अस्तित्व को माना गया है। बिम्बोपेत ब्रह्म एव बिम्बोपलक्षित जीव चत य है, वृत्ति के होने पर विषय' तथा विषयी' (चत य) का अभेद ही अभेदाभिव्यक्ति है। विषय का अधिष्ठानभूत–बिम्बस्वरूप–ब्रह्मचत य साक्षात् आध्यात्मिक सम्ब ध होने पर विषय का प्रकाशक होता है। अत बिम्बत्वविशिष्ट–चत य का बिम्ब रूप से प्रतिबिम्बत्वविशिष्ट–चत य रूप जीव क साथ, भेद होन पर भी बिम्ब त्व और प्रतिबिम्बरूप एकीभाव है[1]। इस प्रकार इस दशन के अनुसार जीव और ब्रह्म का बिम्ब प्रतिबिम्बभाव से नित्य सम्ब ध माना गया है।

वीरशव मत मे भी परमशिव की सत्ता नित्य, सवस्वतत्र, सृष्टि स्थिति लय मे पर, अवर्णनीय अनिवचनीय चत य रूप म स्वीकार की गयी है। वे अखिल जगत् के कर्ता, भर्ता, हर्ता पच ब्रह्मरूप हैं। उनकी अलौकिक व्यापकता का विश्लेषण करत समय शक्ति के महत्त्वपूर्ण स्थान के कारण, वीरशव मत शक्ति विशिष्टाद्व तवादी कहलाता है। इस मत की मूल धारणा के अनुसार ब्रह्म अपनी इच्छा म ईश्वर और व्यक्तिगत आत्मा म विभक्त होता है। यहा ब्रह्म के छ विभिन्न स्वरूप मान गए हैं—पूर्ण ब्रह्म पराशक्ति से निर्माण करन वाला स्वरूप, वस्तु जगत् स भिन्न स्वरूप मौलिक स्वरूप ज्ञान स्वरूप और छठा आत्मप्रबोधक तत्व प्रदान करन वाला स्वरूप। यह विश्व शिव की इच्छा

शक्ति के उद्वेलित होने पर समुद्र में लहर और बुदबुदों के समान अभिव्यक्त होता है। जीव शिव का ही अंश है। यहां जीव और ब्रह्म में द्वैताद्वैतवादी सम्बन्ध स्वीकार किया गया है।

शवसिद्धान्त मत में जीव और परशिव में अद्वैत की कल्पना का आधार भिन्न है। *इनके अनुसार जीव अनन्त हैं और शिव से भिन्न है, प्रत्येक का अपना* अलग अलग अस्तित्व है। सूर्य के उदय होने पर आकाश के तारे दिखलाई नहीं पड़ते। उनका प्रकाश सूर्य के प्रकाश में लीन हो जाता है, किन्तु नक्षत्र अपने अस्तित्व को बनाए रखता है। इस प्रकार इस दर्शन के अनुसार जीव और परमात्मा अपना अलग अलग अस्तित्व बनाए रखते हैं।

शवमत में परमेश्वर समस्त सृष्टि के सृजन का कारण है। सृष्टि के सृजन और उससे सम्बन्धित अन्य शक्तियों का संचालन शिव ही करते हैं। माया प्रकृति का मुख्य स्वरूप है और महेश्वर मायिन् हैं। महेश्वर पूर्ण स्वतन्त्र हैं। 'अ उ म' आदि ब्रह्मा विष्णु और कालरुद्र के प्रतीक वर्ण महेश्वर में विलीन होते हैं। इन तीनों का मिश्रित रूप ही महेश्वर है। शिव के अतिरिक्त ब्रह्मत्व का अधिकारी और कोई नहीं है। श्वेताश्वतर उपनिषद में भी यही सिद्ध किया गया है। अतः ब्रह्म शब्द शिव का पर्यायवाची है। दार्शनिक दृष्टि से शिव अपरिवर्तनशील चेतन है, शक्ति उनका परिवर्तनशील रूप है। वही बुद्धि व वस्तु रूप में दिखलाई पड़ती है। इस प्रकार परिवर्तनशीलता में अपरिवर्तनशीलता मानी है। ब्रह्म रूप से शिव परिवर्तनरहित और शक्ति के सम्बन्ध के कारण परिवर्तनशील हैं।

शवमत की इन विशिष्टताओं का प्रभाव अन्य दर्शनों तथा मध्यकालीन हिन्दी कवियों पर स्पष्टतः देखा जा सकता है। इनका सत्कार्यवाद, बिम्ब–प्रतिबिम्बवाद, अंशांशीभाव, आभासवाद और समरसता का सिद्धान्त साहित्य की अनुपम निधि हैं। माया, आनन्दवाद, महाचिति और उसका लीलानिकेतन आदि से सबंधित मान्यताएं ग्रन्थों में भी स्वीकृत हो गई हैं जिनको हम वैष्णव कवियों की कृतियों में प्रतिरूपित देख सकते हैं।

(ख) योग दर्शन

योग शब्द युज् धातु में घञ् के योग से बना है जिसका अर्थ है 'एकता' 'सम्बन्ध' की प्राप्ति। विद्वानों ने 'योग' को अनेक अर्थों में प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है। किसी ने आत्मा–परमात्मा की एकता की अवस्था को योग कहा है, किसी ने सत्य में मन के विलय

योग

को योग बतलाया है।[१] इस प्रकार योग एक दशा मे आध्यात्मिक और दूसरी म मानसिक स्थिति है। वस्तुत ये दोना दशाए भी एक ही के दो पहलू हैं। समाधि दशा इन दोना का समावेश कर लेती है।

योग का लक्ष्य

योग शब्द के अनेक अथ और रूप हैं, पर सवसम्मत अथ चतय के विविध स्तरा का खुलना ही है। इसका लक्ष्य, आत्मा की विज्ञानमय स्थिति पर पडे हुए आवरण को हटाना, चित्त को आधिकाधिक चिन्मय बनाना और विश्व जीवन के जगमग प्राण स्वरूप को अपने म अनुभव करना है। अत इसका लक्ष्य मनोनिग्रह है इसके द्वारा योगी आन्तर और बाह्य प्रकृति पर जय प्राप्त कर, सत्य (आत्मा) के साक्षात्कार की चेष्टा करता है। आत्म दशन द्वारा ही योगी आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक दुखो मे निवृत्त हो मोक्ष प्राप्त करता है।[२] इस प्रकार योग का लक्ष्य विजातीय स्वजातीय एव स्वागत भेद से रहित, जीव और ब्रह्म का एकत्व है।

योगी देह, मन, प्राण को शुद्ध और शान्त कर, मूलाधार से कुण्डलिनी को जाग्रत कर चक्रो की शक्ति से विभूषित होकर, तन्मयत्व प्राप्त कर, ज्योतिमय देह से सहस्रार स्थित सदाशिव के साथ आनन्द समाधि म विभोर रहता है।[३] कहने की आवश्यकता नही कि योग अनिवायत चित्तवृत्ति के निरोध मे सम्बधित है।

योग का इतिहास

योग विद्या का अनादि काल से प्रचार है। इसके प्रथम प्रवतक कौन थे निश्चय रूप से नही कहा जा सकता परन्तु फिर भी 'आदि नाथ शिव इसके प्रथम प्रवतक और आचाय माने गये हैं। इसका प्रतिपादन सहिता आरण्यक और उपनिषदो मे मिलता है। छान्दोग्य,[४] वृहदारण्यक,[५] कठ,[६] मैत्री, श्वेताश्वतर[७] आदि उपनिषदा मे ता

१ पातजलि योगसूत्र—'योगश्चित्तवृत्तिनिरोध' पृ० १२६।

२ अशेषतापतप्ताना समाश्रयमठो हठ ॥
अशेषयोगयुक्तानामाधार कमठो हठ ॥ —हठयोग प्रदीपिका १।१०।

३ "सकलवृत्तिनिरोध आत्मन स्वरूपावस्थानात „ „ (टीका) ४।१०७।

४ छान्दोग्य उपनिषद ८।६।

५ वृहदारण्य उपनिषद ४।३।२०।

६ कठ उपनिषद १।१।१२, २।३।१०–११।

७ श्वेताश्वतर उपनिषद् २।७–१५।

योग की विशिष्ट प्रणाली का सहज ही उपलब्ध होता है। इन उपनिषदों में योग के समस्त आसन, प्राणायाम, ध्यान, धारणा व समाधि का पूर्ण विवरण है। पातंजलि ने अपने योग दर्शन में योग के सिद्धान्त एवं क्रिया का विशिष्ट वर्णन करके योग की महत्ता को प्रतिपादित किया। यद्यपि इसके विकास का कोई क्रमिक इतिहास नहीं पाया जाता फिर भी यह कहा जा सकता है कि योग के सिद्धान्त और यौगिक क्रिया का प्रचलन निरन्तर चलता आया है। मार्कण्डेय मुनि द्वारा उपदिष्ट प्राचीन हठयोग में आगमयोग की मान्यता मिली है। इसके अतिरिक्त हठयोग की दूसरी परम्परा जिसे नवीन परम्परा कहा गया है को नाथों ने पुनर्जीवित किया। कहने का तात्पर्य यह है कि आदिनाथ शिव द्वारा प्रतिष्ठित योग साधना का निरन्तर प्रचार व प्रसार होता रहा। प्रायः सभी धर्मों ने इसे अपनाया। शैवमत का तो यह प्रधान अंग ही बना व आत्मस्थ शिव से ऐक्य स्थापित करने में यह साधन रहा है।

योग के प्रकार

पिण्डस्थ परमात्मा में पिण्डस्थ आत्मा का लय करने के सब प्रयासों को योग कहा गया है।[1] श्रीमद्भागवत गीता में भी लगभग अठारह प्रकार के योग की चर्चा की गई है।[2] कहने की आवश्यकता नहीं कि योग की अनेक शाखा-प्रशाखाएं मूल चार शाखाओं—मंत्रयोग, लययोग, हठयोग तथा राजयोग से ही विकसित हुई हैं।[3] इनकी मान्यता योग सम्प्रदाय में आज तक भी बनी हुई है। हां यह बात अवश्य है कि इतिहास के उत्तर मध्यकाल में जितनी लोकप्रियता हठयोग ने पाई उतनी अन्य किसी शाखा को नहीं मिली। यों तो प्रत्येक शाखा का अपना महत्त्व रहा। मंत्र योग भी अपने महत्त्व को बनाये हुए है और भारतीय धर्म-साधना में स्थान विशेष ग्रहण किये हुए है।

मंत्रयोग

मंत्र योग का मुख्य तात्पर्य है मंत्र के आश्रय से जीवात्मा और परमात्मा का मिलन। शब्दात्मक मंत्र के द्वारा जीव क्रमशः ऊपर गमन करता हुआ शब्द से अतीत परमानन्द धाम तक पहुंचता है। योग सूत्र में तस्य वाचकः प्रणवः[4] के द्वारा मंत्र योग की ओर संकेत किया गया है। तंत्रमत में मंत्र का अनुपम महत्त्व है। वैष्णव दर्शन में भी मंत्र का महत्त्व स्वीकार किया गया। जप-साधना मंत्र योग की प्रमुख विशेषता है, इसके द्वारा चित्तवृत्ति का निरोध होता है। इस दशा में

---

१ हठयोग प्रदीपिका ४।६६।

२ गीता १८।५२।

३ योगोहि बहुधा ब्रह्मन् भिद्यते व्यवहारतः।
मंत्रयोगो लयश्चैव हठोऽसौ राजयोगकः।—योग उपनिषद, पृ० ३६७।

४ पातंजल योग दर्शन १।२७।

पहुँचने पर अव्यक्त भाव अपने आप उदित होता है यही शब्द की तुरीय अवस्था है।

शब्द समग्र जगत् के केन्द्र में नित्य विद्यमान है यही प्रणव स्वरूप है। प्रत्येक प्राणी 'हंस मंत्र' का नित्य अनुभव करता है। हंस शब्द का विश्लेषण करते हुए कहा गया है कि श्वास के बाहर जाते समय हकार की ध्वनि होती है और अन्दर जाते समय सकार की ध्वनि होती है। ये दोनों ध्वनियाँ मिल कर हंसमंत्र हो जाती है इस मंत्र का जाप प्रत्येक प्राणधारी मनुष्य हर समय करता रहता है।[1] गुरु की कृपा से प्राण की विपरीताभावापन्न अवस्था में यही सोऽहं मंत्र में परिणत हो जाता है। यही प्राण और अपान की ग्रंथि है, इसी को 'अजपा' भी कहा गया है। हंस मंत्र के समान ही शिव के पंचाक्षर ॐ नमः शिवाय मंत्र के जप का भी अनन्य महत्त्व माना गया है। तन्त्रों के उपदिष्ट देवता में ध्यान करते हुए साधक अपनी वृत्ति को तदाकार कर देता है, उसकी वृत्ति मंत्र में पूर्णतया लीन हो जाती है इसी को मंत्रप्रधान लय योग भी कहा है।

लय योग — ध्येय में मन का लय करना ही लय योग है।[2] इसमें पवन क्षय का प्रामुख्य दिया जाता है। पवन के निरोध से मन का निरोध और उससे प्राण का निरोध होता है। मन और पवन में से एक के बन्धन से दोनों का बन्धन होता है।[3]

जहाँ मन को विलीन किया जाता है वहीं पवन भी लीन हो जाता है और जहाँ पवन लीन होता है वहीं मन भी विलीन हो जाता है।[4] मन का

---

१ हकारेण बहिर्याति सकारेण विशेत्पुनः
हंसहंसेति मन्त्रो यं सर्वजीवश्च जप्यते।

—योग शिखोपनिषद् श्लोक १३०।

२ "लयो विषय विस्मृति"।

३ पवनो बध्यते येन मनस्तेनैव बध्येत।
मनश्च बध्यते येन पवनस्तेन बध्यते॥

—हठयोग प्रदीपिका ४।२१।

४ मनो यत्र विलीयेत पवनस्तत्र लीयते।
पवनो लीयते यत्र मनस्तत्र विलीयते॥

—वही ४।२३।

यह लय नाद श्रवण या ज्योति के दर्शन से सम्भव है।[१] योगी शाम्भवी मुद्रा को साधते हुए, ध्यान को अन्तलक्ष्य पर स्थिर रखता है। इसका आधार सुषुम्ना नाडी है। इसी में ध्यान को केन्द्रीभूत कर साधक अनेक ध्वनियाँ सुनता है ध्वनि से एकीभूत मन अनहद ध्वनि में लय होता है यही नाद लय है। इसे ही कुण्डलिनी लययोग भी कहा गया है। इसमें शरीरस्थ सप्तम चक्र में स्थित 'सहस्रदल कमल' में कुलकुण्डलिनी शक्ति को ले जाकर, सदा शिव (ब्रह्म) के साथ मिला दिया जाता है। अतः शिव में शक्ति का लय करना ही लय योग है।

लययोग में साधक चलते समय बैठते समय खाते समय ईश्वर का ध्यान करता है अतः इसमें ध्यान का विशेष महत्व है। जिसका सम्बन्ध मन और चित्त से है। अतएव मन का लय ही लय योग है। मन का लय होने पर उन्मनी अवस्था प्राप्त होती है। इसकी सिद्धि अष्टांग योग साधना पर निर्भर है।

हठयोग

हठयोग का मूल प्रवर्तक कौन था यह निश्चित रूप से नहीं बताया जा सकता। लोक प्रसिद्धि के अनुसार हठयोग के प्रथम आचार्य शिव बतलाये जाते हैं और मानवी आचार्यों में मार्कण्डेय मुनि को सबसे प्रथम आचार्य माना गया है। मध्य युग में मत्स्येन्द्रनाथ, गोरखनाथ आदि संतों ने मार्कण्डेय ऋषि द्वारा प्रवर्तित हठयोग की ही पुनः प्रतिष्ठा की।

भेद

हठयोग विद्या की नींव नाथों ने डाली इसका निर्णय करना कठिन है क्योंकि एक अन्य परम्परा के अनुसार हठयोगियों के दो सम्प्रदाय हैं—एक प्राचीन दूसरा आधुनिक जिनकी नींव क्रमशः मार्कण्डेय और नाथों ने डाली। एक में अष्टांग की मान्यता है दूसरे में षडंग की।

स्वरोदय में हठयोग के दो भेद बतलाए गए हैं। प्रथम में आसन प्राणायाम तथा धौति आदि षटकर्म का विधान है इनसे नाडियाँ शुद्ध हो जाती हैं इनमें प्रवाहित वायु मन को निश्छल करता है फिर परमानन्द की प्राप्ति होती है। दूसरे भेद में नासिका के अग्रभाग में दृष्टि निबद्ध करके, सूर्य के प्रकाश का स्मरण तथा श्वेत रक्त पीत एवं कृष्ण रंगों के ध्यान का विधान है। इस विधि से साधक हठात् ज्योतिर्मय होकर शिवरूप हो जाता है।[२] हठयोग ने

१ अन्तःस्थं भ्रामरीनादं श्रुत्वा तत्र मनो नयेत।
समाधिर्जायते तत्र आनन्दः सोऽहमित्यतः ॥ —घेरण्ड संहिता, पृ० ६४।

२ हठाज्ज्योतिर्मयो भूत्वा ह्यन्तरेण शिवो भवेत
अतो य हठयोग स्यात सिद्धिदः सिद्धसेवित । प्राणतोषिणी, पृ० २३५।

यमनियम को छोड दिया है इसका तात्पर्य यह नही है कि यम नियम का हठ योग म कोइ स्थान नही है वरन् प्राणायाम आदि म यम नियम का समावेश स्वत ही होता है।[1] इसीलिए हठ योग के ग्रन्थो मे अष्टाग योग का भी उल्लेख आता है।[2]

हठयोगी हठ शब्द का अर्थ करते हुए कहते है कि ह वर्ण सूय का, और ठ वर्ण चन्द्र का वाचक है। इसी आधार पर हठयोग उस योग को कहते हैं जिसमे 'सूय और 'चन्द्र को मिलाना ही साधना का लक्ष्य रहता है। अत हठयोग का प्रमुख विषय चन्द्र सूय का साधना है। हठयोग म स्थूल शरीर सूक्ष्म शरीर का परिणाम है। इसी कारण सूक्ष्म शरीर पर स्थूल शरीर का प्रभाव किसी न किसी रूप म पडा करता है। इसीलिए इसम अनेक स्थूल साधना स सूक्ष्म शरीर पर प्रभाव डाल कर चित्तवृत्ति का निरोध किया जाता है। जिसका प्रथम सोपान देह शुद्धि है। चन्द्र' और 'सूय 'प्राण और अपान के भी वाचक माने गए हैं।[3] इन दोनो का योग अर्थात् प्राणायाम स वायु का निरोध करना ही हठयोग है। दूसरी व्याख्या के अनुसार सूय 'इडा' नाडी को कहते हैं और चन्द्र' पिंगला को। अत इन दोनो का अवरोध कर सुषुम्ना माग स प्राण वायु का सचारित करना हठयोग कहा गया है।

देह की शुद्धि एव दृढता

देह शुद्धि हठयोग का अव्यवहित उद्देश्य है। योगियो की पारिभाषिक शब्दावली म वह षटशुद्धि के नाम से विख्यात है। जल मे कच्चे घडे क समान यह शरीर गलायमान है अग्नि मे पका लन पर घडा कभी नहीं गलता। इसी भाति शरीर को योग रूपी अग्नि स भलीभाति पकान पर योग माग म सफलता मिलती है। अत योगाभ्यास करन वाले को देह शुद्धि, देह की दृढता आदि के लिए हठशास्त्रोक्त धोति, वस्ति नेति, त्राटक, नौलि एव कपाल भाति आदि

---

१ सिद्ध सिद्धान्त सग्रह २।४६।

२ आसन प्राणसरोध प्रत्याहारश्च धारणा
ध्यान समाधिरेतानि योगागानि वदन्ति षट।
—गोरक्ष पद्धति पृ० ८।

३ एतेन हठशब्दवाच्ययो सूयचन्द्राख्ययो प्राणापानयो
रैक्यलक्षण प्राणायामो हठयोग इति हठयोगस्य लक्षण सिद्धम।
—हठयोग प्रदीपिका, १।२ (टीका)।

ब्रह्मपद को प्राप्त करने के लिए नादानुसधान पचाक्षर मत्र, आत्म-निग्रह और अष्टाग योग की अनिवार्य आवश्यकता है। राज याग के अभ्यास के लिए हठयाग अनिवार्य है। इसके द्वारा मन शुद्धि हाने पर मत्रयाग द्वारा लयावस्था को प्राप्त करने के लिए नाम सहित नादानुसधान श्रेष्ठ माना गया है। मन और प्राण का लय करने म नाद के तुल्य कोई सुगम साधन नही है। जीव सृष्टि से उत्पन्न नाद ही ओकार है। उसी को शब्द ब्रह्म कहा गया है। ओकार अर्थात् प्रणव ईश्वर वाचक है। प्रणव स्वरूप मत्र सब विद्याओ का बीज है। इसी प्रणव मे पचाक्षर मत्र उत्पन्न हुआ। इस मत्र साधना का शवयोग म अनन्य महत्व है।

शवयोग मे अन्य योगों का विनिवश

इसके बाद ही लयावस्था प्राप्त होती है। लयावस्था मे ही राजयाग अथवा शवयोग का पूर्णानन्द प्राप्त किया जा सकता है अत साराशत यह कहा जा सकता है कि हठयाग, मत्रयोग, लययाग आदि के अभाव म राजयाग की सिद्धि असम्भव मानी गयी है। इस प्रकार शव याग म हठयाग मत्रयाग और लययाग के द्वारा राजयोग की प्राप्ति ही चरम लक्ष्य है।

शवयोग की अनेक भूमिकाए

शव-योग की भूमिका म साधक एकमात्र शारीरिक साधना आसन मुद्रा प्राणायाम आदि के द्वारा हठात् चित्तवृति का नियत्रण करता है। इस को याग का कायिक पक्ष भी कहा जा सकता है यही योग की प्रथम भूमि है इसी के द्वारा इन्द्रिय निग्रह और प्राणसाधना का क्षेत्र पुष्ट होने पर योग माग मे अग्रसर हुआ जा सकता है। दूसरी भूमिका शरीर की सतह से उठकर भावनाओ के क्षेत्र म पहुचती है और आसन प्राणायाम के माध्यम के बिना भी साधक आनन्द और मानसिक शान्ति की अनुभूति करता है। इस अनुभूति-याग से भी ऊची तीसरी भूमिका है जिसे ज्ञान-याग कहा गया है। वहाँ आसीन होकर अपनी विवेक बुद्धि के साथ अनुभूति का समन्वय करता है और आत्मतत्व तथा बाह्य जगत् के रहस्य म अवगाहन करता है। इसी को आध्यात्मिक क्षेत्र भी कहा गया है। 'ज्ञान याग कम याग का विरोधी नही होता। कमयोग से आत्मशुद्ध हो साधक विश्व की समस्या को अपनी समस्या समझने लगता है वसुधवकुटुम्बकम् की भावना से ही प्रपच म शुद्धतत्व की (शिवात्मक) भावना हाती है। मैं विश्वात्मा शिव ही हू इस प्रकार चिंतन करने लगता है। ग्राह्य ग्राहक जीव जीवात्मा मे योगी समान आत्मभाव से रहता है अतत यह बहिरुन्मेषरूप ईश्वर तथा अन्तर्निमेषरूप सदाशिव का समानाधिकरण्य अर्थात् यह सब मैं ही हू इस प्रकार की सद्विद्या प्राप्त करता है। आत्मा अजर

अमर ब्रह्म का ही अनुभूति है। भाषा सम्बन्धी यह भाव उसका 'स्वात्मानन्द प्रकाश का ज्ञान ही सत्य शिव' स्थिति का प्रमाण प्राप्त कराता है। उक्त अनुभूति योग एवं ज्ञान योग की पृष्ठभूमि हठयोग के अभ्यास से ही सजाई जाती है।

कायिक भूमिका

साधना के प्रारम्भ में देह शुद्धि की आवश्यकता होती है। इसी के लिए शम दम आदि सब प्रकार के साधना की आवश्यकता होती है। बाहर के शौचाचार के साथ मन शुद्धि का अन्योन्य सम्बन्ध है। अन्तःकरण मलरहित होने पर सर्वांग स्थिर हो जाता है, और सिद्धासन पर शरीर को यथावत् अचल करने पर अन्तःकरण भी स्थिर होने लगता है। इसके लिए योग के यम नियम, आसन प्राणायाम प्रत्याहार अंगों की आवश्यकता होती है।[1]

यम

यम का अर्थ है उपरति-अर्थात् काम इत्यादि से निवृत्ति। ये काया को योग साधना के अनुकूल बनाते हैं। योग सूत्र में यम पाँच बतलाये गए हैं।[2] हठयोग प्रदीपिका में इनकी संख्या दस दी हुई है।[3] योग सूत्र के अनुसार अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह आदि पाँच यम हैं। हठयोग प्रदीपिका में क्रमशः इनके नाम अहिंसा सत्य अस्तेय, ब्रह्मचर्य क्षमा, धृति दया आर्जव मिताहार और शौच हैं। दर्शनोपनिषद् में भी इन दस यमों का उल्लेख है।[4]

नियम

यम के समान ही योग साधना में 'नियम' का महत्व है। जन्म के हेतुभूत काम्य कर्म से जीव को निवृत्त कराकर निष्काम कर्मों में उसकी प्रवृत्ति कराने वाले कर्मों को नियम कहते हैं। हठयोगप्रदीपिका में तप, सन्तोष आस्तिक्य दान सिद्धान्त-वाक्य श्रवण ईश्वर का पूजन लज्जा बुद्धि तप और होम आदि दस नियम

---

१ हठस्य प्रथमांगत्वादासनं पूर्वमुच्यते
कुर्यात्तदासनं स्थैर्यमारोग्यं चांगलाघवम्।

—हठयोग प्रदीपिका १।१७।

२ योग दर्शन २।२६।

३ अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यं क्षमा धृति
दयार्जवं मिताहारः शौचं चैव यमा दश। —हठयोग प्रदीपिका १।१६।१।

४ अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्म दया आर्जवम्
क्षमा धृति मिताहार शौचं चेति यमा दश।

—दर्शनोपनिषद् १।६।

माने गए है।[1] दशनापनिषद् मे भी इन्ही दस नियमो को मान्यता दी गयी है।[2] योग सूत्रो म शौच, सन्तोष तपस, स्वाध्याय ईश्वर प्रणिधान आदि पाच नियमो को मान्यता मिली है।[3] ईश्वर प्रणिधान प्रमुख नियम है। इसी के द्वारा साधक अभिप्सित मनोरथ सिद्ध करने की अपूर्व शक्ति प्राप्त करता है। यम नियम के द्वारा साधक एकाग्र होकर, इन्द्रियो को आधीन कर आत्मा के दशन की योग्यता प्राप्त कर लता है।

आसन — साधक के सुख पूवक स्थिरता स बठने की विधि का नाम ही आसन है। हठयोग का प्रथम अग होने से आसन को प्रथम माना है, यह देह और मन की चचलता रूप रजोगुण धम का नाशक है योगी इसस चित्त विक्षेपक रोग का नाश करता है।[4] शिव सहिता म प्रमुखत चौरासी आसन माने गए हैं।[5] गोरक्ष पद्धति म भी आसनो की इतनी ही सख्या मानी है,[6] किन्तु प्रमुख आसन सिद्धासन, पद्मासन, उग्रासन और स्वास्तिकासन को ही श्रेष्ठ माना गया है। इन चार आसनो मे वायु धारण करके बठने म कष्ट नहीं होता, इनसे प्रधान नाडी शीघ्र वश मे हो जाती है। इन आसनो के द्वारा ही, प्राण और अपान वायु के विधान से, जीवन मुक्त होने का भी विधान है।[7] घेरण्डसहिता म भी इनको ही मान्यता प्राप्त

---

१ तप सतोष आस्तिक्य दानमीश्वरपूजनम,
सिद्धान्त वाक्य श्रवण हीमती च तपो हुतम ।
—हठयोग प्रदीपिका १।१६।२।

२ दशनोपनिषद २।१।

३ शौच सन्तोषतप स्वाध्यायेश्वर प्रणिधानानि नियमा ।
—योग सूत्र २।३२।

४ 'आसनेन रजो हति'
—हठयोग प्रदीपिका १।१७ (टीका)

५ चतुरशीत्यासनानि सन्ति नानाविधानि च
सिद्धासन तत पद्मासन चोग्र च स्वास्तिकम।
—शिव सहिता पृ० ८१।

६ गोरक्ष पद्धति पृ० ६।

७ पद्मासने स्थितो योगी प्राणापानविधानत
पूरयेत स विमुक्त स्यात्सत्य सत्य वदाम्यहम ॥
—शिवसहिता, पृ० १०१।

हुई है।[1] योग का प्रतिपादन करने वाले उत्तर ग्रन्थों में इन आसनों के स्वरूप का विशद चित्रण हुआ है। कमलासन के स्वरूप का वर्णन करते हुए कहा गया है कि अपानवायु को उठाकर प्राण का शनैः शनैः यथाशक्ति पूरक करके धारण करे बाद में वायु को बाहर निकाल दे।[2] प्राण और अपान की एकता के द्वारा मनुष्य शक्ति के प्रभाव से सर्वोत्तम ज्ञान प्राप्त करता है जिससे आत्मा का साक्षात्कार होता है। इसी प्रकार अन्य आसनों का भी शिव संहिता में उल्लेख मिलता है। यम नियम और आसन द्वारा ही प्राणायाम द्वारा चित्तवृत्ति निरोध सम्भव है।

प्राणायाम

शास्त्रोक्त विधि से अपने स्वाभाविक श्वास प्रश्वास को रोकना प्राणायाम कहलाता है। प्राण स्पन्दन और वासना ये दो चित्त-वृक्ष के बीज हैं। प्राण अपान समान आदि वायुओं से मन को रोकने का अभ्यास करना[3] अर्थात् प्राण का आयाम प्राणायाम कहलाता है। प्राणायाम सब दोषों का नाशक है यह चित्त की एकाग्रता करने में समर्थ है मल शुद्धि ही इसका हेतु है।[4] जिस प्रकार अग्नि संयोग से धातुओं के मल नष्ट हो जाते हैं वैसे ही इन्द्रियों के दोष भी प्राण को रोकने से नष्ट हो जाते हैं।

प्राण

प्राण श्वास नहीं है न वह आत्म तत्त्व है।[5] किन्तु प्राण वह जडतत्व है जिससे श्वास प्रश्वास आदि समस्त क्रियाएँ जीवित शरीर में होती है। प्राण जीवन शक्ति है, जो समष्टि रूप से सारे ब्रह्माण्ड को चला रही है और व्यष्टि रूप से व्यक्ति के पिंड

१　सिद्धं पद्मं तथा भद्रं मुक्तं वज्रं च स्वास्तिकम्।
　　　　　　　　　　　　　　　—घेरण्डसंहिता।

२　(क) शिव संहिता ३।१०५।
　　(ख) पद्मासने स्थितो योगी नाडीद्वारेण पूरितम्
　　　　मारुतं धारयेद्यस्तु स मुक्तो नात्र संशयः।
　　　　　　　　　　　　　　　—हठयोग प्रदीपिका १।४६।

३　अपानः कर्षति प्राणं प्राणोऽपानं च कर्षति
　　ऊर्ध्वाध संस्थितावेतौ संयोजयति योगवित्।
　　　　　　　　　　　　　　　—गोरक्षपद्धति पृ० २२

४　प्राणायामं ततः कुर्यान्नित्यं सात्त्विकया धिया
　　यथा सुषुम्नानाडीस्था मलाः शुद्धिं प्रयान्ति च। —हठयोग प्रदीपिका २।६।

५　पातंजल योगप्रदीप, पृ० २११।

शरीर का। इसी से व्यक्ति को प्राणी भी कहा जाता है। वृत्ति के कार्य भेद से वायु दस माने गये हैं, जो दसों नाडियों के मध्य में संचरित होकर शरीर में शक्ति का संचार करती हैं। इनके नाम प्राण, अपान समान उदान व्यान, नाग कूर्म, कृकर, देवदत्त और धनंजय हैं। इनमें प्रथम पांच को हठयोग की दृष्टि से विशेष महत्व दिया जाता है। इनमें प्राण और अपान तो हठयोगिक प्राणायाम के प्रधान सिद्धान्त हैं।

प्राणायाम के तीन अंग बतलाये गए हैं—पूरक कुम्भक और रेचक।

प्राणायाम के अंग

आकाशस्थ अपान वायु को नासिका द्वारा आकर्षित करके उदर में धारण करना पूरक है।[1] भरे हुए वायु को यथा-शक्ति रोकने को कुम्भक कहते हैं। इसमें श्वास को बाहर अथवा अन्दर रोक दिया जाता है। इसमें श्वास प्रश्वास दोनों की ही गति अवरुद्ध हो जाती है।[2] श्वास को नासिका छिद्र द्वारा बाहर निकालने की क्रिया को रेचक कहते हैं।[3] पूरक में प्राण वायु को गुदा स्थान तक लेजाकर अपान वायु से मिलाया जाता है। कुम्भक में प्राण और अपान दोनों की गति को 'समान' के स्थान नाभि में रोक दिया जाता है और रेचक में 'अपान' को प्राण द्वारा ऊपर की ओर खींचा जाता है। इस प्राणायाम विधि से योगी अपना नाडी शोधन करता है जो योग के लिए अनिवार्य है।[4]

षट्कर्म

नाडी शोधन देह की मलरहित अवस्था तथा शारीरिक परिपुष्टता आदि के लिए षट्कर्म आवश्यक हैं। यह घट शोधन का प्रारम्भिक उपाय माना गया है।[5] हठयोगप्रदीपिका में धोति वस्ति नेति नोली कपाल भाति और त्राटक आदि छः कर्म

---

१ बाह्यवायोः प्रयत्नविशेषादुपादानं पूरकः।

—हठयोगप्रदीपिका २।७ (की टीका)।

२ जालंधरादिबंधपूर्वक प्राणनिरोधः कुंभकः। —वही २।७ (की टीका)।

३ कुंभितस्य वायोः प्रयत्नविशेषाद्गमनं रेचकः

—वही २।७ (टीका)।

४ हठयोगप्रदीपिका, पृ० ४६।

५ एवंविधां नाडीशुद्धिं कृत्वा नाडीं विशोधयेत्।
दृढो भूत्वासनं कृत्वा प्राणायामं समाचरेत्॥

—घेरण्ड संहिता, पृ० ७१।

खेचरी मुद्रा के समान ही जालधर मुद्रा भी प्रसिद्ध है इसमे भी साधक चद्रमण्डल मे श्रवित अमृत का पान करता है ।[1] विपरीतकरणी मुद्रा का भी इसी प्रकार हठयोग म महत्त्वपूर्ण स्थान है । यहाँ सूय का ऊध्व मुखी और चन्द्र को अधोमुखी करन की प्रक्रिया को विपरीतकरणी मुद्रा कहा गया है ।[2] घेरण्ड सहिता म कहा है कि इस मुद्रा के अभ्यास से साधक अजय रहता है ।[3] शाम्भवी मुद्रा का भी योग साधन म महत्त्व पूर्ण स्थान है । इसके स्वरूप का विस्तृत वणन घेरण्डसहिता म दिया हुआ है । तन्त्रो मे इस गुप्त माना गया है । इसक अनुसार मन को एक रस कर दोनो भौहो क बीच दृष्टि को स्थिर कर परमात्मा का ध्यान किया जाता है[4] बज्रोली सहजोली और अमरोली आदि मुद्राओ का सम्बन्ध बिन्दु धारणा स है । इन मुद्राओ का सम्बन्ध नाडीशोधन स है । वायु का सचार नाडियो द्वारा होता है । योग के कायिक पक्ष म इन नाडियो का ज्ञान उपादय है ।

नाडी विचार

योग म नाडी-साधन का बडा महत्त्व है । शरीर म अनक नाडियो की गुत्थियो से नाडी चक्र बनता है । गोरक्ष शतक[5] और हठयोग प्रदीपिका[6] क अनुसार बहत्तर हजार तथा शिव

---

१ 'कठमकोचन कृत्वा चिबुक हृदये न्यसेत ।
जालधरकृते बध षोडशाधारबधनम ।
जालधर महामुद्रामृत्योश्च क्षयकारिणी ।'

घेरण्ड सहिता, पृ० ३४ ।

२ ऊर्ध्व नाभेरधस्तालोध भानुरध शशी ।
करणी विपरीताख्या गुरुवाक्येन लभ्यते ।।

—हठयोगप्रदीपिका, पृ० ३।७९ ।

३ नाभिमूले वसेत्सूर्यस्तालुमूले च चन्द्रमा ।
अमृत ग्रसते सूर्यस्ततो मत्युवशो नर ।
मुद्रेय सर्वतन्त्रेषु जरा च मृत्यु नाशयेत ।।

—घेरण्ड सहिता, पृ० ३८ ।

४ नेत्राजन समालोक्य आत्माराम निरीक्षयेत ।
सा भवेच्छाम्भवी मुद्रा सर्वतन्त्रेषु गोपिता । —वही, पृ० ५६ ।

५ तेषु न डीसहस्रेषु द्विसप्ततिरुदा हृता । —गोरक्षशतक ।

६ द्वासप्ततिसहस्राणि नाडीद्वाराणि पजरे ।
सुषुम्ना शाम्भवी शक्ति शषास्त्वेव निरर्थक ।

—हठयोगप्रदीपिका पृ० ४।१८ ।

सहिता [1] के अनुसार इनकी सख्या साढे तीन लाख है। पातजल योग प्रदीपिका मे सुषुम्ना इडा पिंगला, गाधारी, हस्तजह्वा पूषा, यशस्विनी, शूरा कुहु सरस्वती, वारुणी, अलम्बुषा, विश्वोदरी शखिनी चित्रा आदि पन्द्रह नाडियां प्रमुख मानी गयी हैं। योग ग्रन्थो म इडा, पिंगला, सुषुम्ना, गाधारी हस्तजिह्वा, पूषा, यशस्विनी अलम्बुषा कुहु और शखिनी आदि दस नाडियो का महत्त्व दिया गया है।[2] इन नाडियां म इडा पिंगला और सुषुम्ना आदि तीन नाडियो को ही प्रधानता मिली है। कुण्डलिनी शक्ति के उत्थापन मे ये तीनां ही नाडियां बडा सहायक होती हैं। योग ग्रन्थां म इन्हे क्रमश सूय चन्द्र और अग्नि तथा गगा यमुना सरस्वती भी कहा गया है।[3]

सुषुम्ना का ब्रह्मनाडी भी कहा गया है।[4] यही शून्य पदवी ब्रह्मरन्ध्र, महापथ, श्मशान, शाम्भवी, मध्यमाग, शक्तिमाग आदि नामा से भी प्रसिद्ध है।[5] शिव शक्ति का सम्मिलन कराने वाली नाडी भी इन्ही को माना गया है। उक्त तीनों नाडियो म सुषुम्ना प्रमुख है। इसे सवश्रेष्ठ तीथ, तप, ध्यान, और परमगति रूप कहा गया है। इसम वज्रा, चित्रा, ब्रह्मनाडी आदि की कल्पना की गयी है। प्रथम वह्निरूपा दूसरी सूयरूपा और तीसरी चन्द्रस्वरूपा मानी गयी है। चित्रा नाडी का मुखद्वार ब्रह्मद्वार कहलाता है।[6] कुण्डलिनी सुषुम्ना से होकर इसी ब्रह्मद्वार स सहस्रार स्थित शिव की ओर जाती है।[7] इडा पिंगला और सुषुम्ना नाडियो का मूल मूलाधार कहा गया है। कुण्डलिनी शक्ति इसी मूलाधार म निवास करती है। योगी इस कुण्डलिनी का उत्थापन करता हुआ षट्चक्रा का भेदन करता है।

---

१ शिव सहिता, २।१३।

२ प्रधाना प्राणवाहिन्यो भूयस्तासु दश स्मृता ॥

—गोरक्ष पद्धति, पृ० १८।

३ (क) इडापिंगलासुषुम्णा प्राणमार्गे समाश्रिता ।
सतत प्राणवाहिन्य सोमसूर्याग्निदेवता ॥ —वही पृ० २०।

(ख) पातजल योगप्रदीप, पृ० २२७।

४ ब्रह्मनाडी सुषुम्ना'—हठयोगप्रदीपिका ३।६६ (टीका)।

५ हठयोग प्रदीपिका, ३।२-४।

६ षटचक्र निरूपण, १।१-२।

७ 'कुण्डलिन्या तथा योगी मोक्षद्वार विभेदयेत।

—हठयोग प्रदीपिका ३।१०५।

सूय और चन्द्र शक्तियो का निरोध सहज ही मध्यमाग खुलने म सहायक होता है जिसमे मानस क्रियायोग से सूक्ष्म होकर बिन्दु और कुण्डलिनी उत्थापन वायु उसम प्रवेश कर ऊर्ध्वगामी होन है। इसी को कुण्डलिनी जागरण कहा है। कुण्डलिनी जागरण, मध्यम माग का खुलना, वायु और मन की शुद्धि प्रना का उन्य अहकार और अविद्याग्रथि का विनाश आदि एक ही क्रिया क भिन्न अग है। कुण्डलिनी उत्थापन भी एक नाम है। कुण्डलिनी को कुटिलागी भुजगी शक्ति इश्वरी, कुण्डली अरुधती आदि पयायवाचक शब्दा स भी अभिहित किया गया है[1] साधक इसका उत्थापन करता हुआ षटचक्रा का भेदन करता है।

चन्द्रवणन

विविध प्रकार की वायुओ के केन्द्र स्थाना का चक्र कहत हैं। य शक्ति का स्थान माने गए हैं। कुण्डलिनी इन चक्रा का भेदन करती हुइ सहस्रार म पहुचती है। इसकी उत्थापन क्रिया का वणन हठयोग के अनेक ग्रथा के अतिरिक्त त्रिपुर सार-समुच्चय, शारदातिलक तन्त्र गन्धवतन्त्र वामकेश्वर तन्त्र आदि म भी मिलता है। कुण्डलिनी स्वय नाद स्वरूपा ज्योति स्वरूपा तथा शक्ति स्वरूपा मानी गयी है। साधक अपनी भावना क अनुरूप इसकी अनुभूति कर चक्रभदन म समथ होता है। हठयोग के प्रामाणिक ग्रन्था योगसूत्र शिव सहिता घेरण्ड सहिता आदि म षट चक्रो का ही वणन मिलता है। हिन्दू तन्त्र ग्रन्था म ग्यारह चक्रो की कल्पना की गयी है पातजल योग प्रदीप मे इन शक्ति केन्द्रा म सात को प्रमुख माना है।[2] जिनक नाम मूलाधार स्वाधिष्ठान मणिपूरक अनाहत विशुद्ध आज्ञा और सहस्रार हैं। य चक्र पाचा तन्मात्राओ ज्ञानेन्द्रिया कर्मेन्द्रिया पाचा प्राण अन्त करण समस्त वण और स्वर तथा सात लोका के मण्डल हैं। ये नाना प्रकार के प्रकाश तथा विद्युत म युक्त हैं। साधारण अवस्था म य चक्र बिना खिले अधोमुख कमल क समान अविकसित रहत हैं। ऊर्ध्वमुख होकर विकसित होने पर इनकी अलौकिक शक्तिया का विकास होता है। इनम प्रथम पाच क्षिति जल अग्नि, वायु गगन क केन्द्रस्थान मान जात हैं।

मूलाधार

पहला चक्र मूलाधार है। मूल शक्ति अर्थात् कुण्डलिनी शक्ति का आधार होन स चक्र का मूलाधार कहा जाता है। कुण्डलिनी शक्ति यहा पर साढे तीन वलय होकर ब्रह्मद्वार की ओर मुख किये

---

१ कुटिलांगी कुण्डलिनी भुजगी शक्तिरीश्वरी।
कुण्डल्यरुन्धती चैते शब्दाः पर्यायवाचकाः ॥—हठयोग प्रदीपिका, ३।१०४।

२ पातञ्जलयोग प्रदीप पृ० २२०।

विश्राम करती है ।[1] इसके उपर चार दलो का एक कमल है जिसे मूलाधार चक्र कहते हैं । इसके दलो की वृत्तिया परमानन्द सहजानन्द, योगानन्द और वीरानन्द मानी गयी हैं । इन दलो पर स्वर्णिम अक्षरो का प्रकाश होता है, ये वर्ण मत्र रूप होते हैं । इस चक्र के अधिष्ठाता ब्रह्मा माने गए हैं इसी चक्र म त्रिपुर की कल्पना की गयी है यही शक्ति पीठ है । इसमे ही स्वयभू नामक शिवलिंग की प्रतिष्ठा मानी गयी है । यही परब्रह्म द्वार है ।[2] इसी म ऊर्ध्वमुखी कुण्डलिनी अमृत का पान करती है । यही से नाद का जन्म होता है । इसमे कदप नामक वायु विचरण करती रहती है । इसकी स्थिति सुषुम्ना के मूल म मानी बतलायी गयी है ।[3]

स्वाधिष्ठान चक्र — इसके ऊपर नाभि के पास स्वाधिष्ठान चक्र है यह कमल के आकार का है इसके छ दल हैं । इसमे परम लिंग की प्रतिष्ठा के के कारण ही इस स्वाधिष्ठान चक्र कहा है । इसका तत्त्व जल है, इसी कारण इसे वरुणालय भी कहा गया है ।

इसके ऊपर मणिपूरक चक्र है । इसी को रविस्थान अथवा सूयस्थान कहा गया है इसी को अग्नि और सूय का स्थान मानते हैं यही समान वायु का केन्द्र है सहस्रार म स्थित चन्द्र से प्रस्रवित अमृत को इसी चक्र म स्थित सूय भस्म कर देता है ।

अनाहत चक्र — चौथा चक्र अनाहत है इसका स्थान हृदय प्रदेश माना गया है इसके बारह दल होते हैं इसका मत्र षटकोणात्मक होता है । इसका ध्यान करने वाला योगी परकाया प्रवेश करने की शक्ति प्राप्त कर लेता है । इसके समीप कल्पतरु और मणिपीठ नामक दो और स्थान बतलाये गए है । इस चक्र म अनाहत ध्वनि उत्पन्न होती है, यही सदाशिव हैं प्रणव इसी स्थान पर व्यक्त होता है दीप ज्योति के समान जीवात्मा इसी म निवास करता है ।[4]

विशुद्ध चक्र — इस चक्र के ऊपर कठस्थान मे विशुद्ध चक्र की स्थिति मानी गयी है । यह स्वर्ण के समान देदीप्यमान है इसम सोलह दल होते हैं इसका वर्ण धूम्र के समान होता है जीव यहा भ्रूमध्य स्थित

---

१ अवस्थिता चव फणावती सा प्रातश्च साय प्रहरार्धमात्रम ।
प्रपूर्य सूर्यात्परिधानयुक्त्या प्रगृह्य नित्य परिचालनीया ।।
—हठयोग प्रदीपिका ३।११२।

२ षट्चक्र निरूपण, श्लोक ५–१० ।

३ वही श्लोक १ ।

४ शिव सहिता ५।१०८-११५ ।

परमेश्वर को देखकर वासना के जाल से मुक्त होता है, इसे मोक्ष द्वार माना गया है।[1]

आज्ञा चक्र

भ्रूमध्य में आज्ञाचक्र की स्थिति है। इसके सिर्फ दो ही दल हैं। यह बुद्धि अहंकार मन तथा इन्द्रियों के सूक्ष्म रूप का केन्द्र स्थान माना जाता है, यही परमशिव का निवास स्थान है इसी में इडा और पिंगला का सम्मिलन होता है। इडा और पिंगला को पारिभाषिक भाषा में वरुणा और 'असी' कहा गया है इन दोनों के मिलन का कारण होने से यह वाराणसी कहा गया है इस प्रकार यह विश्वनाथ का स्थान है। इसके ऊपर पीठत्रय की स्थिति है जिनके नाम नाद बिन्दु और शक्ति है। शक्ति पीठ आकार स्वरूपी है।[2]

सहस्रदल कमल

सहस्रदल कमल मस्तक प्रदेश में स्थित माना गया है। इसमें बीस विवर हैं हर विवर में पचास पचास मातृकाएं हैं ये मिलकर सहस्र हो जाती हैं इसी से इसको सहस्रार कहा गया है। योगी इसे अधोमुखी बताते हैं।[3] यहीं पर नाद बिन्दु समन्वित कैलाश माना गया है इसी में शिव विराजमान हैं यही सुषुम्ना का मूल है जिसे ब्रह्म विवर कहा गया है। इसी में चन्द्रतत्त्व की स्थिति बतलाई जाती है जिससे अमृत झड़ता है इसी को शून्य चक्र कहा गया है। अन्य चक्रों को पार कर इस शून्य चक्र में पहुँचना योगी का चरम लक्ष्य है। इस प्रकार चित्त को स्थिर कर महत् शून्य का शुद्ध वृत्ति से चिन्तन साधक का लक्ष्य है।[4]

सारांशतः कहा जा सकता है कि सुषुम्ना पथ के उन्मुक्त होने पर कुण्डलिनी शक्ति उद्बुद्ध होती है प्राण स्थिर होकर शून्य पथ से निरन्तर अनहद नाद सुनने लगता है। अनाहत ध्वनि भगवान् सदाशिव हैं। विशुद्धि चक्र में परमेश्वर के सान्निध्य से जीव वासना मुक्त होता है आज्ञा चक्र में सहस्रार स्थित गुरु की आज्ञा प्राप्त करता है यही अव्यक्त प्रणव स्वरूप आत्मा में ऐक्य स्थापित करता है। इस प्रकार प्राणवायु के स्थिर होने पर काम क्रोधादि बन्धन छूट जाते हैं कुण्डलिनी शक्ति ब्रह्मरन्ध्र को त्याग देती है जिस से जीव और ब्रह्म का सम्बन्ध हो जाता है।

---

१ शिव संहिता ५।११६-१२१।

२ वही, ५।१२२।१२३।

३ वही, ५।१६०, १८०।

४ आद्यन्तमध्यशून्यं तत्कोटि सूर्य समप्रभम्।
चन्द्रकोटिप्रतीकाशमभ्यस्य सिद्धिमाप्नुयात्॥ —शिवसंहिता पृ० १८६।

योगसाधना में प्राणायाम के बाद प्रत्याहार का स्थान है। नाडियों और षटचक्र के ज्ञान प्राप्त कर लेने पर साधक को आत्मतत्व

प्रत्याहार

का ज्ञान प्राप्त होता है। इंद्रिय निग्रह से आसन, प्राणसाधना से प्राणायाम और मन साधना से प्रत्याहार सिद्ध होते हैं। प्राणायाम प्राण की गति को वश में करना है इंद्रियों को विषयों से विमुख करना ही प्रत्याहार है। इंद्रिय में उसके विषय का अनुभव कर, इंद्रियों को विषय से अलग करना ही प्रत्याहार है।[1] योगी प्रत्याहार के अभ्यास से पचेंद्रियवृत्तियों को उनके विषयों से हटा कर आत्मतत्व में स्थिर करता है। हठयोग के अनुसार षोडशदलकमलकर्णिका स्थित चन्द्रबिंब से अमृत झरता है उसे नाभिकमल स्थित सूर्य ग्रास कर लेता है इस क्रम को विपरीतकरणीमुद्रा द्वारा पलट कर स्वयं पान करना ही प्रत्याहार है।[2] घेरण्ड संहिता में कहा गया है कि विषय से मन को हटा कर अपने वश में करना ही प्रत्याहार है।[3] इस प्रकार श्रोतादि इंद्रियों का स्वस्वरागद्वेषात्मक स्वाभाविक विषयों से, विवेक रूपी दल से निवृत करके चित्त के अधीन करना ही प्रत्याहार है। इसके अभ्यास से इंद्रियों की अत्यन्तवश्यता, मन की निर्मलता तप की वृद्धि दीनता का क्षय शरीर की आरोग्यता और चित्त की समाधि में प्रवेश करने की क्षमता होती है इसके अभ्यास से मनोबल और मानसिक शान्ति होती है। यह इंद्रियों का चित्तानुकरण ही है।

प्रत्याहार की सिद्धि के लिए सहायक तत्वों का अस्तित्व स्वीकार किया है। इसके अनुसार पद्मासन में बैठकर कुम्भक के द्वारा

प्रत्याहार के साधन

श्वासोच्छवास की गति अवरुद्ध करना सिद्धासन से बैठकर त्रिकुटी या नासिकाग्र पर निमेषोन्मेष रहित दृष्टि स्थिर करना विपरीतकरणी मुद्रा के अभ्यास से मनोवृति का श्वासोच्छवास के लयोद्भव के स्थान में स्थिर करना आदि साधन चित्त की एकाग्रता के लिए साध्य हैं। श्वासोच्छ्वास के लयोद्भव का स्थान सहस्रार माना गया है इसमे ही मनोवृत्ति को लय करना पड़ता है।

---

१ चरतां चक्षुरादीनां विषयेषु यथाक्रमम्।
यत्प्रत्याहरणं तेषां प्रत्याहारः स उच्यते। —गोरक्ष पद्धति पृ० ७२।

२ चन्द्रामृतमयीं धारां प्रत्याहरति भास्करः।
यत्प्रत्याहरणं तस्याः प्रत्याहारः स उच्यते। —गोरक्षपद्धति, पृ० ७४।

३ ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत्। —घेरण्ड संहिता पृ० ५९।

योग की प्रथम भूमिका पर उपर्युक्त साधक चित्तवृत्ति का निरोध शारीरिक दृढ़ता पटचक्र ज्ञान प्राप्त कर क्रमश प्राण

मानसिक भूमिका — याम के उपरान्त प्रत्याहार की स्थिति म चित्त की निर्मलता उससे साधना और तदनन्तर प्राप्त होने वाले फलो की आकाक्षा म दूसरी भूमिका पर आता है। योग के स्थूल विधान से अथवा उसके शरीर सम्बन्धी साधनाओं से निवृत होकर धारणा[1] ध्यान और समाधि की ओर उन्मुख होता है। इनका सम्बन्ध चित्त की विशुद्धता, एकाग्रता और उसकी ध्यानावस्था से है।

चित्त — चित्त को अन्त करण कहा गया है।[2] चित्त सत्वप्रधान प्रकृति परिणाम है अर्थात् प्रकृति के परिणामो म सब से अधिक सत्व का उदय चित्त म होता है। चित्त त्रिगुणात्मक है अतएव परिणामी है रजोगुण के कारण वह सदाक्रियाशील है। यह दृश्य है अत इसे स्वप्रकाश नही कह सकते। दृश्य अन्य पदार्थों स ही प्रकाशमान होता है।

चित्त के रूप — चित्त म (सत्व, रज तम) गुणों का उद्रेक समय समय पर होता रहता है। उसके अनुसार चित्त के तीन रूप प्रख्याशील, प्रवृत्ति शील और स्थिति शील हैं। प्रख्याशील अवस्था मे 'सत्व प्रधान चित्त रजस और तमस' से सयुक्त रहता है वह अणिमा आदि ऐश्वय का प्रेमी होता है। तमोगुण का प्राधान्य होने पर यह अधर्म अज्ञान अवैराग्य तथा अनैश्वय का प्रेमी होता है। मोह के आवरण से सवथा क्षीण केवल रजस के अंश से युक्त होने पर सवत्र प्रकाशमान होता है धर्म ज्ञान वैराग्य तथा ऐश्वय से युक्त होता है। इस प्रकार प्रथम अवस्था मे वह ऐश्वय की प्राप्ति कर लेता है उसमें रजस का लेशमात्र भी नही रहता वह अपने स्वरूप म प्रतिष्ठित हो जाता है विवेक बुद्धि प्राप्त कर लेता है।

चित की भूमियां — योग शास्त्र मे चित्त की पाच भूमियां बतलायी गयी हैं जो क्रमश मूढ क्षिप्त विक्षिप्त एकाग्र और निरुद्ध हैं। अपनी मूढ भूमि पर चित्त सद्सद्विचार हीन होकर आलस्य विस्मृति आदि के वश अनके अयाउनीय कम करता है। यह उसकी तमोगुण प्रधान

---

१ आसनेन समायुक्त प्राणायामेन सयुत।
प्रत्याहारेण सपन्नो धारणा च समभ्यसेत। —गोरक्षपद्धति, पृ० ८१।

२ चित्त त करण समत्व ध्येयाकारवत्तिप्रवाहत्व।
—हठयोगप्रदीपिका ४।१४ (टीका)।

३ आत्मा चित्तम'—शिवसूत्रवार्तिकम्, पृ० ४१।

स्थिति है। क्षिप्त अवस्था मे रजागुण की अधिकता मे वह अस्थिर और चचल बना रहता है और ससार के सुखदुखादि विषयो की ओर स्वत प्रवृत्त रहता है। तीसरी अवस्था सत्वगुणमयी है। इसम सुख दुख, विचार आलस्य रजागुण तमागुण आदि से पृथक होकर वह शून्य हो जाता है। उसम कोई चिन्ता नही रहती। तदनतर एकाग्र भूमि म ध्याता ध्यानयाग के द्वारा ध्येय वस्तु मे चित्त ठहराने का प्रयत्न करता है। निरुद्ध अवस्था म चित्त बाहरी वृत्तियो के निराध होने पर एक ही विषय म एकाकार वृत्ति धारण करता है अत सब वृत्तिया और सस्कारो के लय हो जाने पर चित्त की सत्ता निरुद्ध हाती है।

चित्त की वृत्ति और प्रकार

चित्त के प्रवाह और प्रसार का नाम वृत्ति है। चित्त सरोवर है और उस सरोवर म उठने वाली लहरें ही चित्त की वृत्तियाँ हैं। ये प्रधानतया पाच हैं [१] जिनको *प्रमाण, विपर्यय विकल्प,* निद्रा और स्मृति नाम से अभिहित किया गया है। चित्त के समस्त व्यापारो या अवस्थाओ का अन्तर्भाव इनम ही किया जा सकता है। चित्त वृत्तियो के निरुद्ध होने पर भी उनका नितान्त नाश नही होता है।[२] सस्कार के रूप म उसका स्वरूप नित्य बना रहता है।

सस्कार

वृत्तिया स सस्कारो की उत्पत्ति होती है। वृत्तिया स सस्कारो का जन्म[३] और सस्कारो से वृत्तियों का उदय हाना है फलत वृत्ति स्थूल रूप और सस्कार सूक्ष्मरूप होते हैं। याग की पूर्णता के लिए वृत्तियो और सस्कारो, दानो का निरोध परमावश्यक है।[४] निरोध से बहिर्मुखी वृत्तिया अन्तर्मुखी हो जाती हैं।

निरोध के दो उपाय बताये गये हैं — प्राणस्पन्द अनुशासन और बाह्य विषयो से चित्त–विक्षपण। एक कायिक उपाय है दूसरा

---

१ सस्कारा वृत्तिभि क्रियन्ते। सस्कारैश्च वृत्तय।
एव वृत्ति–सस्कार–चक्रमनिशमावर्तते॥

—तत्व वैशारदी।

२ प्रमाण विपर्ययविकल्पनिद्रास्मृतय॥

—पातजलयोगदर्शन १।६।

३ व्युत्थान निरोधसस्कारयोरभि भवप्रादुर्भावो
निरोधक्षणचित्तान्वयो निरोधपरिणाम॥ —वही ३।९।

४ एकाग्र बहिर्वृत्ति निरोध। निरुद्धे च सर्वासा वृत्तीनां
सस्काराणां च तत्ववैशारदी १।२।

वृत्ति निरोध-उपाय श्रवणमननापेक्षित। इनसे चित्त समाधिस्थ होता है। इस स्थिति की प्राप्ति मे अनेक बाधाएं आती हैं। जिनसे चित्त मे विक्षेप उत्पन्न होता है।

दार्शनिकों ने चित्त विक्षेप के ये नौ कारण बतलाये हैं-[१] व्याधि स्त्यान संशय प्रमाद आलस्य अविरति भ्रांति दर्शन अलब्ध भूमिकत्व और अनवस्थितत्व। व्याधि के कारण चित्तवृत्ति तल्लीन अथवा उसके निर्वाणोपाय में निमग्न रहती है जिससे योग प्रवृत्ति सिद्ध नहीं होती। स्त्यान विक्षेप के कारण अकर्मण्यता

चित्त विक्षेप कारण

वृत्ति का अभाव होना है देशकालादि की प्रवृत्तियों में असमर्थता का अनुभव करता है। चित्त की अयोग्यता योग में प्रवृत्त नहीं होने देती उसमें संशय बना रहता है।

गुरु शास्त्र योग और योग साधनों में चित्त की दृढ़ता न होने से संशयात्मक स्थिति बनी रहती है इससे वह समाधि साधना के प्रति उदासीन बना रहता है। यही चित्त की प्रमाद अवस्था है। प्रमाद और आलस्य दोनों योगमार्ग में बड़े विघ्न हैं। इसी प्रकार भ्रांति दर्शन विपरीत-ज्ञान तथा विपरीत प्रवृत्ति के कारण भी चित्त में विक्षेप बना रहता है। इन कारणों से चित्त वृत्तियों का निरोध नहीं हो पाता जिससे अनेक क्लेश प्रस्तुत होते हैं।

अनेक कारणों से चित्त क्लेश भाजन बना रहता है। ये पांच प्रकार के माने गये हैं-[२] अविद्या अस्मिता राग द्वेष और अभिनिवेश। इनमें से बाद के चार का कारण भी अविद्या ही है जो विपर्यय ज्ञान अथवा मिथ्या ज्ञान है। इसके द्वारा अनित्य में नित्य अशुचि में शुचि, दुःख में सुख और अनात्मा में आत्मतत्व की प्रतीति होती है।

चित्त के क्लेश

सुख दुःख का अनुभव बुद्धि करती है जिसके द्वारा प्रपंच का ज्ञान होता है। पुरुष बुद्धि से भिन्न है चेतन होने से वह द्रष्टा मात्र है। अतः अस्मिता क्लेश के कारण बुद्धि में आत्मा का भ्रम हो जाता है। चित्त सुखोत्पादक वस्तुओं में लाभ दुःख के साधनों में द्वेष तथा मृत्यु के भय के कारण सदा क्लेश से

---

१ व्याधिस्त्यानसंशय प्रमादालस्या विरति भ्रांतिदर्शनालब्ध-भूमिकत्वानवस्थितत्वानि चित्तविक्षेपास्तेऽन्तरायाः ॥

—पातंजलयोग दर्शन १।३०।

२ अविद्यास्मितारागद्वेषाभिनिवेशाः क्लेशाः ॥

—पातंजल योग दर्शन २।३।

युक्त रहता ह । वह क्लेशा के शात होन पर तत्त्वनान होता ह ।[1] यही योग की मानसिक भूमि ह । शुद्धि और मल एव विक्षेप के अभाव स चित्त एक देश म स्थिर हो जाता ह । योग की यह भूमिका कायिक भूमिका पर आधारित ह । अत आसन, प्राणायाम और प्रत्याहार साधन के द्वारा इद्रिया को नियन्त्रित कर चित द्वारा धारणा का अभ्यास सम्भव होता ह ।

धारणा

चित्त को एक देश विशष म स्थिर करन का नाम धारणा ह । इस अवस्था मे चित्त स्थूल–सूक्ष्म या बाह्य–आभ्यतर किसी एक ध्येय म स्थिर हाता ह । इसके अभ्यास से चित्त वृत्तिया स्थिर हा जाती हैं ।

धारणा के सम्बन्ध से मुद्राआ का महत्त्व माना गया ह । इनके अनेक नाम और भेद हैं जिनम से अगोचरी, भूचरी चाचरी और शाम्भवी प्रमुख हैं। मन का नासिका के अग्र भाग पर स्थिर करन का नाम ही अगोचरी मुद्रा ह इससे चार अगुल की दूरी पर स्थिर करना भूचरी मुद्रा की अवस्था ह। चाचरीमुद्रा म मन आज्ञाचक्र म स्थिर हाता ह । वस्तुत ये सब प्रक्रियाए मन को एकाग्र करन ही के लिए हैं । धारणा का यही साध्य ह । इससे ऊपर की स्थिति ध्यान की ह ।

ध्यान

धारणा की भूमि पर चित्तवृति का अखण्ड प्रवाह तथा मन का निर्विषय होना ध्यान कहलाता ह । इसमे निरतर आत्म–तत्त्व का स्मरण होता ह ।[2] यही चित्त की एकाकार वृत्ति ह । ध्येय दृढता से चित्त–वृत्तियो के तदाकार होने पर धारणा ही ध्यान मे परिवर्तित हो जाती ह ।

ध्यान के भेद

ध्यान के तीन प्रकार बतलाय गए हैं–स्थूलध्यान ज्योतिर ध्यान, सूक्ष्म ध्यान । मूर्तिमान अभीष्ट देव का ध्यान स्थूल होता ह तेजरूप परमात्मा का ध्यान ज्योतिररूप और कुण्डलिनी शक्ति का दशन सूक्ष्म ध्यान कहलाता ह। आज्ञा चक्र के ऊपर शून्य मे प्रतिष्ठित तेज स्वरूप का ध्यान करने से योगी मुक्त हो जाता ह ।[3] समाधि इसके ऊपर की अवस्था ह ।

---

१ "यावन्न चित्तोपशमो न तावत्तत्त्ववेदनम"। हठयोग प्रदीपिका,उपदेश ४।२२।

२ 'स्मृत्यैव सव चिताया धातुरेक प्रपद्यते
यच्चित्ते निमला चिन्ता तद्धि ध्यान प्रचक्षते । –गोरक्ष पद्धति पृ० ८४

३ निमल गगनाकार मरीचिजलसन्निभम
आत्मान सवग ध्यात्वा योगी मुक्तिमवाप्नुयात् । –गोरक्ष पद्धति, पृ० ८७ ।

समाधि

जीवात्मा का प्रयत्न करने से साध्यासी मतारा मा स अथवा ब्रह्म के स्वरूप परातीन्द्रिय रूप में स्थिर होना समाधि है। इसको जीवात्मा परमात्मा की एकावस्था कहते हैं जो परमानन्दरूपा एवं शुद्ध चात्याात्मिका है। इस अवस्था को प्राप्त करने के लिए योगी भिन्न भिन्न भूमिकाओं पर आरूढ़ होकर अनेक प्रकार के अनुभव ज्ञान और शक्तियां प्राप्त करता है।

समाधि के भेद

सामान्यतः समाधि के दो भेद माने जाते हैं—सम्प्रज्ञात तथा असम्प्रज्ञात। इनमें से प्रथम (सम्प्रज्ञात) के दो भेद— सविकल्प और निर्विकल्प हैं। सविकल्प योग पूर्वावस्था है उसमें विकल्पज्ञान नष्ट नहीं होता शब्द अर्थ और ज्ञान का विकल्प बना रहता है। इसे ध्येय पदार्थ[1] के भेद से सवितर्क सविचार और सविकल्प कहा गया है।[2] विकल्प के नष्ट होने पर यही निर्वितर्क कही जाती है। इसमें ध्येय पदार्थ के साथ तदाकार चित्त उसे प्रकाशित करता है।[3] इस स्थिति में केवल ध्येय पदार्थ का ही अनुभव होता है। समाधि की इस अवस्था को निर्विकल्प और निर्विचार अवस्था भी कहा गया है। ये निर्विकल्प होने पर भी निर्बीज नहीं हैं इनमें बीज रूप से चित्तवृत्ति का[4] अस्तित्व सा रहता है इसी को आनन्दानुगता तथा इनके लुप्त होने पर अस्मितानुगत कहा जाता है।[5] यह निर्विचार समाधि की निर्मल अवस्था है इसके ऊपर की असम्प्रज्ञात अवस्था है। इसमें चित्त संसार के पदार्थों की ओर नहीं जाता वह उनसे अपने आप[6] उपरत हो जाता है तथा ध्येय के अनुभव में एकाग्र हो जाता है। इसी को सर्ववृत्तिनिरोधरूप निर्बीज[7] तथा धर्ममेध समाधि भी कहते हैं।

---

१ सम्प्रज्ञात योग के ध्येय पदार्थ तीन माने गए हैं—ग्राह्य (इन्द्रियों के स्थूल और सूक्ष्म विषय) ग्रहण (इन्द्रियां और अन्तःकरण), ग्रहीता (बुद्धि के साथ एक रूप हुआ पुरुष)।

२ तत्र शब्दार्थज्ञानविकल्पैः संकीर्णा सवितर्का समापत्तिः।
—पातंजल योगदर्शन १।४२।

३ स्मृतिपरिशुद्धौ स्वरूपशून्येवार्थमात्र निर्भासा निर्वितर्का।' —वही १।४३।

४ ता एव सबीज समाधिः —वही १।४६।

५ वितर्कविचारानन्दास्मितानुगमात्सम्प्रज्ञातः।
—पातंजलयोग दर्शन १।१७।

६ विरामप्रत्ययाभ्यासपूर्वः संस्कारशेषोऽन्यः।' —वही १।१८।

७ तस्यापि निरोधे सर्वनिरोधान्निर्बीजः समाधिः'। —वही १।५१।

सक्षेप मे यह कह सकते हैं कि धारणा और ध्यान समाधि की पूर्व पीठिकाएं है। धारणा, ध्यानादि सालम्बन ध्येय रूप समान विषय वाले हैं। ये तीनो मिलकर सयम कहलाते है।[1] वस्तुत ध्यान का स्वरूप शून्य होने पर केवल ध्येय ही भासित होता है वही समाधि कहलाता है। वास्तव मे धारणा और ध्यान समाधि के ही अग हैं। इनके दृढ होने पर सम्प्रज्ञात योग सिद्ध होना है, इसी कारण इनको सम्प्रज्ञात समाधि का अन्तरग कहा है। समाधि के लिए इनको बहिरग माना गया है। उन्मनी मनोन्मनी अमरत्व लयतत्व, शून्याशून्यपरपद अमनस्क, अद्वैत, निरालब, निरजन जीवन्मुक्ति सहजतुर्या आदि हैं।[2]

शैवयोग की आध्यात्मिक भूमिका

जीवन्मुक्त दशा को प्राप्त करने पर योगी अपने स्वरूप मे स्थित हो जाता है।[3] यही अथमात्र का ज्ञान कराने वाली अवस्था है।[3] यहा जीव सासारिक सत्ता, द्वैत भाव आदि का परित्याग कर, परमात्म सत्ता म अद्वैत भाव स लीन हो जाता है। अन्यत्र कहा जा चुका है कि वह कुण्डलिनी के उद्बुद्ध होन पर ब्रह्माण्ड म अनहदनाद का श्रवण करता है। यही शून्यगगन है सहस्रदल कमल का विकास भी यही होता है। यहा आत्मा दिव्य पवित्रता तथा ब्रह्माद्वैत का प्राप्ति करता है। यह अनुभूति का लोक है इसको सुममहल सुन्नसहर, गगनगुफा, गगनमडल गगनअटारी सुन्नशिखर अमरपुरी, गगनमहल ध्रुव-मन्दिर आदि नामो से अभिहित किया गया है। योग की आध्यात्मिक भूमिका पर विचरण करता हुआ योगी, इस लोक की दृश्यावली का अनुभव और अलौकिक आनन्द के आस्वादन म लीन रहता है। वह अलौकिक आनन्द प्राप्त करता है तथा त्रिवेणी और वाराणसी म स्नान करता हुआ भवरगुफा मे अमृत का पान करता है। इसके उपरान्त तारज्ञान का उदय होता है, जो

---

१ त्रयमेकत्र सयम —पातजल योगदर्शन ३।४।

२ राजयोग समाधिश्च उन्मनी च मनोन्मनी,
अमरत्व लयस्तत्त्व शून्याशून्य पर पदम।
अमनस्क तथाद्वैत निरालब निरजनम,
जीवन्मुक्तिश्च सहजा तुर्या चेत्येकवाचका।

—हठयोग प्रदीपिका ४।३,४।

३ सकलवृत्तिनिरोध आत्मन स्वरूपावस्थानात —वही ४।१०७।

४ तावदव स्मृत ध्यान समाधि स्यादत परम।

—गोरक्ष पद्धति पृ० ६०।

आध्यात्मिक उत्थान का मूल आधार है। इस स्थिति में साधक अविचल भाव से सांसारिक विलास करता रहता है। अन्तःकरण में स्थित रहकर आत्मा का साक्षात्, आत्मज्ञान द्वारा प्रकाशित करता है। इस प्रकार से शुद्ध तत्त्व की भावना से यथार्थस्वरूप शक्ति प्राप्त हो जाती है और साधक संसार में अपने को ईश्वर देखता और द्रष्टा रूप से देखता हुआ मैं विश्वात्मा शिव ही हूँ, मैं ही सब हूँ की भावना से साक्षात् में समाधि सुख को प्राप्त करता है।

ईश्वर इस ऐश्वर्य और ज्ञान की पराकाष्ठा है। ईश्वर प्रणिधान से ही आध्यात्मिक भूमिका की सिद्धि होती है। प्रणिधान से प्राप्त तत्त्वालोकित समाधि में साधक-आत्मा शिवस्वरूप में प्रतिष्ठित हो जाता है। यहाँ शिव रूप गुरु का प्रमुख महत्त्व माना गया है।

शैवयोग और गुरु

गुरु का महत्त्व अन्य सम्प्रदायों में भी मान्य रहा है किन्तु शैवयोग की अपनी विशेषता है। यहाँ शिव को ही वास्तविक गुरु माना गया है। साधक की साधना की प्रथम भूमिका में ही—लौकिक गुरु की आवश्यकता रहती है चित्तवृत्तियों का निरोध होने पर आत्मस्थ गुरु शिव ही उसके उपदेशक मार्गनिर्देशक एवं अज्ञानरूपी तम का विनाश करते हैं। इनसे अद्वैत सम्बन्ध स्थापित करना ही शैवयोग की विशिष्टता है। इसका प्रतिपादन शैव ग्रन्थों में अनेक प्रकार से हुआ है। तन्त्रों में गुरु का पद सर्वोच्च स्वीकार किया गया है। ललिता सहस्र नाम के गुरुमण्डलरूपिणी और गुरुप्रिया में शिव को गुरु बतलाया गया है। निर्वाण तन्त्र के अनुसार शिव गुरु हैं परमगुरु परमेष्ठी गुरु एवं परात्पर गुरु शिव के अंश हैं।

महत्त्व

परमगुरु शिव शिरस्थ सहस्रदलकमल कर्णिका में निवास करते हैं।[1] सुषुम्ना द्वारा विभिन्न चक्रों का भेदन कर चन्द्रमण्डल से स्रवित सुधारस पान से आनन्दोन्मत्त हो इनके ध्यान से जीव अमरता प्राप्त करता है। तान्त्रिक गुरु शिव के समान शिवतत्त्व का ज्ञान कराने वाले लौकिक गुरु का महत्त्व भी कम नहीं माना गया है। किन्तु यह बात विशेष नहीं है यह बात अन्य सम्प्रदायों में भी स्वीकार की गयी है। भक्ति और साधना के क्षेत्र में गुरु का अत्यन्त अधिक महत्त्व है दीक्षा गुरु के बिना हो नहीं सकती। शैवयोग के आधार हठयोग की क्रिया

---

१ शिर पद्मे महादेवस्तथैव परमो गुरु
तत्समो नास्ति देवेशि पूज्यो हि भुवनत्रय
तदंश चिन्तयेदेवि वाह्ये गुरु चतुष्टयम ॥ —मेरु तन्त्र।

प्रक्रिया मन्त्रयोग के मन्त्र और लययोग अथवा ध्यान योग या कुण्डलिनी योग के ध्यान आदि का ज्ञान गुरु से प्राप्त दीक्षा द्वारा ही सम्भव है।

शवयोग सम्प्रदाय मौलिक रूप से पतजलि के योग शास्त्र के अन्तर्गत है।

निष्कर्ष

पातजल योग दर्शन मे कहा गया है कि बहिरग साधन यम नियम आसन प्राणायाम और प्रत्याहार की सहायता से अन्तरग साधना धारणा ध्यान और समाधि द्वारा चित्तवृत्ति रूपी चित्रा का वास्तविक स्वरूप ज्ञात होता है। पतजलि के योग दर्शन के चार पाद–समाधि साधन विभूति और कैवल्य माने हैं। समाधि पाद तीन सूत्रों–योगश्चित्तवृत्तिनिरोध, तद्राद्रष्टु स्वरूपेऽवस्थानम् वृत्तिसारूप्यमितरत्र आदि की विस्तृत व्याख्या है।[1] साधन पाद म विक्षिप्त चित्तवाले मध्यम अधिकारियो के लिए योग का साधन बतलाया गया है। योग के अगो के अनुष्ठान स अशुद्धि के क्षय होने पर ज्ञान की दीप्ति विवेकख्यातिपर्यन्त बढ जाती है। इस भाग म योग के अगो के अनुसरण उपादेय बतलाया गया है।[2] ध्यान धारणा समाधि तीनो मिलकर सयम कहलाते हैं। ये सबीज समाधि के अन्तरग साधन हैं। इनके विनियोग मे नाना प्रकार की सिद्धिया प्राप्त होती है। इसी के द्वारा वैराग्य होने पर, दोषो का बीज क्षय होने पर कैवल्य प्राप्त होता है।[3] इनके अनुसार चिति शक्ति का अपने स्वरूप मे अवस्थित हो जाना कैवल्य है।[4] शक्ति और शिव की समरस अवस्था को, पिण्डब्रह्माण्डैक्य अथवा परमसाम्य कैवल्य अवस्था वाली सहज समाधि माना है।

इसमे आसन, प्राणायाम और मुद्राओ के माध्यम स, कुण्डलिनी द्वारा षटचक्र भेदन कर सहस्रदल कमल तक पहुचने की क्रिया का प्राधान्य है। इस क्रिया की तुलना चीटी के वृक्ष पर चढने की प्रक्रिया स की गयी है इसी को पिपीलिक योग भी कहा गया है इसका अर्थ कुण्डलिनी की पिण्ड म ब्रह्माण्ड तक की यात्रा है। इस अवस्था के पश्चात् साधारण स्थिति से ऊपर उठकर शून्य गगन मे विचरण करने पर परमानन्दास्वादन की अवस्था म योगी का शरीर

---

१ पातजल योग प्रदीप–पृ० १२८ १२६।

२ पातजल योग प्रदीप–पृ० १३२।

३ तद्वैराग्यादपि दोष बीजक्षये कैवल्यम ॥

— पातजलयोग प्रदीप–पृ० १३२।

४ पुरुषार्थशून्यानां प्रतिप्रसव कैवल्य।
स्वरूपप्रतिष्ठा वा चिति शक्तेरिति–।

वही पृ० १३४।

के 'पिण्ड' भाग से कोई मतलब नहीं रहता। उसकी 'सुरति' मन के साथ शून्य गगन में विचरण करते हुए बंकनाल से होकर ऊपर चढ़ती है और भवर गुफा में प्रविष्ट होती है। तदनन्तर क्रमशः वह 'अमर' नगरी या अमर लोक पहुँचती है। जीवात्मा परमात्मा के सान्निध्य और सालोक्य निवास का आनन्द का निरन्तर पान करता है इसी को विहंगम अथवा ध्यान योग कहा है।

इस प्रकार शैव योग साधना हठयोग से प्रारम्भ होकर क्रमशः मन्त्र योग लय योग द्वारा राजयोग अथवा शैवयोग की आध्यात्मिक भूमिका को प्राप्त करती है। मन्त्रयोग की मन्त्र साधना अजपाजप प्राप्ति का इसमें अनन्य महत्त्व है तथा इसमें लययोग की नाद बिन्दु लय साधना अथवा कुण्डलिनीलय या शिवशक्ति की सम्मिलनावस्था का प्रतिपादन भी दृष्टिगोचर होता है। इन साधनाओं के उपरान्त ही राजयोग और राजाधिराजयोग का सम्पादन सम्भव माना गया है। राजाधिराज योग की अवस्था में योगी सर्वत्र आत्मदर्शन करता है तथा बन्धन और मोक्ष से रहित हो सद्‌मुक्त अवस्था को प्राप्त कर अन्तर्मुखी दृष्टि से निरतिशय सुख को प्राप्त करता है।

अतः यह कहना अत्युक्तिपूर्ण न होगा कि योग के विभिन्न पाद रूप प्रकारों पर आधारित परम्परा निर्बाध रूप से निरन्तर प्रवाहित होती रही तथा शैव उपासकों ने शिव की आभ्यन्तरिक और बाह्य दोनों प्रकार की पूजा में इसको प्राधान्य दिया है। शैव साहित्य में इसके प्रभाव की गम्भीरता के समान शैवेतर साहित्य में भी इसका प्रभाव देखा जा सकता है। यह प्रभाव प्रायः विधेयात्मक और निषेधात्मक भेद से दो प्रकार का है। मध्यकालीन साहित्य इस बात का पुष्ट प्रमाण है कि तत्कालीन धार्मिक साधनाओं और उनके साहित्य पर शिव और शैव दर्शन अर्थात् चिंतन और योग का व्यापक प्रभाव था।

(ग) शैव भक्ति

भक्ति की समीचीन विवेचना के लिए उनके तीन पक्षों—उपासक उपास्य और उपासना को देखना आवश्यक है। उसका प्रमुख पक्ष उपासक है जो स्वीय भावना और आचार से उपास्य को मुग्ध ही नहीं वरन उसके साथ सहज सान्निध्य प्राप्त कर ऐक्यानुभव भी करता है।

उपासक

उपासक परमात्मा में अनुराग क्रीड़ा, सयोग सुख एवं आनन्द का अनु

भव करता हुआ स्वराट है (परमात्मस्वरूप) हो जाता है।[1] वह प्रपन्न है। प्रपत्ति को अंगीकार करता है वह सब धर्मों का त्याग कर भगवान की शरण में जाता है[2] वही भागवत् है। इस दशा को प्राप्त कर वह निश्चिन्त हो जाता है। अविवेकी पुरुष की स्थूल शरीर में आसक्ति के समान ही भक्त (उपासक) भगवान में आसक्त रहता है। अतएव उसको तन्मय भी कहा जाता है।[3] वह भगवान के ध्यान में सन्त पुलकित रहता है। उसके नेत्रों से आनन्दाश्रु प्रवाहित होते रहते हैं। उसके अस्तित्व से ही कुल और पृथ्वी पवित्र होती है।[4] उपासक भक्ति की पराकाष्ठा को प्राप्त कर भगवान में आसक्त हो जाता है। उससे तीर्थ सुतीर्थ कर्म सुकर्म और शास्त्र सत् शास्त्र होते हैं।[5] ऐसे उपासक को देखकर पितृगण प्रमुदित होते हैं देवता नाचने लगते हैं और पृथ्वी सनाथ हो जाती है।[6] उपासकों के लक्षणों का भी शास्त्रों में उल्लेख प्राप्त होता है।

उपासक के लक्षण

सच्चा उपासक काम, क्रोध अहंकार और विश्व के प्रपंचों से तटस्थ रहकर, विश्वमात्र को एक दृष्टि से देखता है। उसकी ममता परमात्मा के अतिरिक्त और किसी में नहीं रहती। निस्पृहता के कारण वह न मान प्रतिष्ठा का भूखा रहता है और न लोक को रिझाने की चेष्टा करता है। उसका लक्षण हेतु-रहित परोपकार-व्रत है। भक्त के, भगवद् जन से प्रीति, भगवान के विरह की अनुभूति, भगवान की महिमा का वर्णन, सब में भगवद्भाव होना आदि लक्षण

---

१ आत्मैवेद सर्वमिति स वा एष एवं पश्यन्नेवं
मन्वान एवं विजानन्नात्मरतिरात्मक्रीड आत्ममिथुन
आत्मानन्द स स्वराड् भवति।
—छान्दोग्योपनिषद, ७।२५।२।

२ लोकहानौ चिन्ता न कार्या निवेदितात्मलोकवेदत्वात
—नारद-भक्ति सूत्र, ६१।

३ तन्मया" —नारद—भक्ति सूत्र ७०।

४ कण्ठावरोधरोमाञ्चाश्रुभि परस्पर लपमाना
पावयन्ति कुलानि पृथिवीं च। —वही ६८।

५ तीर्थीकुर्वन्ति तीर्थानि सुकर्मीकुर्वन्ति
कर्माणि सच्छास्त्रीकुर्वन्ति शास्त्राणि।
—नारद-भक्ति-सूत्र ६९।

६ मोदन्ते पितरो नृत्यन्ति देवता सनाथा चेयं भूर्भवति। —वही, ७१।

का विवरण प्राय सभी शास्त्र ग्रन्थों में प्राप्त होता है।[1] शिवपुराण में उपासना के ये आठ लक्षण बतलाये गए हैं—शिव भक्तों के प्रति स्नेह, शिव पूजा का अनुमोदन, शिव पूजा में प्रीति, शारीरिक चेष्टाएँ, शिव कथा श्रवण, कथा सुनते समय स्वर, नेत्र और अंगों में विकार की उत्पत्ति, बारम्बार स्मरण और सदा शिवाश्रित होकर निर्वाह। इनसे युक्त म्लेच्छ भी विप्रशिरोमणि श्रीमान मुनि है, वही संन्यासी और पण्डित है।[2] [illegible] लाभ, राग द्वेषादि से सतर्क रहता है क्योंकि ये भक्ति के बाधक चिह्न हैं। [illegible] कुसंग की दुःसंग के साथ इनके त्याग का भी विधान है।[3]

उपासक अपने गुणों से ही उपास्य के सान्निध्य का उपलाभ करता है।

उपासक के गुण

यों तो उपासक के अनेक गुण हैं किन्तु प्रमुख गुण श्रद्धा, विश्वास, अहिंसा, सत्य, शौच और दया हैं। ये आपस में एक दूसरे से आबद्ध हैं। अतएव एक के गहन अनुशासन से दूसरे का पालन स्वतः ही होने लगता है। फिर भी प्रत्येक का अपना अपना स्वतन्त्र क्षेत्र है। इसीलिए उपासना के क्षेत्र में प्रत्येक का अपना मूल्य भी है।

श्रद्धा

ऋग्वेद के श्रद्धा सूक्त में श्रद्धा को विशेष महत्त्व दिया गया है।[4] श्रद्धा से सत्यरूप परमात्मा की प्राप्ति होती है।[5] इससे देवत्व प्राप्ति तथा लोकों की प्रतिष्ठा सिद्ध होती है।[6] 'श्रद्धावान लभते ज्ञानम्' कहकर भी इसके महत्त्व का प्रतिपादन हुआ है।[7] ज्ञान और योग के समान इसका भक्ति क्षेत्र में बहुत ऊँचा स्थान है। यही भक्ति की आधारशिला है। इसका सम्बन्ध हृदय के परमोज्ज्वल सात्विक भाव प्रेम से है। यही जप, तप, यम, नियम और ईश्वरपरायणता का

---

1 सम्मानबहुमान प्रीति विरहेतरविचिकित्सा
महिमख्याति तदर्थ प्राण स्थान तदीयता सर्वतद्-
भावाप्रातिकूल्यादीनि च स्मरणेभ्यो बाहुल्यात्॥
—शाण्डिल्य भक्ति सूत्र ४४।

2 शिव पुराण—वायवीय संहिता अध्याय १०।

3 "दुःसंग सर्वथैव त्याज्यः" नारद भक्ति सूत्र, ४३।

4 ऋग्वेद, १०।१५१।

5 यजुर्वेद, १९।३०।

6 तैत्तिरीयोपनिषद ३।१२।३।

7 गीता ४।३९

मूल आधार है। इसीसे विश्वास और धर्य प्राप्त होता है, अनेक गुणों की अभिव्यक्ति होती है और मन में स्थिरता आती है।

विश्वास

विश्वास का सम्बन्ध आस्तिकता से है। भक्त का अनिवार्य गुण ईश्वर और शास्त्रों के प्रति विश्वास है। "भगवान हैं, सर्वव्यापी हैं, सर्वेश्वर हैं, दीन बन्धु हैं और सदा सर्वदा विराजमान हैं"—आदि विश्वास उसके त्रिविध ताप को दूर करता है। 'संशयात्मा विनश्यति' अर्थात् संशयात्मा का पतन होता है। अतएव विश्वास भक्त के चरित्र का आभूषण है। भगवान के अस्तित्व और उनके प्रभाव तथा गुणों पर विश्वास होने से मन स्वतः भगवान में लग जाता है।

अहिंसा

विश्वास के समान ही अहिंसा भक्त का आवश्यक गुण है। शरीर मन और वाणी से किसी भी जीव को किसी प्रकार वर्तमान या भविष्य में दुख न पहुँचाना अपितु सदा सबको सुखी बनाने की चेष्टा में लगे रहना ही अहिंसा है, यह उपास्य की कृति है, मान कर प्राणधारी के प्रति प्रेमपूर्ण व्यवहार करना ही उपासक का कर्तव्य है। अहिंसा वृत्ति उसे विश्व के प्रति समदृष्टिकोण प्रदान करती है। अहिंसा के लिए आवश्यक है कि वाणी से ऐसे ही शब्दों का उच्चारण हो, जो सत्य, मधुर एवं हितकारी भी हों। अतः सत्य भी उपासक का आवश्यक गुण है।

सत्य

द्वेष, वैर, निन्दा आदि भावों से बचाकर वाणी को अपने और दूसरे के हित की दृष्टि से सदा मधुरता और सत्य सिक्त रखना ही साधक का गुण है। चन्द्रमा की चाँदनी प्रकाश के साथ शीतलता प्रदायिनी भी है, इसी प्रकार भक्त की वाणी भी सत्य और मधुर अर्थात् प्रकाशक और शान्तिदायक होती है। साधक की आन्तरिक शुद्धि भी उसका प्रमुख गुण है।

शौच

उपासक के लिए बाहरी और भीतरी दोनों प्रकार के शौच की आवश्यकता है। आन्तरिक अथवा भीतरी शौच में दम्भ, द्वेष, अभिमान, आसक्ति, ईर्ष्या, शोक, पापचिन्तन, व्यर्थ चिन्तन आदि दोषों से मन को निवृत्त रखना आवश्यक है। प्रेम, विनय, वैराग्य, अद्वेष, प्रसन्नता, सच्चिन्तन और भगवद्-चिन्तन ही मन की शुद्धि के एक मात्र उपाय हैं। इनके द्वारा शुद्ध होने पर ही मन भगवद्भक्ति की ओर अग्रसर होता है। शुद्ध मन का आभूषण दया है।

दया भगवद्भक्त का आवश्यक गुण है। जिन क्रियाओं से जीवों का अहित होता हो, उन्हें दुख पहुँचता हो उनका त्याग आवश्यक

दया है। सबके दुख को दूर करने की चेष्टा दयाभिभूत प्राणी का ही कर्म है। यह भाव सभी जीवों के प्रति और सभी कालों में होना चाहिए।[1]

भक्ति अपने उत्कृष्टरूप में प्रेमलक्षणा है जिसमें साधन और साध्य एक होते हैं। भक्ति का बीजांकुरण रुद्रपूजा में होता है जिसके विकास में उपासना का इतिहास भी सन्निहित है। कुछ विद्वानों का कहना है कि भक्ति अपने मूल रूप में अनार्य स्रोत से उत्पन्न हुई। वह आर्यों को अनार्यों से मिली जो रुद्र के पूजक होते थे। संहिताकालीन साहित्य के बाद का साहित्य तो इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि रुद्र या शिव की उपासना समस्त आर्यों में प्रचलित हो गई। पूजा का रूप उपासना ने ले लिया। रुद्र लोकप्रिय शिव के स्थान पर आ गये। आगे चलकर धार्मिक एवं दार्शनिक विचारों की प्रगति होने पर भी आदि देव शिव की उपासना यथावत् लोकप्रिय बनी रही। अनेक सम्प्रदायों के गर्भ में भी शिवभक्ति का मौलिक रूप चलता ही रहा। हां उपासकों के बाह्य साधनों में कुछ अन्तर आ गया। इसी से अनेक सम्प्रदाय पृथक पृथक रूप में बढ़ते रहे।

शैवोपासक शैव सम्प्रदायों में वीर शैव पाशुपत शुद्ध शैव काश्मीरी शैव मुख्य हैं। शैवों के रसेश्वर कालामुख कापालिक सम्प्रदाय भी प्रसिद्ध हैं। उन सब सम्प्रदायों का उल्लेख इस अभिलेख के प्रथम अध्याय में किया जा चुका है। इनके अतिरिक्त दार्शनिक आचार्य शंकर के अनुयायी दशनामी शैव कहलाते हैं। वीर शैव तथा पाशुपत सम्प्रदायों में अनेक उपसम्प्रदाय पाए जाते हैं।

वीर शैवों के उपभेद वीर शैव सम्प्रदाय के अनुयायी लिंग धारण करने से लिंगायत भी कहलाते हैं। इसकी चार मुख्य श्रेणियां जंगम शीलवन्त, बनजार तथा पंचमशाली हैं।[2] इसमें सभी वर्ग के व्यक्ति—गृहस्थ, योगी संन्यासी अथवा वैरागी पाए जाते हैं। संयम व तपस्या की न्यूनाधिकता के कारण संन्यासी भी चार प्रकार के माने गए हैं—कुटिचर बौद्धक हंस और परमहंस। इस मत में गुरुओं द्वारा प्रतिष्ठित विभिन्न सम्प्रदायों व उनके उप संगठनों की भी कमी नहीं है।[3]

---

१ अहिंसा सत्यशौचदयास्तिक्यादिचारित्र्याणि परिपालनीयानि

—नारद भक्ति सूत्र, ७८।

२ भण्डारकर-वैष्णविज्म एण्ड शैविज्म एण्ड अदर माइनर रिलीजन्स, पृ० १६६।

३ एच० एच० विल्सन—रिलीजन्स आफ दी हिंदूस, पृ० १६३-२८५।

पाशुपत शवो के उपभेद

वीर शव के समान ही पाशुपत शवा म भिन्न भिन्न गुरुग्रो द्वारा प्रवर्तित ग्रनक सम्प्रदाय हैं। पाशुपत, कालामुख ग्रौर कापालिक सम्प्रदाय गारखनाथ क द्वारा विकसित सम्प्रदाय म मिल गए। ग्रन गारखनाथ द्वारा प्रवर्तित सम्प्रदाय के ग्रनुयायी भी शव हैं। उक्त सम्प्रदाया के चिह्न उनम किसी न किसी रूप मे ग्राज भी विद्यमान हैं। गोरखनाथ द्वारा प्रवर्तित सम्प्रदाय बारह मुख्य शाखाग्रो म विभक्त है जो–सतनाथी, धमनाथी रामपथी नटश्वरी कन्हडी, कपिलानी वरागी, माननाथी ग्राइपथी, पागलपथी वजपथी ग्रौर गगानाथी नाम से प्रसिद्ध हैं।[1] इन सभी गारखपथियो को बारहपथी नाम से भी ग्रभिहित किया गया है। इनके ग्रतिरिक्त हाडी भरग कायिकनाथी पायलनाथी उदयनाथी, फीलनाथी चपटनाथी गनी या गाहिणीनाथी पापथी, निरजननाथी ग्रमर नाथी कु भीदासी तारकनाथी ग्रापापथी भृगनाथी ग्रादि सम्प्रदायो के उपासक भी शव हैं। पुरी क दण्डधारण करने वाले यागी लकुलीश शव हैं।[2]

सतनाथी शाखा के गोरखपथी कनफटा यागिया का शव पथो मे प्रमुख स्थान है। य शिव के कट्टर उपासक हैं ग्रौर ग्रपन का पाशुपत कहते हैं। धमनाथ ग्रौर लक्ष्मणनाथ के ग्रनुयायी शव हैं। लक्ष्मणनाथी पथ की दो उप–शाखाए—नटेश्वरी ग्रौर दरिया हैं। रावल या नागनाथी भी शव उपासक मान गए हैं। कपिलानी ग्रौर कालबलिया भी कनफट शवा से सम्बद्ध है।[3] शिव की उपासना करने के कारण ग्रोघड ग्रथवा सरभग सम्प्रदाय क साधु भी शव हैं।[4] शव साधुग्रा का एक विशिष्ट सम्प्रदाय ऊर्ध्वबाहु है। इनके समान ही ग्राकाश मुखी, सुखरास रवास ग्रौर उखरास, नखी तथा नागा भी शवोपासक हैं।[5]

शुद्ध शव तथा काश्मीरी शव

वीर शव ग्रौर पाशुपत सम्प्रदाय के उपसम्प्रदायो की भाति शुद्ध शव ग्रौर काश्मीरी शवा म बाह्याडम्बर न होन से उपभेद नही पाए जाते हैं। इनम ज्ञान भक्ति ग्रौर योग समन्वित साधना का ही महत्व है।

---

१ हजारी प्रसाद द्विवेदी–नाथ सम्प्रदाय पृ० १०।
२ वही, पृ० १३।
३ नरेन्द्रसिंह–नाथसिद्ध एक विवेचन, पृ० ३६।
४ डा० धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी–सतमत का सरभग सम्प्रदाय, पृ० २५।
५ एच० एच० विलसन–रिलीजन ग्राफ दी हिदूस पृ० १६३, २८५।

गोरखनाथ के समान शंकर भी चार प्रमुख शैव सम्प्रदायों के प्रवर्तक हैं जो क्रमश इस प्रकार हैं—दण्डी संन्यासी परमहंस तथा ब्रह्मचारी। इनके प्रमुख शिष्य पद्मपाद हस्तामलक सुरेश्वर तथा त्रोटक माने गए हैं जिनके दस शिष्य—तीर्थ, आश्रम

दशनामी

आरण्य पर्वत सरस्वती भारती पुरी गिरि वन और सागर हैं। ये सामूहिक रूप में दशनामी कहलाते हैं और उनके अनुयायी दशनामी संन्यासी कहलाते हैं।[1]

उपर्युक्त शैव सम्प्रदायों का स्मरण करते हुए यह कहना अनुचित न होगा कि शिव के उपासक और उपासकों द्वारा प्रतिष्ठित मत के अनुयायियों की संख्या कभी कम नहीं रही है। ये समस्त भारत में पाए जाते हैं। गोरखपंथी योगी दर्शनी व कनफटे दक्षिणी भारत के उत्तरी भाग में

शैवोपासकों का प्रसार

मध्यप्रदेश गुजरात महाराष्ट्र पंजाब गंगा के मैदान में तथा नेपाल में प्राप्त होते हैं। इनकी सन्तनामी शाखा जिसका मुख्य स्थान पुरी है के अनुयायी थानेश्वर करनाल और कुरुक्षेत्र में पाए जाते हैं।[2] धमनाथी सम्प्रदाय के अनुयायी गोदावरी के तट पर और गुजरात में मिलते हैं।[3] दरियापंथी शैव उत्तरी भारत तथा पंजाब सिंध कोहाट क्वेटा आदि में पाए जाते हैं। इनका प्रमुख स्थान उन्नरोनल है।[4] नटेश्वरी पंथी खुरासान काबुल, जलालाबाद तथा पेशावर में पाए जाते हैं।[5] वैरागी साधु मध्यभारत मालवा तथा अजमेर में मिलते हैं। बरार के अवधूत कनफटे प्रसिद्ध हैं। निजाम हैदराबाद में गोरखनाथियों की दो शाखाएँ देनर और रावल पाई जाती हैं। पूर्वी बंगाल की मस्या एवं एकादशी जातियाँ शैवोपासक हैं। अन्य योगी मथुरा वृन्दावन बनारस गया सीताकुण्ड आदि में भी पाए जाते हैं।[6]

काया मन और अध्यात्म के आधार से उपासक की तीन भूमिकाओं पर प्रतिष्ठित कर सकते हैं। इन पर उपासकों के स्तर भी

---

१ एच० एच० विल्सन–रिलीजन आफ दी हिन्दूस, पृ० १९३ २८८।
२ ब्रिग्स गोरखनाथ एण्ड दी कनफटा योगीज पृ० ६३।
३ वही, पृ० ६४।
४ वही पृ० ६५।
५ वही पृ० ३६।
६ वही, पृ० ५५।

उपासना की अनेक भूमिकाओ पर उपासक

भिन्न होते हैं इनमे विचरण करता हुआ उपासक एक दूसरे स उच्चतर होना है। उपासक के लिए शक्ति के विविध प्रकारा म भूमिकाओ का महत्त्व पूर्ण स्थान है। ये उपासक का उपास्य क समीप पहुँचाने वाली सीढीया हैं। एक के अनन्तर दूसर सोपान पर अधिष्ठित होता हुआ भक्त भक्ति क चरमोत्कर्ष को प्राप्त करता है। य भूमिकाए—कायिक, मानसिक और आध्यात्मिक भेद से तीन कहा जा सकती हैं। कायिक और मानसिक स्तर पर पुष्ट विवक और अनुभूति ही भक्ति रस म परिणत होकर अतुलित आनन्द प्रदान करती है। कायिक भूमिका का अनुभूति के उद्भव पोषण और अभिव्यजन म अनुपम सहयोग रहता है।

शवोपासक की कायिक भूमिका

कायिक भूमिका से उपासक की वेषभूषा आभूषण, अन्य चिन्ह आचार विवचनीय हैं। ब्रह्मवद ब्रह्म व भवति" उक्ति के अनुसार साधना की एकरसता मे उपासक इष्टदेव के अनुरूप हो जाता है। इष्टदेव का स्वरूप उसकी वेश-भूषा उपासक के आधार बन जाते है।

वेशभूषा

प्रत्यक शव सम्प्रदाय की वशभूषा आभूषण और सज्जा मे अपनी विशेषता है। फिर भी इनम समानता इतनी अधिक है कि साधारणत भिन्नता ज्ञात कर लेना आसान नही। साधा-रणत शवयोगी कमर के चारा ओर एक काली भेड की ऊन से बना हुआ रस्सा लपेटते है इसीम वे अपना कटिवस्त्र बाधत हैं। इसे अरवन्द लगोट नाम कहते हैं। इसके अतिरिक्त अधिकाश शव सार शरीर पर कुछ भी धारण नही करते। यह रस्सा मोटाइ म एक इ च या उसमे कुछ अधिक ही होता है जिसके एक सिरे पर काज व दूसर पर 'बटन" होता है। इसे आग की तरफ बाधा जाता है इस रस्स का हाल मतग भी कहा जाता हैं।[१] कुछ योगी गेरुआ चोला भी पहिनत है– इनकी मान्यता है कि शिव ने ही इस रग का वस्त्र पहनने का आदेश दिया था। कुछ योगी बहुधा सफेद पौशाक भी पहिनते हैं साधारणत इनमे स कुछ सिर पर सफेद पगडी भी बाधते हैं। सुखरास साधु टोपी तथा धाघरे के समान एक वस्त्र पहिनते हैं, मावाशमुखी साधु रगीन वस्त्र पहनने हैं मतनाथी सम्प्रदाय के साधु नाना

१ ब्रिग्स—गोरखनाथ एण्ड दी कनफटा योगीज, पृ० १२।

उपासको की वेशभूषा के साथ ही उनका आचार विचार-तत्त्व भी विवेचनीय हैं।

उपासक-आचार

भारतीय उपासना और आचार म गहन सम्बन्ध माना गया है। इसका आदश ऋग्वेद, उपनिषद् और सूत्रा म भी है। स्मृतियो के अनुसार आचार समस्त उपासना का परम ग्राहक मूल तत्त्व ही है।[1] आचारवान होकर उपासक सम्पूर्ण फला का अधिकारी हो सकता है। सामान्यत आचार के दो भाग हैं—साधारण आचार और शिष्टाचार। यह वर्गीकरण केवल सम्पादन विधि की सरलता के आधार पर किया गया है। साधारण आचार मे दनिक कम, व्यवहारिक नियम एव आश्रमिक कत्तव्या को सुव्यवस्थित करन वाला आचरण सम्मिलित है। शिष्टाचार इसके आग की वस्तु है। शिष्टाचार सेवी धमवती सदव वेदानुकूल माग का अनुसरण करता है। प्राय सभी आचार की महत्ता के साथ उसकी विशिष्टता भी रहती है। इस विशिष्टता का हतु उनका उपास्य है।

शवा के मान्य उपास्य शिव हैं उनम शिव के विभिन्न स्वरूपा की प्राय भिन्न रूप मे पूजा होती है। कनफटे योगियो का विशेष सम्प्रदाय लिंग के साथ सापो की भी पूजा करता है। बनारस मे नागकुआ है जिसम टेढी-मेढी सीढियाँ है। उसम तीन फणधारी सप की प्रतिमा है तथा आगन म लिंग के चारो ओर साप लिपटा हुआ हैं। यहा दोनो की पूजा होती है, इसी प्रकार वाराणसी म शिव की पूजा नागश्वर के रूप म तथा मध्यप्रदेश व हिमालय म रिमेश्वर अर्थात् सापा के दवता के रूप मे होती हैं।[2] कहन का तात्पय यह है कि शिव ही शवो के प्रधान दव हैं तथा उनकी उपासना आचार-विचार का प्रमुख आधार है। उपासना के स्वरूप पर ही साधारण आचरण और शिष्टाचार आधारित हैं। शुद्ध शवो तथा काश्मीरी शवोपासको म बाह्य आडम्बर नही मिलते। इनके नतिक आचार विचार प्राय अन्य शव सम्प्रदायो के समान ही हैं। वीर शवा म कुछ विशेष आचरण की मान्यता है।

वीर शवोपासकों के असामान्य आचार

वीर शव सम्प्रदाय म सामाजिक व धार्मिक जीवन म समानता तथा मठो की स्थापना पर विशेष बल दिया जाता है। इसम वर्णाश्रम धम का पूर्ण रूप से खण्डन किया गया है वरन और जाति के कारण समाज मे व्यक्ति व्यक्ति के बीच किसी भी प्रकार के भेद को स्वीकार नही किया गया

---

१ 'सवस्य तपसो मूलमाचार जगहु परम', मनु० १।१०।

२ गोरखनाथ एण्ड दी कनफटा योगीज, पृ० १३३-१३४।

गुरु प्रदत्त लिंग को तीर्थ क्षेत्र समझकर मुक्ति के लिए साधना करना इस मत म सवश्रेष्ठ माना जाता है। मन्दिर मे लिंग या मूर्ति की पूजा करना उनका मान्य नहा। ये लोग शिव गायत्री का भी जाप करते हैं, जिसम प्रथम दो पक्तियां ब्राह्मण गायत्री की तरह होती हैं और अन्त म 'तन शिव प्रचोदयात' होता है।[1]

वीर शवा के आचार क्षेत्र म जीवात्मा की शुद्धि के लिए अष्टावरण और पचाचार का भी महत्त्व है।

अष्टावरण—शिवत्व प्राप्त करने के सहायक तत्वो को अष्टावरण कहा गया है। ये आठ माने गये हैं—लिंग गुरु, जगम पादोदक-प्रसाद विभूति रुद्राक्ष और मत्र।

लिंग—प्रमुख अष्टावरण लिंग है। लिंग परमतत्व, सच्चिदानन्द स्वरूप शिव से है। लिंग तीन प्रकार के—भाव प्राण और इष्ट माने गये हैं। दीक्षा देते समय गुरु इन तीनो की स्थापना कारण, सूक्ष्म और स्थूल शरीर मे करता है। भक्त इष्ट लिंग को बाए हाथ म रख कर उसकी पूजा करता है जिससे प्राण लिंग का ज्ञान प्राप्त करता है और अन्त म भाव लिंग म अथवा परतत्व म अपना स्वरूप देखता है। लिंग के पश्चात शव सम्प्रदाय म गुरु का स्थान माना है।[2]

गुरु—दूसरा अष्टावरण गुरु है। गुरु तीन प्रकार के माने गए हैं—दीक्षा गुरु शिक्षा गुरु और मोक्ष गुरु। दीक्षा गुरु ही शिष्य को दीक्षा देता है। गुरु जीव को भक्ति मे लगाता है उसे पाप से बचाता है और उसकी रक्षा करता है। गुरु के समान ही वीर शवा म जगम पूज्य है।

जगम—जगम जीवन्मुक्त है। भक्त की आध्यात्मिक साधना म सहायता देते हैं। इनके तीन प्रकार माने गए हैं—स्थिर जगम चर जगम और पर जगम।[3]

---

१ फर्कुहर—आउटलाइन्स आफ दी रिलिजीयस लिटरेचर आफ इण्डिया, पृ० २६१।

२ डा० हिरण्मय—हिन्दी और कन्नड मे भक्ति आन्दोलन का तुलनात्मक अध्ययन, पृ० १०६।

३ डा० फर्कुहर—आउट लाइन्स आफ दी रिलीजियस लिटरेचर आफ इण्डिया, पृ० २६१।

पादोदक—यह पञ्चाचरण पादोदक है। गुरु और जंगम के पद धोए हुए पानी को पादोदक कहते हैं। यह त्रिगुणात्मक मन ध्यान में सहायक होता है। यह सभी रोगों का प्रहार है। इससे तन का और मन की शुद्धि होती है।

प्रसाद—निवेदन के लिए की शुद्धि गुरु या जंगम के लिए प्रसाद ग्रहण से होती है। यह पाँचवाँ पञ्चाचरण माना जाता है। इससे सब संस्कार का नाश होता है।

लिंग, गुरु, जंगम, पादोदक और प्रसाद के महत्त्व के समान ही विभूति[1], रुद्राक्ष[2] और मंत्र[3] का महत्त्व है। पञ्चाचरण के समान ही शैव मत में पंचाचार का महत्त्व है।

पंचाचार

जीवों के नैतिक पथ और नित्य कर्म से सम्बन्धित पाँच आचारों (सदाचार, गणाचार, क्रियाचार, शिवाचार, लिंगाचार) को पंचाचार कहा गया है।[4] पंचाचार—शुद्ध नैतिक जीवन बिताना सदाचार है। सत्य एवं धर्म की रक्षा करना गुणाचार, पूजा पाठ ध्यान वृत्त प्राप्ति नियम से करना नित्याचार, लिंग धारियों को साक्षात् शिव समझ कर आदर देना शिवाचार तथा यही निष्ठा के साथ लिंगधारण करके प्रतिदिन नियम से उसकी पूजा करना लिंगाचार कहलाता है।[5] गोरखपंथी शैवों की भी कुछ अपनी विशेषताएँ मिलती हैं। इनके आचार को दो कोटियों में रख सकते हैं—असामान्य आचार और सामान्य आचार जिसे रहनी भी कहते हैं।

गोरखपंथी उपासकों के असामान्य आचार

कर्णमुद्रा पहिनना कनफटे शैव योगियों का असामान्य आचार है। यह उनके वेश का अनिवार्य अंग है। उसका धारण उनका प्रमुख आचार है। यदि संयोगवश एक मुद्रा टूट जाती है तो योगी कपड़े अथवा सींग की मुद्रा पहनकर ही भोजन कर सकता है। मुद्रा के टूटने पर वह अपने साथियों से बात भी नहीं कर

---

१ देखिए प्रस्तुत निबन्ध पृ० १३३।
२ वही पृ० १३४।
३ वही पृ० ९३।
४ डा० हिरण्मय–हिन्दी और कन्नड़ में भक्ति आन्दोलन का तुलनात्मक अध्ययन पृ० १०८।
५ वही पृ० १०८।

सकता।[1] इसी प्रकार प्रात व सध्या काल की आराधना के पहले तथा भोजन के पूर्व जनऊ म बधा सिंगीनाद बजाना अनिवार्य माना गया है।

रहनी—गोरखपंथी शवा म आचार को प्राय रहनी' शब्द स द्योतित किया गया है। 'रहनी' क अनेकानेक नियमा म सत्य और अहिंसा का स्थान बहुत ऊचा है। इनम मादक द्रव्या का सवन वर्जित है[2] बाह्य आचार सम्बन्धी समस्त विश्वासा और पूजा विधाना का खण्डन किया गया है तथा ज्ञान का प्रधानता मिली है। इस प्रकार इन शव साधुओ म ब्रह्मचय सदाचार और नतिकता का पूरा पूरा समादर हुआ है तथा वयक्तिक आदश जीवन की पूरी प्रतिष्ठा हुई है। एसा ही महत्त्व शवा म सस्कार का है।

गोरखनाथी शव सम्प्रदाया म मनुष्य को, सयास ग्रहण करने से पूर्व, पुलिस थाने म जाकर सिद्ध करना होता है कि वह अपराधी नहीं है तथा वह स्वेच्छा स योगी बन रहा है। योग सम्प्रदाय म उसका सस्कार क्रमश दो सोपाना पर निभर करता है।

दीक्षा सस्कार

प्रथम सोपान म वह साधारण शिष्य रहता है तथा उसके नतिक सस्कारा पर ही बल दिया जाता है। इसके बाद ही वह दूसर सोपान पर पहुचते पूर्णत्व को प्राप्त करता है। उसक कान फाडन क सस्कार के बाद वह सम्प्रदाय का पूर्ण सदस्य माना जाता है। दीक्षा सस्कार के लिए प्राय पौष माघ' फाल्गुन आदि महीन अच्छ मान जाते है।[3]

कहन का अभिप्राय यह है कि उपासक कायिक भूमिका पर विचरण करता हुआ अनेक प्रकार स भगवद्भक्ति का आनन्द लाभ करता है। उसका हृदय ससार से विरक्त हो जाता है बुद्धि श्रद्धय के चरणा म स्थित हो जाती है और कर्मो का प्रवाह स्वत सत्क्रम की ओर प्रवाहमान होता है। आत्मे-त्यपासीन अर्थात् आत्मरूप स ही आत्मा की उपासना की सामर्थ्य प्राप्त कर लेता है। शुद्ध आचरण के परिणामस्वरूप उसका शुद्ध अन्त करण चिन्मात्र आत्मा का ज्ञान प्राप्त कर शोक रहित हो जाता है। वस्तुत धार्मिक आधार पर व्यक्तित्व का विकास ही प्रधान है जो मानसिक और भावनात्मक विकास का प्रथम सोपान है। अत यह कहना अनुचित न होगा कि वेशभूषा खानपान और आचार विचार स पुष्ट व्यक्तित्व ही उपासक की उपयुक्त दूसरी भूमिका (मानसिक भूमिका) का अवलम्ब है।

---

१ ब्रिग्स—गोरखनाथ एण्ड कनफटा योगीज, पृ० १८।

२ डा० धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी-सतमत का सरभग सम्प्रदाय प० १०८ ११०।

३ ब्रिग्स—गोरखनाथ एण्ड दी कनफटा योगीज पृ० २७।

शैवोपासक की मानसिक भूमिका

मानसिक भूमिका में उपासक का एक मात्र ध्येय जन्म मृत्यु तथा संसार चक्र के भेद दृष्टिरूपी मूल अज्ञान का नाश एवं ज्ञान साधना रह जाता है। आचारवान् पुरुष ही शास्त्र के रहस्य को ग्रहण कर सकता है। *शास्त्र-तात्पर्य निर्धारण के लिए* युक्ति तर्क और आस्था अनिवार्य है। निरन्तर अध्ययन मनन और चिंतन तथा सत्संग आदि मानसिक परिपुष्टता के लिए आवश्यक माने गये हैं। सामान्यत ज्ञान साधना रूपी वृक्ष के भिन्न अंग बीज रूप में विद्यमान रहते हैं। तो भी इनका विकास क्रमश होता है। यह विकास क्रम श्रवण, मनन निदिध्यासन और अखण्ड ब्रह्माकार-अपरोक्ष-वृत्ति के द्वारा तुर्यातुर्य आत्मदर्शन आदि क्रम में माना गया है। इनमें से प्रथम तीन को ज्ञान की अवस्था और चतुर्थ को साक्षात्कार की अवस्था कहा गया है।[1] इस प्रकार ब्रह्मरूपी परमार्थ सत्य की सिद्धि के लिए अनेक उपयोगी युक्तियों का दृष्टान्त सहित निरूपण एवं समाधान इसी भूमिका पर सम्पन्न होता है।

मानसिक भूमिका पर विचरण करता हुआ साधक, हृदय को भगवद् धाम बनाने के लिए विषयासक्ति और विषय दोनों का त्याग करता है। वह अखण्ड रूप से भगवान का प्रेमपूर्वक चिंतन और भगवद्भजन करता है। भक्ति शास्त्रों में भक्त की ज्ञानावस्था का अनेकश वर्णन प्राप्त होता है। ज्ञानोन्मुख जिज्ञासा ही क्रमश भक्ति के मधुर रस में परिणत होती है। ब्रह्मविद् ज्ञानियों की महिमा के वर्णन से उपनिषद् साहित्य आप्लावित है। बृहदारण्यक उपनिषद् में कहा गया है कि 'ब्रह्मवित् की महिमा ब्रह्म' के समान नित्य है। ब्रह्मवित् अथवा ब्रह्म में नित्य श्रद्धा रखने वाला शम, दम तितिक्षा उपरति तथा समाधान रूप-सम्पत्ति से युक्त होकर अपने अंत करण (बुद्धि) में आत्मसाक्षात्कार करता है। सम्पूर्ण संसार को अपना रूप जानता है।[2] *साधक आत्मा को सर्वश्रेष्ठ तथा परमानन्द स्वरूप मानकर आत्मा में क्रीडामग्न* रहता है। ब्रह्म से भिन्न संसार की सत्ता का नितान्त अभाव अनुभव करता है।

शैवोपासकों की आध्यात्मिक भूमिका

उपासक के ज्ञान की सर्वोच्च परमावस्था ही आध्यात्मिक भूमिका है। इस भूमिका को प्राप्त मन का चित्त रूपी भ्रमर अचंचल रूप में भगवान् के चारु चरण कमलों में लगा रहता है। वह भक्त भगवान् को छोड़कर कुछ नहीं चाहता। वह कातर कण्ठ से

---

१ स्वामी श्रीकृष्णानन्दजी सरस्वती-ज्ञान की सप्त भूमिकाएं (कल्याण माघ २९) पृ० ७६६।

२ बृहदारण्यक उपनिषद ४।४।२३।

बारबार भगवान मे उनके चरणो की रति ही चाहता है। श्री शकराचाय जगत जननी से प्राथना करते हैं—

> न मोक्षस्याकाडक्षा वरविभववा छापि च नमे
> न विज्ञानापेक्षा शशिमुखि सुखेच्छापि न पुन ।
> अतस्त्वा सयाचे जननि जनन यातु मम व
> मृडानी रुद्राणी शिव शिव भवानीति जयत ॥

देवी सम्पति के गुण भक्त का 'वाना बन जाते हैं। भक्ति रूपी सूय का उन्य होने पर प्रकाश रूप देवी सम्पति स्वत फल जाती है। भगवान का प्रेमपूवक चिन्तन भक्त का घम और भगवान के गुण उसकी जीवनपद्धति बन जाते हैं। वह भगवान के माधुय को ही देखता है सुनता है।

इस प्रकार उपासक क्रमश आत्मशुद्धि के पथ पर अग्रसर हो अपने चरमलक्ष्य को प्राप्त करता है। आत्मा विश्वात्मा की अनुभूति मे विलीन हो जाती है। उपासक और उपास्य ऐक्यावस्था को प्राप्त होते हैं। उपासक उपास्यमय हो जाता है।

निष्कष

निष्कष रूप मे यह कह सकते हैं कि शवोपासक अनेक वर्गो मे, आचरण की अनेक पद्धतियो म शिव की उपासना करते हैं। शव–उपासना म एक मात्र शिव ही उपास्य नही है। उनके परिवार के सदस्य भी शिव ही की भाति समादृत उपास्य हैं और ता और शिव के आभूपण वाहन स्थान आदि भी समान रूप से पूज्य बने हुए हैं। उसी से शिव भक्ति ने भारतीय साहित्य के अनेक रूपो विद्याओ आदि के निर्माण मे भी योग दिया है। मध्यकालीन हिन्दी कविता भी शव भक्ति के प्रभाव के सम्बन्ध मे शव मत के लिए कुछ कम आभारी नही है।

उपास्य

भक्ति के दूसरे अग मे उपास्य का स्थान है। शवों के उपास्य देव शिव हैं जो सर्वातीत, सवव्यापी, सवशक्तिमान और सवलोक महेश्वर हैं। व सत्–चित–आनन्दरूप परात्पर ब्रह्म एव सवदा सवगत्, अनन्त, विभु, नित्य निराकार और निगुण हैं। वे स्वरूपत एक होते हुए भी रूप और शक्ति के वविध्य से सम्पन्न है। वे भान स्वरूप, मायातीत हो कर भी अपने उपासको का माहन करते हैं। शिव का नाम, रूप गुण आदि भक्तो का परमाश्रय है।

नाम-नामी सम्बन्ध

नाम नामी तक पहुंचने का प्रधान साधन है। नाम से साध्य के गुण का परिचय मिलता है और साधक तद्गुण हो जाता है। इसीलिए नाम के जाप का महत्व है। नाम को कल्पवृक्ष कहा गया है।[1]

नाम का नामी से घनिष्ट सम्बन्ध है। नाम शब्द व्यंजक और नामी (परमात्मा) व्यंग्य है।[2] व्यंजक के अभाव में व्यंग्य की अभिव्यक्ति न होने से वह अविचित्कर रहता है। नामी की महत्ता नाम के आधीन होती है। इसी से निर्गुण निराकार ब्रह्म के भिन्न भिन्न स्वरूपों का ज्ञान होता है। नाम का सम्बन्ध नामी के कर्मों से है। इस प्रकार वस्तुत नाम और नामी में कोई भेद नहीं है। गीता में कहा गया है यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि[3] अर्थात् जप यज्ञ (नाम जप) स्वयं भगवान ही है। इसी आधार पर शवोपासकों ने भी अपने उपास्य शिव को उनके गुण कर्म के आधार पर अनेक नामों से अभिहित किया है।

शिव के नाम और उनकी मीमांसा

शव मत के अनेक ग्रन्थों में शिव के अनेक नाम प्रचलित हैं। उनमें से पांच प्रमुख नाम हैं। ईशान् तत्पुरुष अघोर वामदेव और सद्योजात हैं।[4] उपास्य के 'नाम करण' का श्रेय उपासक को है, वह भगवान के स्वरूप, गुण और रूप से विभोर हो, उनको अनेक नामों से अलंकृत करता है। शिव के नामों का इतिहास भी उनकी अनेक क्रीडाओं व गुणों का द्योतक है। समस्त जगत् के स्वामी होने के कारण शिव ईशान और निन्दित कर्म करने वालों को शुद्ध करने के कारण अघोर कहलाते हैं। उनकी स्थिति आत्मा में तत्त्व है, अत ये तत्पुरुष और विकारों को नष्ट करने के कारण वामदेव तथा बालक के समान परम स्वच्छ शुद्ध और निर्विकार होने के कारण सद्योजात कहलाते हैं। ब्रह्मा से लेकर स्थावर पर्यन्त सभी जीव पशु माने गए हैं, अत उनको अज्ञान से बचाने के कारण वे पशुपति कहलाते हैं।[5] शिव का एक नाम "महाभिषक"

---

१ "नाम कामतरु काल कराला" रामचरित मानस—बालकाण्ड, २६।३।

२ स्वामी करपात्री—नाम और नामी का अभेद, कल्याण अंक ८, वर्ष ७।

३ गीता—१०।२५।

४ शिवपुराण—शतरुद्रीय संहिता—अध्याय १।

५ य ईशे यो पशुपति पशूनां चतुष्पदामुत यो द्विपदाम्।
निष्क्रीत स यज्ञियं भागमेतु रायस्पोषा यजमानं सचन्ताम्॥
अथर्ववेद २।३४।१, ५।२४।१२, ११।२।१, ६।६।

नी है जा उपासका मे काफी प्रिय रहा है ।[1] लोकप्रियता दवता के रूप म प्रत्यक्ष शक्ति और देवत्व के उत्कर्ष के कारण "महादव' नाम से उनकी निर-तर उपासना हाती रही है । सहस्राक्ष" नाम उनकी प्रभुता का द्योतक है ।[2] प्रणव स्वरूप चन्द्रशेखर शिव महामान्य, परमपवित्र और परमाराध्य हैं। उनको पुष्टिवधन भी कहा जाता है, जो पुष्टि पोषण और तदनुग्रह शक्ति का द्यातक है । शिव अशुभ का दूर कर मुक्ति प्रदान करते हैं। य नीलग्रीव नीलशिखडिन त्र्यम्बक कृतिवासा गिरित्र गिरिचर गिरिशय क्षेत्रपति और वणिक आदि अनेक नामा से भी अभिहित किये जाते हैं ।[3]

शिव क नामा का अन्त यही नही हो गया है । विभिन्न गुणा क कारण उनका मृत्यु जय[4] त्रिनेत्र कृतिवासा[5] पचवक्त्र खण्डपरशु गगाधर[6] महश्वर, आदिनाथ कपाली पिनाकधारी[7] उमापति शम्भु और भूतश[8] भी कहा गया है। य प्रथमाधिप, विष्णु,[9] पितामह[10] आदि नामा से भी विख्यात हैं । अमर

---

१ ववन्दे देवमीशान सवज्ञ सवग प्रभुम — लिंग पुराण १६।६ ।

२ अस्त्रा नील शिखण्डेन सहस्राक्षेण वाजिना ।
रुद्रेणायक घातिना तेन मा समरामहि ।। अथववेद ११।२।७।

३ यजुर्वेद-शतरुद्रीय ।

४ ब्रह्मा अनेकबार ब्रह्म मे लीन होते हैं परन्तु शिव निगु ण मे लय होते हैं, अन्यथा अनेकबार मृत्यु का ही पराजय होता है । इसीलिए वे मृत्युजय कहलाते हैं ।

५ शिव गजचम धारण करते हैं अत उन्हें कृतिवासा कहा है ।

६ भगीरथ द्वारा प्राथना करने पर शिव ने गगा को अपने सिर पर धारण किया था । अत उन्हें गगाधर कहा जाने लगा ।

७ पिनाक नामक धनुष रखने के कारण पिनाकधारी या पिनाकी कहे जाते हैं ।

८ भत-प्रेत पिशाच आदि के आश्रयदाता होने के कारण इन्हें भूतेश कहा जाता है ।

९ पृथ्वी, अप, तज वायु व आकाश इन पाच महाभूतों मे तथा जड चत-न्यादि सम्पूर्ण सृष्टि में जो व्याप्त रहत हैं उन्हें विष्णु कहते हैं । यह गुण भगवान शिव में सदा विद्यमान है । अत शिव को विष्णु कहते हैं ।
—शिवसहस्रनाम १०६ ।

१० प्रथमा आदि पितरों के तथा इन्द्रादि देवों क पिता होन व ब्रह्मा के भी पूज्य होने से शिवजी पितामह नाम से विख्यात हैं ।

कोश में इनके अन्य अनेक नामों के साथ शम्भु ईश्वर, शर्व, मृड, श्रीकण्ठ शितिकण्ठ विरूपाक्ष धूर्जटि नीललोहित स्मरहर, व्योमकेश स्थाणु[1] त्रिपुरान्तक भावुक, भविक भव्य कुशल क्षेम आदि नामों का उल्लेख है।[2]

कहना न होगा कि शिव के अनेक नामों की पृष्ठभूमि में उनके रूप गुण, धाम, वाहन आयुध आदि को ध्यान रखना आवश्यक है। उनका उपासक के मनोविज्ञान की भूमिका के निर्माण में उनका प्रभाव पड़ता है जिसको हिन्दी साहित्य का इतिहास भी भुला नहीं सका है। हिन्दी के कवियों के मनोभावों की निर्मिति से इनके योग का याद रखने से ही भक्ति की मनोभूमिका का परिचय मिल सकता है।

नाम के समान शिव के रूप वर्णन भी वैदिक और उत्तर वैदिक साहित्य में मिलता है। ये समस्त जीवों की आत्मा एवं धर्माध्यक्ष रूप में उपासकों के श्रद्धेय हैं। वस्तुतः शिव ज्ञान और क्रिया रूप होने से विश्वरूप एवं बोध रूप हैं तथा साधक के संकल्प के कारण उनका सांकल्पिक रूप भी माना जाता है। उनकी आकृति वर्ण हस्त आयुध एवं वाहन आदि संकल्प भेद से भिन्न भिन्न हो जाते हैं। अतः भगवान शंकर के निराकार और साकार दोनों ही स्वरूप साधकों को प्रिय रहे हैं।

शिव रूप

शिव पुराण में शिव का निराकार रूप भी मिलता है शिव का नाम अष्टमूर्ति है। इन अष्टमूर्तियों के नाम इस प्रकार है—शर्व, भव रुद्र उग्र, भीम, पशुपति, महादेव तथा ईशान। ये ही अष्टमूर्तियाँ क्रमशः पृथ्वी जल

---

१ शम्भुरीशः पशुपतिः शिवः शूली महेश्वरः ॥ ईश्वरः शर्व ईशानः शंकरश्चन्द्रशेखरः ॥ भूतेशः खण्डपरशुर्गिरीशो गिरिशोमृडः ॥ मृत्युंजयः कृत्तिवासाः पिनाकी प्रमथाधिपः । उग्रः कपर्दी श्रीकण्ठः शितिकण्ठः कपालभृत्। वामदेवो महादेवो विरूपाक्षस्त्रिलोचनः ॥ कृशानुरेताः सर्वज्ञो धूर्जटिर्नीललोहितः हरः स्मरहरो भर्गस्त्र्यम्बकस्त्रिपुरान्तकः ॥ गंगाधरोऽन्धकरिपुः क्रतुध्वंसी, वृषध्वजः ॥ व्योमकेशो भवो भीमः स्थाणू रुद्र उमापतिः ॥
अमरकोश १।१।३०–३४।

२ श्वः श्रेयसं शिवं भद्रं कल्याणं मंगलं शुभम्।
भावुकं भविकं भव्यं कुशलं क्षेममस्त्रियाम्। शस्तं च —वही १।४।२६।

अग्नि वायु आकाश, क्षेत्रज्ञ, सूय और चन्द्रमा को अधिष्ठित किय है।[1] इनम ही समस्त चराचर का बोध होता है।

परात्पर ब्रह्म की पाच कलाए—आनन्द, विज्ञान मन प्राण और वाक् है। इन कलाओं के आधार पर भगवान शङ्कर के पाँच रूप माने जाते हैं। आनन्दमय रूप की मृत्युजय नाम से उपासना होती है, मृत्यु पर जय करने से उसका भय मन से हटा देने मे आनन्द प्रगट होता है इसी से शिव मृत्युजय कहलाते है। दक्षिणामूर्ति के द्वारा भगवान शिव की 'विज्ञान कला' की उपासना होती है, विज्ञान बुद्धि का नाम है इसी से दक्षिणामूर्ति 'वर्णमातृका पर प्रतिष्ठित मानी गई है। विज्ञान का आधार वर्णमातृका है। तीसरा मनोमय कला के अधिष्ठाता कामेश्वर शिव हैं। यह मूर्ति तन्त्रो म रक्तवर्ण मानी जाती है तान्त्रिको मे कामेश्वर मूर्ति की उपासना प्रसिद्ध है। पशुपति नीललोहित आदि नामो म प्रभु की प्राणमय मूर्ति की उपासना होती है। यह पचमुखी मूर्ति है। आत्मा पशुपति प्राणरूप पाश के द्वारा विकार—रूप पशुओ का नियन्त्रण करता है। पाचवी कला 'वाक' 'भूतेश नाम से उपास्य है। वाक अन्न और भूत—ये शब्द एक ही अथ के वाचक है। 'भूतेश' शिव अष्टमूर्ति मान जाते हैं।[2]

भयकर रूप

निराकार रूप के अतिरिक्त शिव के साकार भयकर और साम्य रूप की कल्पना भी साहित्य मे की गई है। भयकर रूप से उत्तरवैदिक साहित्य म शिव का कपाली रूप प्राप्त होता है। इस रूप का पुराणो मे रामायण महाभारत की अपेक्षा अधिक विस्तृत वर्णन है। इस रूप म शिव की आकृति भयावह है। वे कराल रुद्र हैं। उनकी जिह्वा और दष्ट्राए बाहर निकले हुए है, व सब प्रकार से

१ ॐ शर्वाय क्षितिमूर्तये नम
ॐ भवाय जलमूर्तये नम
ॐ रुद्राय अग्निमूर्तये नम
ॐ उग्राय वायुमूर्तये नम
ॐ भीमाय आकाशमूर्तये नम
ॐ पशुपतये यजमानमूर्तये नम
ॐ महादेवाय सोममूर्तये नम
ॐ ईशानाय सूर्यमूर्तये नम ॥—शिवपुराण वायवीय संहिता, अध्याय ३।

२ गिरधर शर्मा शिव महिमा-सक्षिप्त शिवपुराण—कल्याण अक, पृ० ५८०।

कोश म इनके अन्य अनेक नामो के साथ शलिन, ईश्वर, शकर मृड, श्रीकण्ठ शितिकण्ठ विरुपाक्ष धूर्जटि, नीललोहित स्मरहर, व्यामकेश स्थाणु[1] त्रिपुरान्तक, भावुक भविक, भव्य, कुशलक्षम आदि नामो का उल्लेख है।[2]

कहना न होगा कि शिव के अनेक नामो की पृष्ठभूमि म उनके रूप, गुण, धाम, वाहन आयुध आदि को याद रखना आवश्यक है। उनका उपासक के मनोविज्ञान की भूमिका के निर्माण में उनका प्रभाव पडता है जिसका हिंदी साहित्य का इतिहास भी भुला नहीं सका है। हिंदी के कवियो के मनोभावो की निर्मिति स इनके योग को याद रखने से ही भक्ति की मनोभूमिका का परिचय मिल सकता है।

शिव रूप

नाम के समान शिव के रूप वर्णन भी वदिक और उत्तर वदिक साहित्य म मिलता है। य समस्त जीवो की आत्मा एव धर्माध्यक्ष रूप म उपासको के श्रद्धेय है। वस्तुत शिव ज्ञान और क्रिया रूप होने से विश्वरूप एव बोध रूप हैं तथा साधक के सकल्प क कारण उनका साकल्पिक रूप भी माना जाता है। उनकी आकृति वर्ण, हस्त आयुध एव वाहन आदि सकल्प भेद से भिन भिन हो जाते हैं। अत भगवान शकर क निराकार और साकार दोनो ही स्वरूप साधको को प्रिय रहे हैं।

शिव पुराण म शिव का निराकार रूप भी मिलता है शिव का नाम अष्टमूर्ति है। इन अष्टमूर्तियो के नाम इस प्रकार है—शर्व भव, रुद्र उग्र, भीम पशुपति, महादेव तथा ईशान। य ही अष्टमूर्तियाँ क्रमश पृथ्वी जल

---

१ शम्भुरीश पशुपति शिव शूली महेश्वर ।। ईश्वर शर्व ईशान शकर श्च द्रशेखर ।। भूतेश खण्डपरशुगिरिशो गिरिशोमृड ।। मृत्युजय कृत्तिवासा पिनाकी प्रमथाधिप । उग्रकपर्दी श्रीकण्ठ शितिकण्ठ कपाल भृत। वामदेवो महादेवो विरुपाक्ष स्त्रिलोचन ।। कृशानुरेता सवज्ञो धूर्जटिनी लोहित हर स्मरहरो भगरस्त्र्यम्बकस्त्रिपुरान्तक ।। गगाधरो ध्रवकरिपु क्रतुध्वसी, वृषध्वज ।। व्योमकेशो भवो भीम स्थाणु रुद्र उमापति ।। अमरकोश १।१।३०–३४।

२ श्व श्रयस शिव भद्र कल्याण मगलशुभम । भावुक भविक भव्य कुशल क्षममस्त्रियाम । शस्त चा, —वही १।४।२५।

अग्नि, वायु आकाश, क्षेत्रन, सूय और चन्द्रमा को अधिष्ठित किय हैं।[1] इनम ही समस्त चराचर का बोध होता है।

परात्पर ब्रह्म की पाच कलाए—आनन्द विज्ञान मन प्राण और वाक् है। इन कलाओ क आधार पर भगवान शकर क पाच रूप मान जात हैं। आनन्दमय रूप की मृत्युजय नाम स उपासना होती है, मृत्यु पर जय करने से उसका भय मन से हटा देन स आनन्द प्रगट होता है, इसी स शिव मृत्युजय कहलाते हैं। दक्षिणामूर्ति के द्वारा भगवान शिव की 'विज्ञान कला की उपासना होती है विज्ञान बुद्धि का नाम है, इसी से दक्षिणामूर्ति 'वर्णमातृका पर प्रतिष्ठित मानी गई है। विज्ञान का आधार वर्णमातृका है। तीसरी मनोमय कला क अधिष्ठाता कामेश्वर शिव हैं। यह मूर्ति तत्रों म रक्तवर्ण मानी जाती है, तान्त्रिकों म कामेश्वर मूर्ति की उपासना प्रसिद्ध है। पशुपति, नीललोहित आदि नामो म प्रभु की प्राणमय मूर्ति की उपासना होती है। यह पचमुखी मूर्ति है। आत्मा पशुपति प्राणरूप पाश क द्वारा विकार—रूप पशुओ का नियत्रण करता है। पाचवी कला 'वाक्' 'भूतेश नाम स उपास्य है। वाक अन्न और भूत—य शब्द एक ही अर्थ के बोधक हैं। भूतेश' शिव अष्टमूर्ति मान जात हैं।[2]

भयकर रूप

निराकार रूप के अतिरिक्त शिव के साकार भयकर और सौम्य रूप की कल्पना भी साहित्य म की गई है। भयकर रूप से उत्तरवैदिक साहित्य म शिव का 'कपाली रूप प्राप्त होता है। इस रूप का पुराणो म रामायण महाभारत की अपेक्षा अधिक विस्तृत वर्णन है। इस रूप म शिव की आकृति भयावह है। वे कराल रुद्र हैं। उनकी जिह्वा और दष्ट्राए बाहर निकल हुए है, वे सब प्रकार से

---

१ ॐ शर्वाय क्षितिमूर्तये नम
ॐ भवाय जलमूर्तये नम
ॐ रुद्राय अग्निमूर्तये नम
ॐ उग्राय वायुमूर्तये नम
ॐ भीमाय आकाशमूर्तये नम
ॐ पशुपतये यजमानमूर्तये नम
ॐ महादेवाय सोममूर्तये नम
ॐ ईशानाय सूर्यमूर्तये नम ॥—शिवपुराण वायवीय संहिता, अध्याय ३।

२ गिरधर शर्मा शिव महिमा सक्षिप्त शिवपुराण—कल्याण अक, पृ० ५८०।

भीषण है।[१] वे वस्त्रविहीन हैं इसीसे इनको 'दिगम्बर' की उपाधि मिली है।[२] उनके समस्त शरीर पर भस्म का अवलेप किया हुआ है। इस कारण इनको भस्मनाथ भी कहा गया है।[३] ऐसी आकृति और वेशभूषा में वे हाथ में कपाल का कमण्डल लिए विचरते हैं।[४] इनके गले में नरमुण्डमाला है।[५] यह नरमुण्डमाला उनके कपालित्व को और अधिक व्यक्त करती है। श्मशान उनकी प्रिय विहारभूमि है।[६] यहीं से वे अपने कपाल और भस्म लेते हैं और यहां वे भूत पिशाच आदि अनुचरों के साथ विहार करते हैं। अनुचरों की आकृति भी ठीक शिव जैसी ही है।[७] एक दो स्थलों पर स्वयं शिव को 'निशाचर' कहा गया है। इस रूप में शिव को बहुधा 'कपालेश्वर' भी कहा जाता है। शिव के इस रूप की उपासना जनसाधारण में सामान्य रूप से प्रचलित नहीं थी। जनता का एक वर्ग विशेष ही शिव के कापालिक रूप का उपासक था, और है।

कालान्तरकाल में जब त्रिमूर्ति की कल्पना की गई तब शिव को विश्व संहारक का पद दिया गया तब उनको विश्व का स्रष्टा पालनकर्ता और संहारकर्ता माना जाने लगा। परन्तु जब उनकी संहारकर्ता के रूप में कल्पना की जाती थी, तब उनका वही प्राचीन उग्र रूप सामने आता था। पुराणों में इस रूप का बहुत विस्तार के साथ वर्णन किया गया है। शिव को उग्ररूप में क्रूर और भयावह महाविनाशकारी देवता माना गया है जिसका कोई विरोध नहीं कर सकता। इस रूप में इनको 'चण्ड' 'भैरव' 'महाकाल' इत्यादि उपाधियाँ दी गई हैं।[८] उनका रंग काला है वे त्रिशूलधारी हैं कभी-कभी उनके हाथ में एक टंक भी रहता है। वे रुद्राक्ष की माला पहिने रहते हैं ललाट पर नव चन्द्र सुशोभित रहता है।[९] मत्स्य पुराण में इस रूप में शिव को रक्तवर्ण, क्षपण 'भीम' और साक्षात् मृत्यु कहा गया है।[१०] इस रूप में उनके अनुचर

१ मत्स्य पुराण, ४७।१२७ अग्नि पुराण ३२४।१६।
२ वही १५५।२३ और ४१।६६।
३ वायु पुराण ११२।५३।
४ ब्रह्म पुराण, ३।७ मत्स्य पुराण ४७।१३७।
५ वायु पुराण २४।१४० वराह पुराण २५।२४।
६ वही
७ मत्स्य पुराण ८।५ ब्रह्म पुराण २८।३७।
८ मत्स्य पुराण—२५२।१० ब्रह्म पुराण ४३।६६, अग्नि पुराण ७६।५।
९ अग्नि पुराण ७६।७ और आगे।
१० मत्स्य पुराण ४७।१२८ और आगे।

दानव दैत्य, गन्धर्व और यक्ष हैं।[1] ब्रह्माण्ड पुराण में कहा गया है कि शिव ने अपने गुणों की सृष्टि स्वयं की थी और वे शिव के अनुरूप ही हैं। इससे शिव का रूप और स्पष्ट हो जाता है। अपने इस उग्ररूप में विश्व महत्ता होने के साथ भगवान शिव की कल्पना देवताओं और मनुष्यों के शत्रुओं के संहारक के रूप में भी की गई है। उग्र रूप के साथ साथ उत्तर वैदिक साहित्य एवं पुराणों में शिव के सौम्य रूप का वर्णन भी मिलता है।

सौम्य रूप ईश्वर में निष्ठा ईश्वर की दया तथा कृपा से मोक्ष प्राप्ति की भावना के विकास के कारण रुद्र के सौम्य रूप का विकास हुआ। रामायण में रुद्र का यही रूप प्राप्त होता है। वे वरदाता आशुतोष और दयानिधि हैं। उनकी कल्पना सतत् मानव जाति के कल्याणकारी और भक्तानुरूपी देवता के रूप में की गयी। वे नटराज हैं वे पार्वती पति हैं अर्धनारीश्वर रूप में शिव पार्वती की उपासना साथ साथ होती है। दोनों को दया की मूर्ति और सौम्य स्वभाव युक्त माना गया है। कैलाश उनका निवास स्थान है। उनके इसी रूप को लेकर स्तुतियाँ गायी जाती हैं।

शिव अत्यन्त सुन्दर आकृतिवाले गौरवर्ण त्रिनेत्र, अंग प्रत्यंग में विभिन्न आभूषणों तथा अगर कस्तूरी मनोहर कुंकुम के अंगराज से विभूषित और देवताओं से सेवित हैं। उनके अनुरूप ही पार्वती का रूप लावण्य भी स्त्री जाति में सर्वोत्तम माना है।

शिव के गण भी उनके साथ हैं। उनका रूप बड़ा विचित्र है—कुछ विकृतांग किन्हीं में मानव शरीर और पशुपक्षियों के सिर तथा किन्हीं के मानव सिर और शरीर पशुओं के हैं। ये गण वैदिक रुद्र के स्वरूप की स्मृति मात्र हैं। इस प्रकार लोक प्रचलित स्वरूप में शिव के दो रूप—भयंकर और सौम्य होगए। शिव के रूप की कल्पना के आधार पर उपासकों ने विभिन्न प्रकार की शिव मूर्तियों का निर्माण किया।

मूर्तियों में शिव रूप—शिव की मूर्तियों में मानवाकार लिंग मूर्ति, अर्धनारीश्वर और नटराज की मूर्तियाँ अधिक महत्वपूर्ण हैं।

मानवाकार प्रतिमाएं साधारणतः धातु की बनी होती हैं जिनमें शिव की सौम्य और रौद्र दोनों आकृतियाँ पाई जाती हैं, इन मूर्तियों

१ वायु पुराण २४।१०७।

मानवाकार मूर्तियाँ में शिव के चारों ओर पशु ... भक्ति और देवी भी हैं। शिव के क्रूर रूप की प्रतीक भैरव मूर्ति का सब में अधिक प्रचार है। इनमें शिव को दिगम्बर और सर्पावेष्ठित दिखाया गया है। ये मूर्तियाँ रुद्र के मृत्यु के देवता के स्वरूप की याद दिलाती हैं। इसी प्रकार अघोर मूर्तियों में शिव के कापालिक स्वरूप को दर्शाया गया है, इनमें वे नीलकण्ठ, कृष्णवर्ण और मुण्डमालाधारी दिखाए गए हैं।

लिंग मूर्तियाँ—लिंग मूर्तियों पर शिव की पूरी अथवा आंशिक आकृति बनी होती।

अर्धनारीश्वर मूर्तियाँ—इसी प्रकार अर्धनारीश्वर रूप की मूर्तियों में दायाँ भाग पुरुषाकार होता है जिसमें जटाजूट, सर्प, कमण्डल अथवा नरकपाल और त्रिशूल दिखलाए जाते हैं। बायें भाग में स्त्री रूप की सुसज्जित वेशभूषा होती है।

नटराज मूर्तियाँ—शिव का नटराज स्वरूप मूर्तिकारों को अधिक प्रिय है। इस रूप की मूर्तियों में उन्हें ताण्डव नृत्य करते हुए दिखलाया गया है। इनमें वे जटाधारी हैं, उनके चार हाथ हैं। वे ललाट पर चन्द्रमा तथा सिर पर गंगा को धारण किए हुए हैं। कहीं कहीं इस रूप में उनके पैरों के नीचे दानव का मर्दन करते हुए भी दिखलाया गया है।

अर्धनारीश्वर और नटराज की मूर्तियों के समान ही त्रिमूर्ति भी प्रख्यात है जिसमें ब्रह्मा और विष्णु को शिव के दोनों पक्षों में दिखलाया जाता है। अतः यह कहना अनुचित न होगा कि शिव की ये मूर्तियाँ वस्तुतः उनकी मान्यताओं के अनुरूप ही बनायी गयीं। इनमें शिव के पौराणिक स्वरूप का चित्र अंकित हुआ है। ये भक्त हृदय के साकार चित्र हैं। भक्ति मार्ग में इन मूर्तियों का अपना अलग स्थान है।

भक्त भगवान की सब विभूतियों को सद्भाव से देखते हैं। वे एक एक को प्यार न करके सब में अपनी भक्ति स्थिर करते हैं। इससे प्रेम सर्वत्र ही सर्वत्र व्याप्त हो जाता है। इस स्थिति में 'तदीयता' की प्रतीति होती है। प्रिय से सम्बन्धित सभी कुछ प्रिय है का अनुभव होता है। प्रिय के समान ही उनके परिवार व उनसे सम्बन्धित वस्तुएँ भी साधक को प्रिय बन जाती हैं।

शिव भक्ति मे उनके परिवार का भी बहुत महत्व है। शिव के नाम, रूप और गुण के विस्तार के समान ही उनके परिवार के सदस्या का विस्तृत वणन प्राप्त होता है। शिव की शक्ति के रूप म अम्बिका (पावती) का वणन वदिक काल से ही प्राप्त हाता है।

शिव परिवार

'इच्छा शक्ति रूपकुमारी' 'इस पाशुपत सूत्र' के प्रमाण से महादेव रुद्र की इच्छा शक्ति ही पावती हैं।" शिवस्य गृहियघिनो गृहिणी प्रकृतिर्दिव्या प्रजाश्च महदादय' के अनुसार प्रकृति महादेव की पत्नी मानी गई है। निरुलकार ने भी आत्मव सव देवस्य देवस्य' कहकर उपयुक्त भाव का अनुमोदन किया है। चन्द्रमा की एक कला का स्वन्पुराण म अमा' कहा गया है, यही दक्ष पुत्री सती मानी गई है वस्तुत पावतीनान, इच्छा एव क्रिया रूप म, शिव मे विद्यमान अहता शक्ति हैं। यह अन्तसा शक्ति ही स्पदित हाा पर पावती कहलाती हैं उनम ज्ञान, इच्छा, क्रिया आदि 'पव ग्रान से वे पववती' है।[1] यही क्रिया शक्ति हैं, जब तक यह इच्छा शक्ति रूप म हैं, तब तक सती कहलाती हैं और क्रियाशक्ति रूप मे परिणत होन पर पावती बन जाती हैं।

पावती

गह सूत्रा और धमसूत्रा तक उक्त पावती के स्वरूप का पर्याप्त विकास हो चुका था। रुद्र मूर्तिया की प्रतिष्ठापन विधियो के साथ साथ इनके पूजन की विधिया भी बतलाई गई हैं। इनका दुर्गा आया, भगवती देवसकीर्ति आदि उपाधिया भी दी गयी। यह देवी देवताओ द्वारा भी स्तुत्य थी। महाबली, महायोगिनी शस्त्रधारिणी आदि उपाधिया के साथ ही इन्हे महापृथ्वी उपाधि भी दी गयी। इनकी मनोगमा' उपाधि से विकासमान स्वरूप का ज्ञान भी प्राप्त होता है। महावष्णवी' उपाधि से ज्ञात होता है कि यह देवी रुद्र की शक्ति मानी जाती थीं और उपनिषदा की शक्ति से इसका तादात्म्य हो गया था।

यह शक्ति शिव के काय म विभिन्न अवसरो पर विभिन्न रूप धारण करती है। इसी को परा' अथवा 'परमशक्ति' कहा गया है जो सवत्र व्याप्त है और 'मामिन्' 'महेश्वर की माया है। जगत् की नियन्त्री सवशक्तियो की

1 सर्वदशनाचाय तत्व चितक स्वामी–अनन्त श्री अनिरुद्धाचाय वेंकटाचाय महाराज रुद्र–देवता–तत्व–कल्याण का संक्षिप्त शिव पुराण अक, पृ० ५७३।

जननी, विश्वमाता और कल्याणकारिणी आदि कह कर इसकी आराधना की गई है। इसको सच ही 'शिवप्रिया' मान कर स्मरण किया जाता है।[1]

ब्रह्मवैवर्त पुराण के दुर्गाकाण्ड में देवी के सौम्य और भीषण रूप का सम्मिश्रण अत्यन्त स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। वायु पुराण में देवी के श्वेत और कृष्ण दो वर्ण माने गये हैं। ये उनके दो रूपों के प्रतीक हैं। पार्वतीरूप में उपासना के समय उनका वर्ण श्वेत और भयावह रूप की उपासना में उनका वर्ण कृष्ण माना गया। देवी की उपासना का विशेष दिवस दुर्गा-नवमी अथवा महानवमी के नाम से विख्यात है।

सिन्धु घाटी के निवासियों का वैदिक आर्यों के साथ सम्मिश्रण होने पर रुद्र ने सिंधुघाटी के देवता को आत्मसात् किया और रूद्र देवता का रुद्र की पूर्व सहचरी अम्बिका के साथ तादात्म्य हो गया और वह रुद्र की पत्नी मानी जाने लगी। रामायण महाभारत काल में शैवधर्म के साथ प्रचलित रूप में शिव की पत्नी-पार्वती की उपासना का आरम्भ हुआ। इनमें पार्वती की उपासना स्वतंत्र रूप से भी प्राप्त होती है। इस देवी को समस्त विश्व की परम साम्राज्ञी और शिव के क्रूर रूप में भी उसकी सहचरी माना गया है। इस प्रकार हमारे आलोच्य काल तक पार्वती के स्वरूप का पूर्ण विकास हो चुका था। साहित्य जगत् में वह शिव की शक्ति स्वरूपा सदैव उनके वाम अंग में विराजने वाली और उनके समान ही समादृत है। स्कन्द की माता भी यही मानी जाती है।

स्कन्द

स्कन्द शिवात्मज हैं। वे अपर्णा, गंगा गणाम्बा तथा कृत्तिकाओं के भी पुत्र माने जाते हैं। उन्हें अग्निपुत्र भी कहा जाता है। वे विशाख शाख और नैगमेय नामक तीनों भाइयों से सदा घिरे रहते हैं। उनके छः मुख हैं इसलिए वे षडानन भी कहलाते हैं। वे इन्द्र विजयी इन्द्र सेनापति तथा तारकासुर को पराजित करने वाले हैं अपनी शक्ति से मरु आदि पवनों का छेदन करने वाले तथा कंचन-कांति वाले हैं। उनके नेत्र प्रफुल्ल कमल के समान सुन्दर हैं। कुमार नाम से प्रसिद्ध वे, सुकुमारों के रूप के सार से बड़े उदाहरण हैं। शिव प्रिय शिवानुरक्त स्कन्द नित्य प्रति शिव चरणों की वन्दना करते हैं।[2]

---

१ (क) डा० यदुवंशी शैवमत, पृ० ५३।

(ख) कल्चरल हेरीटेज आफ इण्डिया, पृ० १०।

२ शिवपुराण-वायवीय संहिता ३१।७० ७१ ७२ ७३,७४।

स्कन्द के अतिरिक्त शिव के द्वितीय पुत्र गणेश हैं, जिनका मुख मत्त गजानन का सा है। गगा और उमा दोनो ही इनकी माताए मानी जाती हैं। आकाश इनका शरीर है, दिशा भुजाए हैं तथा चन्द्रमा, सूय और अग्नि इनके तीन नेत्र हैं। ऐरावत आदि दिव्य दिग्गज नित्य इनकी पूजा करते है। इनके मस्तक से शिव ज्ञान मद की धारा बहती रहती है। ये देवताओ के भी विघ्न का निवारण करते हैं और असुर आदि के कार्यों म विघ्न डालते रहते हैं।[1]

गणेश

शिव की लीलाए भी उन्ही के समान मोहक एव उपासक-सुखद हैं।

शिव अनादि एव स्वतत्र हैं, किन्तु वे लीलाधर भी है। व स्वेच्छा से अनेक लीलाए करते हैं और इन्ही लीलाओ के सम्बन्ध से उनके अनेक विग्रह–प्रसिद्ध हैं। विग्रहधारी महेश्वर ने ब्रह्म की स्तुति से, सती को ग्रहण करने के लिए प्रथम बार लीला विग्रह धारण किया।

शिवलीला

आश्विन मास की नवमी तिथि को भगवान शिव ने, राजा दक्ष की पुत्री सती को प्रत्यक्ष दशन दिया। वे सर्वाङ्ग सुदर और गोर वण थे उनके पाच मुख थे और प्रत्यक मुख म तीन नेत्र थे। वे प्रसन्न चित्त थे, उनके कण्ठ मे नील चिन्ह दृष्टि-गोचर हो रहा था। शिव के हाथो म त्रिशूल ब्रह्म-कपाल, वर तथा अभय सुशोभित थे, भस्ममय शरीर था, गगा उनके मस्तक पर शोभा बढा रही थी। इस प्रकार ब्रह्म की स्तुति के कारण शिव ने प्रथम बार यह विग्रह स्वरूप धारण किया।[2]

शिव-सती लीला

इसी लीला के प्रकरण मे शिव ने चत्र मास के शुक्लपक्ष की त्रयोदशी को पूर्वा फाल्गुनी नक्षत्र मे सती से विवाह किया।[3] तदनन्तर इसी प्रसग म दक्ष–यज्ञ के समय, दक्ष द्वारा पापदा को शाप और रुद्र के तेज के प्रभाव से कुपित नन्दीश्वर का शाप तथा स्वय शिव का वहां प्रस्तुत होकर नन्दीश्वर को समझाना आदि अनेक लीलाओ का महत्वपूण स्थान है।[4] सती का अपने पिता राजा दक्ष के यहाँ अनामन्त्रित जाना, शिव के अपमान के कारण योगाग्नि म

---

१ शिवपुराण–वायवीय सहिता, ३१, ६७,६८,६९।

२ शिव पुराण–रुद्र सहिता–अध्याय १७।

३ वही, अध्याय १८।

४ वही, अध्याय २६।

भस्म होना तथा वीरभद्र द्वारा यज्ञ विध्वंस आदि भी महत्वपूर्ण प्रकरण हैं।[1]

शिव लीला का दूसरा प्रकरण पार्वती जन्म से आरम्भ होता है।

पार्वती प्रसंग से शिव लीला

सती राजा दक्ष के यज्ञ में योगाग्नि द्वारा भस्म होकर, हिमवान के घर उत्पन्न हुईं। उन्होंने शिव को पति रूप में प्राप्त करने के लिए घोर तपस्या की।[2] इसी प्रसंग में देवताओं द्वारा तारकासुर वध के लिए शिव की स्तुति,[3] काम दहन[4] और शिवविवाह[5] आदि लीलाओं का उल्लेख भी प्राप्त होता है।

इसी लीला के प्रकरण में शिव का नटराज रूप भी प्राप्त होता है।

नटराज रूप

पार्वती की प्रार्थना पर शिव ने लाव लीला का अनुकरण करना स्वीकार किया। भगवान् शम्भु नट का रूप धारण कर मेनका के पास गए और इस वेश में उन्होंने मेनका तथा वहाँ उपस्थित अन्य स्त्रियों सम्मुख नृत्य किया और नाना प्रकार के मनोहर गीत गाए शृंग और डमरू को बजाया तथा अनेक लीलाएं कीं। नृत्य के उपरान्त मेनका ने बहुत से सुंदर रत्न देने चाहे पर नटराज ने उन्हें स्वीकार न कर भिक्षा में उनकी पुत्री शिवा को माँग की। नटराज की यह माँग सुनकर मेनका और हिमवान् बड़े क्रोधित हुए और उन्होंने सेवकों को आज्ञा दी कि नटराज को बाहर निकाल दिया जाय। नटराज विशालकाय अग्नि की भाँति उत्तम तेज से प्रभायुक्त थे, उनको कोई बाहर न निकाल सका।[6] तदनन्तर भगवान् शिव ने शैलराज को अपना अनन्त प्रभाव दिखाना प्रारम्भ किया।

इसी प्रकरण में यह भी बताया गया है कि शिव ब्राह्मण का वेश धारण कर हिमवान् के यहाँ गए और अपना परिचय ज्योतिषि

ब्राह्मण रूप

वृत्ति धारी ब्राह्मण कह कर दिया।[7] इसी प्रकार शिव विवाह और शिवा के साथ अनेक लीलाओं का उल्लेख भी प्राप्त होता है।

---

१ शिव पुराण—रुद्र संहिता—अध्याय २८,२९,३२।
२ वही अध्याय ६, ९,१०,११।
३ वही, अध्याय १४,१५,१६,।
४ वही अध्याय १८–१९।
५ वही, अध्याय २४, ४१–४३।
६ वही अध्याय ३०।
७ वही, अध्याय ३१।
८ वही, अध्याय ३१।

हनुमान रूप — हनुमद्रूप से शिव ने अनेक लीलाएं की हैं। 'राम' के कार्य के लिए अंजना के गर्भ से वानर शरीर धारण कर उत्पन्न हुए, उनका नाम हनुमान रखा गया।[1]

किरात रूप — अर्जुन की स्तुति से प्रसन्न होकर, शिव किरात रूप में प्रकट हुए।[2] इस रूप में उन्होंने वस्त्र खण्डों से ईशानध्वज बांध रखा था, शरीर पर श्वेत धारियां चमक रही थीं, कमर में बाणों से भरा हुआ तरकस बंधा था और वे स्वयं धनुष बाण धारण किए थे। इन किरातवेशधारी शिव ने अर्जुन को महान अस्त्र दिया।

शिव अवतार — शिव पुराण की शतरुद्रसंहिता में, भगवान् शिव के सद्योजात, वामदेव, तत्पुरुष अघोर और ईशान नामक पांच अवतारों का वर्णन प्राप्त होता है।[3] सृष्टि के आदि में शंकर 'कामदा' मूर्ति में प्रविष्ट होकर अर्धनारी-नर रूप में प्रकट हुए। उन्होंने ब्रह्मा की स्तुति से प्रसन्न होकर, सृष्टि के निर्माण के लिए अपने शरीर के अर्द्ध भाग से शिवा को पृथक किया।[4]

इसी प्रकार शिव के सुतार,' सुहोत्र कंक' तथा 'लोकाक्षि जैगीषव्य,' दधिवाहन 'ऋषभ आदि अवतारों का वर्णन प्राप्त होता है। वे 'तप' नाम से लम्बाक्ष केशलम्ब प्रलम्बक और लम्बोदर आदि पुत्रों के पिता माने गए हैं। उनके अत्रि, महामुनि बलि गौतम वेदशिरा गोकर्ण गुहावासी, शिखण्डी, माली, दारुक, श्वेत, शूली, दण्डधारी, लकुली आदि अवतार भी माने गए हैं।[5] भगवान् शिव का नन्दीश्वर रूप में अवतार बड़ा प्रसिद्ध है। यज्ञवेत्ता मुनि शिलाद जिस समय यज्ञक्षेत्र जोत रहे थे, उसी समय, यज्ञ से पूर्व, शिव के शरीर से नन्दीश्वर का जन्म हुआ। ये ही नन्दी अनन्य तप करके शिव के गणाध्यक्ष बने।[6]

१, शिव पुराण —रुद्र संहिता, अध्याय १९–२०।
२ वही, अध्याय ४०–४१।
३ वही, अध्याय १।
४ वही अध्याय २–३।
५ वही, अध्याय ४।
६ वही, अध्याय ६–७।

निष्कर्ष

ईश्वर सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में व्याप्त है। सृष्टि, स्थिति संहार, तिरोभाव और अनुग्रह आदि कृत्यों का अस्तित्व उसी में नित्य भाव से है। ब्रह्मप्रत्यक्ष रूप में प्रकट होकर, सृष्टि संचालन के कार्यों में असत्य और अमंगल का हनन करता है और अनादि अप्रत्यक्ष रूप में भी इन पाँचों कृत्यों का निर्वहण करता है। शवमत में यह जगत् शिव का क्रीडास्थल है। वह अपनी लीला के प्रसार द्वारा ही जगत् का आविर्भाव और तिरोभाव करता है। यह जगत् उसकी स्वतन्त्र लीला का ही परिणाम है। उनका नृत्य भी उक्त पाँचों क्रियाओं को उपस्थित करता है। डमरू की ध्वनि से सृष्टि का आरम्भ, वरदहस्त से संरक्षण अग्नि से संहार तथा उठे हुए कदम से निर्वाण माना गया है। शिव के नृत्य से जीवात्मा के पाप नष्ट होते हैं मायारूपी अन्धकार हटता है और उनकी कृपा से क्रम ज्योति का उज्ज्वल प्रकाश होता है। जीव शिव की कृपा से अनुप्राणित हो, मंगल-कामना से आध्यात्मिकता की ओर उन्मुख होता है।

सारांशत कहा जा सकता है कि भगवान् का सौन्दर्य-सार-सर्वस्व, श्रुति शास्त्रों का एक मात्र लक्ष्य है। उपासक उसी विग्रह के चरणों के चिन्तन में लीन रहा करते हैं। यह विग्रह अत्यन्त निर्मल है यही भक्त और भगवान् के सामीप्य को प्राप्त करने के लिए सेतु है। उपासक उपासना का आधार लेकर इस सेतु से भवसागर के पार उतरता है भगवान् के विग्रह स्वरूप में तल्लीनता प्राप्त करता है। उपासना उपासक और उपास्य को मिलाने का प्रमुख साधन है।

उपासना

भक्ति क्षेत्र में उपासक और उपास्य के सामीप्य का एक मात्र साधन उपासना है। उपासक और उपास्य का निरूपण करते समय इसको कदापि भुलाया नहीं जा सकता। यह परमेश्वर के स्वरूप से साक्षात्कार कराने का सरल उपाय है। अतएव परमात्म तत्व का अभेदात्मक भाव से चिंतन ध्यान और उसके सान्निध्य से प्राप्त आनन्द ही सर्वोत्तम उपासना अथवा भक्ति है। ~

भक्ति (व्युत्पत्ति एवं अर्थ)

भक्ति शब्द 'भज (सेवायाम्) धातु में क्तिन्' प्रत्यय लगा कर बनाया है। भक्ति का अर्थ है भगवान की सेवा करना। सेवा का आलंबन कोई भी हो सकता है पर जिस अर्थ में इसका प्रयोग जन सामान्य में प्रचलित है उसका अभिप्रेत आलंबन 'ईश्वर' है। अत भक्ति अनन्त श्रद्धेय के चरणों में प्रसूत अगाध पवित्र और उज्ज्वल प्रेम की धारा है। यह मान्यता श्रद्धा और विश्वास

से युक्त अनुरक्ति है जिसे ऐश्वयपरा के नाम से अभिहित किया गया है। ऐश्वय का अ । है ईश्वर का भाव, अत भक्ति ईश्वर भाव प्रधानता का नाम है। इसे 'आमैक्परा'[1] भी कहा गया है। भक्ति शुद्ध रागात्मिका वृत्ति होने से ह्लादिनी शक्ति की एक विशेष वृत्ति है। इससे मन म विनय और दय की सृष्टि होनी है। इस प्रकार मन को भगवान म पूण रूप से केंद्रित करके किसी फल की इच्छा किय बिना उसका निर तर भजन करना ही भक्ति है।[2] भक्ति धम साधना का भावात्मक अथवा रसा मक विकास है।[3]

भक्ति प्रयोग-क्षेत्र इस धम साधना की सेवा आराधना पूजा ध्यान उपासना आदि अनेक नामा से अभिहित किया जाता है। यही अचना व दना भजन रूप म भक्ता के हृदय को रसमग्न करती है।

भारतीय भक्ति का क्रमश विकास हुआ है। अतएव उसका एक पृथक इतिहास भी है जो हम भक्ति के अनेक मोडो को समझने म सहायता देता है।

भक्ति का इतिहास भक्ति का इतिहास मानव अन्तर्जीव के विकास का इतिहास है। इस विकास की दिशा म भारतीय समाज की प्रकृति ब डी गौरव मयी है। यह भारतीय संस्कृति क विकास का मनोवैज्ञानिक पक्ष है। इसका बीज वदिक साहित्य म ही उपल ध होता है। आय जाति ने सम्पूण जगत् म काय करने वाली शक्ति को देवा के रूप मे ग्रहण किया था जिनसे सम्बधित आत्मविभोर करने वाले वेद मत्रा का पढ कर सच्ची भक्ति की अनुभूति न करना असम्भव है। मत्र-काल म ही ब्रह्मरूप' मे ऐसी शक्ति की भावना की गई जिसम अग्नि वायु वरुण इद्र आदि देव ताओं के रूप म अहित, भिन्न भिन्न शक्तियों का समाहार था।[4] 'ब्रह्म' नाम से वाच्य परम शक्ति और उस शक्ति की नाना रूपा म अभिव्यक्ति भक्ति के आधार बने।

भक्तिमाग का शिलान्यास वस्तुत आरण्यक और उपनिषदा क उपासना काण्ड म हुआ, यहाँ यह ज्ञान काण्ड का ही अग रहा। ज्ञान काण्ड के दो भाग माने गये है—एक निवृत्ति परक और दूसरा हृदय पक्ष समन्वित कमपरक।[5]

---

१ शाण्डिल्य भक्ति सूत्र —३०।

२ भक्तिरस्य भजन एतादिहापुत्रोपाधिनेराश्येना-मुष्मिन मन कल्पनम। ई
गोपाल पूर्व तापनी उपनिषद २ १।

३ रामचन्द्र शुक्ल-सूरदास, पृ० ४५।

४ डा० हरवशलाल शर्मा-सूर और उनका साहित्य, पृ० ३३५।

५ वही, पृ० २५।

कम म हृदय तत्त्व को प्राधान्य मिलने पर बुद्धि और हृदय का स्वाभाविक रूप से सचालन प्रारम्भ हुआ। उपनिषद् काल म भक्ति का स्वरूप और स्पष्ट हुआ। वदिक काल के रुद्र पशुपति महादेव और शिव नाम से तथा विष्णु नारायण वासुदेव और कृष्ण आदि नाम से उपास्य बने। उपनिषदो के पर्यालोचन से ज्ञात होता है कि ब्रह्म बोध के लिए न केवल ज्ञान माग अपितु उपासना भी आवश्यक है। श्वेताश्वतर उपनिषद् मे 'अनुग्रह' सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया है। इसी स प्रपति सिद्धान्त की उत्पत्ति मानी गई है। इसम प्रतिष्ठित शैव भक्ति की पद्धति पर चलने वालो की सख्या बढती गयी। वस्तुत यह माग वदिक उपासना और अचना पद्धति का ही विकसित स्वरूप था।[1] इस प्रकार असदिग्ध रूप से यह कहा जा सकता है कि भक्ति का अत्यन्त स्वाभाविक एव सवग्राह्य विकास वदिक युग मे हुआ। यह भक्ति का प्रथम उत्थान है।[2] ब्राह्मण काल के याज्ञिक अनुष्ठानो तथा औपनिषदिक निवृत्तिपरता एव ज्ञानवाद मे भी यह धारा क्षीण रूप स बनी रही। भक्ति का द्वितीय उत्थान परिस्थितियो की स्वाभाविक प्रवृत्ति के अनुसार गीता म दिखलाई पडा।

गीता ने वदिक हिंसा को यज्ञपरक काम्य कम के स्थान पर अनासक्ति पूण कतव्य कम की स्थापना की तथा निवृत्ति परायण ज्ञान काण्ड के स्थान पर प्रवृत्ति परायण भगवद् भक्ति को स्थान दिया।[3] गीता द्वारा अवरोध पाकर कुछ समय के पश्चात् फलाकाक्षा समन्वित वदिक कमकाण्ड फिर बल पकडने लगा जिसके विरोध मे जन और बौद्ध आदि सम्प्रदायो का प्रचार हुआ। इन मतावलम्बियो ने ग्रीक प्रभाव म आकर मूर्तिया और मदिरो की स्थापना की। यही भक्ति का तृतीय उत्थान है।

ईसा पूव छठी शताब्दी से लेकर ईसा की तीसरी शताब्दी तक भारत वष म बौद्धमत का पूण साम्राज्य रहा। बौद्धो ने भक्ति से समझौता कर महायान सम्प्रदाय की स्थापना की। गुप्त वशीय सम्राटो की छत्रछाया में भागवद् धम का प्रचार हुआ। इसी युग म पाच रात्र सहिताओ का निर्माण हुआ।[4] ईसा की दूसरी शताब्दी से छठी शताब्दी पयन्त अनेक पुराणो का

१ डा० हिरण्मय-हिन्दी और कन्नड मे भक्ति आदोलन का तुलनात्मक अध्ययन पृ० ९२।
२ डा० मुशीराम शर्मा भारतीय साधना और सूर साहित्य, पृ०२८।
३ हरवश लाल शर्मा-सूर और उनका साहित्य पृ० ६८।
४ डा० मुशीराम शर्मा भारतीय साधना और सूर पृ० ३२।

सृजन हुआ। पौराणिक धर्म पूववर्ती भागवत् धर्म का ही एक नव परिवर्द्धित रूप था जिसमें एक ओर भक्ति भावना को प्रमुख स्थान दिया गया और दूसरी ओर उसमें ऐसे तत्वों का निर्माण हुआ जिससे वह जैन और बौद्ध धर्म की प्रतिस्पर्धा मे टिक सके। जहाँ भक्ति के सैद्धान्तिक स्वरूप का विकास सूत्र ग्रन्थों में हुआ वहा उसके व्यावहारिक रूप के विकास का प्रयत्न पुराण साहित्य के द्वारा हुआ। ईसा की आठवीं नवीं शताब्दी तक पौराणिक[1] धर्म का विकास हो चुका था।

भारतीय संस्कृति के विकास के इतिहास में शंकराचार्य का अस्तित्व एक युग परिवर्तनकारी घटना है, जब कि जैन, बौद्ध आदि वेद विरोधी मार्गों की बौद्धिक स्वतन्त्रता समाप्त हो चुकी थी। सारा देश अनेक प्रकार के धार्मिक सम्प्रदायों में विभक्त हो चुका था तथा परम्परागत दोषों से जर्जरित होकर वैदिक धर्म तेजोहीन हो गया था, ऐसे समय में शंकराचार्य ने एक ओर प्राचीन औपनिषदिक धर्म की पुनः स्थापना की, दूसरी ओर वेद विरोधी विचारधारा के नाम पर पनपने वाले कुतर्कमूलक आवेश को रोक कर आध्यात्मिक दर्शन का प्रतिपादन किया। जिनके कारण देश के आध्यात्मिक, जीवन में नवीन शक्ति का संचार हुआ।[2]

शंकर के आविर्भाव के पूर्व तमिलनाड में शैवभक्त 'नायनमारों' और वैष्णव भक्त आलवारों ने अपनी भक्ति की गंगा प्रवाहित करदी थी। अतः शैव और वैष्णव भक्तों की प्रेममूलक भक्ति भावना का स्रोत शंकराचार्य के माया वादी प्रस्तरखण्ड का भेद कर निर्झरिणी की भांति फिर प्रवाहित हुआ।[3] शंकर के अद्वैतवाद की प्रतिक्रिया के रूप में वैष्णव आचार्यों ने संगठित रूप से आन्दोलन चलाया। इनमें सर्वप्रथम आचार्य नाथमुनि ही माने गए जो नवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में हुए। इनके भक्तिप्रधान संगठन के कार्य को यामुनाचार्य ने आगे बढ़ाया यामुनाचार्य नाथमुनि के पौत्र थे। इन दोनों के द्वारा भक्ति की रूप रेखा बनायी जा चुकी थी।[4] इस रूपरेखा को व्यवस्थित करने एवं देश व्यापी प्रचार करने का श्रेय रामानुजाचार्य को है। इनके द्वारा प्रतिपादित

---

१ प्रो० शिवकुमार-हिन्दी साहित्य युग और प्रवृत्तियां, पृ० ६२।

२ डा० हिरण्मय-हि० ओ० क० मे भक्ति आ० का तुलनात्मक अध्ययन पृ० २३।

३ वही, पृ० २४।

४ डा० हरवंशलाल शर्मा-सूर और उनका साहित्य, पृ० १३३।

भक्ति मार्ग में हृदय पक्ष और बुद्धिपक्ष दोनों का सामंजस्य स्थापित हुआ।[1] इसके अतिरिक्त रामानुज ने अपने सिद्धांत का नाम विशिष्टाद्वैत रखकर इस विषय में शंकर के अद्वैतवाद के साथ सामंजस्य स्थापित किया। शंकर के अद्वैत और रामानुज के विशिष्टाद्वैत का तीव्र विरोध कर माध्वाचार्य ने द्वैतमत की स्थापना की और अपने मत की पुष्टि में 'भागवत् पुराण' तथा पांचरात्र संहिताओं[2] का आधार ग्रहण किया।

भक्ति आन्दोलन की दृष्टि में माध्वाचार्य द्वारा स्थापित द्वैतवाद की बड़ी महत्ता है। अद्वैत, विशिष्टाद्वैत और द्वैतवाद के समान ही निम्बार्क ने भेदाभेद या द्वैताद्वैत का प्रचार किया। इनके सम्प्रदाय की सबसे बड़ी विशेषता राधा की उपासना है। इसमें प्रेमलक्षणा, अनुरागात्मकता एवं पराभक्ति को चरम लक्ष्य माना गया है।[3] शंकर के अद्वैतवाद के विरोध में उत्पन्न अनेक सम्प्रदायों में विष्णु स्वामी का नाम भी उल्लेखनीय है।

विष्णु स्वामी की शिष्य परम्परा में वल्लभाचार्य[4] ने शुद्धाद्वैत मत के तत्त्वों का निर्धारित किया। इसका आचरण पक्ष पुष्टिमार्ग कहलाता है। कृष्ण भक्ति धारा पर इसका बहुत गहरा प्रभाव है। इनके पुष्टिमार्ग में दीक्षित होकर सूरदास आदि अष्टछाप के कवियों ने कृष्णभक्ति साहित्य की रचना की। रामानुजाचार्य ने विष्णु की दास्य भाव की भक्ति का प्रचार किया था। उनकी शिष्य परम्परा में आगे चल कर रामानन्द हुए जिन्होंने राम को अवतार मान कर उनकी भक्ति का प्रवर्तन किया। रामानन्द की शिष्य परम्परा में सगुण और निर्गुण दोनों प्रकार के भक्त थे।[5] सगुण परम्परा के भक्त महाकवि तुलसी ने राम के मर्यादा पुरुषोत्तम रूप की कल्पना कर उसमें शील, शक्ति और सौन्दर्य का समन्वय किया।[6] रामानन्द की निर्गुण परम्परा के शिष्यों में कबीर का प्रमुख स्थान है। इन्होंने ज्ञानियों की ब्रह्म जिज्ञासा और वैष्णवों की सगुण भक्ति की विशेष विशेष बातों को लेकर निर्गुण भक्ति का भवन खड़ा

---

१ प्रो० शिवकुमार–हिन्दी साहित्य युग और प्रवृत्तियां, पृ० ९३।
२ डा० हरवंशलाल शर्मा–सूर और उनका साहित्य, पृ० १३६।
३ डा० हिरण्मय–हिन्दी और कन्नड़ में भक्ति का तुलनात्मक अध्ययन, पृ० ३२।
४ डा० हरवंशलाल शर्मा–सूर और उनका साहित्य, पृ० १४३।
५ प्रो० शिवकुमार–हिन्दी साहित्य युग और प्रवृत्तियां, पृ० ११२।
६ वही, पृ० ९३।

किया। अतएव भारतीय धर्म साधना में आरम्भिक काल से लेकर मध्य काल तक सभी सम्प्रदायों में भक्ति प्रधान प्रेरक शक्ति के रूप में रही, और उसका क्रमिक तथा सर्वांगीण विकास होता आया।

भक्ति की अजस्र धारा भारतीय सम्प्रदायों और मतमतान्तरों के अतिरिक्त सूफियों की उस एकान्त प्रेम साधना से भी प्रभावित हुई, जो कि ज्ञान और उपासना का समन्वय करने के कारण प्रेरणा रूप से आई थी।[1] अतः चौदहवीं एवं पन्द्रहवीं शताब्दी में भक्ति पर इनका स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है। इन विभिन्न प्रभावों को आत्मसात् करता हुआ, भक्ति का विपुल प्रवाह सोलहवीं शताब्दी तक दिगन्त स्पर्शी हो गया।

कहने की आवश्यकता नहीं कि भक्ति के सभी आचार्य भक्ति–मंदाकिनी में अवगाहन कर स्वयं ही पवित्र नहीं हुए अपितु जनसाधारण को भी कल्याण के पथ पर बढ़ाया। मध्यकाल के सभी भक्त-कवियों में भक्ति के इसी रूप का विकास हुआ। इनकी कविता के साथ भक्ति का पंचम उत्थान हुआ। भक्ति का चतुर्थ उत्थान निवृत्ति परक था परन्तु पंचम उत्थान में पुनः प्रवृत्ति परायणता को प्राधान्य मिला।[2]

भक्ति अपने उत्कृष्ट रूप में परम प्रेमरूपा[3] है। व्रजगोपियों[4] की प्रेम परा भक्ति उसका उदाहरण है। भक्तों ने प्रेम (भक्ति) और भक्ति का स्वरूप हरि का एक[5] ही रूप माना है। भगवान साक्षात् शांति और परम आनन्द स्वरूप हैं। अतः भगवत्प्रेम भी शांति और परमानन्द स्वरूप[6] ही है। आनन्दमय भगवान स्वयं अपनी आनन्द शक्ति को निमित्त बनाकर प्रेम और प्रेमी रूप में प्रगट होते हैं। अतः भक्ति का प्रथम रूप प्रेम है।

भक्ति का दूसरा रूप कैंकर्य है। यह हृदय को परब्रह्म के आलोक से आलोकित करने का साधन है। इसके कारण भक्त कलुषित भावनाओं से रहित

---

१ डा० हरवंशलाल शर्मा-सूर और उनका साहित्य, पृ० १०७।
२ डा० मुंशीराम शर्मा–भारतीय साधना और सूर साहित्य, पृ० ३५।
३ "सा त्वस्मिन परम प्रेम रूपा" —नारद भक्ति सूत्र २।
४ यथा व्रजगोपिकानाम-वही २१।
५ "प्रेम हरी का रूप है त्यों हरि प्रेमस्वरूप" —रहीम
६ "शान्तिरूपात्परमानन्दरूपाच्च" —नारद भक्तिसूत्र

हो त्याग और सेवा की भावना को अपनाता है। शास्त्रों का अध्ययन, मनन, प्रार्थना, जप स्तोत्र पाठ, नाम संकीर्तन आदि का कर्त्तव्य भक्ति कहा गया है।

भक्ति का एक अन्य रूप प्रपत्ति है। इसका प्रधान अंग भगवान् से मिलने की व्यग्रता है। इसके दो भेद—शरणागति और आत्मसमर्पण है। इस प्रकार भक्ति भगवान के प्रति अनन्यगामी एकान्त प्रेमरूपा है। यह भगवान को प्राप्त करने का सबसे सरल मार्ग है।

भक्ति के भेद

भक्ति को आचार्यों ने दो मार्गों में विभाजित किया है—गौणी तथा परा[1]। गौणी के भी दो भेद हैं—वैधी और रागानुगा।[2] वैधी भक्ति सेवा को प्राधान्य देती है और रागानुगा में राग या प्रेम तत्त्व प्रधान होता है। रागानुगा भक्ति के तीन स्तर बतलाए गए हैं—स्नेह, आसक्ति और व्यसन। ईश्वर स्नेह भक्त को लौकिक राग से मुक्त करता है। आसक्ति से संसार के प्रति अरुचि और भगवान के प्रति आकर्षण बढ़ता है। व्यसन से भक्त को पूर्ण प्रेम की प्राप्ति होती है। भक्ति का यह विभाजन साधन और साध्य के आधार पर किया गया है। वैधी और रागानुगा दोनों साधन पक्ष के अन्तर्गत है। जब भक्त सब काम नाओं से रहित होकर पूर्ण शान्ति की अवस्था को पहुँचता है—तब वह ईश्वर के परम प्रेम में निमग्न होता है। भक्ति की इस अवस्था को परामक्ति कहते हैं। यही पूर्ण अनुराग की अवस्था है यही अत्यानुरक्ति है। इसे अनुभवा विनिवेश भी कहा गया है। यह भक्ति का साध्य पक्ष है। वैधी भक्ति का पर्यवसान रागात्मिका भक्ति में होता है। रागात्मिका भक्ति आत्मनिवेदन में पूर्णता को प्राप्त होती है। यही आत्म निवेदन आत्मसमर्पण में परिवर्तित होता है। इस प्रकार भगवद्भक्ति के साध्य और साधन दोनों ही पक्षों का विवेचन हुआ है। अतएव भक्ति साधन रूपा भी है और साध्य रूपा भी।

भक्ति के साधन

भक्ति के दो मूल साधन—अंतरंग और बहिरंग है। ज्ञान अंतरंग और ज्ञानेतर विधान बहिरंग साधन माना गया है। श्रवण मनन, आदि तथा तदुपरान्त गुरु अनुगमन, वेद निष्ठा शम दम आदि ज्ञानेतर अथवा बहिरंग साधन के अनुकरण से तादात्म्य होता

---

१ डा० हरवंशलाल शर्मा—सूर और उनका साहित्य पृ० ३४० ।

२ डा० हिरण्मय—हिंदी और कन्नड़ में भक्ति का तुलनात्मक अध्ययन, पृ० ३।

३, वही पृ० ३।

हैं, जो अविरत प्रेमा भक्ति का निष्पादक है। नारदीय सूत्र मे अखण्ड[1] भजन की वृत्ति को भक्ति का उच्च साधक माना है। इसके अतिरिक्त भगवान् के नाम, गुण, लीला का कथन तथा अनुमोदन और सत्सग साधुकृपा भगवत्कृपा[2] (विशेषत) का भक्ति से साधना म महत्वपूर्ण स्थान है। इस प्रकार भक्ति के अनक साधना और प्रकारा को नवधा भक्ति म समन्वित किया जा सकता है। साधन रूप नवधा भक्ति म श्रवण, कीर्तन, स्मरण चरणसेवन पूजन, वन्दन, दास्य अथवा सख्य भाव की निष्ठा है[3]। यद्यपि भक्ति की निष्पत्ति भगवद्विषयिणी बुद्धि स होती है तथापि श्रवण मनन, मूर्तिपूजन आदि अगो का अनुष्ठान भी उपेक्षणीय नही।[4] साधन भक्ति स्वय साध्य रूप नही होती, भक्त इसका सतत् अभ्यास कर उत्तरोत्तर रागानुगा और पराभक्ति की ओर उन्मुख होता है। नवधा भक्ति के दास्य सख्य और आत्मनिवेदन आदि भाव-सम्बन्धी-साधन है जो अतरग साधन भी कह जा सकते है, साधनावस्था म भक्त का विरक्ति भाव दृढ होता है वह मोह रहित होता है तथा समस्त सिद्धियो का स्वामी होते हुए भी उनस उदासीन रहता है। अत ज्ञान और वैराग्य भक्ति के अतरग साधन हैं। भक्ति के अभाव म य साधन निरथक हैं। भक्ति की चरम परिणति साधन और साध्य की एकरूपता है।

भक्ति (उपासना) का लक्ष्य

भक्ति का लक्ष्य उपासक और उपास्य का गुणैक्य या सामीप्य है। उपासना विधान म उपासक और उपास्य की पृथक् पृथक् सत्ता होती है किन्तु ब्रह्म स्वरूप का अनुभव होन पर मन अलग नही रहता। उपास्य और उपासक दोनो स्वरूप हो जाते हैं। अत उपासना (भक्ति) का लक्ष्य निराकार का साकार रूप म प्रस्तुत करना है। उसम निराकार, इन्द्रिय वाणी और मन से पर परमात्मा को व्यक्तित्व विशिष्ट रूप गुण कम से युक्त साकार स्वरूप मे चित्रित किया जाता है। भक्ति माग द्वारा प्रस्तुत भगवान् क रागात्मक भाव की पूर्ण अभिव्यक्ति है। इस स्वरूप को पाकर उपासक अमर और तृप्त हो जाता

---

१ 'अव्यावतभजनात्'—नारदसूत्र ३६।

२ 'मुख्यावस्तु महत्कृपयव भगवत्कृपालेशाद्वा' —वही ३८।

३ श्रवण कीर्तन विष्णो स्मरण पादसेवनम्
अर्चन वन्दन दास्य सख्यमात्मनिवेदनम्।—श्रीमदभागवतगीता ७।५।२३।

४ शाण्डिल्य सूत्र—२७ २८।

है।[1] वह मायाविन ब्रह्म के रहस्यों का अनुसन्धान करता है, वह प्रतिप्राणी मूर्ति तथा हृदयस्थित भगवान के भाव के कारण सबको भगवद्दृष्टि से देखता है। ब्रह्मात्मैक्य बुद्धि ही उसका स्वभाव बन जाती है, वह शोक, द्वेष और इच्छा रहित हो जाता है[2] और अपने आलम्बन (उपाय) के धर्म में लीन होता है। वही आत्माराम है।[3] अतः भक्ति शास्त्र के अध्ययन मनन से भक्त को भगवान् की अनन्य भक्ति प्राप्त होती है।

भक्ति की उत्कृष्टता

भक्ति की उत्कृष्टता सर्वत्र स्वीकार की गयी है। क्योंकि यह न केवल 'परमप्रेमरूपा' और अमृतरूपा है प्रत्युत स्वयं फलरूपा भी है। इसमें भक्ति के सिवा कोई दूसरा परमार्थ साध्य नहीं है। इसी कारण यह ज्ञान और कर्म से श्रेष्ठ है। ज्ञान साधन है, जिसका साध्य मुक्ति अर्थात् आवागमन से मोक्ष है। कर्म भी साधन है जिसका साध्य कर्म संन्यास है। भक्ति में न तो ज्ञानियों की अद्वैत कामना है और न कर्म योगियों का कर्म संन्यास। वह भगवान की एकमात्र प्रमासक्ति है जिसमें भक्त भगवान को सर्वस्व अर्पित कर निर्द्वन्द्व हो केवल उनके ध्यानामृत में लीन रहना चाहता है।[4] अतः भक्ति स्वतः पूर्ण है उसे किसी इतर साधन और सिद्धि की वांछा नहीं। इसी से वह सर्वश्रेष्ठ है।

बाह्योपासना

पहले ही कहा जा चुका है कि उपासना के दो रूप मिलते हैं—एक तो बाह्याचारमयी दूसरी मानसी। बाह्याचारमयी उपासना मानसिक संयम की भूमिका है। जब उपासक अभ्यस्त हो जाता है तो बाह्योपचार अपेक्षित नहीं रहता। मन अपने आप ही समग्र सामग्री जुटा लेता है। शैवोपासना में भी बाह्याचार का अपना मूल्य है। अनेक सम्प्रदायों में पूजाविधियों में अनेक उपकरण जुटाकर शिव पूजा की जाती है जिनका उल्लेख पुराणों और तन्त्रों में विस्तार से मिलता है।

शिव पूजा के उपकरण

शिवोपासना में बेलपत्र, धतूरा जल केशर चन्दन धूप, दीप, मिठाई तथा कपूर के अतिरिक्त के सामग्रियाँ भी काम में आती हैं जो शिवेतर अन्य मन्दिरों एवं समाधियों पर, उपासना के काम में लाई जाती हैं। श्वेत एवं रक्त कमल,

---

१ "यल्लब्ध्वा पुमान् सिद्धो भवति, अमृतोभवति, तृप्तो भवति।"
—नारद भक्ति सूत्र ४।

२ "यत्प्राप्य न किंचिद्वाञ्छति न शोचति न द्वेष्टि न रमेत।" वही, ५।

३ 'आत्मारामो भवति" —नारद भक्ति सूत्र ६।

४ नारद भक्ति सूत्र ८२।

शख पुष्प, द्रोण पुष्प कुश-पुष्प जपा करवीर पुष्प, चमेली, शमी बेला एव जही के पुष्प, तुलसीदल शतपत्र बिल्वपत्र दूर्वा लाल और सफेद आक अपामार्ग, गेहू, जौ, चावल, उडद, श्रीफल भी शिवपूजा के उपकरण हैं। सुपारी लवग ताम्बूल आदि का भी शिवपूजन म महत्त्व है।[1] केवल चम्पा और केतकी के पुष्प शिव को अर्पित नही किए जाते।[2] शिवपुराण मे गाय का घी दूध दही, शहद और शक्कर को पचामृत रूप मे तथा अलग अलग शिव पूजा के लिए आवश्यक उपकरण बतलाया गया है। इन समस्त वस्तुओ के अभाव म केवल बिल्व पत्र से ही शिव प्रसन्न हो जाते हैं।[3]

कुछ शव सम्प्रदायो म शिव की भरव मूर्ति के सम्मुख बलि देने की प्रथा भी है। नेपाल म भसा, बकरा और कभी कभी गडा बलि के काम म लाया जाता है। देवापटन म सूअर के बच्चे की बलि दी जाती है। धिनोघर मे दशहरे की नवरात्रि को दो भसा की बलि दी जाती है। जो लोग मासभक्षी नहीं है व अपने हाथ की छोटी अगुलि या अगुठे की नोक म खून निकाल कर भरव पर चढाते हैं। भरव के पुजारी कालरात्रि पर बलि के अभाव म अपना रक्त चढाते हैं। तुलसीपुर के वार्षिक मले के उत्सव पर लोहे या बास के बन त्रिशूल जो लाल रगे होते है भरव पर चढाये जाते है।[4]

उपकरणों का फलाकांक्षा से सम्बन्ध

शिव की पूजा से विविध फल प्राप्त करने के लिए विविध उपकरणो का भी उल्लेख प्राप्त होता है। सकाम शिव पूजन म कहा गया है कि आयु की इच्छा वाला व्यक्ति एक लाख दूर्वाओ से पुत्र की इच्छावाला एक लाख धतूरे के पुष्पो से मोक्ष की इच्छा वाला लाल और सफेद आक अपामार्ग तथा श्वेत कमल के एक लाख पुष्पो से शत्रु और रोग से मुक्ति की इच्छा वाला जपाकरवीर के पुष्प स शिवपूजन करे।[5] मोक्ष एव समस्त सुखो की प्राप्ति के लिए पूजा के उपरात शिव का जल दुग्ध सुवासित तेल घृत मधु ईख का रस और गगाजल की धारा समर्पित करने का भी विधान

---

१ गगा विष्णु श्रीकृष्णदास–सकाम शिव पूजन पृ० २६।

२ यत्कुसुम च विद्यते तच्चव शिव वल्लभम।
चपक केतक हित्वा अन्यत्सर्व शिवे पर्यंत। — वही, पृ० १२

३ कल्याण–सक्षिप्त शिव पुराण अक, पृ० ६७।

४ ब्रिग्स–गोरखनाथ एण्ड दी कनफटा योगीस पृ० १४०।

५ गगाविष्णु श्रीकृष्णदास–सकाम शिव पूजन पृ० ६,१०।

है।[1] दूरिए पूजन के अतिरिक्त इन उपकरणों का शिवोपासना में विशेष पत्र एवं दिनों में भी सम्बन्ध है।

उपासना के विशेष दिन

शैवोपासना के लिए सबसे महत्वपूर्ण पर्व माघ मास की शिव रात्रि है। आश्विन मास व शुक्लपक्ष की चतुर्दशी जिसे महारात्रि भी कहते हैं होली उत्सव की प्रथम रात्रि कृष्णाष्टमी अनन्तत्रयोदशी शिवोपासना के विशेष महत्व के दिन हैं। इनके अतिरिक्त शिवपुराण में सती कथा के प्रसंग में आए हुए सती द्वारा पालन किए गए नन्दाव्रत के उपपर्यन्त की तिथियाँ भी महत्वपूर्ण हैं।[2] यही इन तिथियों तथा इन पर प्रयुक्त पूजा के विशिष्ट उपकरणों का उल्लेख भी प्राप्त होता है।

शिव के विकराल रूप कालभैरव की पूजा कृष्णपक्ष की अष्टमी को की जाती है। कार्तिक मास के कृष्ण पक्ष की अष्टमी का भैरव का जन्मदिन माना जाने से विशेष महत्वपूर्ण है। दशहरे का नवरात्रि पर गोरखपुर में शैवों का विशेष उत्सव होता है। नागपंचमी भी कालभैरव की पूजा का विशेष दिन है। इस दिन शैवोपासक अपने घरों की दीवारों पर साँप या चिड़ियों के चित्र बनाते हैं घास से सर्प की प्रतिमा बनाकर शहद तथा मिठाई अर्पित करते हैं सर्प की प्रतिमा को पानी में डालते हैं प्रीतिभोज करते हैं और उपहार भेंट करते हैं। इस दिन वे न तो हल चलाते हैं और न गत खोदते हैं। उपर्युक्त विशेष उपकरणों एवं तिथियों का सम्बन्ध आज भी विशेष मनोकामनाओं से जोड़ा जाता है।

शैवों के प्रमुख तीर्थस्थान

उपासना में इष्टदेव से सम्बन्धित तीर्थस्थानों का भी महत्वपूर्ण स्थान है। साधक तीर्थ स्थानों में अपने इष्टदेव के दर्शन कर आनन्द लाभ करता है। शिव से सम्बन्धित तीर्थ स्थान समस्त भारत में प्राप्त होते हैं। उनमें से मुख्य—काशी केदार बदरिकाश्रम अमरेश कुरुक्षेत्र सोमतीर्थ रामेश्वरम् श्रीशैल काञ्चीपुरी द्वारापुर उज्जैन श्रीरंगम् वैद्यनाथधाम अमरनाथ पशुपति

---

१ शतुण तापनाथ व तैलधारा शिवार्चने।
विमिते नैव तैलेन भोग वृद्धि प्रजायते।
धारा पेक्षुरस्य स्यापि नाना सुखकारी स्मृता
गंगाजल समुद्भूता धारा मोक्ष फलप्रदा। —वही पृ० २१।

२ शिवपुराण—रुद्र संहिता—अध्याय १५।

नाथ (नेपाल) श्री एकलिंगजी (उदयपुर) आदि हैं। शिव भक्तों की मान्यता है कि इन तीर्थों में समय समय पर देवताओं व उपासकों द्वारा शिवाराधना की गई और भगवान् आशुतोष ने उन्हें दर्शन दिये।

शिव के विशेष तीर्थ स्थानों के समान ही गोरखनाथी शैव सम्प्रदायों में उनके गुरु से सम्बद्ध तीर्थ स्थान एवं मठों का अनन्य महत्व है। ये समस्त भारत में पाये जाते हैं। इनका सबसे महत्वपूर्ण केन्द्र उत्तरप्रदेश में गोरखपुर है जिसका नामकरण गोरखनाथ के नाम पर हुआ। यहां पर इनका प्रधान मठ है जिसमें गोरखनाथ धूनी व पशुपतिनाथ का मन्दिर है जिसमें चतुर्भुज लिंग है। प्रधान मंदिर के दक्षिण पूर्व कोने में एक चबूतरा है जिसे सिंहासन कहते हैं जहां पर महंत बढाये जाते हैं।[1]

देवीपट्टम, वाराणसी तुलसीपुर आदि में भी शैवों के महत्वपूर्ण मंदिर और मठ हैं। देवीपट्टम का मन्दिर और मठ बलरामपुर के तुलसीपुर कस्बे के पास एक छोटी पहाडी पर स्थित है। इसकी बहुत महत्ता मानी गयी है। वाराणसी में गोरखनाथियों से सम्बन्धित तीन महत्वपूर्ण स्थान है—भैरव की प्रसिद्धलाट, काल भैरव का मंदिर और गोरखनाथ का टीला।

पंजाब में गोरख टीला के अतिरिक्त जो कि झेलम से पच्चीस मील दूर है बहुत से स्थान गोरखनाथ से सम्बन्धित हैं। काबुल जलालाबाद और कोहाट में भी इनके मंदिर हैं। स्यालकोट, गोरखनाथ के प्रसिद्ध शिष्य पूरन भक्त का जन्मस्थान होने के कारण प्रसिद्ध है।[2]

कच्छ में भुज, धिनोधर आदि स्थान प्रसिद्ध माने जाते हैं। इनमें धिनोधर सबसे महत्वशाली है। कलकत्ते के पास गोरखवंशी या गोरखबसरी भी इनका बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। पुरी और हरिद्वार में इनकी प्रसिद्ध गद्दियाँ हैं।

गोरखमालिया (राजस्थान) गोरखनाथियों का प्रसिद्ध स्थान हैं। गुरु गोरखनाथ ने जसनाथजी के विशेष अनुग्रह पर यहां तक पधारने की कृपा की थी। जसनाथी साहित्य में इस स्थान को धराधाम कहकर प्रशंसा की गई है।[3]

---

१ ब्रिग्स-गोरखनाथ एण्ड दी कनफटा योगीस-पृ० ८८।

२ ब्रिग्स, गोरखनाथ एण्ड दी कनफटा योगीस पृ० १०० १०१।

३ सूर्यशंकर पारीक—सिद्ध साहित्य, पृ० ६०।

मत्ति का तीथ स्थाना म अधिक महत्व है—साधन मति के दो भेद वाह्य और आभ्यन्तर हैं और शव ग्रन्थो म इन दोनो का वणन मिलता है। वाह्य विधि क दो प्रमुख रूप सामने आते हैं—नमक-चमक एव पार्थिव पूजा विधि।

पूजा विधि

नमक-चमक पूजा विधि

रुद्राष्टाध्यायी क अभिषेक प्रसग म श्री साम्बसदाशिव की पूजा का विधान धमसूत्रो के आधार पर किया गया है। शिव पूजन म सव प्रथम गौरी गणेश के पूजन के साथ साम्ब सदाशिव की पूजा की जाती है। पूजा विधान म सव प्रथम चादी के पवत के समान[1] उज्जवल अग वाले, चद्रमा को मस्तक पर धारण करने वाले, हाथो म आयुधो को धारण करन वाने प्रसन, पद्मासन मारे हुए देवताओ म स्तुत्य व्याघ्रचम धारण करने वाले पचमुख त्रिनेत्र शिव का वदिक मत्रो से ध्यान[2] का विधान है। तत्पश्चात् मत्रोच्चारण के साथ उन्हे आसन समपण किया गया है।[3] इसके बाद देव के पादप्रक्षालन के लिए मत्र बोला जाता है जिसम उसे सवश्रेष्ठ और सब पदार्थों का निर्माता कहा गया है।[4] फिर हाथ धोने के लिए अर्घ्य का विधान है।[5] इसके बाद मत्र से आचमन का विधान है। इस मत्र म कहा गया है कि आदि पुरुष से विराट की

---

१ ध्यायेन्नित्य महेश रजतगिरिनिभ चारुचन्द्रावतसम
रत्नाकल्पोज्ज्वलाग परशुमृगवराभीतिहस्त प्रसन्नम्
पद्मासीन समन्तात्स्तुतममरगणैर्व्याघ्रकृत्ति वसानम।
—शुक्ल यजुर्वेद रुद्राष्टाध्यायी, १।१।

२ नम शम्भवाय च मयोभवाय च नम शकराय च
मयस्कराय च नम शिवाय च शिवतराय च
नमस्ते रुद्रम न्यव उतोत इषव नम बाहुभ्यामुत ते नम।
—शुक्ल यजुर्वेद रुद्राष्टाध्यायी १।१ ५।४१।

ॐ सहस्रशीर्षा पुरुष सहस्राक्ष सहस्रपात
स भूमि सर्वत स्पृत्वा त्यतिष्ठद्दशागुलम ॥

३ पुरुष एवेद सवम्भूत यच्च भाव्यम
उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति। —वही २।१।

४ एतावानस्य महिमातो ज्यायाश्च पुरुष
पादोस्य विश्वाभूतानि त्रिपादस्यामृत दिवि। —वहा २।२।

५ त्रिपादूर्ध्व उदैत्पुरुष पादोस्येहाभवत्पुन
ततो विष्वड्व्यक्रामत्साशनानशने अभि। —वही २।३।

—वही २।४।

उत्पत्ति हुई[1] विराट् पुरुष ने पृथ्वी की रचना कर सात धातु वाले रूपों की रचना की। आचमन के पश्चात् इष्टदेव के साधारण स्नान का विधान है।[2] तदनन्तर पंचामृत स्नान का विधान है। उसमें दूध दही घृत मधु और शर्करा का योग होता है। नदियों के समान प्रवाह रूप से इन्द्रिय वासनाओं में बहन वाली पांच प्रकार की वृत्तियां एवं समान मन-रूपी-स्रोत में ही बहती हैं और ये वाणी रूप में लीन रहती हैं। पांचों ज्ञानेन्द्रियों का ज्ञान वाणी द्वारा प्रकट किया जाता है। वह वाणी मुख से नदी के समान धारा रूप में निकलती है।[3] फिर पृथक्-पृथक मन्त्रों से विभिन्न पदार्थों को अर्पित करने का विधान है। सर्वप्रथम पुनः दूध से स्नान कराया जाता है फिर शुद्ध जल से तदनन्तर दधि स्नान का समय आता है इसके बाद शुद्ध जल से स्नान कराकर घृत स्नान कराया जाता है। पुनः शुद्ध जल से स्नान कराकर मधु से स्नान कराने का विधान है।[4] यह विधि भी मन्त्र से सम्पन्न होती है, जिसमें शिव से प्रार्थना करते हुए कहा गया है कि पृथ्वी मधुर रस सम्पन्न हो रात्रि दिवस भी मधुरिमामय हो सब ओर से हमारा मंगल हो सूर्य माधुर्य से भरें गायें[5] मधुर दूध प्रदान करें। तत्पश्चात् शर्करा स्नान कराया जाता है उसके बाद फिर शुद्ध

---

१ ततो विराडजायत विराजोअधिपूरुषः
 सजातो अत्यरिच्यत पश्चाद्भूमिमथोपुरः ॥
२ यस्माद्यज्ञात्सर्वहुतः सम्भृतपृषदाज्यम्।
 पशूँस्ताँश्चक्रे वायव्यानारण्यान् ग्राम्याश्च ये।
 —शुक्लयजुर्वेद रुद्राष्टाध्यायी २।६।
३ पचनद्यः सरस्वतीमपियन्ति सस्रोतसः
 सरस्वती तु पंचधासो देशे भवत्सरित्। —वही २।७।
४ पयः पथिव्याम् मय इत्यादि दधि।
 दधिक्राव्णोऽकारिषत। —वही २।७।
५ मधुवाता ऋतायते मधुक्षरन्ति सिन्धवः
 माध्वीनः सन्त्वोषधीः। मधुनक्तमुतोषसो
 मधुमत्पार्थिवं रजः मधु द्यौरस्तु नः पिता।
 मधुमान्नो वनस्पतिः मधुमाँ अस्तु सूर्यः।
 माध्वीर्गावो भवन्तु नः। —वही २।७।

जल म स्नान का विधान है । शुद्ध जल मंत्र स अर्पित किया जाता है ।[1] तदन्-
न्तर गन्धमिश्रित जल से स्नान समर्पण किया जाता है, फिर उद्वर्तन का स्नान
कराया जाता है । उसके बाद शुद्ध जल से स्नान कराकर आचमन कराया जाता
है और वस्त्र समर्पित किया जाता है ।[2] वस्त्र के बाद पुन आचमन दिया जाता
है और फिर यज्ञोपवीत पहनाया जाता है ।[3] तत्पश्चात् सुगन्धित पदार्थ चन्दन
आदि लेप किया जाता है ।[4] अक्षत और पुष्पोपहार दिया जाता है ।[5] उसके
बाद तीन पत्तो वाला बिल्व पत्र शिव को चढाया जाता है । सौभाग्य द्रव्य
चढाकर कर धूप दिखलाया जाता है ।[6] धूप के बाद प्रज्वलित दीपक दिखलाया
जाता है । मंत्र द्वारा उस पुरुष की वन्दना की जाती है जिसके मन से चन्द्रमा
चक्षु स सूर्य श्रोत्र से वायु और प्राण तथा मुख से अग्नि प्रगट हुई है ।[7] इसके
बाद हस्तप्रक्षालन कर घृतपूरित नवेद्य मंत्र के साथ, समर्पण किया जाता है ।[8]
'प्राणाय स्वाहा अपानाय स्वाहा, ॐ उदानाय स्वाहा ॐ समानाय स्वाहा
आदि मंत्रो के साथ नवेद्य अर्पण कर बीच-बीच मे उत्तरापोषण एव हस्त

१ शुद्ध वाल सर्व शुद्धवालो मणिवालस्त आश्विना
श्येत श्येताक्षोऽरुणस्ते रुद्राय पशुपतये कर्णायामा
अवलिप्ता रौद्रा नभोरूपा पार्जन्या ।
—शुक्ल यजुर्वेदीय रुद्राष्टाध्यायी २।६ ।

२ तस्माद्यज्ञात् सर्वहुत ऋच सामानि जज्ञिरे
छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद्यजु तस्मादजायत । —वही २।७ ।

३ तस्मादश्वा अजायन्त ये के चोभयादत
गावोह जज्ञिरे तस्मात्तस्माज्जाता अजावय ॥ —वही २।८ ।

४ त यज्ञ बर्हिषि प्रौक्षन्पुरुष जातमग्रत ।
तेन देवा अयजन्त साध्या ऋषयश्चये । —वही, २।९ ।

५ यत्पुरुष व्यदधु कतिधा व्यकल्पयन । मुख
किमस्यासीत् कि बाहू किमूरू पादा उच्येते । —वही २।१०

६ ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत बाहू राजन्य कृत
ऊरू तदस्य यद्वैश्य पद्भ्या शूद्रो अजायत । —वही २।११ ।

७ चन्द्रमा मनसो जात चक्षो सूर्यो अजायत
श्रोत्राद्वायुश्च प्राणश्च मुखादग्निरजायत
—शुक्ल यजुर्वेदीय रुद्राष्टाध्यायी २।१२ ।

८ नाभ्या आसीदन्तरिक्ष शीर्ष्णो द्यौ समवर्तत
पद्भ्या भूमि दिश श्रोत्रात् तथा लोकाँ अकल्पयन् —वही २।१३ ।

प्रक्षालन के लिए जल देकर तथा आचमन कराकर, हाथ की शुद्धि के लिए जल लेकर फल सहित ताम्बूल अर्पण किए जाते हैं। फल समर्पण के मंत्र में कहा है कि सभी औषधियाँ हमें रोग मुक्त करें।[१] ऋतुफल के बाद हिरण्य दक्षिणा का समय आता है। इस प्रकार पूजा के उपरान्त आरती और प्रदक्षिणा की जाती है।[२] प्रदक्षिणा के बाद मंत्र पुष्पांजलि समर्पित कर मंत्र से नमस्कार का विधान है।[३] उपासक वृत-कर्म का फलांश सदाशिव को अर्पण कर शिव नीराजन कर प्रेमविभोर होकर गान करता है। अन्त में महादेव के लिंग के ऊपर छिद्र वाला कलश लटकाकर, उसमें काम्य कामनानुसार जल, दुग्ध शर्करा आदि का प्रक्षेप कर रुद्र, लघु रुद्र महारुद्र, अति रुद्र के लिए अभिषेक कर्म सम्पादित किया जाता है। यह नमक चमक पूजा विधान शैवोपासकों में अति प्रचलित है।

शैवोपासना में दूसरी पूजा विधि पार्थिव पूजन की है जो अचल प्रतिष्ठा के अतिरिक्त है। इसमें पूजा से पूर्व नित्य कर्म को पूर्ण कर

पार्थिव पूजा

भक्त शिव स्मरण पूर्वक भस्म धारण करता है फिर 'ॐ नमः शिवाय' मंत्र का उच्चारण करते हुए समस्त पूजन सामग्री का प्रोक्षण करता है। इसके बाद भूरसि[४] मंत्र से क्षेत्र सिद्धि करता है। नमः शम्भवाय मंत्र से क्षेत्र शुद्धि और पंचामृत का प्रोक्षण किया जाता है।[५] भक्त तत्पश्चात् नमः पूर्वक' नीलग्रीवाय[६] मंत्र से शुद्ध की हुई मिट्टी को जल

---

१ यत्पुरुषेण हविषा देवायज्ञमतन्वत
वसन्तोऽस्यासीदाज्यं ग्रीष्मइध्म शरद्धविः
या फलिनी र्या अफला अपुष्पा याश्चपुष्पिणी
बृहस्पति प्रसूता स्तानो मुञ्चन्तु अंहसः ॥ —वही २।१४।

२ सप्तास्यासन परिधयस्त्रिः सप्तसमिध कृता।
देवा यद्यज्ञं तन्वाना अबध्नन पुरुषं पशुम्। —वही २।१५७।

३ यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि
प्रथमा न्यासन तहनाक महिमानः सचन्त यत्र
पूर्वेसाध्या सन्तिदेवाः। विश्वतश्चक्षुरुत
विश्वतो मुखो विश्वतोबाहुरुत विश्वतस्पात।
सम्बाहुभ्यान्धमति सम्पतत्रै र्द्यावा भूमि जनयदेव एकः।
—शुक्ल यजुर्वेदीय रुद्राष्टाध्यायी २।१६।

४ यजुर्वेद १३।१८।

५ वही १६।४१।

६ वही १६।८।

उपयु क्त विधि–पूवक की गयी पार्थिव पूजा भोग और मोक्ष देने वाली तथा शिव के प्रति भक्ति भाव बढाने वाली बतलायी गयी है।

वाह्य पूजा आभ्यातरिक या मानसी पूजा के लिए सोपान का काम करती है। मानसी पूजा म मत्रजाप का बहुत बडा महत्व है। मत्रो मे पचाक्षर मत्र प्रमुख है। उससे मन की शुद्धि होती है।

आभ्यतरिक पूजा

मत्रो मे पचाक्षर मत्र प्रमुख है। यह शिवाय नम मत्र प्रणव के साथ सयुक्त होने पर षडक्षर (ॐ शिवाय नम) हो जाता है। इसे मत्रराज कहा गया है। यह वेद का सारतत्व है, मोक्ष देने वाला है। शिव की आज्ञा से सिद्ध है, सन्देह शून्य है तथा शिव स्वरूप वाक्य है। यह नाना प्रकार की सिद्धियो से युक्त मन को प्रसन्न और निमल करने वाला, सुनिश्चित अथ वाला तथा परमेश्वर का गम्भीर–वचन माना गया है। इस षडक्षर मत्र म पचब्रह्म रूप धारकर साक्षात् भगवान शिव स्वभावत वाच्य वाचक भाव से विराजमान हैं। इस मत्र का जप करने से भक्त परमधाम का अधिकारी होता है। प्रलय काल म सदाशिव और उनका पचाक्षर मत्र ही शष रहता है। इस मत्र से मन वाणी द्वारा शक्ति विशिष्ट शिव क पूजन का विधान है।

इस मत्र जप की विधि का वणन करते हुए कहा गया है कि साधक का पुरश्चरण के लिए स्नान कर, शुद्ध आसन पर बठकर उत्तर या पूर्वाभिमुख हो, एकाग्र चित्त से दहन, प्लावन आदि के द्वारा पाचो तत्वो का शोधन कर मत्र का न्यास करना चहिए। सकली करण की क्रिया द्वारा, प्राण और अपान का नियमन करते हुए, शिव स्वरूप का ध्यान कर निवास्थान-स्वरूप-ऋषि छ द देवता बीज शक्ति तथा मत्र के वाच्याथ रूप परमेश्वर का स्मरण कर मत्र का जप करना चाहिए। मत्र का मानस जप उत्तम उपाशु जप मध्यम तथा वाचिक जप उससे निम्न कोटि का माना गया है। जसा कि अयत्र कहा जा चुका है शवो का एक अग तात्रिक भी रहा है। इनकी आभ्यातरिक उपासना पद्धति भी शवोपासना मे विवेचनीय है। मध्यकालीन हिदी कविता म इसक प्रभाव को स्पष्ट देखा जा सकता है।

शवतांत्रिकों की अभ्यांतरिक उपासना

तत्रशास्त्रो म परमशिव क साथ अपने अभेद अनुभव को ही परापूजा अथवा आभ्यतरिक उपासना कहा गया है। इनके अनुसार द्व तभाव रहित अपनी स्वरूप महिमा म साधक की स्थिति ही यथाथ पूजा है। इनम इस अवस्था को प्राप्त करने के लिए तीन क्रमिक सोपान—अपरा, मध्यम और परा

माने गए हैं। बाह्य चक्र, आवरण आदि पर अवलम्बित साधना अपरा साधना है। यह आत्मिक शक्तियों को जाग्रत करती है। इसमें साधक कुण्डलिनी को जाग्रत कर शरीरस्थ छः चक्रों का भेदन करता है। मध्यम पूजा में वह ध्यान का रूप धारण कर लेता है और साधक को परमेश्वर के साथ अद्वैत भाव की प्राप्ति होती है। इसी को परावस्था कहा गया है। तान्त्रिकों के अनुसार आत्मशक्ति ही अभीष्ट इष्टदेव है।

तान्त्रिकों में आत्मा के सभी कर्म शिव की अर्चना माने गए हैं। ये कर्म शिवरूपी आत्मा की तृप्ति के लिए ही होते हैं। आचार्य शंकर ने भी आत्मा के सब कर्मों को शिव की आराधना माना है। यह उपासना जीव को नष्ट कर शिवत्व की उपलब्धि का साधन है, इसी से सिद्धि और मोक्ष प्राप्ति होती है। सभी तन्त्रों में मानसिक उपासना को बाह्य उपासना से श्रेष्ठ माना गया है।

कनफटे योगी, कापालिक, कालमुख, पाशुपत, औघड़ आदि अवधूत तान्त्रिक पूजा के आधार पर नर की पूर्ण अभिव्यक्ति में नारी की उपासना करते हैं। ये देवता के सामने प्रायश्चित्त, समरस या मेरुपूजा करने में विराग नहीं करते। इनकी साधना प्रकृति और पुरुष का सम्मिलन है जो शरीर में पुरुष सिद्धान्त को मातृभाव में मिलाती है तथा सगुण को निर्गुण बनाने का प्रयास करती है।

निश्चय

भारतीय साधना में उपासक अपने उपास्यदेव की उपासना में तल्लीन होकर परमानन्द की अनुभूति के लिए सचेष्ट रहता है। वह अपने उपास्य के प्रति प्रेम में उन्हीं के अनुरूप अपनी वेशभूषा धारण करता है, आचार-विचार से उनके प्रति अपनी निष्ठा बनाता है। यह निष्ठा उसके व्यक्तित्व का आधार बन जाती है। यह क्रमशः कायिक शुद्धता और नैतिक आचरण के पुष्ट होने पर मानसिक भूमिका पर ज्ञान के विकास से आत्मोन्नति करता हुआ आत्मा और परमात्मा की अभेदानुभूति का आयाम प्राप्त करता है। यह अभेदानुभूति ही अन्त में आनन्द में परिणित हो जाती है। साधक अपने उपास्य में तन्मय होकर अद्भुत आनन्द प्राप्त करने योग्य बनता है।

उपास्य के विभिन्न नाम उसके विभिन्न गुणों और स्वरूपों का प्रतिनिधित्व करते हैं। उपास्य का नाम मन्त्र का आधार है। उपासक उपास्य का नाम स्मरण कर नाम से सम्बद्ध कथाओं का ध्यान कर तथा उसके स्वरूप में स्वयं को ध्यानावस्थित कर आत्मनिवेदन से उपास्य के प्रेम में ही परम आनन्द प्राप्त करता है। उपास्य के निज स्वरूप के समान ही उसका परिवार, उससे सम्बद्ध कथा, उसका आवास, वैभव धाम बन जाता है।

उपासक और उपास्य के सामीप्य का एकमात्र साधन उपासना है। उपासना स उपासक और उपास्य का अन्तर क्रमश विलीन हो जाता है। इसकी चरमावस्था पर उपासक उपास्य को प्रियतम रूप मे प्राप्त करता है। वह ससार स विरक्ति और उपास्य म अनुरक्ति का अनुभव करता है। उसका चरम लक्ष्य व आनन्द, एकमात्र आनन्दघन का सानिध्य और उसकी भक्ति ही रह जाती है। भक्ति शास्त्रो मे भक्ति की इस अवस्था को परावस्था कहा गया है।

शवो के आराध्य शिव हैं। उनमे शिव की उपासना के विशिष्ट उपकरण, तिथि एव पव के साथ ही तीथ स्थान का भी महत्त्व है। शिव भक्तो मे वाह्य पूजा-नमक चमक तथा पार्थिव, तो विशेष रूप से मान्य हैं ही, साथ ही साथ आभ्यातरिक उपासना का भी कम महत्त्व नही है। शिव भक्ति के प्रसग म पचाक्षर मन्त्र को भुलाया नही जा सकता। शिवोपासना क प्रसग म यह कह देना समीचीन ही होगा कि हिन्दी के भक्त कवियो ने उपासना विधियो,प्रकारो, तिथियो स्थानो आदि के महत्त्व को औपचारिक या अनौपचारिक ढग से वणन करत हुए केवल शास्त्रीय धार्मिक या साहित्यिक मान्यताओ का अनुपालन किया है। इसीलिए इनके उल्लेख की आवश्यकता है।

अध्याय ३

मध्यकाल पर्यन्त शैव साहित्य

शैव साहित्य

शैवमत के विकास के साथ-साथ उसके सिद्धान्तों का प्रतिपादन करने वाले साहित्य का भी विकास हुआ। वैदिक साहित्य—वेद, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद् और संहिता में शैव सिद्धान्तों का प्रारम्भिक रूप मिलता है। उत्तर वैदिक साहित्य के शिव पुराण, लिंग पुराण, स्कन्द-पुराण, मत्स्यपुराण, कूर्म पुराण और ब्रह्म पुराण शैव सिद्धान्तों का प्रतिपादन करते हैं। ये शैव पुराण कहलाते हैं। छठी शताब्दी के पूर्व रचे गए आगम ग्रन्थ जिनको तन्त्र भी कहा जाता है शैव सिद्धान्तों के आधार हैं। इनके नाम—कामिक, योगज, चिन्त्य, कारण, अजित, दीप्त, सूक्ष्म, सहस्र, अंशुमान, सुप्रभेद, विजय, निश्वास, स्वायम्भुव, अनल, वीर, रौरव, मुकुट, विमल, चन्द्रज्ञान, बिम्ब, प्रोद्गीत, ललित, सिद्ध, संतान, सर्वोत्तर, परमेश्वर, किरण और वातुल हैं।[1] शैव सिद्धान्तों का प्रतिपादन करने वाले साहित्य में छठी शताब्दी से नवीं शताब्दी तक रचे गए यामल ग्रन्थों का भी महत्त्व है। इनमें मुख्य आठ हैं जिनके नाम इस प्रकार हैं—रुद्र, स्कन्द, ब्रह्म, विष्णु, यम, वायु, कुबेर, और इन्द्र।[2] इन समस्त ग्रन्थों के आधार पर जिस साहित्य का निर्माण हुआ है उसे शैव साहित्य कहा जाता है।

---

१ बलदेव उपाध्याय—भारतीय दर्शन पृ० ४५६।

२ पी० सी० बागची—इवोल्यूशन आफ दी तन्त्राज, कल्चरल हेरिटेज आफ इण्डिया पृ० २१६।

मध्यकाल पर्यन्त शव साहित्य को सिद्धान्त-परक साहित्य, कथात्मक काव्य तथा चरित काव्य म विभाजित किया जा सकता है।

शैव साहित्य का रूप

सैद्धान्तिक काव्यो म निगम और आगम' म प्रतिपादित शव सिद्धान्तो का निरूपण है। कथात्मक काव्य शिव एव शिव परिवार की कथाओ से सम्बद्ध है। चरित काव्य प्रमुख शवाचार्यों की जीवन गाथा को लेकर लिखा गया है।

शैव सिद्धान्तो के क्रमिक विकास एव उनके साहित्यिक प्रभाव को इस युग के तत्सम्बन्धी साहित्य से जाना जा सकता है।

सद्धान्तिक

सद्धान्तिक काव्यो म आगम ग्रन्थो की दार्शनिक मान्यताओ का विवेचन हुआ है। यह काव्य परम्परा नावाचार्यों के साथ ही साहित्य को प्राप्त हुई। माध्वाचार्य का सवदशन सग्रह राजशेखर सूरि का 'षडदशन समुच्चय तथा वृहद्वृति और काश्मीर-मामवन का 'गणकारिका पाशुपत सिद्धान्तो का प्रतिपादन करने वाले ग्रन्थ हैं। सद्धान्तिक काव्यो म महेश्वर कृत पाशुपत सूत्र,' सूत सहिता कौण्डिन्य कृत पचार्थी भाष्य का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। आठवी शताब्दी के सद्योज्योति कृत नरेश्वर परीक्षा, गौरवागम-की-वृत्ति स्वायम्भुव आगम पर उद्योत तत्व सग्रह तत्व त्रय, भागकारिका, मोक्षकारिका, परमोक्षनिरासकारिका आदि सद्धान्तिक काव्य प्राप्त होते हैं।[१] वसुगुप्त कृत स्पन्दकारिका, कल्लट के स्पन्द सवस्व और नवी शताब्दी मे सोमानन्द के शिव दृष्टि, परात्रिशिका विवृत्ति, उत्पलाचार्य कृत प्रत्यभिज्ञाकारिका, सिद्धित्रयी, दसवी शताब्दी के अभिनवगुप्त कृत ध्वन्यालोक-लोचन, ईश्वर-प्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी तन्त्रालोक तन्त्रसार, मालिनी विजय वार्तिक परमार्थसार परात्रिशिका विवृत्ति आदि सद्धान्तिक काव्यो म त्रिकदशन का विशद विवेचन हुआ है।

ग्यारहवी शताब्दी के क्षेमराज की शिवसूत्रविमर्शिनी स्वच्छन्द तत्र, विज्ञान भरव नत्र तत्र पर उद्योत टीका, प्रत्यभिज्ञाहृदय स्पन्द-सन्दोह शिवस्तोत्रावली की टीका आदि सद्धान्तिक काव्य हैं।[२] गोरक्षनाथ के नाम पर भी सिद्धान्त परक काव्य प्राप्त होते हैं जिनमे मुख्य गोरक्ष शतक गोरक्ष पद्धति गोरक्ष सहिता, चतुरशीत्यासन ज्ञानशतक याग चिन्तामणि, याग मार्तण्ड योग सिद्धासन पद्धति सिद्ध सिद्धान्त पद्धति हठयोग सहिता माने गए हैं।[३] इनमे

---

१ बलदेव उपाध्याय-आय सस्कृति के मूलाधार पृ० ३३१।

२ बलदेव उपाध्याय-भारतीय दशन-पृ० ५६०।

३ हजारी प्रसाद द्विवेदी-नाथ सम्प्रदाय-पृ० १००।

का आजपूर्ण तथा मश्लिष्ट वर्णन है, इसके अष्टम सर्ग का रति वर्णन तीव्र कल्पना का पात्र भी बना है। कवि ने अपने उपास्य जगत पितरौ शिव पार्वती जैसे दिव्य दम्पति के रूप तथा स्नेह का औचित्यपूर्ण तथा ओजस्वी वर्णन किया है। इस परम्परा का दूसरा काव्य सातवीं शताब्दी के भारवि का 'किरातार्जुनीय' है।

'किरातार्जुनीय' महाभारत वर्ग के प्रमुख महाकाव्यों में है। इसका कथानक महाभारत के सुप्रसिद्ध आख्यान पर आधारित है। शिव का 'किरात' रूप में अवतरित होकर अर्जुन को अस्त्र प्रदान करना ही इस काव्य की कथा का प्रमुख अंश है। संस्कृत शैव काव्य में काश्मीर के कवि रत्नाकर का हर विजय भी प्रसिद्ध है।[१]

रत्नाकर का हर विजय आठवीं शताब्दी के संस्कृत महाकाव्यों में श्रेष्ठ माना जाता है। इनका माघ के काव्य लक्ष्मीपतशचरित कीर्तनमात्र चारु के अनुरूप चन्द्रचूड चरिताश्रय चारु नामक महाकाव्य है। इसका कथानक शंकर के द्वारा अन्धक असुर' का वध है। कवि का ध्यान जल क्रीडा सन्ध्या चन्द्रोदय समुद्रोल्लास प्रसाधन विरह पान गोष्ठी आदि तथा भाषा के सौन्दर्य ललित पदों की मैत्री और अभिनव वर्णनों के उपन्यास में और शब्दों के अद्भुत प्रभुत्व में केन्द्रित प्रतीत होता है।

शिवार्क नामक काव्य भी महाकाव्यों के क्रम में आता है। इसके रचयिता शिव स्वामी शैवमतावलम्बी थे। जिनका काल नवीं शताब्दी है। मंखक कृत श्रीकण्ठचरित बारहवीं शती का महाकाव्य है जिसमें भगवान शंकर और त्रिपुर के युद्ध का साहित्यिक वर्णन है। इस काव्य की विशेषताएं पदों का सुन्दर विन्यास अर्थों की मनोहर कल्पना एवं भक्ति का उद्रेक है। बारहवीं शताब्दी में श्री हर्ष का शिव भक्ति सिद्धि नामक ग्रन्थ प्राप्त होता है जिसमें शिव शक्ति की साधना का उल्लेख है। नीलकण्ठ का शिवलीलार्णव[२] महाकाव्य है। इसके बाइस सर्गों में शंकर की पुराण वर्णित लीलाओं का सरस सन्निवेश है। *इनके गंगावतरण नामक काव्य में गंगा के भूतल पर अवतरण* का सुन्दर वर्णन है।

---

१ बलदेव उपाध्याय-संस्कृत साहित्य का इतिहास पृ० १८८ २१६ २३०।

२ बलदेव उपाध्याय संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ० २४३।

महाकाव्यों की परम्परा में गोकुलनाथ का 'भिक्षाटन' काव्य माननीय है। इसमें शिव का शृंगारिक वातावरण में चित्रण किया गया है। तरहवीं शताब्दी के काश्मीर निवासी जयद्रथ रचित 'हर चरित चिन्तामणि' भगवान शंकर के नाना चरित्रों और लीलाओं का वर्णनात्मक काव्य है।[1] सामेश्वर कवि के 'सुरथोत्सव' काव्य में दुर्गासप्तशती में उल्लिखित कथानक का सुविस्तृत वर्णन है।[2] 'विद्यामाधव' ने 'पार्वती रुक्मणीय' नामक नवसर्गात्मक काव्य में पार्वती और रुक्मणी के विवाह का विशद वर्णन किया है।

खण्डकाव्य

शवकाव्य में खण्डकाव्यों का भी प्राचुर्य है। संस्कृत साहित्य में शव खण्डकाव्यों का अभाव सा रहा है। शिव और पार्वती के विवाह आदि प्रसंगों के आधार पर हिन्दी साहित्य में खण्ड काव्यों का निर्माण हुआ है। रामकृष्ण राय का शिवायन रामेश्वर चक्रवर्ती भट्टाचार्य का शिवसंकीर्तन द्विज कालिदास का कालिका विलास तथा माणिकराय कृत[3] वैद्यनाथ मंगल इसी परम्परा में रखे जा सकते हैं। महाकवि तुलसीकृत पार्वती मंगल सोलहवीं शताब्दी का खण्डकाव्य है। राजस्थानी साहित्य में भी खण्डकाव्यों का निर्माण हुआ है। कवि किसनउ[3] कृत 'महादेव पार्वती री वेलि' खण्डकाव्य है जिसमें शिव के दो विवाहों का रोचक वर्णन है। इसी क्रम में राजस्थान के लोक साहित्य में प्रसिद्ध 'पार्वती मंगल' है। यह भक्ति रस का काव्य है किन्तु इसमें हास्य रस का सुन्दर पुट भी है। अठारहवीं शताब्दी के कवि रुस्तम कृत 'शिव ब्यावला' भी खण्ड काव्य की परम्परा में आता है। इसका कथानक यद्यपि प्राचीन है तथापि कवि ने पार्वती विवाह के अवसर पर दो बरातों के आगमन की कल्पना कर नवीनता लाने का प्रयास किया है। शिव से सम्बद्ध महाकाव्य और खण्डकाव्य की यह परम्परा जन साधारण का रंजन तो करती ही है उनकी भक्ति भावना को भी शिवोन्मुख करती है।

चम्पू काव्य

शव साहित्य में चम्पूकाव्य की भी एक परम्परा रही है। तेरहवीं शताब्दी के कवि हरिहर कृत 'गिरिजा कल्याण' चम्पूकाव्य है। इसकी कथावस्तु शव पौराणिक काव्यों में वर्णित शिव पार्वती विवाह है। गिरिजा के चित्र का चित्रण करने में

---

१ बलदेव उपाध्याय—संस्कृत साहित्य का इतिहास पृ० २६२।

२ वही, पृ० २६४।

३ डा० हिरण्मय—हिन्दी और कन्नड में भक्ति का तुलनात्मक अध्ययन, पृ० १३८।

कवि ने विशेष रुचि दिखलाई है। सत्तरहवी शताब्दी के पडक्षर देव कृत 'राज शेखर विलास ' वृषभेन्द्र विजय भी चम्पू काव्य है।[1] इनमे पाण्डित्य और कविता का सुदर समन्वय है।

प्रबन्ध और चम्पू काव्य के अतिरिक्त शव स्तोत्र काय दशन और साहित्य दाना क्षेत्रो म अपना महत्त्व रखता है। सस्कृत स्तोत्र साहित्य म जगद्धरभटट कृत स्तुति कुसुमाजलि, शकर कृत महिम्न स्तोत्र उत्पल देव कृत शिवस्तोत्रावलि, नारायण पण्डिताचाय कृत शिव स्तुति दुर्वासा कृत ललिता-स्तवरत्न, त्रिपुर महिम्न स्तोत्र प्रसिद्ध हैं। लकेश्वर की कृति शिवस्तुति' भी प्रसिद्ध है।[2] जिसम भगवान शिव म ही ध्यान को केद्रित करने की अभिलाषा प्रकट की गयी है। राघव चतन्य के महागणपति स्तोत्र' म शिव के पुत्र गणेश के सौदय, शक्ति आदि का वणन है। वक्रोक्ति पचाशिका म शिव पावती की वदना की गयी है।

स्तोत्र काव्य

हिदी म मनियार सिह कृत 'महिम्न भाषा' सौदय लहरी शिव सहायदास कृत 'शिव चौपाइ'[3] की गणना श्रेष्ठ स्तोत्र साहित्य म की गयी है। देवयाण' नामक काव्य मे देवी की स्तुति है। त्रिपुर सुदरी री वलि भी इसी प्रकार का स्तुति काव्य है।

स्तोत्र साहित्य के अन्तगत शतक वचन वानी और सलाका भी माने गय हैं।

स्तोत्र काव्य की परम्परा म शिव-पावती स्तुति स सम्बद्ध शतक काव्यो की भी रचना हुइ। बाणभट्ट कृत चण्डी शतक' गोकुलनाथ कृत शिव शतक, हरिहर कृत पम्पाशतक रक्षा शतक इसी परम्परा के काय हैं। सोलहवी शताब्दी स मग्गेय मायिन्द कृत शतक त्रय चद्रकवि का गुरुमूर्ति शकर शतक वीर भद्रराज का पचशतक नामदव कृत मल्लश्वर शतक चेन्न मल्लिकाजुन का शिव महिमा शतक शकर देव का शकर शतक एव शान्तवृषमेय का[4] अनुभव शतक उल्लखनीय है। इन शतका म शव सम्प्रदाय के तत्वो का निरूपण

१ डा० हिरण्मय हिन्दी और कन्नड में भक्ति का तुलनात्मक अध्ययन, पृ० १३८।

२ डा० रामसागर त्रिपाठी—मुक्तक काव्य परम्परा और बिहारी पृ० १३८।

३ रामचन्द्र शुक्ल—हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ० ३७६।

४ डा० हिरण्मय-हिन्दी और कन्नड में भक्ति का तुलनात्मक अध्ययन, पृ० १३५।

करते हुए भक्ति, ज्ञान और वैराग्य का उपदेश दिया गया है। शैव भक्तों ने स्तोत्र मुक्तक पदों के अतिरिक्त वचन साहित्य का भी सृजन किया है।

दक्षिण के वचन साहित्य में शैव सिद्धान्तों के विवेचन के साथ ही भक्त हृदय के भावों की भी अभिव्यक्ति हुई है। वचन साहित्य की परम्परा में सोलहवीं शताब्दी के मगेय मायिदेव के वचन सत्तरहवीं शताब्दी के सवर्ण कृत सवज्ञ वचन गलु षटचक्रद वचन वेडगिन वचन हैं। वस्तुतः वचन साहित्य बहुत विस्तृत है। अनेक शैव भक्तों के नाम पर वचन साहित्य प्राप्त होता है। इनमें प्रभु देव के वचन सकलेशमादरस के वचन, बसव के वचन चालनान वचन, चेन्नबसव वचन सिद्धराम वचन महादेवियक्क वचन मल्लिकार्जुन पण्डित वचन मुख्य हैं।[१] कुछ शैव भक्तों के वचन 'वचन शास्त्र सार' के दो भागों में तथा वचन धर्मसार' में भी प्राप्त होते हैं।

वाणी साहित्य शैव संतों के नाम पर भी वाणी मुक्तकों के संग्रह प्राप्त होते हैं जिनमें शैव सिद्धान्तों की व्याख्या और चित्त को शिव भक्ति में लीन करने का उपदेश है। इन मुक्तक संग्रहों में सत्रहवीं शताब्दी के संत किनाराम का विवेकसार गीतावली याग श्वराचार्य कृत स्वरूप प्रकाश टेकमनराम कृत भजन रत्नमाला भक्त सुक्खु कृत आनन्द सुमिरनी, गुलालचन्द कृत आनन्द भण्डार रामटहलराम कृत भजन रत्नमाला आनन्द कृत तख्यलात आनन्द मुख्य हैं। इनके समान ही निपक्ष वेदान्तसार कर्तागम धर्मागम चरित्र आत्मनिगुण-ककहरा जयमाल आदि काव्यों में शैव योग के सिद्धान्त पक्ष का भी विवेचन हुआ है। इन काव्यों का विस्तृत निधि में बाधिदास मिलकराम गोविन्दराम टेकमनराम की बानियाँ के हस्तलिखित ग्रन्थ हैं।[२]

सलोका साहित्य शैव स्तोत्र काव्य की परम्परा का एक स्वरूप सलोका साहित्य के रूप में भी प्राप्त होता है। संस्कृत के श्लोक शब्द से ही सलोका सलाका अथवा सिलोका शब्द बना है। इनमें शिव स्तुति, प्रशंसा कीर्ति और यशोगान मिलता है। इस सलोक साहित्य में पन्द्रहवीं शताब्दी के विनीत विमल रचित आदिनाथ सलोका प्रसिद्ध है।

---

१ डा० हिरण्मय—हिन्दी और कन्नड़ में भक्ति आन्दोलन का तुलनात्मक अध्ययन परिशिष्ट, पृ० ३७६।

२ डा० धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी-संतमत का सरभंग सम्प्रदाय, पृ० १२६, १२७, १२६, १३१।

चरित काव्य शव सम्प्रदाय के आचार्यों के चरित्र भी शव भक्तों की श्रद्धा के अग होने के कारण काव्य की वस्तु बने है। यह चरित काव्य तीन प्रकार का प्राप्त होता है—एकाथ चरित्र चरित्र सकलन और खण्ड चरित्र।

भक्त की जीवन गाथा अभिव्यक्त करने वाले काव्य को एकाथ चरित्र काव्य कहा गया है। राघवाक के हरिश्चन्द्र काव्य और सिद्धराम चरित्र एकाथ चरित्र काव्य हैं। हरिश्चन्द्र काव्य मे 'हरिश्चन्द्र को शिव भक्त के रूप मे चित्रित किया गया है। सिद्धराम चरित्र मे शिवभक्त सिद्धराम की जीवनी का विस्तार के साथ वणन किया गया हैं। सोमनाथ चरित्र मे सौराष्ट्र के शिव भक्त 'आदयया का वणन है।[१]

कुछ एसे काव्य भी है जिनम एक साथ अनेक भक्तो के चरित्र का सकलन हुआ है इह चरित्र सकलन काव्य भी कहा जा सकता है। माणिक वाचकर का 'परियपुराणम् चरित्र सकलन काव्य है जिसमे नायनमार भक्तो का जीवन वृत वर्णित है। चरित्र सकलन काव्या मे भीमकवि का वसव पुराण मल्लमणाक का पद्मराज पुराण, बोम्मरस का सौदर पुराण चतुमुख बोम्मरस का रेवणसिद्ध पुराण और विरूपाक्ष का चेन्नवसव पुराण' आदि प्रसिद्ध पुराण हैं।

वीरेश चरिते को खण्ड चरित्र काव्य कहा जा सकता है। इसम शिव के कोप स प्रसूत वीरभद्र का दक्षयज्ञ विध्वश ही वर्णित है।

निष्कष मध्यकालीन हिन्दी कविता पर शवमत के प्रभाव की दिशा और दशा का अन्वेषण करने के लिए शव साहित्य का अध्ययन अपेक्षित है। साहित्य जीवन की अभिव्यक्ति ही नही जीवन के प्रवाह मे विकसित धम और दशन का अक्षय भण्डार है। साहित्य धम और दशन के क्रोड म पल्लवित भाव धारा का भी अक्षय स्रोत होता है। किसी भी युग का साहित्य युग विशेष की प्रवृत्ति का परिणाम तो होता ही है किन्तु वह अपने पूव और बाद के साहित्य की भी महत्त्वपूण शृखला होता है।

मध्ययुगीन हिन्दी कविता पर पूववर्ती सस्कृत साहित्य और मध्यकाल के पूववर्ती हिन्दी साहित्य का स्पष्ट प्रभाव है। मध्यकाल के पूववर्ती सस्कृत

---

१ डा० हिरण्मय—हिन्दी और कन्नड में भक्ति का तुलनात्मक अध्ययन पृ० १३०।

अध्याय ४

मध्यकालीन हिन्दी कविता पर शैवमत के प्रभाव की दिशा और दशा

मध्यकाल तक शवमत का पर्याप्त विकास हो चुका था। इस काल का साहित्य स्वय उक्त तथ्य का प्रमाण है। शवमत विभिन्न सम्प्रदायो और उपसम्प्रदायो म विकसित हो रहा था। उसका एक अग तात्रिक भी था अत उसमे वदिक और तात्रिक विचार धाराग्रा के समन्वय के साथ वदिक दशन और तत्रो के साधना पक्ष का भी महत्व प्रतिपादित हुग्रा। शवमत के सिद्धान्त पक्ष के निरूपण मे यह स्पष्ट है कि इसम दशन योग एव भक्ति की विशिष्ट परम्परा है जिसके ग्राधार पर शवाचार्यों ग्रौर शिवभक्तो ने साहित्य का निर्माण किया।

इस साहित्य म शव दशन के ग्राध्यात्मिक विषय ब्रह्म माया जीव, जगत् कम ग्रौर मोक्ष तथा योग के ग्रष्टागो, मानसिक एव ग्राध्यात्मिक भूमिकाग्रा का विशद विश्लेषण हुग्रा है। इसके ग्रतिरिक्त शव साहित्य म शिव एव उनके परिवार का उपास्य स्वरूप तथा पूजा के उपकरण ग्रौर विधि तथा भक्ति द्वारा शिव ग्रौर जीव की ऐक्यावस्था का भी वणन हुग्रा है। मध्यकालीन हिदी कविता पर शवमत का प्रभाव वस्तुत शव साहित्य मे वर्णित उक्त सिद्धाता के रूप मे ही ग्राया। ग्रत उन्ही को इस युग के साहित्य पर शव मत के प्रभाव की दिशा कहना उचित होगा। मध्ययुग की कविता पर शवमत के प्रभाव को दशन योग भक्ति ग्रौर शव साहित्य की दिशा मे सरलता से देखा जा सकता है।

अध्यात्म दर्शन शिव

मध्ययुगीन हिन्दी कविता में ब्रह्म का स्वरूप वर्णन के प्रसंग में शिव न निर्गुण निराकार ही नहीं है सक्रिय भी है। उनकी स्वतन्त्र इच्छा शक्ति जगत् के निर्माण का हेतु है। इसी से उन्हें जगत् का निमित्त कारण भी कहा गया है। इस युग की कविता में शिव परब्रह्म, अनाम और ज्ञाता हैं। वे अपनी इच्छा से नाना प्रकार की भूमिका ग्रहण करते हैं।

मध्यकालीन हिन्दी कवियों ने अगम[1] निरंजन[2] अलख[3] और शून्य[4] नाम से निराकार शिव को अभिहित किया है। ये शब्द नाथ सम्प्रदाय में शिव के लिए प्रयुक्त हुए हैं। विवेच्य युग की कविता में इन नामों की अवतारणा के साथ शिव के गुणों का भी वर्णन हुआ है।

संत कवियों ने शिव की सर्वव्यापकता को स्वीकार किया है। सन्त दरिया की बानी में कहा गया है — 'जल थल सकल समान लहि सिमि करि करो उगान'[5]

मध्ययुग के हिन्दी कवियों ने आत्मा और शिव की एकता को भी माना है। गुलाल की बानी में कहा गया है—

जीव पीव महँ पीव जीव महँ बानी बोलत सोई
सोई सकल महँ हम सबहुन महँ बूझत बिरला कोइ[6]

मध्यकालीन कवियों ने शिव और शक्ति के अविच्छिन्न सम्बन्ध को अग्नि और अग्नितत्व तथा पुष्प और सुगन्ध के उदाहरण द्वारा चित्रित[7] किया है। इन कवियों ने शैव दर्शन की नाद और बिन्दु धारणा को भी अपने ढंग पर अपनाने का प्रयत्न किया है। भीखा साहब का कथन है—

'नाद बिन्दु के जोहु बदन में, मन माया तब मरे'[8]

---

१ कबीर ग्रन्थावली—पृ० २३०।
२ संतबानी संग्रह—गुरु नानक भाग २ पृ० ५१।
३ परशुराम चतुर्वेदी—संतकाव्य संग्रह दादू साहब पृ० १३६।
४ अखरावट जायसी ग्रन्थावली पृ० ३२४।
५ दरिया दरिया सागर ज्ञानरत्न, पृ० ११०—०।
६ संतबानी संग्रह भाग २, पृ० २०३।
७ परशुराम चतुर्वेदी—संतकाव्य संग्रह पृ० ४७२।
८ भीखा साहब की बानी पृ० ७।

अतएव यह कहा जा सकता है कि मध्ययुगीन कविता म शव दशन के प्रभाव के परिणामस्वरूप शिव रूप-ब्रह्म को सच्चिदानन्द सव शक्तिमान सवज्ञ माना है। इस युग के काव्य म माया को सत्य और मिथ्या माना है। इसका सद्रूपध्वनित करन के लिए सगुण भी कहा गया है। माया क सत्य रूप म विश्वास कर राजा मानसिंह अपनी बानी मे कहते हैं— माया ही ब्रह्म रूप यह जान माया ब्रह्म भिन्न मति जान।[1] माया क असत्य स्वरूप का वणन करत हुए सत आनन्द कहते हैं— झूठ विधाना को सगरा व्याहार।[2]

मध्ययुगीन हिन्दी कविता म शव दशन क प्रभाव म जाव की विभिन्न कोटिया उसक शुद्ध आत्मस्वरूप तथा उसम निहित अनात्म तत्त्व का भी वणन हुआ है। जीव और शिव का अशाशी सम्बन्ध द्वताद्वत अद्वत एव विशिष्टाद्वत सम्बन्ध भी काव्य का प्रिय विषय रह है। इस विषय म सत रदास चरणदास आदि के नाम उल्लखनीय हैं। सत काव्य म निरजन की कल्पना शव मत का प्रभाव कही जा सकती है। ब्रह्म का निरजन शब्द स सम्बोधित करते हुए दरिया ने कहा है— निरजन! धन्य तेरी दरबार[3] सत किनाराम ने निरजन का निवास निराकार म वतमान हुए कहा है जीवन सुना निरजन करा निराकार मह सतत खेरा[4]।'

आचाय किनाराम न जगत आत्मा और परमात्मा क अभेद की व्याख्या करते हुए कहा है मैं ही जीव हू मैं ही ब्रह्म हू मैं ही अकारण निर्मित जगत् हूँ मैं ही निरजन हूँ और मैं ही विकराल काल हू।[5] सुन्दरदास ने अपनी बानी म जगत् का ब्रह्म का अविकृत परिणाम माना है जसे घत थीज के डरा सो बधि जात पुनि फर पिघरें त वह घृत ही रहतु है।[6] सत कबीर ने समस्त जगत् का परमेश्वर का प्रतिबिम्ब[7] माना है। इस जगत् की अनकता सशय के कारण है। सशय मिटने पर इस जगत् का अस्तित्व मिट जाता है। कबीर ने जगत् की असत्यता को भ्रमज य माना है।

---

१ रामगोपाल मोहता द्वारा सम्पादित मा पद्य सग्रह, भाग १, पृ० ४७।
२ आनन्द-आनन्द भण्डार पृ० १०८ १०६।
३ धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी-सतकवि दरिया एक अनुशीलन पृ० ७८।
४ किनाराम-विवेकसार, पृ० २०।
५ वही पृ० २५।
६ परशुराम चतुर्वेदी सतकाव्य सग्रह पृ०
७ कबीर ग्रन्थावली पृ० ६३।

सृष्टि के तत्वो का विश्लेषण करते हुए आनन्द की बानी म कहा गया है—

'पाच तत्व का बना पींजरा, तामे तू लपटाया रे"१

मध्यकालीन कविया म जगत् सम्बन्धी यह विचार धारा शव दशन के प्रभाव से आई जान पडती है।

कम के अमोघ परिणाम को सभी कवियो ने मान्यता प्रधान की है। उनके अनुसार इस लोक के सभी प्राणी कम के प्रवाह म बहे जा रहे हैं और कम के भोग को भोगते हैं। सत भीखा की बानी मे कहा गया है

'अपनी कपट कुचालो नाना दुख पावें
कम मरम बीच मे सिह स्यार कहावें"२

कम का भोग और भोग का कम बनता है। यह परम्परा उस समय तक चलती रहती है जब तक कि जीव मुक्त नही हो जाता। कम के निवृत्त होने पर जीव मुक्त स्वरूप हो जाता है। इस भाव को व्यक्त करते हुए पलटू साहब ने अपनी बानी म कहा है—कम मुक्ति सहज नही है निष्काम कम से ही कम नाश होता है— कम बन्धन सकल छूटे जीवन मुक्ति कहावन ३ पाशो का वणन भी मध्ययुगीन कविता म शवमत के प्रभाव से आया प्रतीत होता है। इद्रियो को मन के आधीन कर काया से सब गुणो को त्याग कर कम के बधन से मुक्त होकर जीव मोक्ष प्राप्त कर लेता है। निष्काम कम मे खाना पीना बन्द हो जाता है या कम बन्द हो जात है ऐसी बात नही है। बात इतनी सी है कि मन म इच्छाए नही रहती मन वृत्तिहीन हो जाता है। इसी अवस्था को निरजन अवस्था कहते हैं। दादू ने कहा है —

'जब मन मितक ह व रहे, इन्द्री बल भागा
काया क सब गुण तज, नीरजन लागा।"४

मुक्ति की अवस्था म जीव द्वन्द्व रहित हो जाता है और पाप पुण्य से परे हो जाता है। जीव सशरीर इस जगत् म ब्रह्मानन्द अनुभव करता है। कबीर साहब की बानी म भी कहा गया है —

---

१ आनन्द-आनन्द भण्डार, पृ० २४।
२ भीखा साहब की बानी, पृ० ५७ ५८।
३ पलटू साहब को बानी पृ० ५७।
४ दादू दयाल की बानी (बेलवडियर प्रेस), पृ० ११४।

"साधो भाई, जीवत ही करो बासा
जीवत समझे जीवत बूझे जीवन मुक्ति निवासा
तन छूटे जिव मिलन कहत है सो सब झूठी आसा।"[१]

मध्यकालीन हिन्दी कविता में ज्ञान दशा के आधार पर कवियों का लक्ष्य दुखान्त एवं चिदानन्द अवस्था तथा जीव और ब्रह्म सामरस्य का प्रतिपादन प्रतीत होता है।

शैवमत के अध्यात्म दर्शन का प्रभाव, इस युग की कविता में ब्रह्म[२] की सक्रियता, नाद बिन्दु[३] पिण्ड ब्रह्माण्ड वर्णन, माया[४] की सद्रूपता माया के विद्या और अविद्या भेद[५], जीव[६] की ब्रह्म रूपता जीव की सत्यता जीव के भेद वर्णन में तो है ही जगत्[७] की सत्यता जगत् और ब्रह्म[८] के सम्बन्ध अविकृत परिणाम एवं आभासवाद कर्म सापेक्षता, और कर्मसंन्यास[९] द्वारा दुखान्त तथा सामरस्य या आनन्दवाद[१०] में भी उसका प्रभाव स्पष्ट देखा जा सकता है। शैव दर्शन मध्ययुग का प्रमुख दर्शन रहा है इसका तत्कालीन काव्य धाराओं पर अक्षुण्ण प्रभाव है।

मध्ययुगीन हिन्दी कविता पर शैव मत के प्रभाव की दूसरी दिशा 'योग दर्शन' है। शैवयोग में साधना की तीन भूमिकाएं मान्य हैं। प्रथम भूमिका में साधक एक मात्र शारीरिक साधना द्वारा हठात् चितवृत्ति का निरोध करता है। उसकी साधना क्रमशः शरीर की भूमि से ऊपर उठकर भावना क्षेत्र में पहुँचती है और वह अपने हृदय में निहित आनन्द एवं मानसिक शान्ति की अनुभूति करता है। यही अनुभूति विकसित होकर अध्यात्मिक भूमिका में अलौकिक आनन्द में लीन होती है। इसी को ज्ञान की चरमावस्था भी कहा है।

---

१ हजारी प्रसाद द्विवेदी कबीर (कबीर वाणी), पृ० २३२।
२ देखिए-इसी अभिलेख का द्वितीय अध्याय प० ३३।
३ वही, पृ० ४२।
४ वही पृ० ३८।
५ वही पृ० ३६।
६ वही पृ० ५०।
७ वही पृ० ४५।
८ वही पृ० ४५।
९ वही पृ० ५६।
१० वही पृ० ५४।

शव-सिद्धान्त के प्रभाव की इस दिशा को इन विविध भूमिकाओं में देखा जा सकता है।

मध्ययुगीन सुन्दरदास मलूकदास चरणदास आदि सतो की कविता में यम[1] नियम[2] आसन[3] प्राणायाम[4] और उसके अंग[5] षटकर्म मुद्रा[6] नाडी विचार[7] चक्र वर्णन[8], प्रत्याहार[9] तथा उसके साधना का वर्णन शवयोग का प्रभाव है। शव सिद्धान्त में चित्तवृत्ति के नियन्त्रण में ही उक्त तत्वों का महत्व माना गया है वस्तुतः इनके द्वारा अपने विशिष्ट लक्ष्य में चित्त को केन्द्रित करना ही इसका लक्ष्य है।

धारणा[10] ध्यान[11] और समाधि[12] से ही चित्त की विशुद्धता एकाग्रता प्राप्त होती है। मध्ययुगीन सत चरनदास, सहजोबाई सत गुलाल आदि की वानियों में इसका तथा इसके भेदों का वर्णन भी शव दर्शन में मान्य ग्रन्थों के आधार पर ही हुआ है अनेक स्थलों पर इनका तात्विक विश्लेषण प्रस्तुत करते समय इनकी उक्तियों को भी उसी रूप में प्रस्तुत किया गया है।

सत वानियों में त्रिवेणी वाराणसी भवरगुफा में अमृतपान सहस्रदल कमल में कैलास और शिव की कल्पना शव योग का ही प्रभाव है। मध्य युग के सत कबीर बुल्ला साहब यारी साहब आदि की वानियों से ज्ञात होता है कि उनका लक्ष्य बाह्य आडम्बरों का विरोध कर आत्मा में निवास करने वाले शिव में ऐक्य प्राप्त करना था। मध्ययुग का अधिकांश काव्य जीव और शिवैक्य

---

१ देखिए इसी अभिलेख का द्वितीय अध्याय पृ० ६८।
२ वही पृ० ६८।
३ वही पृ० ६९।
४ वही, पृ० ७०।
५ वही पृ० ७१।
६ वही पृ० ७२।
७ वही पृ० ७४।
८ वही पृ० ७६।
९ वही पृ० ७९।
१० वही पृ० ८१।
११ वही पृ० ८४।
१२ वही पृ० ८४।

का ही प्रतिपादन करता है। इस अवस्था को प्राप्त करने में गुरु के महत्व का भी वर्णन है।

शैव योग में जैसा कि अन्यत्र भी कहा जा चुका है शिव को ही गुरु माना है। इसके अनुसार साधना की प्रथम भूमिका में ही लौकिक गुरु की आवश्यकता है इसके बाद आत्मस्थ गुरु ही उसके मार्ग निर्देशक होते हैं। शैव सिद्धान्त के प्रभाव की इस दिशा में कहा जा सकता है कि मध्ययुगीन हिन्दी कविता में इसी आधार पर गुरु के महत्व का प्रतिपादन तुलसी साहब दयाबाई तथा यारी साहब आदि सतों ने किया है।

संक्षेप में कह सकते हैं कि मध्य युग के हिन्दी काव्य पर शैव योग का प्रचुर प्रभाव रहा। यही इस युग की योग प्रधान कविता का आधार है। अतः उक्त धारा के साहित्य का अध्ययन करते समय शैवयोग के महत्वपूर्ण प्रभाव की उपेक्षा कदापि नहीं की जा सकती। रामानन्द और उनके गुरु राघवानन्द पर इसका गहरा प्रभाव था। राघवानन्द कृत 'सिद्धान्त पचमात्रा' इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। रामानन्द के प्रभाव से सूर और तुलसी ने भी तीक्ष्ण शब्दों में योग का वर्णन किया है।

भक्ति दिशा

शैव सिद्धान्त के तीसरे पक्ष "भक्ति दर्शन" का भी मध्यकालीन हिन्दी कविता पर स्पष्ट प्रभाव है। इसी अभिलेख के द्वितीय अध्याय में कहा जा चुका है कि भक्ति में उपासक, उपास्य और उपासना तीनों का महत्व है[1]।

मध्ययुग के संत कवि कबीर एवं जायसी आदि की प्रेम आख्यानक रचनाओं में उपासक, उसके लक्षण वेषभूषा आचार विचार का वर्णन है। इनके नैतिक दृष्टिकोण ने काव्य की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि को प्रभावित किया है। संत कबीर, किनाराम, गुलाबसिंह आदि ने सदाचरण को धर्म का प्राण और सर्वस्व बतलाकर, उसके आचरण को धर्म का मूल कहा है। भारतीय धर्म और साधना के समान, शैवों के सदाचार वैराग्य और विभिन्न संस्कारों ने, साहित्य में भी महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त किया है। साहित्य की सांस्कृतिक भूमिका पर इस प्रभाव को स्पष्ट देखा जा सकता है। इनके उपास्य भी भक्ति साहित्य में पूज्य पद प्राप्त किये हुए हैं।

शैवों के उपास्य शिव हैं। इनमें उपास्य शिव के समान ही पार्वती,

---

[1] देखिए इसी अभिलेख के द्वितीय अध्याय पृ० ८८।

हम नहिं आज रहव यहि आगन, जो बुड़ होएत जमाई।[1]

शवेतर काव्यों में शिव पार्वती सम्बन्धी कथाओं के मन्थन का भी अभाव नहीं है। भूषण कवि ने अपने काव्य में कहा है।

'हरयो रूप इन मदन को याते भो शिव नाम
लियो विरद सरजा सबल अरि बाज दलि सग्राम[2]"

साहित्य शास्त्र में तात्पर्य पारिभाषिक शब्दावली अलंकार और रस से है। मध्ययुगीन कविता पर शव साहित्य के इस पक्ष का भी प्रचुर प्रभाव है। इस काल के कवियों ने चन्द सूर्य, वकनालि, पचपियारिया द्वादशगम, शून्य गगन मण्डल आदि पारिभाषिक शब्दों की योजना शव दर्शन के आधार पर की है।

अलंकार क्षेत्र में मध्ययुगीन कवियों में, प्रतीक योजना, अन्योक्ति समासोक्ति, विभावना आदि अभिव्यक्ति का मुख्य आधार रहे हैं। इन अलंकारों का पूर्ववर्ती शव साहित्य से घनिष्ट सम्बन्ध है।

आचार्य अभिनवगुप्त का रस-सिद्धान्त मध्ययुगीन कवियों का विशेष मान्य रहा। उन्होंने इसके आधार पर हृदय की अद्वैतावस्था में प्राप्त आनन्द को रस कहा है। इस युग के कवियों ने चेतावनी और उपदेश प्रसंग में शान्त रस तथा ब्रह्म की कल्पना में अद्भुत रस का प्रयोग किया है। इनके साहित्य में हास्य एवं वीभत्स रस का भी प्रयोग हुआ है, तथापि शृंगार, शान्त और भक्ति रस का ही प्राधान्य है। अतः मध्यकालीन कविता पर शव साहित्य के प्रभाव की दिशा स्पष्ट है।

निष्कर्ष

शवमत में सिद्धान्त के—दर्शन योग और भक्ति तीनों पक्ष महत्त्वपूर्ण हैं। यह न तो केवल ज्ञान तथा साधना मार्ग है और न केवल भक्ति मार्ग। इसमें दर्शन, साधना (योग) और भक्ति का मजुल सामञ्जस्य हुआ है। शिवतत्त्व का ज्ञान ही साधक को साधना की ओर उन्मुख कर सकता है। इसी प्रकार इस मत की योग साधना में भी भक्ति मूलक सहज प्रेम को मान्यता प्राप्त हुई तथा भक्ति का आराध्य "मुनि मडनवासी" पुरुष ही है उसे आदि पुरुष परमात्मा और आदि सनातन रूप भी कहा है। अतः इनकी योग साधना भी शुष्क अष्टांग योग

---

१ विद्यापति की पदावली—रामवृक्ष बेनीपुरी पृ० ४०७।

२ भूषण ग्रंथावली, पृ० ६०।

हो नहीं है। भक्ति की दशा और योग अर्थात चित्त वृत्ति निरोध से ही सम्पन्न होती है। सारांशत कहा जा सकता है कि शैवमत में इन (दर्शन, योग भक्ति) का सामंजस्य ही मान्य है। इसके विभिन्न सम्प्रदायों में किसी एक की प्रधानता के साथ शेष पक्षों का महत्व भी मान्य रहा है। मध्यकालीन हिन्दी कविता की आध्यात्मिक पृष्ठभूमि पर इसका गहन प्रभाव रहा है।

प्रभाव के उक्त क्षेत्र के साथ ही इस युग की कविता में खण्डन मण्डन की प्रवृत्ति समाज सुधार की भावना वर्णाश्रम धर्म विरोध बाह्याडम्बर विरोध तथा भगवान की करुणा में अटूट विश्वास प्रेम और आनन्द की आध्य अभिव्यक्ति रहस्याभिव्यक्ति एवं मुक्तक काव्य रूप की प्रवृत्ति भी काश्मीरी शैव वीर शैव और शुद्ध शैव सम्प्रदायों से आई। सन्त काव्य में वर्णित कुल कुण्डलिनी एवं नाद बिन्दु साधना मन्त्र चैतन्य माया माधुर्यभाव गुह्यता प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति भी पाशुपतों की तान्त्रिक साधना का प्रभाव है। मध्ययुगीन हिन्दी कविता में शैवों के अन्य सिद्धान्तों को भी देखा जा सकता है। मध्यकालीन हिन्दी कविता पर अतएव शैवमत के प्रभाव की उक्त दिशाओं के स्वरूप को जानने के लिये मध्ययुगीन काव्यों का अध्ययन आवश्यक है।

अध्याय ५

मध्यकालीन हिन्दी कविता पर शैव सिद्धान्त का प्रभाव ।

शवमत मे हमारा तात्पय उन सिद्धान्ता स है जिनको शव साहित्य मे अध्यात्म योग और भक्ति के परिपाश्व म ग्रहण किया गया है। जब हम शवमत की बात करते हैं ता उस साहित्य की भी उपेक्षा नही कर सकते जो शवमत की अभिव्यजना करता है। अतएव प्रभाव के अन्तगत जहा दशन की विवेचना होनी चाहिए वहा साहित्य की विवेचना भी अपेक्षित है। विवेचन की सुविधा क लिए सद्धान्तिक प्रभाव को एक अध्याय मे आकलित कर साहित्य के प्रभाव की विवचना अन्य अध्याय म की गयी है।

दाशनिक विवेचन के अन्तगत केवल अध्यात्म दशन का विश्लेषण पर्याप्त नही है। अतएव विवचन को पूण बनान के लिए अध्यात्म दशन के साथ-साथ शवो के योग और भक्ति से सम्बन्धित सिद्धान्ता का भी पृथक्-पृथक विवेचन किया गया है। कहने की आवश्यकता नही कि दशन ने भारतीय साहित्य के विकास म प्रमुख योग दिया है। भारतीय दशन भारतीय जीवन मे एक विशेष स्थान रखता है यही कारण है कि उसका महत्व उसके स्वतन्त्र रूप मे भी है और साहित्य गत रूप म भी।

किसी युग का भी साहित्य अपने युग की प्रतिध्वनि होता है, युग का प्रतिरूपण होता है। इस उक्ति की सिद्धि मध्ययुग के साहित्य से भलीभाति हो सकती है। मध्ययुगीन साहित्य से हमारा तात्पय उस साहित्य स है जिसकी सृष्टि मध्ययुग म हुई और जिसकी सीमा रेखाओ का स० १३७५ से स० १६०० के बीच म आबद्ध किया जाता है।

इस युग में भारतीय जन जीवन विरागमय था। युग की धार्मिक प्रवृत्तियों ने साहित्य के माध्यम से अभिव्यक्ति पा रही थी। ... यह हुआ कि साहित्य ने धर्म से गहन सम्बन्ध स्थापित किया—उस धर्म से जिसमें धार्मिक मान्यता भी प्रबल रह चुकी थी और जिसमें मौलिक व्यापकता भी अक्षुण्ण थी। व्यापकता मध्ययुगीन धर्म की मूल प्रवृत्ति थी और सकीर्णता रूढ़ियों के रूप में विनिविष्ट हो चुकी थी। धर्म के व्यापक स्वरूप मध्ययुग की हिन्दी कविता में दृष्टिगोचर होते हैं। यहाँ हमारा लक्ष्य धर्म की आलोचना करना नहीं है वरन् शैव धर्म के उस स्वरूप की गवेषणा करना है जिसने मध्य युग की हिन्दी कविता का अंग बनकर तत्कालीन जन जीवन को प्रेरणा दी। इसी सन्दर्भ में शैव दर्शन के भाव की गवेषणा अपेक्षित है।

(क) दर्शन का प्रभाव

शैवमत भारतीय दर्शन की ही नहीं साहित्य की भी सम्पत्ति है क्योंकि शैवमत को प्रतिपादित करने के लिए अनेक साहित्यिक रचनाएं निर्मित हुई जिनको हम शुद्ध साहित्यिक रचनाओं की संज्ञा तो नहीं दे सकते पर साहित्य की कोटि से उनको अलग भी नहीं कर सकते। भारतीय दर्शन भारतीय साहित्य का अभिन्न अंग है जिसमें जीवन दर्शन के साथ-साथ अध्यात्म चिंतन भी है। शैवमत के सम्बन्ध में जो साहित्य निर्मित हुआ है उसकी परम्परा प्राचीन है किन्तु उस परम्परा की मध्यकालीन कड़ियाँ भी बड़ी गौरवशालिनी हैं। यों तो मध्यकाल में संस्कृत की भी अनेक रचनाएं रची गयीं जिन पर पूर्वकालीन संस्कृत साहित्य के प्रभाव की गवेषणा की जा सके बिल्कुल उसी प्रकार जिस प्रकार कि मध्यकालीन हिन्दी काव्य पर पूर्ववर्ती संस्कृत और हिन्दी रचनाओं के प्रभाव की गवेषणा की जाती है।

यह ठीक है कि मध्यकालीन हिन्दी कविता पर पूर्ववर्ती हिन्दी रचनाओं का प्रभाव इतना स्पष्ट या बहुत नहीं दीख पड़ता जितना कि शैवमतीय संस्कृत साहित्य का। यह प्रभाव दो प्रकार का है—परोक्ष और अपरोक्ष दार्शनिक और साहित्यिक। हमारा लक्ष्य मध्यकालीन हिन्दी कविता पर शैव साहित्य के प्रभाव की गवेषणा करना नहीं है वरन् शैवमत के सम्बन्ध से व्युत्पन्न साहित्य के प्रभाव की गवेषणा करना है और उस गवेषणा के क्षेत्र से साहित्य भी विलग नहीं हो पाता। इसलिए शैवमत का प्रभाव खोजने के साथ साथ शैवमत से सम्बन्धित साहित्य की चर्चा भी अपेक्षित समझी गयी है।

मध्यकाल म काव्य के अनेक रूप मिलते हैं जिन पर शैवमत क अध्यात्म दशन का प्रचुर प्रभाव है। वसे तो शवो का आध्यात्म दशन औपनिषदिक आध्यात्म दशन स पृथक नहीं है, फिर भी मतमतान्तरा के गम मे कुछ चेतनिक तत्व विकसित हुए ही है और इस काल की कविता पर उनका प्रभाव भी आया है।

शवमत स सम्बधित मध्यकालीन हिन्दी कविता को एकदम आध्यात्मिक स्तर पर रखकर देखना अनुचित होगा क्योंकि इस काल म भक्ति का दौरदौरा अधिक रहा। इसलिए शव दशन को भक्ति के परिपाश्व म रख कर देखना ही अधिक समीचीन होगा जिसमे योग दशन का भी पुट है।

भक्तिकाल की दाशनिक परम्परा का पण्डित रामचन्द्र शुक्ल ने तीन पहलुओ म देखा है—सतकाव्य परम्परा सूफी काव्य परम्परा और सगुण काव्य परम्परा। इन सभी परम्पराओ म शिव के दो रूप मान्य रहे है—एक तो उनका निराकार रूप है और दूसरा साकार।

इस युग की दार्शनिक पृष्ठभूमि ब्राह्मण धम की दो प्रमुख शाखाओ—वष्णव और शव से पुष्ट हो रही थी। वष्णव धारा म राम और कृष्ण की सगुण भक्ति की प्रधानता थी। यद्यपि शव धारा मे शिव की सगुण भक्ति का कमी नही थी तथापि इसका दशन और योग स अधिक सम्बध था। इसी कारण इस युग के सन्तो के दार्शनिक विचार और भक्त्यावपण पर शवमत का परोक्ष प्रभाव ही दिखाई पडता है।

निराकार शिव

उपनिषदो न परमात्मा को निराकार और साकार दोनो रूपो म निरूपित किया है। निराकार की मान्यता का प्रवाह पाशुपतो की गोरखपथी शाखा म बड जोर से चला और फिर यह सतो म भी चला आया। जिस प्रकार गोरखनाथ ने निराकार को अलख' सज्ञा म अभिहित किया उसी प्रकार कबीर आदि न भी। गोरख ने अपनी वानी मे कहा है —

अलख

> अलख बिनाणी दाई दीपक रचिले तीन भवन इक जोती।
> तास विचारत त्रिभवन सूझ चूणिल्यो मॉणिक मोती ॥[1]

कबीर की बानी म भी कहा गया है मन की माला तन की मेखला तथा भय की भस्म का अवलम्बन करनेवाले अवधूत को अलख मिलते हैं[2]। एक अन्य स्थल पर कबीर कहते हैं—

---

१ गोरखबानी पृ० ३।

२ सतबानी सग्रह—भाग १ कबीर—पृ० २९

'निराकार की आरसी साधा ही की देह
लखा जो चाहे अलख को, इनही मे लखि लेह ।।'

यह 'अलख मुनियो के लिए भी अगम है [1] उसके भेद को कोई नही जान पाता —

'गण गधर्व मुनि अन्त न पावा,
रह्यो अलख' जग धध लावा। [2]'

सन्त मलूकदास की बानी म कहा गया है—

अलख पुरुष जिन ना लख्यो छार परो तेहि नन [3]

दूलनदास भी अलख पुरुष का वर्णन करते हुए कहते हैं कि सुसगति और माया मोह के त्याग से तथा गुरु की कृपा स ही अलख' के दर्शन होते है । [4] *अलख (शिव) का सानिध्य म ता का लक्ष्य रहा है । उन्होंने अलख का अपनी बानी म सर्वोपरि स्थान दिया है । सत चरनदास का प्रीतम भी यही* अलख है । इनकी बानी म कहा गया है —

'भटकत भटकत जनमे हारी, चरन सखो गहे आय
सुकदेव साहिब किरपा करिके दीन्हा अलख लखाय । [5]

सहजोबाई भी शिव का गुणगान करती हुई कहती है—

कहा कहु कहा कहि सकू, अचरज अलख अभेव' [6]

दयाबाई ने अलख (शिव) को अजर अमर अविनाशी आनन्दमय और आनन्दप्रदाता कहा है । [7] यहा अलख मता का शिव है ।

सतो के परमेश्वर निराकार गुणातीत और अगम्य है । सत भीखा साहब की बानी म कहा गया है— अलख लखन तिन पाए । [8] यह अलख अविगत है । मन और बुद्धि मे पर है ।

---

१ सतबानी सग्रह, भाग १ कबीर— पृ० २६ ।
२ श्याम सुन्दर दास द्वारा सम्पादित—कबीर ग्र थावली, पृ० २३० ।
३ मलूकदास सतबानी सग्रह भाग १ पृ० १०१ ।
४ दूलनदास सतबानी सग्रह, भाग २ पृ० १६० ।
५ चरनदास सतबानी सग्रह भाग २ पृ० १८० ।
६ सतबानी सग्रह भाग १, पृ० १६५ ।
७ दयाबाई सतबानी सग्रह भाग १ प० १८० ।
अजर अमर अविगत अमित, अनुभय अलख अभव ।
अविनासी आनन्दमय अभय मो आनन्द देत ।
८ भीखा साहब, सतबानी सग्रह भाग २, प० २१० ।

जिस प्रकार सना न परमात्मा को निराकार माना है और उनको शवो के प्रभाव स अलख शब्द से अभिव्यक्त किया है उसी प्रकार प्रेम मार्गी सूफियो ने भी इस प्रकार का ग्रहण किया है। जायसी न कहा है—

अलख अरूप अवरन सो कर्त्ता, वह सब सों, जब ओहि सों वर्त्ता।[१]

मध्यकालीन सगुण भक्त कवियो न यद्यपि सगुण भक्ति को प्रधानता दी है फिर भी उन्ह निगुण भक्ति मान्य रही है। तुलसीदास न निगुण परमेश्वर को अलख शब्द स सम्बोधित करत हुए कहा है—राम ब्रह्म परमारथ रूपा अविगत अलख अनादि अनूपा।[२]

रीतिकालीन रीतिमुक्त एव रीतिमुक्त कवियो को निराकार शिव अथवा परमेश्वर की अपेक्षा सगुण परमेश्वर अधिक ग्राह्य रहे हैं। अत उन पर शव दशन का प्रभाव नही के समान रहा है। हिन्दी काव्य म आने से पूव 'निरजन शब्द अनेक सम्प्रदायो म प्रचलित हो चुका था। उनम स सिद्धो के सिद्धान्तो जनो और शवयोग म इसका प्रामुख्य था।

निरजन

सत काव्य म प्रयुक्त निरजन शब्द भी निराकार शिव का वाचक है। निरजन ही ईश्वर है। गोरखनाथ न निरजन शब्द का विस्तृत विश्लेषण किया है। उसकी बानी म कहा गया है—नाथ निरजन आरती गाऊ।'[३] य निरजन ब्रह्मरध्र मे विद्यमान हैं। निरजन से सान्निध्य पाच तत्वो के आधीन करने पर ही हो सकता है—

'पच तत्व सिधा मुडाया, तब भेटिले निरजन निराकार।"[४]

मायो मुक्त जीव ही निरजन प्रभु का शरीर है।[५] वस्तुत निरजन अमूत हैं उनकी कला अनन्त है जिसका पार कोई नहीं पा सकता। सतकाव्य मे निरजन शब्द का प्रयोग उक्त परम्परा के प्रभाव का परिणाम है।

सत कबीर का 'निरजन सत्य स्वरूप है जिसकी परम्परा उनको नाथो से मिलती है। कबीर की बानी मे 'निरजन' को अलख और निराकार कहा है— अलख निरजन लखे न कोई, निरभ निराकार है सोई।'[६]

---

१ पदमावत, जायसी ग्रन्थावली, पृ० ३।

२ रामचरित मानस—बालकाण्ड, पद २८५ पृ० २६५।

३ पीताम्बरदत्त बडथ्वाल गोरखबानी, पृ० १५७।

४ वही पृ० २७।

५ वही, पृ० १६।

६ कबीर ग्रन्थावली–श्यामसुन्दरदास द्वारा सम्पादित पृ० २३०।

एक अन्य स्थल पर कबीर ने निराकार निर्विकार एवं निर्गुण निरंजन का विशद चित्र प्रस्तुत किया है —

अलह अलख निरंजन देव किहिं विधि करौं तुम्हारी सेव"[1]

कबीर निरंजन' को अखण्ड एवं अपार मानते हैं उसकी गति शरीर और मन दोनों में है– अलख निरंजन मध्य शरीरा तन मन मा मिल रहया कबीरा।[2]' कबीर का निरंजन जगत्त्राता तथा विधाता भी है—

'कहै कबीर सरवस सुखदाता, अविगत अलख अभेद विधाता' [3]

यही उसकी विलक्षणता है उसका अलख' स्वरूप आनन्दमय है। यह आनन्द पराश्रित नहीं है—

"तहां न ऊगे सूर न चंद, आदि निरंजन करै अनंद"[4]

गुरु नानक ने निरंजन का वर्णन करते हुये कहा है—

"जिस राखै तिस कोइ न मारे सो मूआ जिस मनो विसारे

तिस तजि अवर कहां को जाय, सब सिर एक निरजन राय"[5]

निरंजन ही पूज्य है उनकी शरण ही अभय प्रदान करती है। दादू का निरंजन सर्वव्यापी है उसकी स्थिति मन में भी है—

'काठ हुतासन रहया समाइ, त्यू मन माहि निरंजन राइ।"[6]

संत मलूकदास ने भी निरंजन को निराकार और अविगत तथा अलख माना है।[7] गरीबदास ने 'निरंजन' यम की यातनाओं को मिटाने वाले निर्गुण परमेश्वर हैं। इनकी बानी में कहा गया है—

निर्गुण नाम निरंजना, मेटत है जम दण्ड"[8]

---

१ श्यामसुन्दरदास द्वारा सम्पादित कबीर ग्रन्थावली, पृ० १९९।

२ वही, पृ० १०४।

३ वही प० ५०।

४ वही, प० १९९।

५ गुरु नानक संतबानी संग्रह, भाग २, प० ५१।

६ संतबानी संग्रह भाग २, प० ५१।

७ 'नमो निरंजन निरकार, अविगत पुरुष अलेख"
   मलूकदास, संतबानी संग्रह, भाग १, प० १०२।

८ गरीबदास, संतबानी संग्रह भाग १, प० १९५।

गरीबदास ने निरजन' को 'पुरजन' भी कहा है और इस नाम से उनके गुणा का भी विस्तृत वर्णन किया है। इनकी बानी म कहा गया है कि पुरजन का साक्षात्कार होने पर 'मन की सब फौजें घस जाती हैं, जीवात्मा मल रहित हो जाता है।[1]

शवमत के प्रभाव सन्त कवियों ने 'निरजन को त्रिगुणात्मक जगत् और माया का स्वामी माना है उसे काल निरजन भी कहा है। सत नारायण दास ने अपने पन्थ म काल निरजन का विशद वर्णन किया है। वे कहते हैं काल निरजन निरगुन राय तीन लोक जेहि फिर दोहाई।"[2] सत किनाराम ने निरजन को निर्मय दुख सुख और कर्मविकार स पर तथा पूर्ण माना है।[3]

निरजन शब्द का प्रयोग 'सज्ञा क रूप म तो हुआ ही है उसका विशेषण क रूप म भी प्रयोग मिलता है।[4] निरजन की चर्चा समाप्त करने से पूर्व यह बतला देना आवश्यक प्रतीत होता है कि भारतीय दर्शन, शव मत क प्रभाव के कारण इस शब्द स भलीभाति परिचित है और निराकार शिव के वाचक रूप म ही इसका प्रयोग उसम होता रहा है। योग क ग्रन्थो मे तो उसका प्रचुर प्रयोग हुआ है।

सगुण भक्त कवि तुलसीदास न भी परमेश्वर क लिय निरजन शब्द का प्रयोग किया है। ऐसा प्रतीत होता है कि सगुण भक्त कवि भी शवो की परम्परा स प्रभावित रहे हैं। एक स्थान पर तुलसी ने कहा है—

'निर्मम निराकार निरमोहा नित्य निरजन सुख सदोहा"[5]

भक्त मीरा भी परमेश्वर के निर्गुण रूप की उपासना मे अपना विश्वास प्रकट करती हुई कहती हैं—

जाको नाम निरजण कहिये, ताको ध्यान धरू गी'[6]

---

१ गरीबदास, सतबानी सग्रह भाग १, पृ० १६७।

२ नारायणदास-हस्तलिखित ग्रन्थ पृ० १।

३ 'निर्मल नाम निरजना निर्मल रूप अपार
निरभ म जहॅ नाहि ने दुख सुख कर्म विकार
—किनाराम-रामगीता प० ६–७।

४ एक निरजन अलह मेरा' —कबीर ग्रथावली पृ० २०२।

५ रामचरितमानस-उत्तरकाण्ड, प० १०४।

६ परशुराम चतुर्वेदी मीराबाई की पदावली, पृ० ५३।

मीरा ने निरंजन परमेश्वर को 'जोगिया' शब्द से भी सम्बोधित किया है जिससे स्पष्ट है कि शैवमत का उन पर प्रभाव रहा है। मीरा का कथन है—

'जोगिया जी आज्यो ने या देस
नैणज देखू नाथ मेरो, ध्याइ करू आदेस।'[1]

केशवदास ने परमेश्वर को ज्योति स्वरूप निरीह और निरंजन मानते हुए कहा है—

"ज्योति निरीह निरंजन मानो"[2]

शून्य

संतों की वानी में ईश्वर 'निराकार' 'शून्य' अभिधा से भी व्यक्त किए गए हैं जिनकी एक परम्परा है। शून्य आकाश का बोधक है। आकाश को शिव पद कहा गया है जिसे साहित्य और दर्शन दोनों स्वीकार करते हैं। सच तो यह है कि आकाश और निराकार शिव में कोई तात्विक भेद नहीं है दोनों एक हैं। इसी शून्य में जो शिव का वास है शक्ति का समावेश होता है। अतएव शक्ति समन्वित शिव भी 'शून्य' से अभिन्न हैं। यह उक्ति कुछ नवीन नहीं है। कबीर भी ऐसी बात कह चुके थे—

'शक्ति अधर जेवडी भ्रम चूका निहचल सिव घर बासा।'[3]

इसका स्पष्ट अर्थ यह हुआ कि शिव और शक्ति का संयोग 'शून्य' में होना है। इस स्थिति में शिव और शक्ति का ऐक्य ही सिद्ध नहीं होता वरन् उसकी शून्यता भी सिद्ध होती है।

आस्तिक दर्शनों[4] में यह सकल सत्ता का वाचक माना गया है। बौद्ध दार्शनिक नागार्जुन ने शून्य पर बड़े विस्तार से विचार कर, उसका प्रयोग द्वैताद्वैत विलक्षण तत्त्व के रूप में किया है। गोरखनाथ[5] ने शून्य के अर्थ को और भी अधिक व्यापकता देकर उसका द्वैताद्वैत विलक्षण शब्द के रूप में वर्णन किया है। वे उसे परमात्मा रूप भी मानते थे। इसलिए शून्य[6] को कर्त्ता

---

१ परशुराम चतुर्वेदी—मीराबाई की पदावली पृ० ४२।
२ केशवदास रामचंद्रिका पृ० २५।
३ कबीर ग्रन्थावली—परिशिष्ट, पृ० २६१।
४ बलदेव उपाध्याय भारतीय दर्शन, पृ० १६६।
५ गोरखबानी, पृ० १।
६ वही, पृ० १६५।

भर्ता और संहर्ता कहा है। नाथ पंथ मे शून्य की कल्पना बौद्धो की परम्परा से आयी ज्ञात होती है। सन्तो की शून्य सम्बन्धी धारणाएं बौद्धो और नाथों की पृष्ठभूमि पर कुछ मौलिकता लिए हुए विकसित हुई हैं। सत कबीर कहते हैं—

'जसे बहुकंचन के भूषन, ये कहि गालि तवावहिंगे
ऐसें हम लोक वेद के बिछुरें सुनिहि माहि समावहिंगे।"[1]

एक अन्य स्थल पर कबीर सुनि का प्रयोग साध्य और साधक आत्मा के लिए एक साथ ही करते हैं—

'सुनहि सुन मिला समदर्शी पवन रूप हुई जावेंगे।' [2]

कबीर ब्रह्म को स्थूल और शून्य दोना रूपा से रहित मान कर शून्य शब्द मे 'सूक्ष्म' अर्थ की प्रतिष्ठा करते हैं—

"वेद विवर्जित भेद विवर्जित, विवर्जित पापरु पुन्य
ग्यान विवर्जित ध्यान विवर्जित, विवर्जित अस्थूल सुन्य' [3]

शून्य को कर्ता भर्ता और संहारकर्ता ध्वनित करते हुए सत दादू कहते है—

"सुनहि मारग आईया, सुनहि मारग जाई' [4]

एक अन्य स्थल पर सुन की साधना मे ही आत्मा का कल्याण होने का आदेश देते हुए दादू कहते है—

"सहज सुन्नि मन राखिए इन दून्यू के माहि
ले समाधि रस पीजिए, तहा काल भय नाहीं"[5]

सत गुलाल कहते है— 'सुनहि सुरति समाइल शिव के पर शक्ति निवास।' [6]

सन्तो ने 'अलख निरंजन', और शून्य का ब्रह्म वाचक रूप मे प्रयोग कर शवमत के प्रभाव को प्रमाणित किया है। इतना ही नहीं मध्यकालीन हिंदी निर्गुण काव्यधारा के सन्त बुल्ला ने ब्रह्म के लिए शिव [7] और सन्त

---

१ कबीर ग्रन्थावली पृ० १३७।

२ वही पृ० २७१।

३ वही, पृ० १६२।

४ दादू साहब की बानी, पृ० ८६।

५ वही, पृ० ६०।

६ गुलाल साहब की बानी, पृ० ४६।

७ अनहद ताल दश धर्म यहै बाजे सकल भुवन को जोति बिराजे।
ब्रह्मा विष्णु खड़े शिव द्वारे परम जोति सूँ करहि जुहारे॥
—बुल्ला साहब सतबानी सग्रह भाग २, पृ० १७३।

शब्द के नान मे ही भ्राति समाप्त हो जाती है। दादू की वानी म कहा गया है—

'सबने बाध्या सब रहे, सबने ही सब जाय।
सबदे ही सब उपज, सबदे सब समाय॥'[१]

इनके अनुसार सबद से सब बधे हैं। सत दरिया (बिहार वाले) शब्द रूप निराकार परमेश्वर की पुष्प म सुगध के समान घट-घट म व्यापकता मानते हैं।[२] सत चरनदास अनहद नाद के अभिधान मे शब्द का वणन करते हुए कहते है—

अनहद शब्द अपार दूर सू दूर है
परमातम तेही मान, वही पर ब्रह्म है"[३]

उनका हृदय शब्द रूप परमात्मा के आनन्द का प्राप्त कर चकित हो जाता है— मतवारे ज्या सबद समाये अतर भीज कनी[४] सत रज्जब शब्द की व्यापकता का वणन करत हुए कहते हैं —

सकल पसारा शब्द का शब्द सकल घट माहि।
रज्जब रचना राम की, शब्द सुयारी नाहि॥
षडदशन खालिक खलक, सत्य शब्द के माहि॥[५]

तुलसी साहब निगुण शब्द-ओंकार का वणन करते हुए कहत हैं —

"निगुण शब्द वेद बतलावे सोहं काल ओकार कहावे[६]"

हिन्दी की निगुण काव्य धारा मे उपयुक्त शब्द का वणन गोरखनाथ के द्वैताद्वैत विलक्षण शब्द ब्रह्म के अनुरूप है। शब्द रूप परमेश्वर का वणन करते हुए गोरखनाथ की वानी म कहा गया है —

सबदे ताला सबदे कूची सबद सबद जगाया
सबदे सबद सू परचा भया सबद सबद समाया'[७]

---

१ परशुराम चतुर्वेदी, सतकाव्य दादूसाहब, पृ० १३६।
२ दरिया साहब, सतबानी सग्रह, भाग १ पृ० १२२।
३ चरनदास-सतबानी सग्रह भाग १ पृ० १६६।
४ परशुराम चतुर्वेदी-चरनदास-सतकाव्य पृ० २६६।
५ वही रज्जब, पृ० ३८१।
६ तुलसीसाहब, सतबानी सग्रह भाग १, पृ० १७३।
७ गोरखवानी, पृ० ८।

हिन्दी साहित्य के मध्यकाल की दार्शनिक विचारधारा अनेक धार्मिक आन्दोलनों की प्रतिक्रियाओं का परिणाम है। सभी धर्मों में अपरिलक्षित रूप से चिंतन क्षेत्र में भी आदान प्रदान हो रहा था। सगुणकाव्य के इधर उधर भी एक शैव वातावरण था और वे शब्द जो वैदिक काल से पाशुपत। गोरख पंथियों और संतो में निराकार के लिए चल रहे थे, सगुण कवियों में भी प्रवाहित रहे। सूर तुलसी, मीरा आदि ने उपनिषद् की परम्परा के अनुकरण में ईश्वर के दोनों रूप (सगुण और निगु ण) स्वीकार किए। परमेश्वर का रूप भक्ति की अक्षय सम्पत्ति रहा है किन्तु निगु ण रूप भी मान्य रहा है चाहे उसको व्यवहार की पुष्टि न मिली हो जिसका विवेचन अन्यत्र भक्ति के प्रभाव के अन्तर्गत किया गया है। प्रभु के निगु ण स्वरूप को व्यक्त करते हुए सूरदास कहते हैं—

सब्दहि शब्द भयो उजियारो सतगुरु भेद बतायो।[१]

केशव ने भी कहा है कि ईश्वर सर्वत्र व्यापक है। भीतर बाहर सर्वत्र उसकी गति है। कुछ लोग उसे निगु ण और कुछ उसे सगुण मानते हैं—

"निगु ण एक तुम्हे जग जाने एक सदा गुणावन्त बखाने'[२]

निगु ण का गुणगान करते हुए इन्होंने कहा है —

'तेज पुंज निगु ण उजियारा
कहु कसो सोइ कंत हमारा।[३]"

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि मध्यकालीन हिन्दी कविता में निराकार प्रभु निगु ण शिव साधना में प्रतिपाद्य बन रहे। 'अलख" 'निरंजन शब्द' और 'शून्य नाम से सन्तों ने निराकार की महिमा का गान किया है उन्होंने शिव का शालिग्राम सत् जोति निराकार और साधन नामों से भी सम्बोधित किया है। अतः यह कहा जा सकता है कि ब्रह्म वाचक संज्ञा और अन्य विशेषण निराकार शिव की महत्ता और व्यापकता को प्रगट करने के लिए प्रयुक्त हुए हैं। मध्ययुगीन हिन्दी कवियों ने शिव को सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान सक्रिय, गुणातीत, नित्य और निरंजन मान कर शवमत के प्रभाव को ही स्वीकार नहीं किया है अपितु शिव की उद्भव शक्ति को भी स्वीकार किया है।

---

१ सूर विनय पत्रिका, पद २८५, पृ० २६५।

२ रामचन्द्रिका २०-१५।

३ सतबानी सग्रह-भाग २, पृ० १७६।

शैव ग्रन्थो मे शिव की बीज शक्ति का नाम माया कहा गया है। शिव की शक्ति माया शिव से भिन्न नही है।[1] इन दोनो का सम्बन्ध अग्नि और उसकी ज्वलन शक्ति जसा हा घनिष्ट है।[2] मध्यकालीन कवियो न भी शवमत की इस परम्परा से प्रभावित हो माया को प्रभु की अभिन्न शक्ति कहा है। सत गुलाल साहब की बानी मे शिव की माया का वर्णन करते हुए कहा गया है—

शिव की शक्ति

"प्रभु तेरी माया अगम अपार[3]'

चरनदास की बानी म भी शिव और माया के सम्बन्ध को मेहदी और उसके रग पुष्प और उसकी सुगध के समान माना है—

'मेहदी मे रग, गन्ध फूलन मे ऐसे ब्रह्मरु माया[4]

माया और शिव की अभिन्नता मध्यकालीन दार्शनिक विचारधारा का विवेचनीय विषय रही है जिसका प्रभाव मध्यकालीन कवियो पर स्वाभाविक है।

शैवमत के अनुसार माया के दो भेद—परा और अपरा हैं।[5] परा को विद्या और अपरा को अविद्या कहा गया है। परा के प्रभाव से जीव मोक्ष प्राप्त करता है और अपरा के प्रभाव से वह भ्रमजाल म फसता है।[6] सत कबीर ने भी माया के दो भेद स्वीकार किए हैं—

'माया दुइ भातिकी, देखी ठोंक बजाय।
एक मिलावे नाम से, एक नरक ले जाय[7]"

---

१ न शिव शक्ति रहितो न शक्तिर्व्यतिरेकिणी
शिव शक्तस्तया भगवान इच्छया कतु मीहते
शक्ति शक्ति मतोर्भेद शवे जातु न वण्यते।
—सोमान द-शिव दृष्टि-३।२।३।

२ सौर पुराण ३।१८-१६।

३ परशुराम चतुर्वेदी-सतकाव्य, पृ० ३७८।

४ परशुराम चतुर्वेदी-सतकाव्य सग्रह पृ० ४७२।

५ (क) ईश्वर प्रत्यभिज्ञा ३।१।३।
(ख) शिवसूत्र

६ देखिये-इसी अभिलेख का द्वितीय अध्याय, पृ० ४२।

७ सतबानी सग्रह भाग १, पृ० ५८।

यहाँ कबीर का संकेत माया के दो भेद—परा तथा अपरा की ओर है। कबीर का सम्पर्क नाथ सम्प्रदाय से भी रहा है। बहुत कुछ सम्भव है कि कबीर को यह विचारधारा नाथों से प्राप्त हुई हो।

यह ठीक है कि सूफियों का सम्पर्क नाथपंथी योगियों से रहा था जिसस इनके दर्शन म माया के नाम का प्रवेश तो हुआ किन्तु माया के दो रूपों को ये लोग न देख सके। इन्होंने माया के केवल आवरण रूप को देखा।

दर्शन के तात्त्विक आधार कुछ अन्तर के साथ सभी सम्प्रदायों म मान्य रहे हैं। तुलसीदास सीता को राम की शक्ति के रूप म (माया रूप म) ग्रहण करते हुए उद्भव स्थिति एव संहरकारिणी मानते हैं।[1]

विद्या शक्ति जीवात्मा को शीतल छाया प्रदान करता है— प्रभु प्रेरित व्याप तहिं विद्या[2] ' इसी विद्या के द्वारा भगवान् के पास पहुँचा जा सकता है।[3] केशवदास ने भी माया के विद्या स्वरूप को माना है— पनु माया अपार सहित देखि[4] विद्या माया का सम्बन्ध अपार से रहता है। कशव की यह दार्शनिक विचारधारा शैवधर्म के अनुरूप है। अत यह कहा जा सकता है कि केशव भी शैवमत से प्रभावित रहे होंगे।

माया का दूसरा भेद अपरा अथवा अविद्या है। इसकी दो शक्तियाँ हैं—आवरण तथा विक्षेप। आवरण का काय असली स्वरूप पर पर्दा डाल देना है तथा विक्षेप का काय उस पर दूसरी वस्तु का आरोप करना है। आवरण भ्रमोत्पादक है जिसम जीवात्मा जड और चेतन के सत्य स्वरूप को भूल जाता है।[5] वह भ्रमजाल म फस कर मोक्ष माग स विमुख होता है। शैव दर्शन की इस मान्यता का प्रभाव सत्यान्वेषी सन्तो पर, नाथ पथ के द्वारा आना स्वाभाविक था। मध्यकालीन हिन्दी काव्य म माया की आवरण और विक्षेप शक्ति का विशद वर्णन है।

सत कबीर कहते हैं कि माया ने सब को बाँध रखा है। जीवात्मा

---

१ मानस-बालकाण्ड मगलाचरण श्लोक।
२ मानस-सुन्दरकाण्ड १४७। ३ ४।
३ विनयपत्रिका पद ४१।
४ रामचन्द्रिका-१३-८१।
५ देखिए इसी अभिलेख का द्वितीय अध्याय पृ० ४६ ४८।

मायात्मक भ्रातिज्ञान के कारण माया के प्रसार को सत्य मान कर उसमे लिपट जाता है—

"दुनिया भाडा दुख का भरि"[1]

ससार का यह दुख मायाकृत है। माया मे लिपटे रहने के कारण दुख मे पडा हुआ जीवात्मा उसे समझ नही पाता। वह इस दुख को ही सुख मानने लगता है—

सुखिया सब ससार है खावे अरु सोवे।"[2]

अज्ञानात्मक आवरण हटने पर ही उसे समझा जा सकता है।

माया ही विषयवासनाओ को जन्म देती है। माया का दूसरा नाम अज्ञान भी है। दर्पण पर काई के समान आत्मा पर अज्ञान का आवरण पड जाता है जिससे आत्मज्ञान दुर्लभ हो जाता है। कबीर कहते हैं कि माया की 'झक' से सारा ससार जल रहा है—

'माया के झक जग जरे"[3]

माया के आवरण को स्वीकार कर दादू कहते हैं—

"झूठा साचा करि लिया, विष अमृत जाना
दुख कौं सुख सब को कहे ऐसा जगत दीवाना[4]"

यह माया की आवरण और विक्षेप क्रिया का ही परिणाम है, जिससे जीव असत्य को सत्य मानकर दुख को सुख समझकर अपना लेता है। जग-जीवन साहब कहते हैं— माया रच्यो हिंडोलना सब कोई झूल्यो आय।[5] माया का आवरण इतना पुष्ट है कि सभी इसमे आत्मतत्व को भूल जाते हैं। मध्यकालीन सतो पर यह प्रभाव नाथ पथ के द्वारा, शैवदर्शन से आया प्रतीत होता है। शैव दर्शन मे माया की आवरण और विक्षेप शक्ति का स्वीकार किया गया है।

---

१ कबीर ग्रन्थावली-पृ० २२।
२ कबीर ग्रन्थावली, पृ० १०।
३ सतबानी सग्रह-भाग १, पृ० ५८।
४ वही, पृ० ६०।
५ वही पृ० १०६।

माया की आवरण शक्ति को सूफियो ने भी स्वीकार किया है। जायसी ने कहा है—

यासक दपरा हाथ, मुख दखे, दूसर गने[1]"

जीवात्मा माया की आवरण विक्षेप शक्ति के कारण अपने को परमेश्वर से भिन्न समझता है। माया की आवरण शक्ति निर्गुण सत्ता के वास्तविक स्वरूप को छिपा लेती है और विक्षेप शक्ति उसके स्थान पर नाना रूप का आभास कराती है।

सूफी कवि नूर मुहम्मद ने भी इस बात को स्वीकार किया है कि माया के आवरण स मनुष्य योग का त्याग कर देते हैं— 'तासा माया क बस बहुत लोग। जोग न चाहे कीहों चाह भोग[2]। पचेंद्रिय जनित भोग मनुष्य की बुद्धि को सब तरफ से घेरे रहता है। ये पाचो अपनी अपनी बार उसे नचाते हैं। उसमान ने कहा है—

'जोगी परा पांच बस सातैं मा विकरार
पांचौं नाच नचावहि आपनी आपनी बार[3]

सूफी काव्य मे माया की शक्ति का यह वर्णन नाथ पथ से आया प्रतीत होता है। प्रत्येक सूफी प्रेमाख्यान मे शिव की प्रतिष्ठा है जिससे उन पर शव मत का कथा प्रसग और दशन का प्रभाव प्रकट होता है।

विवेचनीय युग के भक्त कवियो ने अविद्या की आवरण और विक्षेप शक्ति को स्वीकार किया है। सूरदास का कहना है कि माया जीव पर आवरण का काय करती है—

'महामोहिनी मोहि आत्मा अपमारग हो लगाव[4]"

तुलसी ने भी माया की आवरण शक्ति का विवेचन करते हुए कहा है कि माया सब जग को बनाती है उसके चरित्र को कोई नही जान पाया है। वह नट क समान अनेक रूप धारण कर जीवो को मोहित करती है —
'जया अनेक वेष धरि नत्य करे नट कोय[5]'

---

१ जायसी-अखरावट पृ० ३३२।
२ नूरमुहम्मद-अनुराग बासुरी।
३ उसमान-चित्रावली पृ० १३१।
४ सूर विनय पत्रिका-पृ० ४८।
५ मानस-उत्तरकाण्ड पृ० ७२।

माया की नट क्रिया से जीव असत्य को सत्य समझ लेता है। अविद्या के अज्ञानजन्य आवरण को सत्य मान कर जीव सुख और दुख अनुभव करता है।

केशव ने भी अविद्या को मोह की सहचरी कहा है। उनके अनुसार जीवात्मा में सम्भ्रम, विभ्रमादि इसी आवरण से उत्पन्न होते हैं। यही अविद्या जीव बन्धन का कार्य करती है।[1] मध्ययुगीन हिन्दी कविता की सन्त, सूफी और सगुण काव्य धारा में माया की आवरण और विक्षेप शक्ति के अनेक उदाहरण खोजे जा सकते हैं। इस युग की रीति प्रधान काव्य धारा का लक्ष्य आचार्यत्व एवं शृंगार वर्णन था अतएव रीतिकालीन कविता के दो रूप सामने आते हैं—रीतिमुक्त काव्य एवं रीतियुक्त काव्य। रीतिमुक्त काव्य पर शैवमत के प्रभाव की गवेषणा करना व्यर्थ है। हाँ रीतियुक्त काव्य पर शैवमत का प्रभाव अवश्य परिलक्षित होता है किन्तु निराकार शिव या माया सम्बन्धी चिन्तना का वहाँ भी अभाव है क्योंकि वहाँ सगुण शिव ही को सम्मान मिला है जिसके सम्बन्ध में प्रभाव की विवेचना भक्ति के अन्तर्गत की गयी है।

शिव, जीव और जगत

अन्यत्र कहा गया है कि शैवों में जिस प्रकार अद्वैतमत की मान्यता है उसी प्रकार द्वैतमत की भी। विशिष्टाद्वैत में न तो अद्वैत की मान्यता है और न द्वैत की वह दोनों के बीच का मत है। शैवों ने इसको भी माना है। इन सिद्धान्तों के अतिरिक्त उन्होंने द्वैताद्वैत को भी माना है। शैवों की दार्शनिक परम्परा नवीन नहीं है एक प्राचीन चिन्तना है। अद्वैतवाद के अन्तर्गत आत्मा और शिव तथा शिव और जगत् का अभेद दोनों पक्ष विवेचनीय हैं। जीवों की अनेकरूपता या बहुरूपता मिथ्या है। जगत् की पृथक् सत्ता भी भ्रममात्र है। जीव और जगत् दोनों में शिव विद्यमान है। सन्त कवियों ने इसी अद्वैत सिद्धान्त को स्वीकार किया है। कबीर दादू मलूक आदि परमात्मा और जीवात्मा परमात्मा और जगत् में भेद नहीं मानते।

एकमेक रमिरह्या सबनि में[2] कह कर कबीर जीवात्मा और पर—

---

१ रामचन्द्रिका—२५–२६।

२ कबीर ग्रन्थावली पृ० १०२।

अद्वैतवाद

मात्मा में अभेद को ही सिद्ध करते हैं। इस अभेद की सिद्धि के लिए संशय या भ्रम के मिटने की आवश्यकता है— 'संसो मिथ्यो एक को एक।'[१] शिव और जीव तथा शिव और जगत् के अभेद को मान कर कबीर की बानी में कहा गया है — जेती देपों आतमा तेता सालिगराम।[२] उनके अनुसार "जीव महल में शिव पहुँनवां[३]" है। शिव और जगत की अद्वैत अवस्था को प्रगट करते हुए कबीर की बानी में *कहा गया है कि समस्त जगत् में प्रभु ही विविध रूपों में भासित हैं—*

एक पवन एक ही पानीं, एक जोति संसारा
एक ही खाक घड़े सब भाड़े एक ही सिरजनहारा
सब घट अंतर तूंही व्यापक, धरै सरूपै सोई[४]

शिव और जीव की अद्वैत अवस्था का प्रतिपादन करते हुए दादू की बानी मे कहा गया है—

रोम रोम मे रमि रह्या सो जीवनि मेरा
जीव पीव न्यारा नहीं, सब संगि बसेरा[५]

एक अन्य स्थल पर शिव और जगत् की एकता बतलाते हुए दादू कहते हैं कि यह जगत् शिव का अभिव्यक्त रूप है—

दादू जल मे गगन, गगन मे जल है[६]

संत रज्जब भी परमात्मा और जीव के अभेद में विश्वास करते हुए कहते हैं—
रज्जब जीव ब्रह्म अंतर इता, जिता जिता अज्ञान[७]

संत सुन्दरदास परमात्मा और जीव की अभिन्नता बतलाते हुए कहते हैं—

'जैसे महदाकाश तें घटाकाश नहीं भिन्न
यों आतम परमातम सुंदर सदा प्रसन्न'[८]

---

१ कबीर ग्रंथावली पृ० १०५।
२ वही, पृ० ४४।
३ वही पृ० ६३।
४ कबीर ग्रंथावली पृ० ६३।
५ परशुराम चतुर्वेदी–संतकाव्य संग्रह दादूसाहब पृ० २८६।
६ दादू दयाल की बानी भाग १ पृ० २४।
७ परशुराम चतुर्वेदी–संतकाव्य संग्रह–रज्जब, पृ० ३७६।
८ सुंदर ग्रंथावली भाग २, पृ० ८०५।

इनके अनुसार विश्व और शिव म कोई अन्तर नही है। सृष्टि परमात्मा का विलास है। परमात्मा सृष्टि का निमित्तकारण है। जीव अज्ञानवश अपने को अपने आप नही पहिचानता है।

"एकहि व्यापक वस्तु निरन्तर, विश्व नहीं यह ब्रह्म विलासे
ज्यों नट मन्त्रनि सों दिठ बांधत है कछु औरई औरई भासे
ज्यों रजनि माँहि बूझि परे नहिं जो लगि सूरज नहिं प्रकाशे
त्यो यह आपुहि आपु न जानत सुन्दर ह्वै रह्यो सुन्दरदासे।"[1]

सत भीखा साहब की बानी म परमात्मा और जीव की अभेद अवस्था का वर्णन करते हुए कहा गया है—

"भीखा केवल एक है किरतम भयो अनन्त
एकै आतम सकल घट, यह गति जानहिं सत"[2]

परमात्मा और जगत् के अभेद को बतलाते हुए भीखा साहब कहते हैं—

"सब घट ब्रह्म बोलता आहि दुनिया नाम कहौं मैं काहि"[3]

सत पलटू का परमेश्वर भी घट घट मे व्याप्त है जगत् मे तिल भर भी स्थान उससे खाली नही है। अतएव इनका कहना है कि प्रत्यक्ष जगत् को असत्य कैसे कहा जा सकता है। इनकी बानी म कहा गया है—

"आपुहि कारन आपुहि कारज विस्व रूप दरसाया"[4]

इनका मानना है कि परमेश्वर ही माली है वही चमन है महदी का पत्र भी वही है, उसम व्याप्त लाली भी वही है। वही स्थूल सूक्ष्म जड और चेतन जगत् म व्याप्त है।[5]

सत चरनदास समस्त जगत् को परमात्मा का मन्दिर मान कर कहते हैं

'हमरा देवत परगट दीस, बोले चाले खावे
जित देखों तित ठाकुर द्वारे, करों जहां नित सेवा"[6]

---

१ सुन्दर ग्रन्थावली भाग २, पृ० ५८१।
२ सतकाव्य सग्रह–भीखा साहब, पृ० ४६६।
३ भीखासाहब की बानी पृ० ८।
४ पलटू साहब की बानी, पृ० ५।
५ वही, पृ० ५।
६ चरनदास की बानी, पृ० ७९।

मात्मा के अभेद को ही सिद्ध करते हैं। इस अभेद की सिद्धि के लिए संशय या भ्रम के मिटने की आवश्यकता है— 'ससो मिथ्यो एक की एक।[1]" शिव और जीव तथा शिव और जगत् के अभेद को मान कर कबीर की बानी मे कहा गया है —' जेती देषों आत्मा तेता सालिगराम।[2] उनके अनुसार "जीव महल म शिव पहुँनवा[3] है। शिव और जगत की अद्वैत अवस्था को प्रगट करते हुए कबीर की बानी म कहा गया है कि समस्त जगत् मे प्रभु ही विविध रूपों मे भासित हैं—

अद्वैतवाद

एक पवन एक ही पानी, एक जोति ससारा
एक ही खाक घड़े सब भांड एक ही सिरजनहारा
सब घट अंतर तूही व्यापक, धर सरूप सोई"[4]

शिव और जीव की अद्वैत अवस्था का प्रतिपादन करते हुए दादू की बानी मे कहा गया है—

'रोम रोम म रमि रह्या, सो जीवनि मेरा
जीव पीव न्यारा नहीं, सब संगि बसेरा'[5]

एक अन्य स्थल पर शिव और जगत् की एकता बतलाते हुए दादू कहते हैं कि यह जगत् शिव का अभिव्यक्त रूप है—

दादू जल मे गगन गगन मे जल है'[6]

संत रज्जब भी परमात्मा और जीव के अभेद म विश्वास करते हुए कहते हैं—
रज्जब जीव ब्रह्म अंतर इता, जिता जिता अज्ञान[7]
संत सुंदरदास परमात्मा और जीव की अभिन्नता बतलाते हुए कहते हैं—

'जसे महदाकाश तें घटाकाश नहीं भिन्न
यों आतम परमातम सुंदर सदा प्रसन्न'[8]

---

१ कबीर ग्रंथावली पृ० १०५।
२ वही, पृ० ४४।
३ वही पृ० ६३।
४ कबीर ग्रंथावली, पृ० ६३।
५ परशुराम चतुर्वेदी-संतकाव्य संग्रह दादूसाहब पृ० २८६।
६ दादू दयाल की बानी भाग १ पृ० २४।
७ परशुराम चतुर्वेदी-संतकाव्य संग्रह-रज्जब, पृ० ३७८।
८ सुंदर ग्रंथावली भाग २, पृ० ८०५।

इनके अनुसार विश्व और शिव में कोई अन्तर नहीं है। सृष्टि परमात्मा का विलास है। परमात्मा सृष्टि का निमित्तकारण है। जीव अज्ञानवश अपने को अपने आप नहीं पहिचानता है।

'एकहि व्यापक वस्तु निरन्तर, विश्व नहीं यह ब्रह्म विलासै
ज्यौं नट मन्त्रनि सौं दिठ बाधत है कछु औरई औरई भासै
ज्यौं रजनि माँहि बूझि परे नाँहि जो लगि सूरज नाँहि प्रकासै
त्यौं यह आपुहि आपु न जानत सुन्दर ह्वै रह्यो सुन्दरदासै।'[1]

संत भीखा साहब की बानी में परमात्मा और जीव की अभेद अवस्था का वर्णन करते हुए कहा गया है—

"भीखा केवल एक है, किरतम भयो अनन्त
एकै आतम सकल घट यह गति जानहिं संत'[2]

परमात्मा और जगत् के अभेद को बतलाते हुए भीखा साहब कहते हैं—

"सब घट ब्रह्म बोलता आहि, दुनिया नाम कहौं मैं काहि"[3]

संत पलटू का परमेश्वर भी घट घट में व्याप्त है, जगत् में तिल भर भी स्थान उससे खाली नहीं है। अतएव इनका कहना है कि प्रत्यक्ष जगत् को असत्य कैसे कहा जा सकता है। इनकी बानी में कहा गया है—

"आपुहि कारन आपुहि कारज विस्व रूप दरसाया'[4]

इनका मानना है कि परमेश्वर ही माली है, वही चमन है, मेंहदी का पत्र भी वही है, उसमें व्याप्त लाली भी वही है। वही स्थूल सूक्ष्म, जड़ और चेतन जगत् में व्याप्त है।[5]

संत चरनदास समस्त जगत् को परमात्मा का मन्दिर मान कर कहते हैं

'हमरा देवत परगट दीस, बोले चाले खावे
जित देखो तित ठाकुर द्वारे, करौं जहा नित सेवा'[6]

---

१ सुन्दर ग्रन्थावली भाग २, पृ० ५८१।
२ संतकाव्य संग्रह–भीखा साहब, पृ० ४६६।
३ भीखासाहब की बानी पृ० ८।
४ पलटू साहब की बानी पृ० ५।
५ वही, पृ० ५।
६ चरनदास की बानी पृ० ७९।

कहा है —

'पहिले हों ही हों तब एक
अमल, अकल, अज अभेद विवर्जित सुनि विधि विमल विवेक
सो हों एक अनेक भांति करि, सोभित नाना भेद'[1]

सूर के इस कथन मे अभिप्राय है कि परमेश्वर और आत्मा एक हैं।

तुलसी भी परमेश्वर और जीव तथा परमेश्वर और जगत् के अद्वैत सम्बन्ध को वारि और वीचियों के समान मानते हैं।[2]

रीतिकालीन कवि काव्य कौशल एवं नायक नायिका के नख-शिख वर्णन में ही लीन रहे। उन्होंने भक्ति क्षेत्र में सगुणोपासना को ही प्रधानता दी। अतः उनके काव्य में दार्शनिक तत्त्वों के विवेचन का अभाव सा है।

परिणामवाद—अद्वैतवाद से अन्तर्गत दार्शनिकों ने विवर्तवाद परिणामवाद और प्रतिबिम्बवाद तीन सिद्धान्तों को प्रमुखतया अपनाया है। इनमें विवर्तवाद तो भ्रम से सम्बन्धित है, शैवों ने इसको नहीं अपनाया।

परिणामवाद के अन्तर्गत दो भेद स्वीकार किए गये हैं विकृत परिणामवाद तथा अविकृत परिणामवाद। शैवों ने केवल अविकृत परिणाम को स्वीकार किया है और यह सिद्धान्त वीर शैवमत[3] मे बहुत प्रसिद्ध रहा। इस मत को व्यक्त करने के लिए अनेक उदाहरण दिए जाते हैं। इनमें तीन बहुत प्रसिद्ध हैं—एक तो कचन कुण्डल का उदाहरण दूसरा जल हिम का उदाहरण तीसरा सकीर्ण और विस्तीर्ण कच्छप का।

मध्यकालीन कवियों की रचनाओं में इन उदाहरणों का अभाव नहीं है। सन्त कवियों ने इन्हीं उदाहरणों से अपने अद्वैतवाद की पुष्टि की है।

अद्वैत अवस्था को व्यक्त करने के लिए कबीर ने परिणामवाद के जल और हिम के उदाहरण का प्रयोग किया है

पाणीं ही तें हिम भया हिम ह्वै गया बिलाइ
जो कुछ था सोइ भया अब कछू कह्या न जाई ॥[4]

---

१ सूर विनय पत्रिका पृ० २६४।
२ मानस-उत्तरकाण्ड पृ० १८६।
३ देखिए इसी अभिलेख का द्वितीय अध्याय, पृ० ४६।
४ कबीर ग्रन्थावली-पृ० १३।

कबीर जीव और जगत् को परमात्मा का अविकृत परिणाम मानत हैं। आविर्भाव अवस्था म जीव और जगत् अस्तित्व म आते हैं तिरोभाव अवस्था म ये परमात्मा म विलीन हो जाते हैं। इस अभेद को बतलाने के लिए कबीर ने शवा के कचन कुण्डल के उदाहरण को अपनाया है।

> जसे बहु कचन के भूषन एक गालि तवावहिंगे
> जसे जलहि तरग तरगनी एसे हम दिखलावहिंगे।'[1]

सत सुन्दरदास परमेश्वर जीव और जगत् की अभेद स्थिति को परिणामवाद के सिद्धात से ही व्यक्त करत हैं। यद्यपि उनका उदाहरण मौलिक है किन्तु भाव उसी सिद्धात का प्रतिपादक है।

> जसे घत थींज के डरा सो बधि जात पुनि
> फेर पिघलें तें वह घत ही रहत है
> जसे पानी जमि के पाषाण हू सो देखियत
> सो पाषण फरि पाणी होय के बहतु है

सत चरनदास ने भी परमेश्वर जीव और जगत् की अ० त अवस्था बतलाते हुए शैवदशन के अविकृत परिणामवाद की सकीण और विस्तीण कच्छप की उक्ति को ज्यों का त्यों अपनी बानी म अपना लिया है।

> 'जसे कछुआ सिमिट के आपुहि माँहि समाय
> तसे ज्ञानी श्वास में रहे सुरति लौ लाय[3]

सत भीखा भी अविकृत परिणामवाद को स्वीकार करते हैं—

> नाम एक सोन अस गहना ह्वै द्वतभास
> कहू खरा खोट रूप हेमहि अधार है'[4]

परमेश्वर के काय रूप मे परिणत होने पर भी उसके मूल रूप मे अन्तर नही आता। सत सिंगा न परमेश्वर और जीव तथा परमेश्वर और जगत् का सम्बन्ध स्वर्ण और आभूषण चन्द्रमा और चादनी जसा माना है।[5]

---

१ कबीर ग्रन्थावली पृ० १३७।
२ परशुराम चतुर्वेदी-सतकाव्य सग्रह पृ० १७०।
३ परशुराम चतुर्वेदी चरनदास, पृ० ४७६।
४ वही भीखा साहब पृ० ४६५।
५ वही सन सिंगा पृ० २६८।

इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि मध्यकाल में अद्वैत सिद्धान्त के प्रतिपादन में किन्तु अविकृत परिणामवाद के उदाहरणों का पर्याप्त उपयोग हुआ है। इससे उनकी दार्शनिक परिस्थिति पर शैव दर्शन का प्रत्यक्ष नहीं तो अप्रत्यक्ष प्रभाव तो सिद्ध ही है।

हिन्दी के प्रेममार्गी सूफी काव्य में प्रतिबिम्बवाद ही स्वीकार किया गया है परिणामवाद नहीं क्योंकि प्रतिबिम्बवाद अवच्छेदवाद और अद्वैतवाद दोनों में एक ही साथ फिट हो सकता है। परिणामवाद में रूपान्तर की विशेषता से वह सूफियों को मान्य नहीं रहा।

मध्यकालीन हिन्दी की सगुण काव्य धारा में भक्ति का अजस्र प्रवाह रहा है जिसमें परमेश्वर के परमानन्द स्वरूप सगुण रूप का विशद वर्णन है। सगुणोपासक कवि सूर और तुलसी के उपास्य कृष्ण और राम हैं जिनका गुण गान उनके काव्य का विषय रहा है। अतः सगुणोपासक कवियों के काव्यों में शैवदर्शन के परिणामवाद का नितान्त अभाव है।

सगुणोपासक कवियों के समान रीतिकालीन कवियों में भी शैवदर्शन के परिणामवाद का कोई प्रभाव नहीं दीखता। इस युग के कवियों ने भक्ति क्षेत्र में सगुणोपासना को अपनाया है। उनके काव्य में दार्शनिक चिंतन नहीं है।

अद्वैतवाद का प्रतिष्ठापक अन्य प्रमुख सिद्धान्त प्रतिबिम्बवाद है।

प्रतिबिम्बवाद

प्रत्यभिज्ञादर्शन में इसी सिद्धान्त की स्वीकृति हुई है। प्रतिबिम्बवाद के अनुसार सब रूपों में परमात्मा का प्रतिबिम्ब है जिस प्रकार अनेक जलपात्रों में एक ही सूर्य चन्द्र का प्रतिबिम्ब दिखलाई पड़ता है उसी प्रकार अनेक रूपों में परमात्मा प्रतिबिम्बित है। प्रतिबिम्ब अनेक हैं किन्तु बिम्ब एक है। इस सिद्धान्त की छाया सन्तों और सूफियों दोनों पर मिलती है। कबीर दादू और रज्जब आदि संत कवियों ने शैवों के प्रतिबिम्बवाद की उक्तियों को अपनाया है।

कबीर कहते हैं कि सब रूपों में परमात्मा का प्रतिबिम्ब है। जलपात्र के न होने पर अथवा जल और कुम्भ के विगलित हो जाने पर प्रतिबिम्ब बिम्ब में ही समा जाता है। उसी प्रकार नश्वर रूप के विगलित होने पर प्रतिबिम्ब रूप जीव परमात्मा में समा जाता है—

ज्यूं बिंजहि प्रतिबिम्ब समाना उदकि कुम्भ बिगराना[1]

---

१ कबीर ग्रंथावली-पृ० १४८।

'कहे कबीर जानि भ्रम भागा, जीवहि जीव समाना'

एक अन्य स्थल पर कबीर ने परमेश्वर और जीव के सम्बन्ध को प्रतिबिम्बवाद के द्वारा अभिव्यक्त किया है—

आतम मे परमातम दरसे, परमातम मध्ये भाई
भाई मे परछाई दरसे लखे कबीरा साई।"[1]

संत दादू ने परमात्मा और जीव के अभेद को प्रतिबिम्बवाद के टकसाली उदाहरण से ही प्रतिपादित किया है। दादू कहते हैं—

'ज्यों दरपन मुख देखिये, पानी में प्रतिबिम्ब
ऐसे आतमराम हैं दादू सब ही संग'[2]

संतों ने परमेश्वर और जीव तथा परमेश्वर और जगत् का अभेद प्रतिबिम्बवाद के आधार पर प्रगट किया है। शैव दर्शन के सदृश ही उन्होंने बिम्ब के अभाव में प्रतिबिम्ब की कल्पना तथा अनेक प्रतिबिम्बों में एक ही बिम्ब का अस्तित्व स्वीकार किया है। अतएव संतों पर शैवदर्शन के अद्वैतवाद का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है।

सूफी कवि जायसी प्रतिबिम्बवाद के अनुकरण मे लिखते हैं—

"गगरी सहस पचास जो कोउ पानी भरि धर
सूरज दिपै अकास, मुहमद सब महं देखिए"[3]

प्रतिबिम्बवाद के अन्तर्गत दूसरा उदाहरण दर्पण और प्रतिबिम्ब का दिया जाता है।[4] इसके अनुसार परमात्मा दर्पण है और परमात्मा ही दर्शक है। यह जगत् उसका प्रतिबिम्ब है जिसे स्वयं परमात्मा देखता है। जायसी ने पदमावत मे कहा है—

'देखि एक कौतुक हौं रहा, रहा अंतरपट पै नहिं अहा
सरवर देख एक मै सोई रहा पानि औ पान न होई
सरग आई धरती मह छावा रहा धरति पै धरत न आवा।[5]

१ हजारी प्रसाद द्विवेदी—कबीर, पृ० २३६।
२ दादूदयाल की बानी पृ० २४८।
३ जायसी ग्रन्थावली—अखरावट—पृ० ३३१।
४ अभिनवगुप्त—दर्पणबिम्बवत्
५ जायसी ग्रन्थावली—पदमावत पृ० २५८।

मंझन मधुमालती में प्रतिबिम्बवाद को अपनाते हुए कहते हैं कि परमात्मा इस जगत् में सर्वत्र प्रतिबिम्बित हो रहा है—

एक अहै दूसर कोउ नाहीं—रह्यो सब सृष्टि रूप पुनि वाही।[1]

इन उदाहरणों से यह अनुमान प्रमाणित हो जाता है कि संतों और सूफियों की हिन्दी कृतियों पर शैवों के अद्वैतिक परिणामवाद एवं प्रतिबिम्बवाद का पर्याप्त प्रभाव है। संत काव्य पर इस प्रभाव के लिए एक तो शैवदर्शन की अविरल दार्शनिक धारा ही प्रेरक हो सकती है और दूसरा प्रेरणा नाथों के माध्यम से संतों को धरोहर के रूप में मिली। नाथों और संतों के दर्शन में बहुत भेद नहीं है। अतएव संतों ने नाथों के दर्शन को धरोहर के रूप में प्रयोग किया। सूफी काव्य पर यह प्रभाव नाथपंथी योगियों की दार्शनिक विचारधारा के सम्पर्क से आया। योग की जो बातें सूफियों ने अपने रूपकों में व्यक्त की हैं उनसे उन पर नाथों का प्रभाव स्पष्ट है, किन्तु नाथों के अन्तर्दर्शन का प्रभाव भी सूफियों पर पड़ा है इसमें भी कोई सन्देह नहीं है। इसी प्रभाव के परिणाम स्वरूप प्रतिबिम्बवाद और परिणामवाद के प्रतिपादक अनेक उदाहरण सूफियों की दार्शनिक अभिव्यक्ति में आ समाये हैं।

सगुण भक्ति धारा के कवियों को परमेश्वर जीव और जगत् का अभेद सम्बन्ध स्वीकार था। उन्होंने जीव और जगत् को परमेश्वर का प्रतिबिम्ब भी माना है। सूरदास ने कहा है कि जैसे अनेक घड़ों में एक सूर्य का प्रतिबिम्ब दिखायी पड़ता है उसी प्रकार प्रत्येक शरीर में एक ही चेतन स्थित है—

'चेतन घट घट है या माहीं। ज्यों घट घट रवि प्रभा सदाहीं।'[2]

नंददास कहते हैं—

घट घट विघट पूरि रह्यो सोई
ज्यों जल भरि बहु भाजन माहीं
इंदु एक सबही में छाहीं[3]

केशव ने भी एक स्थल पर परमेश्वर जीव और जगत् के बिम्ब प्रतिबिम्ब सम्बन्ध की ओर संकेत किया है—

---

१ मंझन–मधुमालती।
२ सूर विनय पत्रिका पृ० २७२।
३ नंददास–रूपमंजरी पृ० १।

' जग ब्रह्म नाम
तिनके अशेष प्रतिबिम्ब जान
तेहू जीव जानि जग मे कृपाल' [1]

उत्तर मध्यकाल की रीति मुक्त और रीति मुक्त काव्य धाराओं म दार्शनिक तत्वों के चिन्तन का अभाव सा रहा है। रीति मुक्त काव्य धारा मे यद्यपि भक्ति का प्रवाह देखा जा सकता है किन्तु यह लौकिक सीमाओं मे आबद्ध होने के कारण पूर्व मध्यकाल की चिन्तन परम्परा मे मौलिक योग नही प्रदान कर सका है। रहीम ने जीव और जगत् को परमेश्वर का प्रतिबिम्ब माना है।

'आदि रूप की परम दुति
घट-घट रही समाय[2]"

मध्यकालीन हिन्दी कविता के शिव और जीव तथा शिव और जगत् सम्बन्धी, दार्शनिक चिन्तन पर शवमत के अद्वतवाद तथा उसमे प्रतिष्ठित परिणामवाद एव प्रतिबिम्बवाद का प्रभाव रहा है। इस युग के सत, सूफी सगुण तथा रीतिकालीन कवियों ने किसी न किसी रूप म शवदशन के अद्वैत वाद को अपना कर दार्शनिक विवचन को एक गति ही प्रदान नहीं की है अपितु कम सयास एव मोक्ष माग को भी प्रशस्त किया है।

कम—शव लोग कम का सम्बन्ध अविद्या से जोडते हैं। इसलिये कम को अविद्याजन्य माना गया है। अविद्या माया है।[3] यही जीव को विषय रत करती है और पल भर म सकडो कम करवाती है।

"कोटि करम पल में करे यहु मन विषया स्वाद"[4]

तुलसी ने भी कम को माया जन्य माना है।

तव विषम माया बस सुरासुर नाग नर अग जग हरे
भव पथ भ्रमत अमित दिवस निसि काल कम गुननि भरे।'[5]

कम जीव का बन्धन है। यही उसके सुख-दुख और आवागमन का कारण है। जीव कम बन्धन से मुक्त होने पर मोक्ष प्राप्त होता है।

---

१ केशवदास-रामचन्द्रिका पृ० ७५।

२ रहीम

३ दखिये प्रस्तुत अभिलेख का अध्याय दूसरा पृ० ५५।

४ कबीर ग्रन्थावली-पृ० १२।

५ मानस उत्तरकाण्ड चौ० १२।२।

मध्यकालीन हि दी कवियो ने कम और कमफल का प्रचुर वणन किया है। भारतीय दशन के कम सिद्धात की विवेचना कुछ अ तर क साथ सभी सम्प्रदायो मे स्वीकृत हुई है। इन सिद्धातो क विवचन की परम्परा आलोच्य काल के कवियो के काव्य म दखी जा सकती है। इस युग क कवियो ने नाथ पथ के स्वर मे स्वर मिला कर कम को अविद्या जय कहा है।

कम अविद्याजन्य है—गोरखनाथ ने भी कम को माया जय माना है और जब तक जीव शरीर से बधा रहता है तब तक कमरत रहता है।

'अवधू मन कलपत लागी माया करम आारे तहा लू काया।'[1]

जीव अविद्या या अज्ञान के कारण लोभ मोह क्रोध मद आदि से घिर कर अनेक कम करता है। कबीर आदि मध्यकालीन सत भी एसा ही मानते हैं। कबीर कहते हैं—

'कोटि करम लागे रहै एक क्रोध की लार'[2]

मलूकदास ने अज्ञान को मन की चचलता का कारण माना है जिसस वह मृग की भाति चारो ओर भटकता है तथा विभिन्न कर्मों म रत रहता है।

मन मि गा बिन मूड का चहु दिसि चरन जाय।[3]'

सत दरिया साहब (बिहार वाले) मन की ममता को कर्मों का जनक मानत हैं—

मन की ममता काल है, करम करावे जानि।[4]

जगजीवन साहब न कम को अविद्या जय मान कर कहा है— कुमति कम कठोर काठहि नाम पावक दहै।[5] कुमति के कारण जीव अनक कर्मों की अग्नि म पड कर प्रभु के नाम को भूल जाता है। सत भीखा साहब कहत हैं कि प्राणी अपनी कुचाल से नाना प्रकार के कष्ट सहता है। वह भ्रमजनित कर्मों म उलझ कर सिह हाने पर भी सियार कहलाता है। वह भ्रमजय कम क कारण अलख का नहीं दख पाता है।

---

१ गोरखबानी पृ० २३०।
२ सतबानी सग्रह भाग १ पृ० ५३।
३ वही पृ० १०३।
४ वही पृ० १२४।
५ सतबानी सग्रह भाग २ पृ० १४४।

"अपनी कपट कुचाल तें नाना दुख पावै,
करम भरम बीच सिह स्यार कहावे।
अलख का लखन कठिनाई, करम को मार मेला है।[1]

उपयुक्त उदाहरणा से यह प्रमाणित होता है कि नाथो के समान सत कवियो न भी कम को अग्राह्य कहा है। मध्यकालीन सत कविया न जीव को कम स सजग रहन का आदश दिया है।

मध्यकालीन हिन्दी के सूफी कविया पर भारतीय दशन के कम सिद्धात का विशेष प्रभाव दिखाई नही देता। इन्होने अच्छे और बुरे कम तो माने हैं परतु कम को बधन नही माना है और न ही य जीव के आवागमन या पुनजन्म सिद्धात को मानत है। इस सिद्धात की मान्यता के अभाव मे सूफी काव्य म कम का सुख दुख का कारण भी नही माना गया है। कम के फल का एक ही स्वरूप इन्ह मान्य है—स्वग (बहिश्त) या नरक (दोजख) की प्राप्ति।

मध्यकालीन सगुण कवियो ने भी कम को अग्राह्य कहा है। सूरदास कहते हैं कि अविद्या के कारण जीव विरुद्ध आचरण करता है। काम क्रोध लोभ मद और मोह के कारण वह सत्यान्वषी नही बन पाता।

विषयासक्त, नटी के कपि ज्यों जेहि जेहि कह्यो करयो।"[2]

यह अन्यत्र कहा जा चुका है कि भक्ति म कम को माना गया है और बधन रूप म, किन्तु ईश्वर (राम-कृष्ण) की कृपा से सब बधन कट जाते हैं।

बिनु हरि भजन न भव तरिय, यह सिद्धान्त अमेल।'[3]

भक्ति क्षेत्र की यह मान्यता आगे भी चली गइ। रीतिकालीन भक्त कवियो ने भी इसे ही स्वीकार किया।

वह पर ऊपर ते तकत नीच्ये बमे यह नीच।
विधि बचये बचिहै विहग बयाध बाज के बीच।"[4]

फिर भी यह सब निरूपण तात्विक पृष्ठभूमि म नहीं हुआ केवल प्रेम (भक्ति) के परिपाश्व म हुआ है। रीति मुक्त कविया ने लक्षण-लक्ष्य ग्रन्था के

---

१ भीखा साहब की बानी पृ० ५८।
२ सूर विनय पत्रिका, पृ० १६३।
३ तुलसीदास मानस' उत्तरकाण्ड, पृ० २१०।
४ भिखारीदास—'रस सारांश', पृ० १२३।

प्रभाव रूप म ही रति निर्माण किया 'भव-धार ' म ह न के लिए प्रार्थना करता हुए कविता । राम कथा का ईश्वर-कृपा म भटकाता की ही बात कही। इस सम्बन्ध म गत्व म म उनकी मान्यता म कोई अन्तर नहीं आया।

अब दान म कर्म को बन्धन माना गया है। गोरखनाथ कहते हैं—

'बध्या सोध जु करन्हि बध, मुक्ता सोई रहे निरवद"[2]

कर्म बन्धन है मध्यकालीन हिन्दी काव्य म भी यह प्रवृत्ति कर्म जीव का बन्धन माना गया है। माया के प्रभाव म जीव सत और असत् कर्मों का पहिचान नहीं पाता। वह निरन्तर कर्मपाश म बधा रहता है। कबीर कहते हैं—

कोटि कर्म फिरि ले पल्या, घत न दरो भ्रम।[3]

सत मूलक दास कहते हैं—

किरिया करम आचार भरम है यहि जगत का फदा '[4]

कर्म जीव का बन्धन है। सत दूलनदास के अनुसार जीव कर्म म अटक कर अपने घर की खोज भी नहीं करता—

'निज घर का कोउ खोज न की ८। करम भरम अरुझानो '[5]

सत दादू कहते हैं—

राहु गिने ज्यों चन्द को गहन गिने ज्यों सूर
कर्म गिल या जीव को नख शिख लागे पूर।"[6]

दयाबाई कहती हैं कि कर्म के बन्धन जीव को शिथिल कर देते हैं—

'कम फास छूटे नहीं चकित भयो बल मोर'[7]

सत गरीबदास कहते हैं कि मन अविद्याजन्य कर्म के कारण पाचो विषयो से बधा है—

---

१ बिहारी—बिहारी सतसई दोहा ५२८।
२ गोरखबानी पृ० २२६।
३ कबीर ग्रन्थावली, पृ० ३८।
४ सतबानी सग्रह, भाग २ पृ० १०५।
५ सतबानी सग्रह भाग २ पृ० १५८।
६ वही भाग १, पृ० ६७।
७ वही, भाग १ पृ० १७३।

'कमल फूल मन भवर हैं, काटा करम बुसग
पाव विषय सू बधि रहा, बसे लागे रग।"[1]

कम के बधन के कारण ही जीव परमानन्द से विमुख रहता है। संत तुलसी साहब कहते हैं—

"बाधि करम के बस रवे, सक न सूरति पाव।"[2]

कम का बधन इतना आकर्षक है कि ऋषि मुनि भी इसके बधन में पड़ कर व्यथित होते हैं—

'काम, क्रोध मद लोभ मोह यह करत सबहिन वर
सुर नर मुनि सब पचि-पचि हारे परे करम के फर"[3]

कम के बधन को सभी संतों ने स्वीकार किया है। उनका कथन है कि कम बधन दिन प्रतिदिन और उलझता ही जाता है।

'चित्र विचित्र करम को धागा जनम जनम अरुझाय रह्यो
काहू को कबहु यह सुरझहि दिन दिन अधिक फसाय रह्यो"[4]

संत भीखा साहब कहते हैं कि जीव कम में उलझा है जिसके कारण वह जगत् के आवरण में बधा है

आलम जीव करम अरुझाना जग नतन त्रिगमाया"[5]

हिन्दी के सूफी कवियों के काव्य में कम को बधन मान कर उसका वर्णन नहीं किया गया है। सम्भवत शैव दर्शन की इस विचारधारा से वे अप्रभावित रहे।

कम का बधन भक्ति का अवरोधक है। अत मध्यकालीन हिन्दी के सगुण कवियों ने अविद्याजन्य कम को जीव के बन्धन का हेतु मान कर उसकी अवहेलना भी की है। सूरदास कहते हैं—

अवगुन मो पे अजहु न छूटत बहुत पच्यो अब तहि"[6]

---

१ वही भाग १ पृ० २०२।
२ वही भाग १ पृ० २२७।
३ वही भाग २ (भीखा साहब) पृ० २१२।
४ सतबानी सग्रह भाग २ (काष्ठ जिह्वा स्वामी) पृ० २५३
५ भीखा साहब की बानी पृ० १७।
६ सूर विनय पत्रिका पृ० १७६।

कर्म का बन्धन बडा विकट है अनेक प्रयास करने पर भी जीव उससे छूट नहीं पाता। सूरदास कहते हैं कि सभी जीव कर्म के वश में पड़े भटक रहे हैं कर्म के बन्धन से निवृत्त होना बडा दुष्कर है।[1] तुलसी ने भी शैवों के अनुसार कर्म का बंधन कहा है—

कर्म कीच जिय जानि, सानि चित चाहत कुटिल मलहि मल धोयो।[2]

कुटिल चित्त कर्म को कीचड जानते हुए भी इससे जीवगत मल को धोना चाहता है। फलत कर्म के जाल में और फस जाता है। ये कर्म ही उसका बन्धन बन जाते हैं। इससे प्रतीत होता है कि तुलसी पर भी कर्म सम्बन्धी विचारों पर शैवमत का प्रभाव रहा है। दार्शनिक विवेचन के अभाव मे मध्यकाल के रीतिकालीन काव्य मे कर्म और उसके बन्धन स्वरूप के चित्रण का अभाव है।

शैवों ने कर्म को दुख का कारण माना है—

पाडतडी माभो जनम बदीता, चावल सांबिन सारी जो।[3]

कर्म-फल ओखली मे कूटते हुए जन्म बीत गया फिर भी चावल सवारा सारा नही गया अर्थात् कर्मों के बन्धन में बधा हुआ जीव दुखों से छुटकारा नही पा सका। नाथपंथियों का अनुसरण करते हुए कबीर कर्म को मुख दुख का कारण मानते हुए कहते हैं—

यह तन तो सब बन भाया करम भए कुहाडि,
आप आप कू काटि है, कहे कबीर बिचारि।[4]

कर्म कुल्हाडा है जो शरीर रूपी वन को काटता रहता है। कर्म ही जीव के दुख का कारण है। दादू ने भी कबीर के कथन की पुनरावृत्ति की है—

कर्म कुहाडा अग वन, काटत बारम्बार
अपने हाथो आप को काटत है ससार।[5]

सहजो बाई कर्म को दुख रूप ही मानती है—

कर्मन के फंदे किए जन्म जन्म दुख होय।[6]

---

१ वही पृ० २३५।
२ विनयपत्रिका-सम्पा० वियोगीहरि-पद २४५।
३ गोरखबानी पृ० ६३।
४ कबीर ग्रथावली पृ० २५।
५ सतबानी सग्रह भाग १ पृ०।
६ सहजोबाई की बानी पृ० २२।

दया बाई कहती है—

'अन्ध कूप जग मे पडो दया करम बस आय।'[1]

संत चरनदास कहते हैं—

पावो घोर महादुखदाई, या जग मे देई फसाई
तन मन कू बहु व्याधि लगाव, कायक वाचक पाप चढाव।'[2]

कर्म सुख दुख का कारण है इसके कारण जीव पर अविद्या का आवरण बना रहता है। अविद्या कर्म पर आच्छादित रहती है। इसलिए संतो ने अविद्या और कर्म दोनो की निन्दा की है।

सूफी कवियो का कर्मफल भारतीय कर्म फल से भिन्न है। यद्यपि सूफियो ने पुण्य और पाप के सम्बन्ध से बहिश्त (स्वर्ग) और दोजख (नरक) की प्राप्ति होती बतलायी है किन्तु मुक्ति का प्रतिपादन उन्होने नही किया क्योंकि वहा मुक्ति का सिद्धान्त है ही नही अतएव सूफी काव्य मे शैवदर्शन के प्रभाव का खोजना उचित भी नही है।

मध्ययुग के सगुण भक्त कवियो ने कर्म को सुख और दुख का कारण माना है। सूरदास ने कहा है—

काम के बस जो पडे जमपुरी ताको त्रास।'[3]

तुलसी कर्म को सुख दुख का कारण मान कर कहते हैं—

कर्म प्रधान विस्व करि राखा जो जस करै सो तस फल चाखा।[4]'

कर्म ही जीव के सुख दुख का कारण है।

मध्ययुग के रीतिकालीन काव्य मे शृंगार वर्णन ही अधिक पाया जाता है। इस युग की भक्ति धारा चिंतन क्षेत्र मे पूर्व-मध्य काल की धारा से विशेष प्रभावित नही हुई है। बिहारी ने एक स्थल पर कहा है—

'मन मरकट कें पग खुल्यो निपट निरादर लोम,
तदपि नचावत सठ हठी नीच कलंदर लोभ।[5]

---

१ संतबानी संग्रह भाग १ पृ० १६७।
२ चरनदास की बानी, पृ० २५।
३ सूर विनय पत्रिका पृ० १०४।
४ मानस-अयोध्याकाण्ड पृ० २२०।
५ विश्वनाथ प्रसाद मिश्र-बिहारी, पृ० २६१।

कर्म और आवागमन

शैव उपासकों ने कर्म को[1] आवागमन का कारण माना है। जब तक कर्म है तब तक आवागमन से मुक्ति नहीं होती। मध्यकालीन संत कवियों ने भी 'कर्म को आवागमन का कारण माना है। कबीर कहते हैं—

'आंमण मरण विचारि करि कूडे काम निवारि।'[2]

जन्म मरण का कारण कर्म है। जन्म मरण से मुक्त होने के लिए उनसे मुक्त होना आवश्यक है। संत दादू कहते हैं—

कर्म फिरावे जी का[3]

चरनदासजी अपने कथन में इसी की पुष्टि करते हैं—

फिर चौरासी मांहि फिराव जठर अगिन में ताहि तपाव।
जन्म मरन भारी दुख पाव मनुष देहि को सबल जाइ ॥[4]

संत तुलसी साहब कहते हैं—

'कर्म आस की वास में जोनि जोनि समाय।'[5]

संतों ने आवागमन से मुक्त होने के लिए उसके हेतु कर्म की निन्दा की है।

हिन्दी के सूफी काव्य में आवागमन के सिद्धान्त की मान्यता नहीं मिलती है। अतएव इस काव्य में आवागमन सम्बन्धी प्रभाव का प्रश्न ही नहीं उठता।

विवेचनीय युग के सगुण भक्त कवियों ने कर्म की निरन्तरता को स्वीकार किया है। उनके अनुसार जीव कर्म के कारण अनन्त जन्म लेता है, अपने कर्म के फल का भोग करता है। सूरदास कहते हैं—

' जिहि जिहि जोनि फिरयो संकट बस तिहि तिहि यह कमायो'[6]

तुलसीदास कर्म के फल को स्पष्ट शब्दों में कहते हैं—

आकर चारि लच्छ चौरासी जोनि भ्रमत यह जीव अविनासी
फिरत सदा माया कर प्रेरा काल करम सुभाउ गुन घेरा।[7]

---

१ आवागवण मरम का कारण-गोरखबानी पृ० २१६।
२ कबीर ग्रन्थावली पृ० २२।
३ संतबानी संग्रह भाग १ पृ० ८५।
४ चरनदासजी की बानी पृ० १७।
५ संतबानी संग्रह भाग १ पृ० २३८।
६ सूर विनय पत्रिका-पृ० १५३।
७ मानस-उत्तरकाण्ड ४३।

जैसा कि अन्यत्र कहा जा चुका है रीतिकालीन काव्य में शृंगार और प्रेमभावना की साधना प्रधान रही है। इस युग के भक्ति काव्य में तात्विक विश्लेषण का अभाव है

कर्म और मोक्ष— शैवदर्शन में कर्म संन्यास को मोक्ष माना है। कर्म के बन्धन से मुक्त होना ही जीवन्मुक्ति है।[1] संत दरिया साहब (बिहार वाले) कहते हैं कि कर्म के भोग के पश्चात् ही मोक्ष हो सकता है—

"करम काटि मर निजपुर जाय बसे निजुधाम"[2]

संत चरनदास कहते हैं—

'करम भरम के बन्धन छूटे, दुविधा विपति हनी।"[3]

पलटू साहब भी कर्म बन्धन से मुक्त होने पर मुक्ति मानते हैं—

कर्म बन्धन सकल छूटे जीवन मुक्ति कहावन"[4]

उपर्युक्त उदाहरणों में कहा जा सकता है कि संतों ने कर्म संन्यास को मुक्तावस्था मान कर नाथों के प्रभाव को प्रमाणित किया है। अतएव यह कहना अनुचित न होगा कि विवेच्य काल के संतों की कर्म सम्बन्धी धारणा पर शैव दर्शन का अप्रत्यक्ष प्रभाव तो अवश्य रहा है।

हिन्दी के सूफी कवियों ने कर्म के कारण आवागमन और कर्म संन्यास से मोक्ष का प्रतिपादन नहीं किया है। इसका प्रमुख कारण सैद्धान्तिक भिन्नताएं हैं।

मध्यकालीन सगुण भक्तों ने कर्म बन्धन से मुक्त होने में परमात्मा की अनुकम्पा को ही प्रधान माना है। उनके अनुसार भगवान की कृपा से जीव बन्धन मुक्त होकर उनकी शरण प्राप्त करता है। मध्यकाल के रीतिकालीन साहित्य में आत्मा की अतुल जिज्ञासा और स्वतंत्र चिन्तन उपेक्षित रहा है, जिसके कारण इसमें कर्म और कर्म संन्यास के विश्लेषण का अभाव है। मध्यकालीन हिन्दी कविता की चेतनिक पृष्ठभूमि पर शैवमत की कर्म सम्बन्धी दार्शनिक विचारधारा का महत्त्वपूर्ण प्रभाव रहा है।

---

१ गोरखबानी—२२६।
२ संतबानी संग्रह भाग १, पृ० १२४।
३ वही पृ० १८१।
४ पलटू साहब की बानी, पृ० ५७।

सत और सगुण कवियो ने कम को दुख और पुनज म का हेतु तो माना ही है साथ ही निष्काम कम और उससे प्राप्त कममुक्त अवस्था को भी स्वीकार किया है। कममुक्त अवस्था अथवा कम सन्यास को सत और सगुण भक्त ने मोक्ष कहा है। मध्ययुगीन हिन्दी कवियो म यह विचारधारा नवीन नहीं है। शवाचाय श्रीकण्ठ[1] का भी कथन है कि फल की कामना का त्याग करके कम करने से पाप का नाश होता है और पाप नाश स चित्तशुद्धि होती है तभी बोध होता है। अतएव कम ज्ञान का हेतु है। ज्ञान और निष्काम कम का फल एक ही है। ज्ञान और कम के समुच्चय स मुक्ति होती है।

मोक्ष

शवदशन म माया, कम और बिन्दु से बने शरीर के आधिपत्य स मुक्ति तथा परमशिव स साम्य प्राप्त करना ही मोक्ष माना गया है। इनके अनुसार मुक्त आत्मा का जब तक शरीर से सम्बन्ध है वह सूय के प्रज्वलित प्रकाश मे कपूर की लौ के समान अपना अस्तित्व[2] बनाए रखता है। वह सन्देह ही ईश्वर के ऐश्वय म लीन रह कर आनन्द भोग करता है। शरीर से मुक्त होने पर आत्मा और परमात्मा की वास्तविक भिन्नता मिट जाती है। आत्मा प्राकृतिक भिन्नताओ और सीमाओ[3] से मुक्त हो परमात्मा म लीन हो जाती है। इस प्रकार शवो म मोक्ष के दो रूप स्वीकार किए गए हैं—सदेह मोक्ष और विदेह मोक्ष।

सदेह-मुक्ति

जीवनान के क्रमिक विकास तथा अविद्या जनित उपाधियो के बन्धन स निवृत्त हो इसी लोक म आध्यात्मिक जागति के कारण मोक्ष का आनन्द प्राप्त करता है। उसे इस आनन्द के लिए कहीं आना जाना नहीं पडता। यही सदेह मुक्ति है। मध्यकालीन हिन्दी के कवियो म सदेह मुक्ति की मान्यता रही है।

कबीर ने कहा है—'परम पद पाया कहीं जाऊ न आऊ।'[4]

दादू ने कहा है—

'जीवत जनम सुफल करि जाना, दादू राम मिले मन माना।'[5]

---

१ रामदास गौड़—हिन्दुत्व, पृ० ७०१।

२ डा० के सी पाण्डेय—भास्करी भाग ३, पृ० CLLL VI

३ वही, पृ० CLLL II

४ कबीर ग्रन्थावली, पृ० १५४।

५ दादूदयाल की बानी, भाग २, पृ० २२।

ज्ञान द्वारा जीव और परमेश्वर का भेद मिटने पर अविद्या का नाश होता है। सुन्दरदास का कथन है कि मोक्ष इसी जीवन में प्राप्त किया जा सकता है—

'निज स्वरूप को जानि अखंडित ज्यों का त्यों रहिए
सुन्दर कहू ग्रहै नहिं त्याग, वहै मुक्ति पद कहिए।'[१]

शैवदर्शन में सदेह मुक्ति अथवा जीवन्मुक्त अवस्था को मोक्ष कहा गया है।[२] इसके दो रूप माने गए हैं—दुखान्त तथा सामरस्य अथवा आनन्द।

दुखान्त दुखान्त का अर्थ आधिदैविक और आधिभौतिक दुखों की निवृत्ति है। इसमें अज्ञान भेदन करने वाली स्वशक्ति और क्रियाशक्ति का उन्मेष आवश्यक है।[3] इनके द्वारा जीव अज्ञान के आधिपत्य से मुक्त होता है। वह अविद्याजन्य दुख सुख अनुभव नहीं करता। वह जल में कमल के पत्ते के समान निवास करता है। सन्तों में मोक्ष के सम्बन्ध में शैवों की इसी धारणा को अपनाया गया है जो उन्हें सम्भवतः नाथ पंथ से प्राप्त हुई है।

गोरखबानी में कहा गया है कि पंच तत्त्वों अथवा पंच ज्ञानेन्द्रियों के बहिः प्रसार का निवारण कर आत्म चिंतन करने में मनुष्य की सब चिन्ताएं दूर हो जाती है।[४] यही दुख की आत्यंतिक निवृत्ति की अवस्था है। एक अन्य स्थल पर गोरखनाथ कहते हैं— काया में माया और आत्मा दोनों हैं। जब अथवा माया के रहित हो जाने पर जीव के मुक्त हो जाने में कोई सन्देह नहीं रह जाता—

'अण्डकुरा परबत जल बिन तिरिया।'[५]

कबीरदास मायाजन्य मेरा तेरा से विमुक्त अवस्था को मुक्ति मानते हैं। यह 'मेरा' 'तेरा' ही जीव के दुख का कारण है। इससे निवृत्त होना ही मोक्ष है।

मेर मिटी मुक्ता भया पाया ब्रह्म विसास[६]

---

१ परशराम चतुर्वेदी—सतकाव्य संग्रह पृ० ३८७।
२ इसी अभिलेख का द्वितीय अध्याय पृ० ५४।
३ बलदेव उपाध्याय—भारतीय दर्शन, पृ० ५८३।
४ गोरखबानी पृ० २६।
५ वही पृ० ६७।
६ कबीर ग्रन्थावली पृ० ५६।

दादू कहते हैं—

'मेरी तपति मिटी तुम देखता, सीतल भयो भारी
भय बन्धन मुक्ता भया

सत दरिया कहते हैं कि ईख के रस को उबाल कर उसका मल काट कर पहले गुड़ बनता है गुड़ से साफ चीनी और मिश्री मिश्री से मिश्रीकन्द। इसी भांति जीव अनवरत आत्मशुद्धि की क्रिया में लगा रह कर दुख की आत्यन्तिक निवृत्ति के साथ, जीवन्मुक्त अवस्था को प्राप्त करता हैं—

"जीव साफ होय भयउ निनारा, कौन एक से भयउ निनारा
ऐसो सकल जाहि यनि आई, फेरि मुरचा नहिं लागे भाई"[2]

मुक्ति के पश्चात् जगत से भिन्न जीव का वैसा ही व्यक्तित्व हो जाता है जैसे सरसों से अलग हो जाने पर तेल का। वह दिव्य दृष्टि प्राप्त कर सत्पुरुष से सम्बन्ध स्थापित कर लेता है।[3] उनका कहना है—

'मन चीनहे तो होय निरद्वंद्वा
छूट जाय तब जमपुर फंदा'[4]

गरीबदास कहते हैं कि आशा तृष्णा से मुक्त होना ही मोक्ष है। मन का जीतना ही सबसे बड़ी जीत है—

जीवत मुक्ता सो कहो आसा तृष्णा खंड
मन के जीते जीत है, क्यूं भरमे ब्रह्मंड'[5]

यही जीव की विशुद्ध चैतन्यावस्था है। जिसे प्राप्त करना उसका लक्ष्य है। इस अवस्था पर पहुँचकर, दीपक के प्रकाश से अन्धकार के समान जीव का अज्ञान दूर हो जाता है। वह सूर्य के प्रकाश में कपूर की लौ के समान रहता है।[6] संतों ने जहाँ जीवन्मुक्त अवस्था का वर्णन किया है उनका लक्ष्य इसी अवस्था पर रहता है। दुख से निवृत्त आत्मा परमेश्वर स्वरूप हो जाता है। संतों की

---

१ दादूदयाल की बानी पृ० ४३।
२ दरिया-ज्ञान स्वरोदय (सत दरिया एक अनुशीलन) पृ० २४।
३ वही पृ० ६१।
४ वही पृ० ३८।
५ संतबानी संग्रह भाग १ पृ० २०७।
६ इसी अभिलेख का द्वितीय अध्याय, पृ० ५६।

मोक्ष सम्बन्धी धारणा से भी यही स्पष्ट होता है कि शैवों की मुक्ति सम्बन्धी धारणा ने उसका वास्तविक स्वरूप सवारा है।

मध्ययुगीन सूफी कवियों के काव्य मे दुख सुख से निवृत जीवन्मुक्त अवस्था का विश्लेषण नहीं हुआ है। अतएव इनके काव्य से शैव दर्शन के इस प्रभाव की गवेषणा व्यर्थ है। मध्ययुग के सगुण भक्त कवियों ने भी जीवन्मुक्त अवस्था का वर्णन किया है। सगुण भक्तों ने मुक्ति के चार भेद (सालोक्य सामीप्य, सारूप्य और सायुज्य) माने है। इनमे प्रथम तीन भेदो का सम्बन्ध सगुण भक्ति से हैं जिसका विवेचन अन्यत्र किया गया है। ईश्वर के साथ एकीभाव को प्राप्त होना सायुज्य भक्ति है। इसके भी दो रूप मान गए हैं[1]— ससार के दुख से मुक्ति और नित्य सुख की प्राप्ति। ससार के दुख से निवृति शैवों की 'दुख की आत्यन्तिक निवृति' रूपा मुक्ति है। सूरदास अपनी आत्मानुभूति प्रगट करते हुए लिखते हैं—

'मोह निसा को लेस रह्यो नहिं भयो विवेक बिहान
आतमरूप सकल घट दरस्यो, उदय कियो रविज्ञान।''[2]

अज्ञान तम से निवृति और ज्ञानोदय ही जीवन्मुक्त अवस्था के गुण हैं। जीवन्मुक्त अवस्था म आत्मा के सत्य स्वरूप का ज्ञान तो होता ही है जीव के भव बन्धन भी छूट जाते हैं। तुलसी ने जीवन्मुक्त अवस्था का वर्णन करते हुए कहा है—

"मुक्त भए छूटे भव बंधन।"[3]

एक अन्य स्थल पर भी उन्होने कहा है—

'ग्यानवत कोटिक महं कोऊ जीवनमुक्त सुकृत जन सोऊ'[4]

अज्ञान से निवृत्त, दुख-सुख से परे जीव ही मुक्त है।

मध्यकाल के सगुण काव्य म यद्यपि भगवान् के सान्निध्य से प्राप्त आनन्द का ही प्रचुर वर्णन मिलता है तथापि उन्होंने दुख से निवृति मोक्ष अवस्था का भी वर्णन किया है जिसे शैव दर्शन का अपरिलक्षित प्रभाव कहा जा सकता है।

---

१ डा० हरवंशलाल शर्मा-सूर और उनका साहित्य, पृ० ५०।
२ सूरसागर-पद ३७६।
३ मानस-लंकाकाण्ड १४४।
४ वही, उत्तरकाण्ड-५३।२।

आलोच्य युग की रीतिकालीन काव्यधारा में तत्संबंधित अथवा ईश्वरोन्मुख भावना का चित्रण स्वतन्त्र रूप से नहीं हुआ है। इस युग के रीतिमुक्त कवियों के काव्य में भक्ति का चित्रण हुआ है, जिसमें प्रभु में सुख समृद्धि तथा इस जीवन के उपरान्त मुक्ति की आकांक्षा की गयी है। भिखारीदास कहते हैं—

> 'जानि यहै अनुमानि यहै मन मानि के दास भयौं है सेवैया।
> मुक्ति को धाम है भुक्ति को दाम है दास को नाम है
> कामद गैया।'[1]

अतएव इस युग के काव्य में मोक्ष सम्बन्धी धारणाओं के विशद विवेचन का अभाव ही रहा है प्रभु की शरण एकमात्र भवसागर को पार करने का साधन रही है।

दुःख की आत्यंतिक निवृत्ति के अतिरिक्त शैवों में सदेह मुक्ति के दूसरे स्वरूप आनन्दवाद की प्रतिष्ठा भी रही है। साधना के उपरान्त जिस आनन्द की प्राप्ति होती है उसे समरस और उस अवस्था को सामरस्य कहा जाता है। यही जीव की स्वतंत्रावस्था है विषमता की संकुचित अवस्था में सुख और दुःख दोनों रहते हैं लेकिन समरसता की अवस्था में केवल आनन्द ही आनन्द शेष रहता है।[2]

आनन्दवाद

शैवों की इस दार्शनिक विचारधारा का प्रभाव मध्यकालीन काव्य पर स्पष्ट दिखलाई देता है। इस युग के संतों ने मुक्ति को पूर्णानन्द अवस्था माना है जिसे शैव दर्शन के प्रभाव का परिणाम कहना अधिक संगत होगा। कबीर पूर्णानन्द अवस्था का वर्णन करते हुए कहते हैं—

> दुखिया मूवा दुख कौं, सुखिया सुख को झूरि
> सदा अनंदी राम के जिनि सुख दुख मेल्हे दूरि।"[3]

आनन्दावस्था में जीव को सुख दुःख के अस्तित्व का अनुभव नहीं होता। वह

---

१ काव्य निर्णय-पद २८०

२ देखिए इसी अभिलेख का द्वितीय अध्याय, पृ० ७४।
देखिए-प्रत्यभिज्ञा हृदयम् १६।
चिदानन्द लाभे देहादिषु चेत्यमानेष्वपि चिदैकात्म्यप्रति-पत्तिदार्ढ्यं
जीवन्मुक्तिः।

३ कबीर ग्रन्थावली, पृ० ५४।

इनमें निर्लिप्त रह कर पूर्ण आनन्द का अनुभव करता है। मन को प्रभु में लगा देने पर सुखसागर प्राप्त होता है। जीव अमर हो जाता है उसके क्लेशों का अन्त हो जाता है।

'कहै कबीर मन मनहिं मिलावा, अमर भये सुखसागर पावा'[1]

समरसता की अवस्था में मैं 'तू' का भेद विलीन हो जाता है। जीव और परमेश्वर का भेद मिट जाता है। सर्वत्र परमेश्वर के दर्शन होने लगते हैं।[2] जीव तन मन की सुधि भूल कर आनन्द सागर में ही निमग्न रहता है—

"तन रजित तब देखियत दोई,
प्रगटयो ग्यान वहां तहां सोई
लीन निरंतर बपु बिसराया
कहै कबीर सुख सागर पाया।"[3]

संत दादू लिखते हैं कि प्रियतम की प्राप्ति हो गयी है, तन मन उसी में लीन हो रहा है। हृदय उस परम ज्योति में लीन होकर अतुल आनन्द प्राप्त करता है—

'परम तेज परगट भया, तह मन रह्या समाइ
दादू खेले पीव सों नहिं आवे नहिं जाइ
निराधार निज देखिए नैनहु लागा बंद
तह मन खेले पीव सों, दादू सदा अनंद।'[4]

परम ज्योति ही उसका घर सुख सागर में ही उसका बसेरा हो जाता है—

"जग सों कहा हमारा जब देख्या नूर तुम्हारा
परम तेज घर मेरा, सुख सागर माहिं बसेरा
झिलमिल अति आनंदा पाया परमानंदा।"[5]

---

१ कबीर ग्रन्थावली पृ० ६१।
२ तू तू करता तू हुआ मुझ में रही न हू
जब आपा पर का मिटि गया, जित देखौं तित तू॥
—कबीर ग्रन्थावली पृ० १०७।
३ वही, पृ० ११८।
४ दादू दयाल की बानी-भाग १ पृ० ५५।
५ वही, भाग २ पृ० ४३।

सत सुन्दरदास शैव दशन के आनन्दवाद को अपनाते हैं। वे आत्मा और परमात्मा के मिलन का वर्णन करते हुए कहते हैं—

"मुख तें कह्यो न जात है अनुभव को आनन्द
सुन्दर समुझे आपु को, जहां न कोई द्वन्द।"[1]

आनन्दवाद का प्रभाव सत चरणदास पर भी स्पष्ट दिखलाई देता है। उन्होंने कहा है कि जीव दुख-सुख रहित अवस्था म आनन्द पद को प्राप्त कर लेता है—

'पांचो उतरें भूत जब ह्वै है ब्रह्म स्वरूप
आनंद पद को पाइ हो, जित है मुक्ति सरूप।"[2]

वे कहते हैं—'समझ मई आनन्द पाये, आतम आतम सूझा'

आत्मज्ञान होते पर सर्वत्र आनन्द ही दृष्टिगोचर होने लगता है—

आदिहू आनन्द, अन्त हु आनन्द
मध्यहु आनन्द ऐसे हिं जाना
बंधहु आनन्द, मुक्ति हु आनन्द
आनन्द ज्ञान, अज्ञान पिछानो
सोवहु आनन्द, बैठहु आनन्द
डोलत आनन्द, आनन्द जानो
चरनदास विचारि, सब कुछ आनन्द
आनन्द छाडि क, दुक्ख न ठानो[3]

मध्यकालीन हिन्दी सन्त कवियो के काव्य के उपयुक्त उदाहरणो से प्रमाणित होता है कि वे शैवो के आनन्दवाद से प्रभावित थे। शैवो के समान ही ब्रह्मानुभूति के द्वारा चिदानन्द लाभ करना इनका लक्ष्य था।

जसा कि अन्यत्र कहा जा चुका है हिन्दी के सूफी कवियो ने मोक्ष का सद्धान्तिक विवेचन तो नही किया है पर इस जीवन से परमेश्वर की शरण प्राप्त कर उसकी शीतल छाया से प्राप्त अलौकिक आनन्द का वर्णन इनके काव्य मे मिलता है। सम्भवत शैवो के प्रतिबिम्बवाद के साथ उन्होंने सदेह

---

१ सुन्दर ग्रन्थावली, भाग २ पृ० ७६६।
२ चरनदास की बानी भाग १, पृ० २५।
३ चरनदास की बानी, भाग १, पृ० ४७।

हिन्दी सत कवियो ने शवो की मोक्ष सम्बन्धी इस धारणा को स्वीकार किया है। सत कबीर कहते हैं—

"बहुरि हम काहे को आवहिंगे"
कहे कबीर स्वामी सुखसागर हंसहि हंस मिलावहिंगे ।[1]

सत चरनदास लिखते हैं कि निर्वाण पद के प्राप्त होने पर आवागमन नहीं होता। काल भी जीव को अपने बन्धन म नहीं बांधता। वह शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वरूप हो जाता है—

'सो पावे निर्वान पद, आवागमन मिटाय
जनम मरन होवे नहिं, फिर काल न खाय"[2]

सहजो बाई ने कहा है कि जीव मुक्ति प्राप्त हो जाने पर द्वन्द्वातीत हो जाता है-पाप पुण्य से पर हो जाता है—

'पाप पुण्य दोनों छूटे हरिपुर पहुच जाई'[3]

उपयुक्त उदाहरणो से प्रमाणित हो जाता है कि सत भी मृत्यु के उपरान्त जीव का परमेश्वर मे विलय मानते है। इसे शवदशन का अपरिलक्षित प्रभाव ही कहना अधिक सगत होगा। सूफी काव्य म मृत्यु के उपरान्त जीव की मोक्ष सम्बन्धी धारणा का प्रतिपादन नही हुआ है। अतएव इस सम्बन्ध म शवमत का इन पर कोई प्रभाव दिखलाई नही देता।

मध्ययुगीन हिन्दी के सगुण भक्तो ने सदह मुक्ति का ही अधिक वणन किया है तथापि उनके साहित्य म मरणोपरान्त मुक्ति की ओर भी सकेत किया गया है। उनके अनुसार जीव मरणोपरान्त मोक्ष प्राप्त करने पर आवागमन से मुक्त हो जाता है। सूरदास ने कहा है—

'ऐसी भक्त सुभक्त कहावे, सो बहुरयो भव जल नहि आवे"।[4]

एक अन्य स्थल पर सूरदास कहते हैं—

---

१ कबीर ग्रन्थावली-पृ० ११८।
२ चरनदास की बानी, भाग२, पृ० १५६।
३ सतबानी सग्रह-भाग १, पृ० १६०।
४ सूर विनयपत्रिका-पृ० २७७।

"निष्कामी बकुंठ सिधावै जनम मरन तिहि बहुरि न आवै"।[1]
निष्काम भक्त जन्म मरण के चक्र मे नही आता।

संत एवं सगुण भक्ति काव्य के अतिरिक्त हिन्दी के रीतिकालीन कवियो ने भी मरणोपरान्त मुक्ति की कामना की है। बिहारी कहते हैं—

"मोहू दीजे मोष, जो अनेक अधमनि दियौ"[2]
भिखारीदासजी राम नाम को मुक्ति का साधन मानते हैं—

'मुक्ति महीरुह के द्रुम हैं किधौं राम के नाम के आखर दोऊ"[3]
रीतिकालीन हिन्दी काव्य में तत्वविवेचन का अभाव सा रहा है। उसमे शैव दर्शन के प्रभाव को खोजना व्यर्थ ही रहेगा।

कहने की आवश्यकता नही कि मध्ययुगीन हिन्दी कविता पर, शैवो के मोक्ष सम्बन्धी दृष्टिकोण का प्रभाव रहा है। संत कवियो ने तो दुख से निवृति तथा अज्ञान के दूर होने पर आनन्द अवस्था को मोक्ष माना है सगुण भक्त भी इस प्रभाव से अलग नही रह सके हैं। उनके काव्य मे जीवन्मुक्त अवस्था का तथा सामरस्य अवस्था मे प्राप्त आनन्द का वर्णन है जिसे शैवदर्शन का अपरिलक्षित प्रभाव कहा जा सकता है।

निष्कर्ष

मध्ययुग के साहित्य पर शैव दर्शन के चिन्तन पक्ष का महत्त्वपूर्ण प्रभाव रहा है। चिन्तन का सम्बन्ध अध्यात्म पक्ष से है जिसमे परमेश्वर, जीव और जगत् के सम्बन्ध का विवेचन रहा है। शैवदर्शन मे शिव को प्रमुख पद प्राप्त हुआ है। वे अनेक गुण सम्पन्न हैं तथा अनादि काल से अनेको नामों से अभिहित किए जाते रहे हैं। आलोच्य युग की कविता मे निराकार शिव के अनेक नाम— अलख, निरंजन, शून्य और शब्द आए हैं। निर्गुण एवं सगुण सभी भक्त कवियो ने परमेश्वर की अनन्त महिमा का गान इन नामो से किया है जिससे प्रमाणित हो जाता है कि निराकार शिव और उनके अनेक गुणों का गान इस युग के कवियों का प्रिय विषय रहा है। अतएव इसे शैवदर्शन का अप्रत्यक्ष प्रभाव कहा जा सकता है।

शिव की शक्ति माया के प्रभाव का भी मध्यकालीन कवियो ने स्वीकार

---

१ सूर विनय पत्रिका-पृ० २७८।
२ बिहारी रत्नाकर, दोहा ३७५।
३ काव्य निर्णय-पृ० २८०।

किया है। शवन्शन मे माया की दो शक्तिया मानी गयी हैं—विद्या और अविद्या। माया की अविद्या शक्ति के प्रभाव म आत्मा म अज्ञान बना रहता है, परमात्मा का ज्योतिस्वरूप उससे ओझल रहता है। माया की विद्या शक्ति से ही यह व्यवधान समाप्त होता है। इसी से आत्मा और परमात्मा के भेद का ज्ञान मिट जाता है और साधक 'कांकर पाथर ठीकरी भए आरसी मोहिं' की अवस्था को प्राप्त करता है। मध्यकालीन हि दी कविता म माया और माया के प्रभाव का प्रचुर वर्णन है जिस पर शव दशन के प्रभाव को अस्वीकार नहीं किया जा सकता।

आलोच्य युग की हिन्दी कविता म परमात्मा और आत्मा परमात्मा और जगत् के अद्वैत सम्बन्ध का प्रतिपादन शवन्शन की मान्यताओं के आधार पर हुआ है। इस दशन म अद्वैत सम्बन्ध को अविकृत परिणामवाद तथा प्रति बिम्बवाद के द्वारा स्पष्ट किया गया है। मध्यकाल के हि दी कवियो ने न केवल परिणामवाद तथा प्रतिबिम्बवाद के सिद्धान्तो को अपनाया है अपितु शवो की उक्तियो का भी उसी रूप म प्रयोग किया है। इसे शवा के अद्वैतवाद का प्रत्यक्ष प्रभाव ही कहना अधिक उचित होगा।

मध्यकाल की कविता पर शवदशन के इन प्रभावो के अतिरिक्त कम कमफल और कम सयास स सम्बद्ध धारणाओं क प्रभाव को भी भुलाया नहीं जा सकता। कम और कम सयास का सम्बद्ध मोक्ष स है। कम से निमुक्त जीवन्मुक्त अवस्था को मोक्ष कहा गया है। शवा म पाशुपत सम्प्रदाय म दुख मे निवृत्त होन पर ईश्वर क एश्वय क भोग को मोक्ष कहा गया है तथा काश्मीरी एव वीर शवों ने सामरस्य अवस्था म प्राप्त आनन्द को मोक्ष माना है। इस युग के कवियों को शवा क उक्त दोनो दृष्टिकोण मान्य रहे हैं। उन्होंने उक्त धारणा के अन्तगत ही जीवन्मुक्त अवस्था का वणन किया है। अतएव यह स्पष्ट है कि मध्यकाल म शवन्शन भारतीय दशन का एक प्रमुख अग था जिसने युग के चिन्तन और साहित्य को अनक प्रकार स प्रभावित किया है।

(ख) योग दशन का प्रभाव

योग विद्या भारतीय मनीषियों की आध्यात्मिक चिन्तन का सारभूत तत्त्व है। योग कवल व्यावहारिक रूप म ही प्रतिष्ठित नहीं है प्रत्युत यह विद्या शास्त्र और दशन है। योग क अभ्यास स मानव की प्रवृत्तियाँ मुडती हैं और वह उस स्तर पर पहुँचता है जहाँ अध्यात्म का मनन तथा चिन्तन सहज हो

जाता है। अतएव याग साधना और अध्यात्म-चिन्तन के रूप मे सदैव मान्य रहा है। यद्यपि जन-श्रुतिया के अनुसार याग के प्रवत्तक आदिनाथ शिव मान गए हैं और शैवा न याग को महत्ता दी है तथापि अन्य धर्माचार्यों ने भी इस स्वीकार किया है। सभी धर्मों म याग के मूल तत्व एक ही हैं परन्तु विस्तार म अन्तर होन के कारण भिन्नता दृष्टिगत होती है।

शवमत म योग साधना का प्रधान लक्ष्य आत्मस्थ शिव स ऐक्य स्थापित करना है। शवयागी यागाभ्यास से अपन हृदय मे परमात्मा शिव का अनुसन्धान करता है। उसका साध्य शिव शक्ति सम्मिलन है। कुण्डलिनी ही शक्ति है जा मूलाधार म सुषुप्तावस्था म पडी रहती है। साधक याग साधना द्वारा इस जाग्रत कर ब्रह्मरन्ध्र म लीन करता है और वहाँ विद्यमान शिव के सान्निध्य स आनन्द प्राप्त करता है। ब्रह्मरन्ध्र म स्थित निराकार शिव का ध्यान ही श्रेष्ठ माना गया है। शवा म ज्ञान को प्राधान्य प्राप्त हुआ है। वष्णव सम्प्रदाय मे भक्ति की प्रधानता है जिससे याग का सम्बन्ध है। वष्णवो म भगवान् विष्णु क स्थूल रूप म धारणा तथा ध्यान लगान का विधान है। मूतस्वरूप क ध्यान क पश्चात् अमूत स्वरूप की धारणा की जाती है। वष्णव याग मे प्रथम का वराज धारणा' और द्वितीय का अतर्यामि-धारणा'[1] कहा गया है। अतएव यह शव याग से भिन्न है। वष्णवा म भक्ति का प्राधान्य हान के कारण योग के साधन पक्ष को महत्व नही मिला है।

सिद्ध योग सिद्धा की चिन्तना और साधना की मूलभित्ति 'प्रज्ञा' तथा 'उपाय' का युगनद्ध है। इसी प्रज्ञोपाय सिद्धान्त का विस्तार वज्र और खसम, कुलिश और कमल मणि और पद्म चन्द्र और सूय आदि रूपको म हुआ है। सिद्धा म प्रज्ञा का[2] नारी और उपाय को पुरुष रूप मे परिकल्पित किया गया है। उनम प्रज्ञा को निष्क्रिय[3] तथा उपाय" को सक्रियता का प्रतीक माना है। सिद्धा म समाधि का लक्ष्य 'प्रज्ञोपाय है जिससे आनन्द की सिद्ध हाती है। शव-योग सिद्धा की उक्त साधना से भिन्न है। शवा म कुण्डलिनी का शक्ति कहा गया है जो सक्रिय है और जाग्रत हान पर शिव म लीन होती है।

---

१ भागवत—११।१४।३६, ३७।
२ दास गुप्ता—एन इन्ट्रोडक्शन टु तान्त्रिक बुद्धिज्म —पृ० ११८।
३ वही पृ० ११६।

शाक्त योग

शाक्त मत में शिव को परमतत्त्व तथा शक्ति को सृष्टि की जननी माना गया है। उसका शिव के साथ अनन्त विलास चलता रहता है जिसका प्रतिफलन इस शरीर में नाड़ियों में भी चलता रहता है। कुण्डलिनी उसी अनन्त शक्ति के प्रतीक के रूप में मूलाधार में प्रसुप्त है और उद्बुद्ध होकर षट्चक्रों का भेदन कर ब्रह्मरन्ध्र में पहुँचती है जहाँ शिव का वास है। शाक्त मत में शिव शक्ति[1] के सामरस्य को 'पराशक्ति' कहा गया है। इसमें शक्ति तत्त्व को प्रधानता मिली है।

मध्ययुगीन सन्त एवं सूफी कवियों ने न तो कल्पना के मूल परमेश्वर में धारणा और ध्यान को स्वीकार किया है और न सिद्धों के 'प्रज्ञोपाय' साम्य को अपनाया है। उन्होंने शाक्तों के समान शक्ति को भी प्रधानता नहीं दी है। उनका साध्य शरीरस्थ शिव से सामरस्य प्राप्त करना है जिसमें कुण्डलिनी (शक्ति) साधन है। वे ब्रह्मरन्ध्र में प्राप्त आनन्द में ही लीन रहना चाहते हैं। सन्तों ने शाक्तों के 'दक्षिण' एवं वाम आचार का भी तिरस्कार किया है। सन्तकाव्य में योग के मूल तत्त्वों का विस्तार शैव योग के अनुरूप हुआ है। अतएव यह कहना अनुचित न होगा कि इस काव्य पर शैवयोग का प्रभाव है।

सगुणोपासक भक्त कवियों ने योग की दार्शनिक भूमिका की अवमानना नहीं की किन्तु भक्त कवियों ने भक्ति के सामने योग को महत्त्व नहीं दिया। योग की बातों से भक्त कवि परिचित हैं। उनकी कृतियों में अष्टांगयोग की अनेक बातें आ गई हैं। पारिभाषिक शब्दों का भी प्रयोग हुआ है किन्तु 'योग ठगौरी[2] बिक है' आदि उक्तियों में भक्ति के समक्ष योग के प्रति अपेक्षा भाव ही व्यक्त हुआ है। इसकी पुष्टि

'भक्ति पंथ को जो अनुसर सो अष्टांग योग को कर'[3]

आदि उक्तियों से भी हो जाती है। तुलसीदास भी योग को विशेष आदर से नहीं देखते क्योंकि वे मूलतः भक्त हैं। उनके समय में सन्तों और सूफियों ने जिस योग को मान्यता दे रखी थी उस पर गोरखनाथ की पूरी छाप थी। तुलसीदास उस योग को भक्ति में सहायक न मानकर बाधक ही मानते थे। इसी से उन्हें कहना पड़ा—

'गोरख जगायो जोग,
भगति भगायो लोग।''

---

१ बलदेव उपाध्याय—भारतीय दर्शन—पृ० ५६८।
२ सूरदास—भ्रमरगीतसार पद।२४॥ पृ० १२।
३ सूरविनय पत्रिका—पृ० २८५।

फिर भी तुलसीदास योग की माया से परिचित थे जिसका प्रमाण विनय पत्रिका है—

'सिद्ध सुर मनुज दनुजादि सेवत कठिन
द्रवहि हठयोग दिये भोग बलि प्रान की।"[१]

सच तो यह है कि शारीरिक क्रियाओं की सहायता से मन को निगहीत कैसे किया जाय, इस प्रश्न का उत्तर केवल निर्गुण कवियों का ही विषय रहा है। विषय की गहराई में जितने संत कवि गए हैं उतने शायद सूफी भी नहीं गए। अन्यत्र कहा जा चुका है कि योग साधना की तीन भूमिकाएं हैं[२]—कायिक, मानसिक और आध्यात्मिक। कायिक भूमिका में कायिक भूमिका साधक यम नियम, आसन प्राणायाम और प्रत्याहार के द्वारा चित्तवृत्ति का निरोध करता है। शवों ने चित्तवृत्ति निरोध पर विशेष बल दिया है। उन्होंने यम नियम आदि का महत्त्व स्वीकार किया है। सिद्धों ने मन की वृत्ति को सर्वथा निर्मूल कर वैराग्ययुक्त निवृत्ति मय साधना को नहीं अपनाया है। उन्होंने जीवन को उसी रूप में स्वीकार कर राग के शुद्ध रूप को पहचानने का आग्रह कर राग को[३] राग द्वारा परिशमित करने का प्रयास किया है। सहजयान सम्प्रदाय में भी वैराग्य की अपेक्षा राग को विशेष महत्त्व दिया गया है।[४] उन्होंने जीवन का सहज रूप राग में ही देखा है।[५] वैष्णव योग साधना में 'यम' "नियम' मान गए हैं परन्तु प्रत्येक के बारह भेद स्वीकार किए गए हैं।[६]

मध्ययुग के संत काव्य में वैराग्य को प्रमुखता मिली है। शारीरिक साधना में यम नियम प्रधान माने गए हैं। सन्तों ने हठयोग-यम-नियम प्रदीपिका[७] के अनुकरण पर प्रत्येक की संख्या दस मानी है।

---

१ विनय पत्रिका, पृ० ४०६।

२ देखिए—इसी अभिलेख का द्वितीय अध्याय पृ० ६३।

३ धमवीर भारती—सिद्ध साहित्य —पृ० १९५।

४ बलदेव उपाध्याय—बौद्ध दर्शन —पृ० ४४५।

५ दासगुप्ता—इ ट्रोडक्शन टु तान्त्रिक बुद्धिज्म —पृ० १७४।

६ श्री मद्भागवत—११।१९।३३।

७ 'अहिंसा सत्यमस्तेय ब्रह्मचय क्षमा धृति
दया आर्जव मिताहार शौच यमा दश"
—हठयोग प्रदीपिका १।१७।

योग सूत्र म इनकी सख्या पाँच दी गयी है।[1] इस युग के सत काव्य म यमा की चर्चा व्यवस्थित रूप म मिलती है जिस शैवो का प्रभाव कहा जा सकता है। सतो को यह परम्परा नाथो स प्राप्त हुई। नाथ सम्प्रदाय में कठोर ब्रह्मचय वाक सयम शारीरिक शोच, मानसिक शुद्धता, ज्ञान के प्रति निष्ठा बाह्य आचरणो के प्रति अनादर, आन्तरिक शुद्धि और मद्यमांसादि क पूण बहिष्कार पर जोर दिया गया है।[2]

आलोच्य युग मे कवि सुन्दरदास न यमो का उल्लेख इस प्रकार किया है।—

'प्रथम अहिंसा सत्यहि जानि सोय सुत्याग
ब्रह्मचय दृढ गहै क्षमा धृति सो अनुरागे
दया अरो गुन होइ आज्जव हृदय सुजाने
मिताहार पुनि करे शौच नीको विधि जाने[3]

सत मलूक ने भी 'यमा' के महत्व को स्वीकार किया है—

सत अहिंसा ब्रह्मचय परधन तजव विचार
दया आजव क्षमा सौच पुनि सग्रह निराहार'[4]

चित की शुद्धि एव एकाग्रता के लिए 'नियमो' को भी आवश्यक माना गया है।[5] हठयोग प्रदीपिका म नियम दस माने गए हैं।[6] सत सुन्दरदास कहते हैं—

तप सन्तोषहि अहै बुद्धि आस्तजय सुआनय
दान समुझि करि देह मानसी पूजा ठानय

---

१ अहिंसासत्यास्तेय ब्रह्मचर्या परिग्रहा यमा —योगसूत्र २।३०।

२ 'मन जोवन की करै न आस, चित न राखै कामनि पास"
—गोरखबानी, पृ० ७।

३ सुन्दर ग्रन्थावली–भाग २, पृ० ६५६।

४ मलूक दास की बानी–पृ० ७।

५ देखिए इसी अभिलेख का द्वितीय अध्याय, पृ० ६५।

६ तप सन्तोष आस्तिक्य दानमीश्वरपुजनम।
सिद्धान्तवाक्यश्रवण ह्रीमती च तपो हुतम।
नियमा दश सम्प्रोक्ता योगशास्त्रविशारद।
—हठयोग प्रदीपिका–१।७६।

वचन सिद्धान्त सुसुनय लाजमति दृढ करि रावय
आप करय मुख मौन तहा लग वचन न भावय ।[1]

शिव सहिता मे योग की सफलता के लिए चौरासी आसन माने गए हैं।

आसन

इनमे सिद्धासन पद्मासन, उग्रासन और स्वस्तिकासन को श्रेष्ठ माना गया है।[2] घेरण्ड सहिता म भी इन आसनो को प्रमुख माना गया है।[3] भागवत मे केवल स्वास्तिकासन का उल्लेख हुआ है।[4] मध्यकालीन सता ने भी शैवा के आसनो का और उनकी उपयुक्तता का अपने काव्य म उल्लेख किया है।

आसन का नियमित अभ्यास शरीर को हल्का स्वस्थ और स्थिर बनाने मे सहायक होता हैं। कबीर भी आसन की दृढता के लिए बार बार सचेत करते हुए कहते हैं—

'सहज लछिन स तजौ उपाधि,
आसण दिढ़ निद्रा पुनि साधि।
पुहप पत्र जहा हीरा मणि कहै
कबीर तहाँ त्रिभुवन धणीं।[5]'

सत चरनदास कहते हैं—

'आसन जो सिद्ध करे, त्रिकुटी में ध्यान धरे।[6]'

एक अन्य स्थल पर उन्होने कहा है—

सोधे मूलबध दे राखे आसन सिद्ध कर। [7]

---

१ डा० दीक्षित–सुन्दर दशन पृ० ३२।

२ 'चतुर शीत्यासनानि सन्ति नानाविधानि च।
सिद्धासन तत पाद्मासन योग्र च स्वस्तिकम।'
—शिव सहिता, पृ० ८१।

३ सिद्ध पदम तथा भद्र मुक्त वज्र च स्वस्तिकम्'।
—घेरण्ड सहिता।

४ शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य विजितासन आसनम्।
तस्मिन स्वस्ति समासीन ऋजुकाय समभ्यसेत।'
—भागवत् ३।२८।८

५ कबीर ग्रन्थावली–पृ० ३२४।

६ चरनदास की बानी, भाग १, पृ० ४०।

७ चरनदास की बानी, भाग २ पृ० ६।

पलटू साहब कहते हैं—

'पदम आसन नाहिं छूट आठ पहर लगावन
कर सजम लेय योगरा साध रहनी लच्छन' [1]

दयाबाई ने कहा है—

पदमासन सू बैठ करि अतर दृष्टि लगाव।"[2]

संत किनाराम कहते हैं कि सिद्धासन लगाकर मन को स्थिर करो तब अमरपुरी में हीरा झलकेगा।[3] संत सुन्दरदास सिद्धासन का वर्णन करते हुए लिखते हैं—

"सरल शरीर दृढ़ इन्द्रिय सयम करि
अचल ऊरध दृश्यम् के मध्य ठानिए
मोक्ष के कपाट को उघारत अवश्यमेव
सुन्दर कहत सिद्ध आसन बखानिये'[4]

सिद्धासन का ऐसा ही वर्णन शिव संहिता में मिलता है।[5] इस युग के सन्त कवियों ने सम्भव है शवों से प्रभावित हो आसन की दृढ़ता और रक्षा की बात पर विशेष बल दिया है।

योगासनों का सूफी कवि भी जानते हैं। कासिमशाह ने हंस जवाहिर ग्रंथ में योग साधना के अंतर्गत आसन की दृढ़ता पर विशेष बल दिया है—

'जो तों चहहि जवाहिर लीन्हा, तू कर योग गुरु जस कीन्हा
कहूँ योग की योगाचारी, ठाढ़ किया चारों दुख भारी
दृढ़ आसन दृढ़ निद्रा होऊ, दृढ़ हो क्षुधा दृढ़ काम न होऊ
यह चारों का आसन मारयो [6]

अली मुराद ने पद्मासन का उल्लेख किया है—

'पदमासन गहि होरी गाव मद बिरहा की गारी"[7]

---

१ पलटू साहब की बानी पृ० ५१।
२ सतबानी सग्रह भाग २, पृ० १६६।
३ किनाराम-विवेकसार पृ० ३०।
४ सुन्दर ग्रन्थावली-भाग १ पृ० ४८५।
५ ऊर्ध्व निरोध्य भ्रूमध्य निश्चम सपतन्द्रिय
विशेषो वक्रकायश्च रहस्यं गवर्जित
एतत्सिद्धासन प्रय सिद्धानां सिद्धि दायकम —शिवसंहिता पृ० ८३।
६ कासिमशाह-हंस जवाहिर पृ० ११६।
७ अलीमुराद—कुवरावत

सूफी काव्य म योगसाधना से सम्बन्धित उक्त तत्त्वो का विश्लेषण नवीन नहीं है। जायसी ने भी आसन के महत्त्व का स्वीकार किया है—

चौरासी आसन पर जोगी, खट रस बधन चतुर सो भोगी।"[1]

सूफी कविया का नाथ सम्प्रदाय से निकट सम्पक रहा है। सम्भवत उनकी याग साधना से प्रभावित होकर सूफी कविया ने अपने प्रेमाख्याना मे याग साधना को महत्त्व दिया है। सूफी काव्य पर भी शव योग के प्रभाव को भुलाया नही जा सकता।

प्राणायाम

योग साधना म आसन के पश्चात् प्राणायाम का स्थान है। शास्त्रोक्त विधि से अपने स्वाभाविक श्वास प्रश्वास को रोक लेना प्राणायाम कहलाता है। इसे प्राणो का आयाम भी कहा गया है। सत कविया ने प्राणायाम का सकेत मन पवन साधना के रूप म किया है। सत इस वणन म नाथ परम्परा से दूर नही गए दिखलाई देते। नाथ सम्प्रदाय म भी पवन साधना पर विशेष बल दिया गया है।[2] गोरखवानी म प्राण का ' अरघ और ' उरघ ' बिचपरी उठाई कह कर प्राणायाम की योग्यता व्यक्त की गई है।[3]

मध्यकाल के सत गुलाल साहब पवन साधना की ओर सकेत करते हुए कहते हैं—मन पवना को सगम कोई नर पाइया।[4]" एक अन्य स्थल पर उन्होने कहा है—' ऊध्व पवन ले धरो गगन म बोध करो विश्राम।[5] प्राण साधना से ही प्राणायाम सफल हो सकता है। यारी साहब ने भी प्राण आर अपान साधना को विशेष महत्त्व दिया है। उनका कहना है— लेके प्राण अपान मिलावे वाही पवन म गगन गरजावे।[6]' बुल्ला साहब न भी पवन को बाध

---

१ जायसी ग्रन्थावली (१६३५ सस्करण), पृ० १५८।

२ "इसे सहस इकवीस मेला, नव सय पवन ले बँधवा मेला"
—गोरखबानी पृ० १ ०।

३ "अरध उरघ बिचि धरी उठाई भवि सुनि मे बठा जाई
मतवाला की सगति आई, कथत गोरखनाथ परम गति पाई।
—वही, पृ० २८।

४ गुलाल साहब की बानी पृ० ७०।

५ वही पृ० ७।

६ यारी साहब की बानी, पृ० ७।

कर गगन की साधना करने का उपदेश दिया है—" साथ पवनहि साथ गगनहि गरज-गरज सुनावही।"[१]

यों तो प्राणायाम का वर्णन वैष्णवों और सिद्धों की योग धारा में भी मिलता है। भागवत में प्राणायाम को दो प्रकार का माना है—अगम और सगम। जप और ध्यान के बिना प्राणायाम को अगम और जप-ध्यान सहित प्राणायाम को सगम कहा गया है।[२] शैवों में ऐसा कोई भेद नहीं है। सिद्धों ने प्राणायाम में ललना-रसना (वाम-दक्षिण) का मार्ग निरोध कर मध्यमार्ग अवधूती में प्राण-वायु की प्रवृत्ति मानी है। सिद्ध योगधारा में तत्त्वों के मूल समान होते हुए भी विस्तार में भिन्नता दिखलाई देती है। संत साहित्य में प्रस्तुत प्राणायाम शैवों की परम्परा से मिलता है जो उन्हें नाथों से मिली है।

मध्यकालीन सूफी कवि अलीमुराद ने कुँवरावत में प्राण निरोध की क्रिया का वर्णन किया है। श्वास प्रश्वास के क्रमशः निरोध द्वारा श्वास को शीर्षस्थान पर ले जाया जाता है। यहाँ पहुँचने पर साधक का शिव संगम सहज हो जाता है—

"सांसा का तुम सीस चढ़ायो
घड़ी घड़ी बाहर मिलरायो

'सांसा ले चल सीस पर बैठा निर्गुण गाव'[३]

योग साधना में प्राणायाम के साथ षट्कर्म,[४] मुद्रा,[५] नाड़ी विचार[६] कुण्डलिनी उत्थापन[७] और चक्र वर्णन[८] की भी मान्यता है।

---

१ बुल्ला साहब की बानी, पृ० २।
२ भागवत—११।२४।३४।
३ अलीमुराद—कुँवरावत।
४ 'धौतिर्वस्तिस्तथा नेतिस्त्राटकं नौलकं तथा।
कपालभातिश्चैतानि षट् कर्माणि प्रचक्षते।।" —हठयोगप्रदीपिका २।२२।
५ 'महामुद्रा महाबन्धो महावेधश्च खेचरी
जालन्धरो मूलबन्धो विपरीतकृतिस्तथा।" —शिवसंहिता ४।२२-२६।
६ शिवसंहिता, पटल ५।
७ शिव संहिता, ५।१६३।
८ वही, ५।६५-१५२।

षटकर्म—शारीरिक शुद्धता के लिए षटकर्म आवश्यक माने गए हैं। संत कवियों में इनका वर्णन परम्परा के रूप में हुआ है। संत कबीर सम्भवतः साधना के प्रथम चरण में षटकर्मादि में विश्वास करते थे—

'धोती नेती बस्ती साधो आसन पद्म जुगति
करवायो पहल मूल सुधार हो सारा[1]'

एक अन्य स्थल पर कबीर ने कहा है—

'षट नेम कर कोठडी बांधी वस्तु अनूप बीच पाई[2]'

षटकर्म द्वारा देह की शुद्धि होने पर शरीर में ही अनुपम वस्तु प्राप्त होती है।

मुद्रा

वायु साधना के लिए जिस प्रकार षट्कर्म का उपयोग होता है उसी प्रकार वायु के नियन्त्रण के लिए मुद्रा का महत्त्व भी मध्यकालीन संत काव्य में मान्य रहा है। संतों की मुद्रा सिद्धों की मुद्रा से भिन्न है। सिद्धों में मुद्रा चार प्रकार की मानी गयी है—कर्म मुद्रा, धर्म मुद्रा, ज्ञान मुद्रा और महामुद्रा[3]। 'ये मुद्रा मोद प्रदान करने वाली हैं। बौद्धों की यह अपनी व्याख्या है। सिद्धों ने इस व्याख्या से मुद्रा को नारी रूप में परिकल्पित किया है।[4] सत्यान्वेषी संतों ने इस विश्लेषण को नहीं अपनाया। उन्होंने मुद्राओं का वर्णन हठयोग प्रदीपिका[5] और गोरक्ष-पद्धति[6] के अनुरूप किया है। सुन्दरदास कहते हैं—

सु नि महामुद्रा महाबन्ध महावेध सु खेचरी
उड्यान बंध सु मूल बन्धहि बन्ध जालन्धर करो
विपरीतकरणी मुनि वज्रोली शक्ति चालन कीजिए
हम होइ योगी अमर काया शशि कला नित पीजिए[7]'

---

१ कबीर ग्रन्थावली, पृ० ३२४।

२ वही पृ० ३२४।

३ दास गुप्ता—इन्ट्रोडक्शन टु तान्त्रिक बुद्धिज्म पृ० १६६।

४ धर्मवीर—सिद्ध साहित्य, पृ० २२०।

५ हठयोग प्रदीपिका ३।४० ३।७६।

६ गोरक्ष पद्धति पृ० ३३, ३८।

७ सुन्दर ग्रन्थावली—भाग १, पृ० ८००।
तुलना कीजिए—महामुद्रा महाबन्धो महावेधश्च खेचरी।
उड्यानं मूलबन्धश्च बन्धो जालन्धराभिध
करणी विपरीताख्या वज्रोली शक्ति चालनम्।
इदं हि मुद्रादशकं जरामरणनाशनम्।
—हठयोग प्रदीपिका ३।६,७।

संत दरिया साहब (मारवाड़ वाले) ने भी चतुर मुद्राओं का वर्णन किया है—

चारि मुद्रा पोडश कस हैं चक्र दुवो निसार
पांच मुद्रा जुगित जानहि जोगिया निरुमैव
महामुद्रा सुन्न में जाही सुरति सुखमन माह
सहस्र दल के गुफये ताही मुक्ति को निज घाट'[1]

दरिया साहब कहते हैं कि मन्नामनी मुद्रा म योग पचीस का मनन स्वाधीन कर लेने पर आत्मा को आनन्द प्राप्त होता है—

सो मन शिव सम को बिनासी।[2]

संत गरीबदास कहते हैं—

तिरकुटी तीर मह नीर नदियां बहैं, सिंध सरवर भरे हंस हाया
खेचरी, भूचरी, चाचरी उनमुनी अगम अगोचरी नाद हेरा
सुन्नसत लोक कू गमन सदा किया अगमपुर धाम महबूब मेरा[3]

उनका कहना है कि उनमनी मुद्रा म ही मन स्थिरता प्राप्त करता है—

उनमुनी रेरा धुन ध्यान निश्चल भया
उनमुन की तारी लगी जह अजय जपता[4]'

संत भीखा साहब भी उनमनी मुद्रा म विश्वास प्रगट करते हैं। उनका कहना है—सेवा मन उनमुनी लाया[5] पलटू साहब को उनमुनी मुद्रा म ध्यान लगाने वाला मोनी ही प्रिय है—

उनमनी मुद्रा ध्यान लगावै मन में उलट समावै
निरविकार निरबैर जगत से, सो मोनी मोहि भावै[6]

चरनदास ने मुद्राओं का वर्णन करते हुए कहा है—

'मूलहि बन्ध लगाय जुगति सू मूंदि दई नव नारी
आसन पदम महादृढ़ की हों, हिरदय चिबुक लगाई'
आपा बिसारि प्रेम सुख पायो उनमुन लागी तारी[7]

---

१ संत दरिया–शब्द (दरिया एक अनुशीलन–धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी) पृ० ६७।
२ संत दरिया–शब्द–ज्ञान स्वरोदय, पृ० १६६।
३ परशुराम चतुर्वेदी–संतकाव्य संग्रह, पृ० ३१६।
४ वही पृ० ४५५।
५ वही पृ० ४६१।
६ पलटू साहब की बानी, पृ० ८१।
७ चरनदास की बानी, भाग २, पृ० ३७।

कहना अत्युक्ति न होगा कि संतकाव्य मे मुद्राओ का वर्णन शव-योग दर्शन के प्रभाव का परिणाम है । संतो ने मुद्राओ के महत्त्व को तो स्वीकार किया ही है साथ ही उनका वर्णन हठयोग प्रदीपिका के अनुरूप भी किया है ।[1]

नाडी विचार प्राणायाम के सतत् अभ्यास से शरीरस्थ वायु नाडियाँ सक्रिय होती है जिससे साधक मे यौगिक क्रियाओ का विकास होता है । यो तो सिद्धो म भी नाडी साधना पाई जाती है । उनके अनुसार नाडियो की सख्या बत्तीस हैं जिनम[2] तीन प्रमुख हैं— ललना, रसना और अवधूती । ललना वाम नासापुट क समीप मानी गयी है चन्द्र स्वभाव की है और प्रज्ञा रूप है । रसना दक्षिण नासापुट क समीप है, सूर्य स्वभाव की है और उपाय रूप है । अवधूती इन दोनो के बीच स्थित है । यह क्लेशों को धुनने वाली है । इसी से उसका नाम अवधूती है । योग क्षेम म प्रज्ञा और उपाय का नाडी परक अर्थ भी लिया गया है ।[3] प्रज्ञा और उपाय क्रमश 'इडा' और 'पिंगला' के वाचक मान गए हैं । इन दोनो के मध्य स्थित अवधूती नाडी महासुख (युगनद्ध) का प्रतीक कही गयी है ।[4] शवो ने सुषुम्ना (अवधूती) को श्रेष्ठ तीर्थ अथवा नरमगति कहा है तथा 'इडा' और पिंगला' को सूर्य और चन्द्र माना है । सिद्ध और शवो म अन्तर स्पष्ट है ।

मध्ययुग के सन्तो ने नाडियो को 'इडा' 'पिंगला और सुषुम्ना' अथवा सूर्य चन्द्र और अग्नि या गगा यमुना और सरस्वती कहा ह । शिव सहिता म नाडियाँ बहत्तर हजार मानी गयी हैं ।[5] कबीर ने बहत्तर हजार नाडिया का बहत्तर अधारी[6]' कहा है तथा एक अन्य स्थल पर 'बहत्तर घर कहा है—

बहित्तर घर एक पुरुष समाया ।[7]'

सत काव्य मे पाँच प्रमुख नाडियो ('इगला (इडा) पिंगला सुषुम्ना ब्रजा और

---

१ हय खलु महामुद्रा महासिद्ध प्रदर्शिता
महाक्लेशादयो दोषा, क्षीयते मरणादय
महामुद्रां च तेनैव वदति विबुधोतमा' —हठयोग प्रदीपिका ३।१३ ।

२ प्रबोध चन्द्र बागची-दोहाकोश पृ० १५६ ।

३ दासगुप्ता-इन्ट्रोडक्शन टू तान्त्रिक बोद्धिज्म, पृ० ११८ ।

४ वही पृ० ११८ ।

५ शिव सहिता-२।१३ ।

६ कबीर ग्रन्थावली पृ० ३०८ ।

७ वही, पृ० २७३ ।

ब्रह्मनाडी) को पच पियारी[1] और पच सखी[2] कहा गया है। कबीर कहते हैं कि इडा और पिंगला दो स्तम्भ हैं जिनमे वकनालि सुषुम्ना की डोर है और उस पर पाच ज्ञानेन्द्रिया झूलती हैं—

'चद सूर दोई खमवा बक नालि की डोरि
झूलें पच पियारियां, तहां झूले जिय मोर[3]'

सत चरनदास पाच नाडियो का वणन करते हुए कहते हैं—

'पांच सखी पच्चीस सहेली अनद मगल गाइया
सुमति सांझ की घेरिया आई पांच पचीस मिली आरति गाई[4]'

एक अन्य स्थल पर चरनदास ने कहा है कि पाँच सखियाँ काया महल म सत्व साथ रह कर आत्मानन्द प्राप्त कराने म सहयोगी सिद्ध होती हैं—

"पांच सखी लेलार हेली काया महल पग धरिये
जोग जुक्ति डोला करो, हेली प्रान अपान कहार"[5]

भीखा साहब कहते हैं—

गावहि पाच पचीसो गुनी
सुनत मगन ह्वै साधू मुनी"[6]

एक अन्य स्थल पर होली का रूपक बाध कर उन्होने कहा है—

"सतगुरु ज्ञान अबीर रगल, इद भरि दर्महि चलाई
पांच पचीस सखी जह चाचरि, गावहि अनहद डक बजाई'[7]

सत किनाराम भी इडा पिंगला और सुषुम्ना की शुद्धि म विश्वास करते हुए कहते हैं—

'इगल पिंगल सुखमनि सोधि के अनमुनी रहनी'[8]

सत योगेश्वराचाय कहते हैं कि इडा और पिंगला का शोधन करके सुषुम्ना की डगर पकडनी चाहिए तथा पांच को मार कर पचीस को वश कर नौ की

---

१ चरनदास की बानी-भाग २, पृ० २५।
२ कबीर ग्रन्थावली, पृ० १४२।
३ वही पृ० ८४।
४ चरनदासजी की बानी पृ० ४८।
५ चरनदास की बानी, पृ० १०।
६ भीखा साहब की बानी-पृ० ६४।
७ वही पृ० ५४।
८ धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी-सतमत का सरभग सम्प्रदाय, पृ० ८२।

नगरी को जीतना चाहिए।[1] भिनकराम का कहना है कि शरीर म 'इडा पिंगला' नाम की दो नदियाँ बहती है जिनमे सुदर जल की धारा प्रवाहित है–

"इगला पिंगला शोधन करिके, पकडा सुखमन डगरी
पांच के मारि, पचीस वश किन्हा जीत लिए नौ नगर।"[2]

अघोर सत किनाराम कहते हैं—

"बाम इगला बसे पिंगला रवि गह जानो
मध्य सुषुम्ना रहे शब्द सतगुरु सम मानो"[3]

सत सुदरदास ने नाडिया का वरान करते हुए कहा है—

"नाडी कही अनेक विधि, है दश मुख विचार
इडा पिंगला सुषुम्ना, सब महि ये त्रय सार"[4]

एक अन्य स्थल पर उहोने कहा है—

बाम इडा स्वर जानि चन्द्र मुनि कहियत वाको
दक्षिण स्वर पिंगला सूरमय जांनहु ताको
मध्य सुषुम्ना बहे ताहि जानत नहि कोई
है यह अग्नि स्वरूप काज याही है होई"[5]

सत गुलाल साहब नाडियो के द्वारा प्राणवायु की साधना से शरीरस्थ त्रिकुटी म अलौकिक आनद प्राप्त करने की अभिलाषा प्रगट करते हैं—

'पठि पताल सूर ससि बाधौं साधो त्रिकुटी द्वार
गग जमुन क वार पार बिच भरतु है अभिय करार
इगला पिंगला सुखमन सोधो, बहतसिखर मुख धार'[6]

सत दरिया भी प्राणधारा को प्रवाहित करने वाली इडा, पिंगला और सुषुम्ना का चित्रण करते हुए कहते हैं—

"इगला पिंगला सुखमनि नारी, सार भवन तह करे पुकारी"[7]

---

१ वही, पृ० ८२।

२ भिनकराम–स्वरूप प्रकाश, पृ० १३।

३ किनाराम–रामगीता, प० १३।
तुलना कीजिए—इडा नाम्ना तु या नाडी बाम मार्गे व्यवस्थिता
सुषुम्णायां समाश्लिष्य दक्ष नासा पुटे गता
—शिव सहिता, पृ० ४२।

४ सुदर ग्रथावली, भाग १, पृ० ५०।

५ वही, पृ० ४५।

६ सतबानी सग्रह–भाग २, पृ० २०२।

७ दरिया सागर–५, १७, ५, १८, ५, १६।

* * *

"इगला पिंगला सुखमनि फेरे, लाय कपाट गगन गहि घेरे"[1]

संत काव्य में नाडी वर्णन नवीन नहीं है। ऐसा ही वर्णन शिव संहिता में मिलता है।

"पिंगला नाम या नाडी दक्ष भाग व्यवस्थिता
मध्य नाडी समाश्लिष्य वाम नासा पुटे गता
इडा पिंगलयोमध्ये सुषुम्णाय भवेतखलु
षटस्थानेषु च षट शक्ति षट पदम योगिनो विदु"[2]

गोरखनाथ ने भी इडा, पिंगला और सुषुम्ना का वर्णन किया है—

अवधू इडा मारग चन्द्र भणीजे, प्यगुला मारग भांन
सुषम्ना मारग बांणी बोलिये त्रिय मूल अस्थान"[3]

गोरखनाथ ने इडा नाडी को चन्द्र, पिंगला को भानु और सुषुम्ना को अग्नि कहा है। ये तीनों ही मूलस्थान (ब्रह्मरंध्र) तक पहुँचाते हैं। अतएव शैव साहित्य तथा गोरखनाथ और संत साहित्य की तुलना करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि संत साहित्य में वर्णित योग तत्व शैव योग दर्शन के प्रभाव का परिणाम है। योग साधना में चक्रों का वर्णन शैवों के अतिरिक्त सहजयानियों और सिद्धों के साहित्य में भी मिलता है।

सहजयानियों ने शरीर में केवल तीन चक्र माने हैं। नाभि कमल पहला चक्र है उसे निर्माण काय का प्रतिरूप माना है। दूसरा चक्र हृदय में माना है इसे धर्मकाय का वाचक कहा है। तीसरा चक्र कण्ठ के समीप माना है जो सहजकाय का द्योतक कहा गया है।[4] इन तीनों के ऊपर उष्णीश कमल माना गया है। इसे महासुख कमल भी कहा गया है।[5]

चक्र वर्णन

सिद्धों ने चार चक्र माने हैं जिनकी स्थिति मेरुदण्ड में है। ये क्रमश नाभिकमल हृत्कमल सम्भोग चक्र तथा महासुख चक्र हैं। उन्होंने मेरुदण्ड को सुमेरु पर्वत के रूप में परिकल्पित करते हुए उसके शिखर पर महासुख चक्र या उष्णीश कमल में 'नैरात्मा' का वास माना है। इसके मूल में नाभि चक्र है

---

१ बानी-(धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी) पृ० ३६, ४०।
२ शिव संहिता-पृ० ४२।
३ गोरखबानी पृ० ३३।
४ डा० एस बी गुप्ता-आब्सक्योर रिलीजस कल्ट्स, पृ० १०६।
५ विंटरनिट्ज—इण्डियन लिटरेचर-भाग २ पृ० ३८८।

जिसमे बोधिचित्त शुक्र रूप मे वास करता है। इसके बीच मे दो चक्र और हृदयप्रदेश तथा कण्ठ के समीप हैं। इन चारो चक्रो मे बुद्ध की चार कायाओ का वास माना गया है। इन चक्रो मे क्रमश चौसठ बत्तीस, सोलह व छ पखुरी[1] मानी गयी हैं।

शैवो ने छ चक्र माने हैं[2]—मूलाधार स्वाधिष्ठान मणि पूरक अनाहत विशुद्ध, आज्ञा चक्र। इनके अतिरिक्त सहस्रार कमल के अस्तित्व को भी स्वीकार किया है।

सत कवियो ने सहजयानियो की तरह न तो शरीर मे तीन चक्र माने है और न सिद्धो की तरह चार चक्र। उन्होने शैवो के अनुसार षट्चक्र और सहस्रदल कमल की स्थिति शरीर मे मानी है। अत सत कवियो पर शैवो का प्रभाव परिलक्षित होता है।

सत कबीर ने षट्चक्र भेदने की बात कही है।

"षटचक्र केवल बेधा, जारि उजारा कीन्हा।"[3]

इन चक्रो का भेदन पवन को उलटने पर एव सुषुम्ना मे वायु के प्रविष्ट होने पर होता है—

उलटे पवन चक्र षटबेधा, मेर डडसर पूर'[4]

सत दरिया विभिन्न चक्रो का वर्णन करते हुए कहते हैं—

'त्रिवेनी त्रिकुटी भवर गोंफा मे द्वादस उलटि चलावता
छव चक्र भेद प्रगट है सुखमनि सुरति जगावता।
अष्टदल कवल भवर तेहि भीतर अनमुनि प्रेम लगावता"[5]

प्रथमचक्र मूलाधार चक्र के महत्त्व की ओर सकेत करते हुए उन्होने कहा है—

'छव चक्र खोजि करो निवास
मूल चक्र मह जिव को वास"[6]

---

१ दास गुप्ता—इन्ट्रोडक्शन टू तान्त्रिक बुद्धिज्म, पृ० १६३।
२ देखिए—इसी अभिलेख का द्वितीय अध्याय।
३ कबीर ग्रन्थावली, पृ० १५६।
४ वही, पृ० ६०।
५ दरिया-सागर (सत दरिया एक अनुशीलन—धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी), पृ० १०८।
६ वही, पृ० १०६।

संत दरिया साहब ने यह बात नई नहीं कही है। उनसे पहले संत कबीर ने मूलाधार का वर्णन किया है—

"अरध उरध गंगा जमुना मूल कवल को घाट।"[1]

संत मिनकराम भी कहते हैं कि मूल चक्र की शुद्धि करो—

मूल चक्र विमल होय सोधो
त्रिकुटी के श्वासा धरल।"[2]

संत रामस्वरूप राम लिखते हैं कि जीवात्मा का मूल निवास मूलचक्र पर है—

'मूल चक्र पर तुम्हारो वासा, चार दल तहां कमल प्रकासा।
खटदल मे ब्रह्म रहे समाई, जहा कमलनाल सोहाई
अष्टदल कमल विष्णु के बासा, ताहा सोहंग करे निवासा
द्वादस खोडस सुरति समाव शिव शक्ति के दर्शन पावे"[3]

संत काव्य में षटचक्र वर्णन नाथों की परम्परा का विकसित रूप है। संतों ने चक्र वर्णन में गोरखनाथ का अनुकरण किया प्रतीत होता है। गोरखबानी में कहा गया है कि संन्यासी वही है जो प्राण वायु को उलट कर छहों चक्रों का वेध लेता है और चन्द्रमा व सूर्य को सुषुम्ना में निमज्जित कर देता है।[4]

संतों ने दूसरे चक्र स्वाधिष्ठान के छः दल बतलाये हैं। कबीर ने परमेश्वर को षटदल निवासी कहा है 'षटदल कवल निवासिया।' तीसरा चक्र मणिपूरक माना गया है। चौथा चक्र अनाहत चक्र है जिसको हृदय चक्र भी कहा गया है। इसके विषय में कबीर ने कहा है—

'अष्ट कवल दल भीतरा, तहां श्री रंग केलि कराई रे।'[5]

पलटू साहब कहते हैं—

'अष्ट दल कवल फूले, ध्यान केमठ लगायन।'[6]

---

१ कबीर ग्रंथावली पृ० ८४।

२ भिनकराम-पद १७।

३ उलटिया पवन षटचक्र बेधिया, ताते लोहे सोषिया पांणी
चंद सूर दोऊ निज घरि राख्या ऐसा अलख बिनांणी॥
—गोरखबानी, पृ० ३६।

४ कबीर ग्रंथावली, पृ० ८८।

५ कबीर ग्रंथावली पृ० ८८।

६ पलटू साहब की बानी, पृ० ४४।

दरिया साहब भी इस चक्र के महत्त्व को स्वीकार करते हैं—

"अष्ट दल क्वल झरोखा[1] तहवा विमल रस योगी"

यारी साहब इस चक्र का वर्णन करते हुए कहते हैं—

'अष्ट दल के कमल भीतर, बोलता हुआ एक सुआ"[2]

पाचवा विशुद्ध चक्र है। सत कबीर इसके सोलह दलो की ओर सकेत करत हुए कहते हैं—

षोडस कवल जब चतिया, तब मिलि है श्री बनवारि रे।"[3]

सत काव्य मे आज्ञा चक्र का छठा स्थान है। इस चक्र का ध्यान और समाधि से अत्यधिक सम्बन्ध है। यही प्रणव' का निवास स्थान माना जाता है।[4] इस ही वाराणसी माना गया है। इसमे स्नान का[5] विशेष महत्त्व है जिसका वर्णन आध्यात्मिक भूमिका मे किया गया है। सहस्रार चक्र को अधोमुखी कहा गया है।[6] यही पर कैलास माना गया है इसी म शिव विराज्मान हैं।[7] इस चक्र को 'शून्य एव ब्रह्मरन्ध्र' भी कहा गया है।[8] साधक साधना का चरमावस्था पर पहुच कर इस चक्र क आनन्द का प्राप्त करता है।

सूफिया क नक्शबन्दी[9] सम्प्रदाय के शेख अहमद न मनुष्य के शरीर म छ अवस्थान बतलाये हैं—नफ्स कल्ब रूह सिर खफी और अख्फा। नफ्स नाभि क नीचे कल्ब छाती की बायी ओर, रूह छाती मे बायी ओर सिर छाती के बीचाबीच खफी ललाट म और अख्फा मस्तिक म माने गए हैं। नाथो का षट्चक्र परम्परा स इनकी तुलना करने पर प्रतीत होता है कि नाथो का मूलाधार चक्र मेरु के मूल मे स्थित माना गया है जब कि सूफिया के प्रथम चक्र की स्थिति नाभि क पास मानी गयी है जहा नाथो का तीसरा चक्र मणिपुर

---

१ दरिया साहब के चुने हुए पद पृ० ३२।
२ यारी साहब की रत्नावली पृ० ३।
३ कबीर ग्रन्थावली, पृ० ८८।
४ देखिए—इसी अभिलेख का दूसरा अध्याय।
५ कबीर ग्रन्थावली पृ० ८८।
६ शिव सहिता—५।१६० १८०।
७ देखिए—इसी अभिलेख का द्वितीय अध्याय।
८ वही पृ० १०८।
९ मध्यकोर भारती—सिद्ध साहित्य—पृ० ३६६।

माना गया है। नाथ परम्परा में हृदय के समीप केवल एक 'अनहद' चक्र है जब कि सूफी परम्परा में तीन (कल्ब, रूह, सिर) चक्रों की स्थिति हृदय में ही मानी गयी है। जायसी ने चार चक्रों का उल्लेख किया है—

"चारिहु चक्र फिरे मन खोजत, दंड न रहे न थिर मार"[1]

ऐसा प्रतीत होता है कि कल्ब, रूह और सिर को एक ही चक्र के तीन दल मान कर जायसी ने स्तर की दृष्टि से चार ही खण्ड माने हैं—नाभि में नफ्स, हृदय में कल्ब, रूह, सिर तथा ललाट में सफी और मस्तिष्क में अल्फा। अतएव यह अनुमान किया जा सकता है कि सूफी नाथों की चक्र योजना से परिचित रहे होंगे।

इस विवेचन के आधार पर यह अनुमान कर लेना कि संत और सूफी काव्य पर शैव योग परम्परा का प्रभाव चला आया है अनुचित न होगा। प्रभाव की परम्परा नाथों से संतों और सूफियों को मिली है। यह अनुमान भी असिद्ध नहीं है। कुछ नाम बदले हुए हैं, कुछ विस्तार भिन्न है किन्तु तात्विक भूमिका में कोई अंतर नहीं हैं।

प्रत्याहार

इन्द्रियों को चित्त के आधीन करना प्रत्याहार है। गोरक्षपद्धति में इन्द्रियों को विषय से अलग करना प्रत्याहार कहा गया है।[2] वैष्णव सम्प्रदाय में इन्द्रियों का विषय से विमुख करना प्रत्याहार माना गया है। सिद्धों में बाह्य रूपादि में अप्रवृति तथा बुद्ध बिम्ब दर्शन को प्रत्याहार कहा गया है।[3]

शिव संहिता[4] तथा हठयोग प्रदीपिका[5] में प्रत्याहार के साधना का वर्णन है। ये साधन पद्मासन में बैठकर कुम्भक के द्वारा श्वासोच्छ्वास की गति अवरुद्ध करना, सिद्धासन में बैठकर त्रिकुटी अथवा नासिकाग्र पर विमल स्पन्दित दृष्टि स्थित करना, मूर्छा प्राणायाम का अभ्यास, प्रणव जप एवं विपरीत करणी मुद्रा के अभ्यास से मनोवृत्ति को श्वासोच्छ्वास के लयोद्भव स्थान में स्थिर करना है। पातंजल योगसूत्र में इन साधना का उल्लेख हुआ है।[6]

---

१ जायसी ग्रन्थावली—पद्मावत (सं० २०१७), पृ० ७२।
२ देखिए—इसी अभिलेख का द्वितीय अध्याय।
३ डा० धर्मवीर भारती-सिद्ध साहित्य पृ० २१०।
४ शिव संहिता ३।१७-२०।
५ हठयोग प्रदीपिका—३।७६।
६ पातंजल योगदर्शन।

वष्णव सम्प्रदाय मे योग भक्ति का साधन है अत वहा भी इनका प्रभाव है। सिद्धो म एसा विस्तृत विवेचन नही हुआ है। इन साधना का सम्बन्ध विशेषत शवा से रहा है।

सता ने शवो के प्रत्याहार के प्राय सभी साधना को अपनाया है। स त सुन्दरदास ने प्रत्याहार के अ तगत इन्द्रिया के निग्रह पर विशेष बल दिया है। उनका कहना है कि जिस प्रकार कछुवा अपने हाथ पर और सिर अन्दर कर लेता है उसी प्रकार साधक को अपनी इन्द्रिया को अ तमुखी कर लेना चाहिये—

"श्रवण श द को गहत हैं नयन ग्रह हैं रूप
गध ग्रहत हैं नासिका रसना रस की चूप
* * *
कूम अग्रहि ग्रहै प्रभा रवि कषय द्रवण"
इम करि प्रत्याहार विषय शब्दादिक श्रवण"[1]

पद्मासन मे बठकर कुम्भक के द्वारा श्वासोच्छवास की गति अवरुद्ध करने का आदेश सत कवियो ने दिया है। पलटू साहब के अनुसार योगी का कतव्य है कि वह सदाचार पूवक साधु जीवन व्यतीत करते हुए, आठो पहर पद्मासन मे बठा रहे तथा दसा द्वार ब द कर श्वासोच्छवास की गति रोके।[2] सत चरनदास न सिद्धासन मे बठ कर त्रिकुटी पर ध्यान लगाने का आदेश दिया है।[3] दया बाई ने नासा आगे दृष्टी धरि श्वासा मे मन राखि"[4] द्वारा प्रत्याहार की ओर सकेत किया है।

प्रत्याहार का प्रणव जाप भी एक साधन है। प्रणव जप को सोऽहं जप भी कहा गया है। सोऽहं श द कुण्डलिनी की साम्यावस्था है जिसकी

---

१ डा० दीक्षित—सुन्दर दशन पृ० ४६।
२ पलटू साहब की बानी भाग ३ पृ० ५१।
३ चरनदास की बानी भाग २, पृ० ६।
तुलना कीजिए—
ऊ आसण करि पदम आसण बधि पिछले आसण पवना सधि।
मन मुखावें लावे तालो गगन सिखर मे होइ उजालो
प्रथमि बसि बाई दर बधि, पवना चले चौसठ सधि
नव दरवाजा देवे ताली दसवा मधे होइ उजाली
मन पवन ले उनमनि रहे तो काया जगजे गोरष कहे।
—गोरखबानी, पृ० १७४।
४ दयाबाई की बानी, पृ० १०।

अनुभूति आनापान म होती है। यही अनहद ध्वनि है जो पहले अव्यक्त रूप म आना चक्र म मनोनमूत होती है और अनाहत चक्र म श्रवणेन्द्रिय का ज्ञान होती है। योग की प्रक्रिया म 'सोऽहं' का जप आवश्यक है। मन की एकाग्रता और प्राणायाम की साधना अजपाजप' की प्रथम सीढ़ी है। जीव के श्वास' प्रश्वास के साथ यह जाप चलता रहता है। नाथ सम्प्रदाय म 'सोऽहं मत्र का प्रधानता रही है।[१]

या तो सिद्धो की पद्धति म श्वास का निरोध कर चण्डाग्नि प्रज्वलित की जाती है एव बीजाक्षर को ध्यान म लाकर इस प्रकार साधना की जाती है जिससे यह शब्द प्रत्येक श्वास प्रश्वास से स्वत निकलने लग जाय।

सत कवियो ने सिद्धो के एव' शब्द को न अपनाकर नाथो के सोऽहं' शब्द को अपनाया है। नाम स्मरण अथवा 'अजपाजप की यह क्रिया परम्परा के रूप म सन्तो को नाथो से प्राप्त हुई। सतो पर नाथ सम्प्रदाय का अपरिलक्षित प्रभाव कहा जा सकता है। कबीर कहते हैं कि मन के अतमु ख होने पर अजपाजाप म मस्त होन पर, मुख से बोलने का अवकाश नही रहता। आयनात्मक मनोवृत्ति की चरम सीमा पर पहुँच कर ओठो वाला' जप छूट जाता है जीवन का जाप प्रारम्भ होता है—

'बिनहीं मुख के जप करो, नहिं जीभ डुलावा'[३]

एक अन्य स्थल पर कबीर कहते हैं—

'जागन मे सोवन कर, सोवन मे लो लाय,
सुरति डोर लागी रहै तार टूट नहिं जाय"[४]

श्वास प्रश्वास की डोरी पर हस' मत्र का जप चलता रहता है—

"गगन मडल के बीच मे जहां सोहगम डोरि
सबद अनाहद होत है [५]

---

१ हकारेण बहिर्याति सकारेण विशेत्पुन
हमहसेत्यम, मत्र जीवो जपति सवदा।'

२ 'अवरा निरमल वाप न पु नि, सत रज विवरजित मु नि
सोहं ऽना सुमिरे सबद निहि मरमारथ अनत सिव'।
—गोरखबानी पृ० १७

३ सतबानी सग्रह, भाग १ (कबीर साहब), पृ० २।

४ सतबानी सग्रह भाग १ पृ० ६०।

५ वही, पृ० ७।

संत मलूकदास ने भी ऐसे जप को महत्त्व दिया है।

'सुमिरन ऐसा कीजिये दूजा लखे न कोय
ओठ न फरकत देखिए प्रेम राखिए गोए
माला जपों न कर जपों, जिम्या कहों न राम
सुमिरन मेरा हरि करै मैं पाया विसराम"[1]

संत जगजीवन साहब कहते हैं कि 'अजपा' के लिए साधक को मैं, तैं नष्ट कर चित्त मे सुरति की माला द्वारा निरन्तर जप मे लीन रहना पडता है—

"भारि मे तैं लाय डोरि, पवन थाम्हे रहै
चित्त कर तहै सुमति साधु सुरति माला गहै[2]

दरिया साहब (बिहार वाले) 'सुमिरन' माला का वर्णन करते हुए कहते हैं—

"सुमिरन" माला भेष नहिं नहिं मसी को अंक
सत सुकृत दृढ लाइ कै तब तोरे गढ़ बंक।[3]

संत चरनदास कहते हैं कि सोऽहं की माला द्वारा ही आत्मा का दर्पण उज्ज्वल हो सकता है। माला का जप मन ही मन आवश्यक है—

"नाम उठाकर नाभि सूं गगन माहि ले जाय
मन ही मन में जाप करि दरपन उज्जवल होय'[4]

सहजोबाई अजपाजप का वर्णन करती हुई कहती हैं—

'हंकारे अडि नाम सू, सकारे होय लीन
सहजो अजपाजप यह चरनदास कहि दीन
सब घट अजपाजप है हंसा सोहं पुरुष
सुरत हिय ठहराय के सहजो या विधि निरख'[5]

'रोम रोम परकास है, देही अजपाजाप'[6] कह कर संत गरीबदास अजपाजप के महत्त्व को बतलाते हैं। साधक 'अजपा' मे अपने को लीन कर लेना है। भीखा साहब ने कहा है—

---

१ वही पृ० १००।
२ वही, भाग २, पृ० १४४।
३ संतबानी संग्रह भाग १, पृ० १२२।
४ चरनदास की बानी भाग १, पृ० ३२।
५ संतबानी संग्रह भाग १, पृ० १६२।
६ वही पृ० १८१।

'अजपाजाप अकथ को कथनो अलख लखन किनपाए"[१]

संत किनाराम अजपाजप के लिए कहते हैं—

सो शिव तोहिं कहत हो अबहीं सोहम मंत्र न संशय कबहीं
सहज मुखाकार मंत्र कहावे, जाहि जपे तें बहुरि न आवे
सहज प्रकास निरास अमानी, रहनि कहो यह अजपाजानि
जहां तहां यह मंत्र विचारे काम क्रोध की गरदन मारे"[२]

संत अलखानन्द ने सोऽहं की विधि का विश्लेषण करते हुए कहा है कि अन्दर जाने वाला श्वास सो सो की ध्वनि करता हुआ त्रिकुटी की ओर जाता है और हं हं करता हुआ बाहर निकलता है। 'सो शक्ति का प्रतीक है और हं महान्ध का और सोऽहं शब्द शिव शक्ति के संयोग का प्रतीक है।[3] अजपाजप के लिए स्थिरता पूर्वक ध्यान लगाना और आत्म तत्त्व तथा परमात्म तत्त्व में[४] अभेद स्थापित करना आवश्यक है 'अजपाजप एक साधना है। संत कवियों ने इसे नाथों से लिया प्रतीत होता है। गोरक्षपद्धति[५] में अजपाजप' का उल्लेख है। जपों में इसके समान दूसरा जप नहीं है।

प्रत्याहार का प्रणव जाप के अतिरिक्त एक और साधन विपरीतकरणी मुद्रा है जिसके अभ्यास में मनोवृत्ति को श्वासोच्छ्वास के लयोद्भव स्थान में स्थिर करना है। इस मुद्रा के द्वारा योगी शरीरस्थ सूर्य को ऊपर कर देते हैं और चन्द्र को नीचे कर देते हैं[६] जिससे सूर्य चन्द्र से झरने वाले अमृत को सुधा

---

१ वही, भाग २ पृ० २०८।

२ किनाराम—विवेकसार पृ० २४-२५।

३ स्वासे स्वासे सो सो करता त्रिकुटी को धावता
हं हं करते स्वासे स्वासे बाहरि को आवता
सो सो सो सो शक्ति मानो हं हं महान्ध्यता
शक्ति शिव सबको घट में बाहरि क्यों धावता।
अलखानन्द—निपक्ष वेदान्त राम सागर पृ० ३१।

४ बेदी पे दृढ़ गहि करे, जप सो अजपाजाप
आपु विचारे आपु में आपु आपु मह होइ
आपु निरन्तर रमि रहैं यह पद पावै सोइ
किनाराम-विवेकसार-पृ० २३।

५ गोरक्षपद्धति, पृ० २२-२३।

६ ऊर्ध्वनाभेरधस्तालोरूर्ध्वभानुरधः शशी
करणी विपरीताख्या गुरुवाक्येन लभ्यते। —हठयोगप्रदीपिका ३।७६।

नही पाता।[1] मूलाधार चक्र से उर्ध्वोमुख कुण्डलिनी इस महारस का पान करने म समथ होती है। कबीर का कथन है—

उलटि गग समुद्रहि सोखे, ससिहर सूर गरासे
धरती उलटि अकासहि ग्रास यहु पुरिसा की बाणी'[2]

सत यारीसाहब ने लिखा है—

'ऐन इनायत हरि की पद चन्द उतार सूरज चढ़।"[3]

सत कवियो ने विपरीतकरणी मुद्रा का वणन करते हुए सहस्रार को श्वासोच्छवास का लयोद्भव स्थान माना है।[4] इस सहस्रार मे ही मनोवृत्ति को स्थिर करना पडता है। सतो ने सुरति को मनोवृत्ति रूप में चित्रित कर उसे सहस्रार मे लीन करने की अभिलाषा व्यक्त की है। उस दशा मे सुरति योग को प्रत्याहार का साधन मानना अधिक उपयुक्त होगा।

सुरति योग म अजपा का भी महत्त्वपूर्ण योग है। अजपा की ध्यानमयी स्थिति सुरति-दशा म रहती है किन्तु जब निरति दशा म ध्यान भी विलीन हो जाता है तो साधक निरालम्ब दशा निमग्न हो जाता है। अजपा की ध्यान स्थिति भी सुरति के समान निरालब या शून्य दशा म विलीन होती है।[5]

सन्तो के शब्द-सुरति योग को समभने के लिए औपनिषदिक एव नाथ परम्पराओ को ध्यान म रखना पडेगा। कठोपनिषद्[6] मे कहा गया है कि जीव बाह्य विषयो को देखता है अन्तरात्मा को नही। बहिमुखी वृत्तियो को अन्तमुखी कर लेने पर ही आत्मा के दशन होते हैं। नाथ पथ म भी सुरति को बहुत महत्त्व मिला है। सुरति को चित्तवृत्ति अथवा मन की वृत्ति माना है।[7] अत यह कहा जा सकता है कि सन्तो ने सुरति शब्द का प्रयोग प्राय

---

१ शिव सहिता, २।१७।२०।
२ कबीर ग्रथावली, पृ० १२३।
३ यारी साहब की बानी पृ० ११।
४ डा० त्रिगुणायत हिन्दी की निगुण काव्यधारा और उसकी दार्शनिक पृष्ठभूमि पृ० ४६०।
५ डा० सरनामसिंह शर्मा कबीर एक विवेचन पृ० ५४६।
६ कठोपनिषद, १।१।१।
७ अवधू सुरति मुषि बठो सुरति मुषि चल।
सुरति मुषि बोले सुरति मषि मिल।। —गोरखबानी—पृ० १६६

परपरागत प्रथा मे ही किया है। वे इसको प्रत्याहार का साधन भी मानते रहे होगें। कबीर कहते हैं—

'जाप मर अजपा मर अनहद भी मरि जाय
सुरत समानी सबद मे, ताहि काल नहिं खाय[1]'

सत दादू कहते हैं—

'सुरति अपूठी फरि करि आतम माहैं आणि।[2]"

सत गरीबदास ने सुरति का वर्णन करते हुए कहा है—

'सुरत लगे अरु मन लगे लगे निरत धुन ध्यान
चार जुगन की बदगी एक हलक परमान[3]"

सत तुलसी साहब कहते हैं कि सुरति की शरण म रहकर जीव सभी उपाधिया स निवृत होता है।[4] एक अन्य स्थल पर उन्होंने कहा है—

'सुरत डोर सतगुरु गहे रहे चरन के माहि
सन्त सुरत मिल सबदहो डोरिहि डोरि समाय"[5]

इस युग क सूफी काव्य म योग साधना की ओर सकेत तो अवश्य रहा है किन्तु ये योग तत्वा के विस्तार म नही गए प्रतीत होते हैं। इनक काव्य म अनहद नाद श्रवण का उल्लेख तो हुआ है परन्तु प्रत्याहार क विभिन्न साधना क विश्लेषण का अभाव है।

भारतीय योग दर्शन की एक परम्परा रही है शैव, शाक्त वैष्णव और सिद्ध सम्प्रदाय सभी ने योग को न्यूनाधिक रूप म अपनाया है। शैवो म योग क तत्त्वो का विश्लेषण और विस्तार अधिक एव गहराई क साथ हुआ है। सतो ने योग की कायिक भूमिका का विश्लेषण कर यम नियम आसन प्राणायाम और प्रत्याहार आदि तत्वो क विस्तार म शैव योग परम्परा को अपनाया है।

मानसिक भूमिका—योग की कायिक भूमिका पर साधक चित्तवृत्ति का का निरोध शारीरिक दृढता और चित्त की निर्मलता प्राप्त करता है। मानसिक भूमिका म साधक चित्त की शुद्धता धारणा और ध्यान द्वारा समाधि प्राप्त करता है।

---

१ सतबानी सग्रह भाग १ पृ० ७
२ वही, पृ० ८२।
३ सतबानी सग्रह भाग १ पृ० १८७।
४ सतबानी सग्रह भाग १ पृ० ~ ७।
५ सतबानी सग्रह पृ० २३२।

सभी सम्प्रदायो म चित्त की शुद्धता, धारणा और ध्यान का महत्त्व रहा है। सगुण भक्ति धारा मे चित्त की निर्मलता तो भक्ति के लिए अनिवाय मानी गयी है तथापि इसकी प्राप्ति के लिए योग साधना का सगुण भक्ति धारा म अभाव रहा है। सिद्धो म भी चित्तशुद्धि के लिए 'प्रज्ञोपाय' की धारणा और ध्यान को महत्त्व मिला है।[1] शवों ने चित्त की निर्मलता के लिए शून्य म ध्यान, धारणा पर बल दिया है। सत कवियो ने शवो के 'शून्य म ध्यान धारणा को अपनाया है। सम्भवत उन पर शवो का भी प्रभाव रहा। चित्त को लक्ष्य कर सत किनाराम कहते हैं कि—

चित्त—चचल मन का प्रभुत्व सभी म व्याप्त है,[2] इसका नियन्त्रण कर लोक कल्याण करने से ही मोक्ष मिलता है।[3] मन के वश मे होकर जीव लोभ के समुद्र मे डूबते उतराते रहते हैं। रातदिन विकल होकर हाय हाय करते हैं—

'चिन्ता के समुद्र साचि ग्रहमित तरगतोम
होत हो मगन यासों कहत हों जनाय के
रामकिना दीन दिल बालक तिहारो ग्रहे
एसे ही बितेहों कि चिते हो चित लाय के'[4]

सत ग्रानन्द कहते हैं कि काम क्रोध और लोभ फकीरो की गिजा है यह विषय वासना मे लिप्त मनुष्य के लिए विष है।[5] विषय वासनाओ मे रहित चित्त एक रूप हो जाता है। दादू चित्त की एकाग्रता से प्राप्त ग्रानन्द का वणन करते हैं—

'सहज रूप मन का भया, जब द्व द्व मिटी तरग
ताता सीला सम भया तब दादू एक ग्र ग'[6]

---

१ धमवीर भारती, सिद्ध साहित्य, पृ० २०७।
२ मन चचल गुरु कहो दिखाई
जाको सकल लोक प्रभुताई। —किनाराम, विवेकसार पृ० १३।
३ मन के हाथ सकल अधिकारा
जो हित कर तो पावे पारा। —वही, पृ० ११।
४ किनाराम, गीतावाली, पृ० १६।
५ काम और क्रोध लोभ रोजा है फकीरों का
शाहों से जहर यह कभी खाया न जायगा"
तरयलाते ग्रानन्द—पृ० २२।
६ सतवानी सग्रह भाग १, पृ० ८६।

इन्द्रियो और उनके राजा मन को वश मे करना अनिवार्य है। मन का निरोध ही मनोजय है मन को जीत कर योगी धारणा और ध्यान के सहारे उस महत्सार म स्थित करता है।

चित्त को एक देश विशेष म स्थिर करना धारणा है और धारणा की भूमि पर चित्तवृत्ति का अखण्ड प्रवाह ध्यान है।[1] भागवत

धारणा व ध्यान

मे प्रत्यय की एकतानता को ध्यान कहा है। धारणा और ध्यान के लिए भागवत म कहा गया है कि हृदय म भगवान् के स्वरूप को धारणा कर, भगवान् के प्रत्यक्ष अग का ध्यान करना चाहिये[2]। ध्यान तीन प्रकार का माना गया है—स्थूल ध्यान, ज्योतिरध्यान सूक्ष्मध्यान।[3] शवयोग साधना म अन्तिम दो ही मान्य हैं। सत कवियो न ज्योतिरध्यान और सूक्ष्मध्यान को अपनाया है स्थूल ध्यान को नही। रूपातीत ध्यान का वणन करते हुए सुन्दरदास कहते है—

> यह रूपातीत जु शून्य ध्यान, कुछु रूप न रेख न है निदान
> तहां अष्ट प्रहर लौं चित्त लीन पुनि सावधान ह्व अतिप्रवीन
> इहि शून्य सम और नाहि उत्कृष्ट ध्यान सबध्यान मांही।[4]

ज्योतिरध्यान की ओर सकेत करते हुए दयाबाई ने कहा है—

> 'दया ध्यान त्रिपुटी धर परमातम दरशाय'[5]

यारी साहब ने— 'त्रिपुटी सगम ज्योति है रे तह देखि लेव गुरु ग्यान सेती[6]' तथा बुल्ला साहब ने—'झिलमिल झिलमिल त्रिपुटी ध्यान'[7] कह कर ज्योतिरध्यान की ओर ही सकेत किया है।

शून्य नाद—सतो की बानियो म सूक्ष्म ध्यान का वणन नाद और शून्य नाम से मिलता है। सत यारी साहब कहत हैं—

> 'नाद बरन जो लावे ध्यान सो जोगी जुग जुग परमान'[8]

---

१ देखिए—इसी अभिलेख का द्वितीय अध्याय।
२ भागवत ३।२८।११।
३ देखिए—इसी अभिलेख का द्वितीय अध्याय।
४ डा० दीक्षित सुन्दर दशन पृ० ४६।
५ दयाबाई की बानी पृ० १०।
६ यारी साहब की बानी पृ० २०।
७ बुल्ला साहब की रत्नावली पृ० २८।
८ यारी साहब की रत्नावली, पृ० ६।

'शून्य ध्यान का वर्णन प्रायः सभी सन्तों ने किया है। कबीर भी 'शून्य' में ध्यान लगाते हैं—

गंग जमुन उर उतरे, सहज सुंनि ल्यो घाट
तहाँ कबीरे मठ रच्या, मुनि जन जोवे बाट।[1]

संत रैदास कहते हैं—

सुन्न महल मे मेरा वासा, ताते जीव में रहो उदासा।[2]

संत हरिदास निरंजनी ने भी शून्य में ध्यान लगाने का उल्लेख किया है—

सुंनि मंडल मे देसि साच सू सुरति लगावे।[3]

यारी साहब ने लिखा है—

सुन्न तें नित तारी लावो, सूझि है निर्गुण।[4]

संत काव्य में 'नाद' और 'शून्य' में ध्यान की एकाग्रता का वर्णन है। नाथों ने भी 'नाद' और 'शून्य'[5] में ध्यान केन्द्रित करना अपना लक्ष्य माना है। अतः संत काव्य पर नाथों के प्रभाव के आभास का अनुमान लगाया जा सकता है।

ध्यान के बाद समाधि का स्थान है। यही योग मार्ग की अंतिम सीमा है। यह ज्ञाता और ज्ञेय तथा ध्याता और ध्येय की एकात्मकता है।[6] संतों ने समाधि को आत्मा की सहजावस्था कहा है। 'सहज' शब्द का प्रयोग समाधि के विशेषण के रूप में किया है। यह परम्परा नाथ योगियों से संतों में ज्यों की त्यों चली आई है।[7]

कबीर के मत में यह वह स्थिति है जिसमें भक्त को सहज ही भगवान[8] मिल जाते हैं। इस अवस्था में मनोवृत्तियां, जो बंधन का कारण है

१ कबीर ग्रन्थावली, पृ० १८।
२ परशुराम चतुर्वेदी, संतकाव्य पृ० २१६।
३ वही, पृ० ३२७।
४ यारी की रत्नावली, पृ० ६।
५ सहज सुंनि मन तन थिर रहै"—गोरखबानी पृ० १६८।
६ देखिए इसी अभिलेख का द्वितीय अध्याय।
७ हजारी प्रसाद द्विवेदी कबीर, पृ० ७२।
८ कबीर ग्रन्थावली, पृ० ४२।
"जिन सहजें हरिजी मिले सहज कहीजे सोई"

नष्ट हो जाती हैं और समरसता आ जाती है। उस समय न कोई मित्र रहता है और न शत्रु। विषयों से इन्द्रिय सम्पर्क होने पर भी मन में कोई विकार नहीं हो पाता।[1] काम क्रोध लोभ मोहादि स्वतः नष्ट हो जाते हैं। साधक और साध्य एक हो जाते हैं।[2] समाधिस्थ योगी अनुर आनन्द का अनुभव करता है—

आत्मा अनन्दी जोगी पीवै महारस अमृत भोगी
ब्रह्म अगिनी काया परजारी
त्रिकूट कोट मे आसण मांड सहज समाधि विष सब छाड़ि"[3]

दादू के मत से यह अवस्था उस समय प्राप्त होती है जब प्राण और मन एक दूसरे में विलीन हो जाते हैं।

सहज रूप मन का भया, जब द्वै द्वै मिटी तरंग
ताता सीला सम भया तब दादू एकै अंग'[4]

नानक इसे वह अवस्था मानते हैं जब दशम द्वार खुल जाता है और शशिगृह (ब्रह्मरन्ध्र) में निवास हो जाता है।[5] संत रज्जब इस अवस्था का वर्णन करते हुए कहते हैं—

'संता मगन भया मन मेरा
अहनिशि सदा एक रस लागा दिया दरीबे डेरा
जाति पांति समझै नाहीं किसकूं करें परेरा
रस की प्यास आस नहीं औरां इति मन किया बसेरा[6]

यारी साहब इसे मन की निर्मल अवस्था कहते हैं—

रिमझिम रिमझिम बरसै मोती भयो प्रकाश निरंतर जोति
निरमल निरमल निरमल नामा, कह यारी तह लियो विश्रामा'[7]

---

१ कबीर ग्रंथावली पृ० ४२।
पाचूं रानै परसतो, सहज कहीं जे सोई'
२ कबीर ग्रंथावली, पृ० ४२।
'एकमेक ह्वै मिलि रह्या दास कबीरा राम
३ वही पृ० १५८।
४ संतबानी संग्रह भाग १, पृ० ८६।
५ प्राण संगली-पृ० ६५।
६ परशुराम चतुर्वेदी संतकाव्य संग्रह पृ० ३७३।
७ भीखा साहब की बानी, पृ० ६६।

मीवा साहव इसे आत्मा की वह अवस्था मानते हैं जिसम परमात्मा और आत्मा का मिलन छिपा नही रहता—

नैन सेज निज पिय पोढाई सो सुख भीजे दिलहि जनाई
बोलता ब्रह्म आतमा एक भाव मिलन को सके दुराई"[1]

सहजोबाई कहती हैं—

"सहजो सावन के मिले मन भयो हरि के रूप
चाह गयी चिरता गई, रक लख्यो सोइ भूप' [2]

समाधि के दा भेद माने गए हैं—सविकल्प[3] और निर्विकल्प[4]। सतो ने निर्विकल्प समाधि का ही वरान किया है जो सकल्प विकल्प रहित पूण आत्मज्ञान की अवस्था है। जिसे पूण ब्रह्मानन्द की अवस्था भी कहा गया है। सतो न नई बात नही कही है अपितु गोरखनाथ[5] के शब्दा मे ही अपने भावो का अभिव्यक्त किया प्रतीत होता है। अत सत कवि समाधि के वरान म नाथ परम्परा से दूर नही गए दीख पडते।

योग की आध्यात्मिक भूमिका को आनन्द दशा भी कहा जा सकता है।

आध्यात्मिक भूमिका

शवो के अनुसार इस भूमिका पर साधक त्रिवेणी और 'वाराणसी म स्नान करता है। अनहद नाद श्रवण कर सहस्र दल कमल म शिव के सान्निध्य स आनन्द प्राप्त करता है और अमृत[6] का पान करता है। सत एव सूफी कवियो ने इसी परम्परा को अपनाया है सिद्धो की परम्परा उन्ह अमान्य रही है। यद्यपि सिद्धो ने भी सहस्रार कमल के समान 'महासुख चक्र का स्थान कपाल या मस्तिष्क मे माना है परन्तु सिद्धा न उसमे नरात्मा की स्थिति मानी है जिसे वे 'सहज सुन्दरी'[7] की सज्ञा भी देते हैं जो सन्तो ने स्वीकार नही की है। उन्होने सहस्रदल कमल म शिव का निवास माना है।

---

१ सतबानी सग्रह, भाग १, पृ० १५८।
२ सतबानी सग्रह भाग १, पृ० १५८।
३ देखिए इसी अभिलेख का द्वितीय अध्याय।
४ वही पृ० ११५।
५ घटहि रहिया मन न जाई दूर अहनिसि पीवे जोगी वारुणि सूर।
स्वाद विस्वाद बाइका लधीन तब जाणिबा जोगी घट का लधीण।
—गोरखबानी, पृ० २३।
६ देखिए इसी अभिलेख का द्वितीय अध्याय।
७ प्रबोधचन्द्र बागची, दोहाकोश पृ० ३०।

मूलाधार चक्र से प्रारम्भ होकर 'इडा और 'पिगला' सुषुम्ना के दायें बायें होती हुई 'आज्ञा चक्र में सुषुम्ना' में प्रवेश पाती हैं। इसी त्रिवेणी स्थल को 'त्रिवेणी'[1] नाम से अभिहित किया गया है। आज्ञा चक्र को वाराणसी[2] अथवा काशी तथा त्रिकुटी भी कहा जाता है। मध्यकालीन सत काव्य में त्रिवेणी[3] अथवा वाराणसी[4] के वर्णन में सत कवि शिव सहिता से दूर नहीं गए हैं।

जिस प्रकार धार्मिक लोग त्रिवेणी स्थान का महात्म्य बतलाते हैं उसी प्रकार सत लोग भी शरीरस्थ त्रिवेणी में आध्यात्मिक स्नान करते हैं। कबीर के शब्दों में इस स्नान का माहात्म्य देखिये—

त्रिवेणी मनाह न्हवाए सुरति मिले जो हाथिरे'[5]

सत वेणी कहते हैं—

इडा पिंगला अउर सुषुम्ना तीन बसहि इक ठाई
वेणी सगम तह पिरागु मन मजनु कर तिथाई[6]

सत शिव नारायण का कथन है—

'घट में ही गगा घट ही में जमुना तेहि बिच पपि महैये[7]
सत रामचरन ने भी त्रिवेणी स्नान के महत्त्व को स्वीकार किया है— त्रिकुटी सगम किया स्नान'[8] बुल्ला साहब भी त्रिवेणी के महत्त्व को स्वीकार करते हैं—

तिरवेनी तिरघाट सवारो जगमगि जगमगि मनि उजियारो'[9]

---

१ इडा गगा पुरा प्रोक्ता पिंगला चार्कपुत्रिका
मध्या सरस्वती प्रोक्ता तासां सगोति दुर्लभ
—शिव सहिता ५।१६५।

२ इडा हि पिंगला ख्याता वरणासीति होच्यते
वाराणसी तयोमध्य विश्वनाथो व भाषित । —वही, ५।१२६।

३ त्रिकुटी सधि त्रिवेणी रहता —प्राण सगली, पृ० ११२।

४ 'काया कासी खोज बास" —कबीर ग्रंथावली पृ० २१३।

५ "कबीर ग्रंथावली, पृ० ८८।

६ परशुराम चतुर्वेदी सतकाव्य सग्रह, पृ० १३९।

७ वही, पृ० ४८२।

८ वही, पृ० ५०९।

९ बुल्ला साहब की बानी-पृ० १६।

संत काव्य में त्रिवेणी को 'त्रिकुटी संगम'[1] 'त्रिकुटी संधि'[2] 'तीरथराज'[3] संज्ञाएं भी प्रदान की गयी हैं। दरिया साहब मारवाड वाले कहते हैं—'त्रिकुटी सुखमन चुवत छीर, बिन बादल बरसे मुक्ति नीर।'[4] संत दूलन दास ने कहा है कि त्रिकुटी के स्नान से ही मन का मैल दूर हो सकता है

त्रिकुटी तीर्थ प्रेम जल निर्मल, सुरत नहीं अन्हवायार [5]

बुल्ला साहब का कथन है—'तीर त्रिवेणी हारी खेलो।'[6] संत दरिया 'त्रिकुटी' में अनन्त सुख मान कर वर्णन करते हैं—'त्रिकुटी माहीं सुख घना है नाहीं दुख का लेस।'[7] संत दयाबाई ने कहा है—'दया ध्यान त्रिकुटी धरै, परमातम दरसाय'[8] दरिया साहब (मारवाड वाले) की मान्यता है कि मेरु को पार कर 'त्रिकुटी' में पहुंचने पर दुख की समाप्ति होकर सुख प्राप्त होता है—

'दरिया मेरु उलंघि करि, पहुचा त्रिकुटी संध
दुख भाजा सुख ऊपजा, मिटा भर्म का धुंध'[9]

संत धरनीदास का कहना है-'धरनी ध्यान तहां धरो त्रिकुटी कुटी मंझार।'[10]

कबीर ने त्रिकुटी में ज्योतिस्वरूप परमेश्वर का प्रकाश माना है—

"काया कासी खोजे वास, तहां ज्योति सरूप भयो परकास"[11]

बुल्ला साहब भी यही झिलमिल नूर का आभास पाते हैं—

"हाजिर हजूर त्रिवेनी संगम, झिलमिल नूर जो आप'[12]

संत रामचरन ने भी परमज्योति को यहीं अनुभव किया—

जहां निरंजन तत्त विराजे ज्योतिप्रकाश अतन छवि राज'[13]

---

१ त्रिवेणी संगम घाट—कबीर ग्रन्थावली पृ० ६४।
२ जब लग त्रिकुटी संधि न जानें—वही, पृ० १२७।
३ 'तीरथराज गंग तट वासी', कबीर ग्रन्थावली, पृ० १४५।
४ संतबानी संग्रह भाग २, पृ० १५५।
५ वही, पृ० १६०।
६ वही पृ० १७५।
७ परशुराम चतुर्वेदी, संतकाव्य संग्रह पृ० ४५४।
८ संतबानी संग्रह भाग १, पृ० १६९।
९ वही पृ० १३०।
१० वही, पृ० ११३।
११ कबीर ग्रन्थावली, पृ० २१३।
१२ संतबानी संग्रह भाग २ पृ० १७४।
१३ परशुराम चतुर्वेदी संतकाव्य संग्रह पृ० ५०६।

त्रिवेणी की चर्चा संत साहित्य में नाथों की परम्परा से आई है। गोरखनाथ ने भी त्रिवेणी का वर्णन करते हुए लिखा है कि त्रिवेणी में स्नान कर पाप और पुण्य दोनों दान करो।[1]

अनहद-नाद

कबीर की मान्यता है कि अजपाजप के निरंतर जप के बाद त्रिवेणी संगम पर अनाहद नाद स्वयं सुनाई देने लगता है— 'अनहद उपजै आपहि आप'[2] ऐसा ही वर्णन गोरखनाथ ने किया है।[3] कबीर के अनुसार यह 'अनहद-नाद चन्द्र' और सूर्य के मिलन पर ही सुनाई देता है—

ससि हर सूर मिलावा, तब अनहद बेनु बजावा।'[4]

संत बुल्ला साहब भी गंगा-यमुना-सरस्वती त्रिवेणी संगम में अनहद नाद श्रवण करते हैं—

'गंग जमुना मिलि सरसुती उमगि सिखर बहाव
सबकति बिजुली दामिनी अनहद गरज सुनाव'[5]

संत सिंगाजी कहते हैं—

'त्रिकुटी महल मे अनहद बाजे, होत शब्द झनकारा।'[6]

संत वीरू साहब ने भी यही 'अनहद' नाद को श्रवण किया है—

यमुना ते और गंग अनहद सुर तान संग।[7]

संत दया बाई कहती हैं—

'सुनत नाद अनहद दया आठो जाम अभंग।'[8]

संत चरनदास ने 'अनहद' नाद के लिए कहा है—

'गगन मध्य जो पदुम है बाजत अनहद तूर'[9]

---

१ "त्रिवेणी करो स्नान पाप पुनि दोउ देउ दान।
—गोरखबानी पृ० १८१।

२ कबीर ग्रन्थावली, पृ० १२४।

३ (क) अनहद भौंरी भवें त्रिवेणी के घाट, गोरखबानी १५५।
(ख) 'अनहद नाद गगन में गाजे' वही पृ० १२४।

४ कबीर ग्रन्थावली पृ० १४६।

५ संतबानी संग्रह भाग २ पृ० १७४।

६ परशुराम चतुर्वेदी, संतकाव्य पृ० २७०।

७ वही पृ० ३१६।

८ संतबानी संग्रह भाग १ पृ० १६६।

९ वही पृ० १४४।

मध्यकाल के हिंदी सूफी कवि भी 'अनहद' नाद का वर्णन करने में नाथों की परम्परा से प्रभावित ज्ञात होते हैं। कवि निसार ने[1] नाद के दस प्रकारों का उल्लेख किया है जो केवल संकेत मात्र हैं। उसमें नाद के विभिन्न प्रकारों का नामकरण एवं विशेष विवरण नहीं है। इस नाद संख्या पर संभवतः हठयोग का प्रभाव है। हठयोग प्रदीपिका[2] में दस नादों का उल्लेख मिलता है।

"सुने वचन सब कोऊ, अनहद दस प्रकार
ताकर रूप न देखें, कारन कवन विचार"[3]

कवि मंझन ने भी अनहद का उल्लेख किया है—

"दरसन लाग इह सब को हेसि, मग गोरख जा जाग
कर दरसन स्यों ले उपरानी, सहज अनाहत ककरी बाजो"[4]

अलीमुराद का कहना है—

'त्रिकुटी बीच में डेरा डारो बड़े भूत हैं पाचों भारों
अनहद से मे ध्यान लगाऊं '[5]

सूफी कवि जायसी ने भी अनहद का वर्णन किया है—

'जोगी होइ नाद सो सुना, जेहि सुनि काय जरे चौगुना'[6]

मध्यकाल के संत और सूफी कवियों ने शैव योग के सिद्धांतों को स्वीकार ही नहीं किया है अपितु इसके पारिभाषिक शब्द 'त्रिकुटी' तथा अनहद को भी ज्यों का त्यों अपने साहित्य में प्रयोग किया है। अतएव यह कहना असंगत न होगा कि उन पर एक परम्परा का प्रभाव अवश्य रहा है जो शैव परम्परा से भिन्न नहीं है।

---

१ हठयोग प्रदीपिका में नाद के दस प्रकारों का उल्लेख है।—हठयोग ४।

२ आदौ जलधिजीमूत भेरीझर्झर संभवा।
मध्येमर्दलशंखोत्था घंटाकाहलजास्तथा।
अंते तु किंकिणी वंशवीणाभ्रमरनिःस्वना
इति नाना विधा नादा श्रूयते देहमध्यगा

—हठयोगप्रदीपिका ४।८५ ८६।

३ कवि निसार, यूसुफजुलेखा।

४ मंझन, मधुमालती।

५ अलीमुराद, कुंवरावत।

६ जायसी ग्रंथावली—पद्मावत (२०१७) पृ० १२५।

'अनहद नाद' श्रवण करने के उपरान्त साधक सहस्रदल कमल के ध्यान का अनुभव करता है। सहस्रदल कमल को ही सहस्रदल कमल ब्रह्मरन्ध्र[1] कहा गया है। सहस्रार चक्र के लिए सुन्नि मण्डल[2] शून्य[3] गगनमण्डल[4] भँवरगुफा[5] शिवनगर[6] और कैलाश[7] संज्ञाओं का प्रयोग नाथों में हुआ है। संत और सूफी कवियों ने इन सभी शब्दों का सहस्रार चक्र के लिए प्रयोग किया है।

संतों ने सहस्रार दल को शिवलोक अगमपुर अमरपुर और कैलाश भी कहा है तथा उसी लोक में निवास करने की अभिलाषा प्रकट की है। संत कबीर शिवलोक को अपना घर मानते हैं—

'शिव नगरी घर मेरा'[8]

संत भीखम राम कहते हैं—

हमरा करना नेवास अमरपुर मे
गगन ना गरजे चुए न पानी
अमृत जलवा सहज भरि आनो।[9]

संत जगजीवन साहब गगन को अपना गाँव मानते हैं—

"नाहि रत उत जात मनुवां, गगन बामा गांउ"[10]

संत गुलाल साहब कहते हैं—

गइली अनदपुर गइली अगमसूर
जितली मेदनवां सेजवा गाइल हो सजनी'[11]

---

१ क० ग्र०, पृ० १२२।
२ देख ये सत 'सून्य' अकास। —गोरखबानी, पृ० ११०।
३ सहज सु नि मे रहनि हमारी" वही पृ० १३४।
४ गगन मण्डल मे घोजो अवधू असत अगोचर सूर
—वही पृ० १६७।
५ "भ्रमर गुफा महि जोति प्रकास" —वही, पृ० १२४।
६ 'तन मन लेकर शिवपुर मेला" —वही, पृ० २४२।
७ गोरखबानी पृ० ११०।
८ कबीर ग्रन्थावली, पृ० १५४।
९ श्री दुर्गाशंकर प्रसाद सिंह भोजपुरी के कवि और काव्य पृ० ११६।
१० संतबानी संग्रह, भाग १।
११ वही भाग २, पृ० २०२।

सन गरीब दास कहते हैं—

अगम पुरी मे गमकरो, उतरे औघट घाट'[१]

सूफी प्रेमाख्यानो मे नायिका के निवास स्थान की चर्चा करते समय कवियो ने कविलास या कलास शब्द का प्रयोग किया है। सूफी कवि जायसी कहते हैं—

बाजन बाजे कोटि पचासा, मा आनन्द सगरो कलासा
सात खण्ड ऊपर कविलास तहवा नारि सेज सुख बासू।[२]

नूरमुहम्मद आगमपुर का वर्णन करते हुए कहते हैं—

"आगमपुर कविलास मभारा, फागुन आई अन द पमारा"[३]

कासिमशाह ने भी कलास का वर्णन किया है—

'लग सो गामिनी दुलहका गई माझ कलास
बरनू का कलास अनूपा, अचरज रन माझ जनु धूपा'[४]

सत कवियों न आनन्द लोक की भूमिका मे पहुँच कर सहस्रार चक्र म स्थित चन्द्र से स्रवित अमृत के पान का भी उल्लेख किया है। कबीर का कथन है—

"बकनालि के अतरे, पछिम दिशा की बाट
नीझर भरे रस पीजिए, तहाँ भँवर गुफा के घाट'[५]

यह अमृत सुलभ नही है। समान व्यक्तियो को उसका ज्ञान नही होता। अमृत इडा नाडी के द्वारा मूलाधार म स्थित सूय मे पहुँच कर भस्म होता रहता है जिसस देह को जरा ग्रस लेती है।[६] योगी उसका रहस्य जानते है। व मवर

---

१ वही, भाग १, पृ० १८२।

२ जायसी, पदमावत पृ० १३०।

३ नूर मुहम्मद इन्द्रावति पृ० ३४।

४ कासिमशाह, हस जवाहिर, पृ० १६५।

५. कबीर ग्रन्थावली पृ० ८८।

६ पीयूषरश्मिनिर्यास धातश्च ग्रसति ध्रुवम
समीर मण्डले सूर्यो भ्रमते सवविग्रहे
एषा सयपरा मूर्तिनिर्वाण दक्षिणे पथि
वहते लग्नयोगेन सृष्टिसहारकारक ।

—शिवसहिता २।११ १२।

गुफा में अमृत का पान कर जन्म मरण से मुक्त हो जाते हैं। कबीर ने कहा है–

जुरा मरण भ्रम भाजिया, पुनरपि जनम निवारि रे"[1]

संत किनाराम कहते हैं—

'मन मोर अजरा भरे, इडा सुखमृत पान।'[2]

मध्यकालीन संत और सूफी काव्य में सहस्रार चक्र में शिव का निवास माना है और इस चक्र को कैलास की संज्ञा दी है। अतएव उन पर शैव योग[3] का प्रत्यक्ष प्रभाव परिलक्षित होता है। उनकी साधना का लक्ष्य कैलास में विद्यमान शिव से एकता प्राप्त करना है। ये वर्णन शैवयोग का आधार लिए हुए हैं। शैवों की जो योगिक परम्परा नाथों में प्रचलित रही वह सन्तों में भी प्रचलित रही यद्यपि सन्तों ने कुछ मौलिक परिवर्तन करके शारीरिक प्रक्रियाओं को मानसिक रूप दे दिया किन्तु प्रक्रिया का स्वरूप वही है।

शैवयोगियों की वेशभूषा

अधिकतर शैव योगी अरबंद-लंगोट बांधे रहते हैं। इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं पहिनते तथा अपने सारे शरीर पर भस्म लगाये रहते हैं।[4] कुछ शैवयोगी सफेद तथा कुछ गेरुए रंग के वस्त्र पहनते हैं सिर पर सफेद पट्टी बांधते हैं अथवा सफेद टोपी रखते हैं। कुछ योगी नाना प्रकार के कपड़ों से बना चोला और गुदड़ी पहिनते हैं और ऐसी ही टोपी सिर पर लगाते हैं।[5] शैवयोगियों की सज्जा के आभूषण मेखला, शृंगी, कर्णमुद्रा, कंथा धंधारी

---

१ कबीर ग्रन्थावली, पृ० ८८।

२ किनाराम, राम गीता पृ० १३।

३ (क) अतः ऊर्ध्व दिव्य रूपम सहस्रार सरोरुहम

कैलासो नाम तस्यैव महेशो यत्र तिष्ठति
अकुलाख्यो विनाशी च क्षय वृद्धि विवर्जित
—शिव संहिता ५।१८६ १८७।

(ख) तस्माद्गलित पीयूष पिबेयोगी निरन्तरम
मृत्योर्मृत्यु विधायाशु कुलं जित्वा सरोरुहे। वही ५।१६२।

४ ब्रिग्स गोरखनाथ एण्ड दी कनफटा योगीस, पृ० १२।

५ ब्रिग्स गोरखनाथ एण्ड दी कनफटा योगीस पृ० ६३।

सिंगरी, रुद्राक्ष, खप्पर दण्ड, तिलक, अधारी आदि हैं।[1] उनका आध्यात्मिक महत्त्व भी है। कायिक भूमिका म शवयागी उन्ह अनिवाय रूप से धारण करते हैं।

मध्ययुगीन हिन्दी कविता म शवयागिया की वशभूषा एव उनके आभूषणा का जो वणन मिलता है वह शव परम्परा से भिन्न नही है। यद्यपि मध्य युगीन कवियो ने इन उपकरणों का उल्लेख अलग-अलग न कर प्रसगवश थाडा थाडा किया है, फिर भी प्रभाव को अवश्य खोजा जा सकता है।

मध्यकालीन सत कविया ने योगिया की वेशभूषा का जा चित्रण किया है, उससे प्रतीत हाता है कि उन्होंने उसे बाह्य आडम्बर माना। वे बाहरी वश भूपा का तो स्वीकार नही करते किन्तु उसके मानसी स्वरूप से भी उनका अनर असपृक्त नही है। सता पर यह प्रभाव धार्मिक सम्बन्ध से न हाकर सम्पकजन्य हा रहा होगा। सत कबीर का यागी 'जत्र' बजाता है बटुआ और मखला रखता हुआ भस्म भी लगाता है। उसके हृदय मे सिंगी रहती है। कबीर के यागी का रूप नीचे देखिय—

> "जोगिया तन को जन्त्र बजाइ, ज्यू तेरा आवागमन मिटाई
> चित्त करि बटुआ तुचा मेखली भसमै भसम चढ़ाई
> हिरद सींगी ग्यान गुणि बाधो, खोज निरजन साचा'[3]

कबीर का योगी मुद्रा-युक्त, निद्रा-रहित, आसनारूढ, अजपा म लीन खपरा, सीगी लेकर 'बेन' बजाता है—

> "सो जोगी जाके मन मे मुद्रा, रात दिवस ना करई निद्रा
> मन मे आसन मन मे रहना, मन जप तप मन सू करना
> मन में खपरा, मन मे सींगी, अनहद बेन बजावे रगी
> पच परजारि भसम करि भूका, कबीर से लहसे लका"[4]

कबीर ने यागी के कथा और अधारी अन्य योगियो के से नही हैं फिर भी नाम वही है। अतएव योग के माग मे शवमत की परम्परा का कितना आग्रह कबीर

---

१ भण्डारकर-शविज्म वष्णविज्म एण्ड अदर माइनर रिलीजियन्स आफ इण्डिया, पृ० १२३।

२ ब्रिग्स-गोरखनाथ एण्ड दी कनफटा योगीस, पृ० १७-१८।

३ कबीर ग्रन्थावली-पृ० १५९।

४ कबीर ग्रन्थावली, पृ० १३९।

वाणी म रहा है यही यहाँ द्रष्टव्य है—

प्रकट क्या गुप्त प्रयारी, सामे मूरति जोवनि प्यारी' [1]

कबीर न यह बात नई नहीं कही है उनस पूर्व गोरखनाथ न भी कहा है कि मन जोगी है और काया उसकी गुदड़ी।[2]

संत पलटू शवयोगी की वशभूषा क सूक्ष्म रूप को स्वीकार करत हुए वर्णन करते हैं—

'प्रम म बान जोगी मारल हो कसके हिया मोर
हमरी सदख चुनरिया हो दूनो भये तूल
जोगिया के लेउ मिगछलवा हो आपन पट चीर
दूनो के सियब गुदरिया हो, होइ जावे फकीर
गगन मे सिंगिया बजाइहि हो ताकिहि मोरी ओर [3]

नानक वाणी म भी योगी का रूप अक्षुण्ण है, किन्तु वही सन्ता की परम्परा के अनुरूप—

'अलख निरजन नानक आया, नेकी कारण अच्छा है
माया भोली निरगुण सेली, नाम माला जपता है
सम को टोपी दम की कफनी, त्रिगुन बभत चढाई है
जीव शीव दोनों कुण्डल पहने अन्हद टिंबरी बजावत है
काम क्रोध की गदन मारी बोध खड़ा भसकता है।[4]

सत शिवदिन केसरी क शब्दो म योगी का रूप कुछ भिन्न नहीं है—

आदेस कहना जी आदि पुरुष लखना जी
सिर पर टोपी कानों मे कुण्डल गले रुद्राक्ष माला
तिलक भाल पर चद्र कोर है
सेली सिंगी पुगी तुगी और भभूत का मेला
अनहद किन्नर नाद सुनाव अलख निरजन भोला।"[5]

---

१ वही पृ० १३६।
२ तुलना कीजिये— 'काया क्या मन जोगोटा'
—गोरखबानी, पृ० ६६।
३ परशुराम चतुर्वेदी-हिन्दी सत काव्य सग्रह पृ० २०८।
४ डा० विनय मोहन शर्मा हिन्दी को मराठी सतों की दन पृ० २६२।
५ वही पृ० २०३।

सत कवियो ने योगी की वेशभूषा की मखोल भले ही बनाई हो, किन्तु वे योगी के वेश से पूरा परिचित थे। उसके वेश म क्या क्या होता है यह वे भली भाँति जानते थे। योगी की मानसी वेश भूषा मे एक तीव्र उपहास के साथ प्रभाव की मुद्रा भी व्यक्त है। चाहे योगी ब्रह्मरन्ध्र मे ही मधुकरी मागे परन्तु मागता अवश्य है—

। दसव द्वारि अवधू मधुकरी मागे।
सहजें षपरा सुषमनि डडा। पाच सगती मिली धर्ने नव खडा।"[1]

सत काय मे योगिया की वेशभूषा के सम्बध मे प्रतिक्रियात्मक प्रभाव भी देखा जा सकता है। सत जसनाथ का कथन है—

"मूखा मरडा कान फडाव है सब मडा मसानी
कांधे पाछ मेखल घात कोरा रह्या अयानी
हिवडे मूल्या घर घर हाड बोल अरपट बानी
देवल सूना मठ पिए सूना, सूनी तु धरे बानी।"[2]

सत धवल राम ने कहा है कि वेश भूपा विशेष धारण करने से प्राणी मत नहीं होता, और जटा भभूत तथा मृगछाला पहन कर जोगी वन अलख जगाने से—

"सत न करता टोपी बनगी योगी अलख जगावे के
जटा भभूत अवर मृगछाला करता जग दिखलावे के।"[3]

जहा सत कविया की स्फुट बानी मे मानसी वेशभूषा के आधार पर साधनात्मक रहस्यवाद का बीज बोया गया है वहाँ सूफियो के प्रेम प्रबन्धा म वस्तुपरक दणन को ही प्रोत्साहन मिला है। मानसी वणन के लिए-प्रतीको की शली म उनम अवकाश नहीं था। इसलिए कथा प्रसगा मे योगियो की वेशभूषा वस्तु रूप म ही वर्णित हुई है, भले ही सूफी लोग उस वेशभूषा के हामी न हा किन्तु वे उससे परिचित अवश्य थे। जायसी ने रत्नसेन को सिद्धि प्राप्ति के लिए शव योगी बनाया है—

"तजा राज,राजा भा जोगी औ किंगरी कर गहेउ वियोगी
तन बिसभर मन बाउर लटा अरुझा प्रेम परी सिर जटा
चदन-बदन औ चदन देहा, भसम चढाई कीन्ह तन खेहा
मेखल सिंघी चक्र धधारी जोगवाट रुद्राछ अधारी

१ गोरखबानी, पृ० १४६।
२ सूर्य शकर पारीक, सिद्ध चरित, पृ० १००।
३ कर्ताराम, धवलराम चरित, ५७।

कथा पहरि डंड कर गहा सिद्धि होइ कहँ गोरख कहा
मुद्रा स्रवन कंठ जपमाला, कर उदपान काँध बघछाला
पाँवरी पाँव कीन्ह सिर छाता, खपर लीन्ह भेष करि राता।[1]

कवि उसमान ने भी कहा है—

"ताहि वेस बिच ग्राहि सो पथा चल सोई जो पहिरे कथा
तेल नाहीं सिर जटा बढ़ाव रजन नासिजे वसन रंगाव
भसम देह पाँवरि होई, ऐहि मग बिकट चल पै सोई
मेलसी सिंगी चक्र अधारि जो गोरा रगाल अधारी।[2]

उसमान ने सुजान के योगी वेश को वस्तुतः म ही चित्रित किया है।

'काढ़हु वसन सुहावन राता, पहिरहु चिरकुट कथा गाता
मनि कुण्डल मकराकृत डारहु फटिक मदरा स्रवन सवारहु
धोवन चन्दन भसम चढ़ावहु, किंगरी गहहु वियोग बजावहु
तजहु तेल कर लेहु अधारी और सुमरनी चक्र अधारी
सिंगी पूरहु जटा बढ़ावहु, खप्पर लेहु भीख जेहि पावहु
काँधे लेहु बाहि मृगछाला ग्रीव पहिरहु रुद्राख के माला।"[3]

सूफी कवि मझन के काव्य मधुमालती म राजकुमार माता पिता क मना करने पर भी योगी का वेश धारण करता है—

'कठिन विरह दुख गा न सभारी
माँगेउ खप्पर दंड अधारी
चक्र माँथ मुख भसम चढावा स्रवन फटिक मुद्रा पहिरावा
उदयानी कसि के कर साँटी, गुन किंगरी धरागी ठाटी
कथा मेखले चिरकुटा जटा परि सिर केस
वज्र कछौटा बाँधि के किय गोरख का वेस।"[4]

योगी का यह वेश भले ही नाथ पथ के सम्बन्ध से सूफियों तक आया हो किन्तु इसकी परम्परा शैवमत से आई है यह मानना असगत न होगा।

सगुण भक्त कवियों ने योग साधना के स्थान पर भक्ति साधना को प्रधानता दी है। वे भक्ति म परमानन्द की अनुभूति करते हैं अतएव उनके काव्य मे योग साधना के विवेचन का अभाव रहा है। फिर भी उनके काव्य म

---

१ *जायसी ग्रन्थावली, पदमावत जोगी खण्ड पृ० १३१–१३५।*
२ परशुराम चतुर्वेदी, सूफी काव्य सग्रह–'चित्रावली', पृ० १३२।
३ वही, पृ० ८५, ८६।
४ परशुराम चतुर्वेदी, मधुमालती, पृ० १४५।

शैवयोगिया की वेशभूषा का प्रतिक्रियात्मक सकेत मिलता है जिससे प्रतीत होता है कि वे शवयोग से परिचित तो थे परन्तु उन्होंने इसे भक्ति के लिए आवश्यक नहीं माना।

भक्त शिरोमणि सूरदास के काव्य मे शैवयोगिया की वेशभूषा का प्रतिक्रियात्मक वर्णन हुआ है। उद्धव कृष्ण का सदेश लेकर गोपियो के पास आते हैं। गोपिया उस सदेश को अपनाने मे असमर्थता प्रकट करती हैं। उनकी असमर्थता का एक कारण योगियो की वेशभूषा भी है। सूर की गोपियो के शब्दो मे शवयोगिया की वेशभूषा का प्रतिक्रियात्मक चित्रण हुआ है। सूर गोपिया से कहते हैं—

"हमरे कौन जोग व्रत साधे ?
मृगत्वच, भस्म, अधारि, जटा को को अवराधे
आसन पवन विभूति मृगछाला ध्याननि को अवरोधे।"[1]

गोपियाँ उद्धव को उपालम्भ देती हुई कहती हैं कि तुम्हें इतना भी ज्ञान नहीं योग का पात्र कौन हो सकता है।[2] इसी क्रम म वे आगे कहती हैं—

'दड कमण्डल भस्म अधारी औ जुवतिन को दीज'[3]

गोपियो का कहना है—

"अपनी जटाजूट अरु मुद्रा लीजे भस्म अधारी"[4]

गोपियाँ योगिया की वेशभूषा की अवहेलना करती हुई कहती हैं—

'जे कच कनक कचोरा भरि भरि मेलत तेल फुलेल
तिन केसन को भस्म बतावत टेसू कसो खेल
तिनको जटा धरन को ऊधो कसे कै कहि आई
तिन श्रवनन कसमीरी मुद्रा लटकन चीर भलाऊ
भाल तिलक चल नासा नक बेसरि नथ फूली ते सब
तजि हमरे मेलन को उज्ज्वल भस्मी खूली
ताहि कठ बाँधिबे के हित सिगी जोग सिगार

---

१ सूर, भ्रमरगीत पृ० १४।
२ 'कहिए कहा यहो नहि जानत काहि जोग है जोग"
—सूरदास भ्रमरगीत पृ० १६।
३ वही पृ० १६।
४ वही पृ० ५३।

जिहि मुख गीत सुभाषत गावत करत परस्पर हास
ता मुख मौन गहे क्यों जीवें, छूटें ऊरध स्वास ।"[१]

अतएव कहना अनुचित न होगा कि सगुण भक्ति काव्य म शव योगियों की वेशभूषा का प्रतिक्रियात्मक वर्णन हुआ है।

निष्कर्ष

शिव की स्थिति, प्रक्रिया और अनुभूति-शवयोग की इन तीन विशेषताओं का प्रभाव मध्यकालीन हिन्दी के सत एव सूफी काव्य म अभिव्यक्त योग धारा की कायिक मानसिक और आध्यात्मिक भूमिकाओं पर देखा जा सकता है। शवयोग मे शिव की स्थिति ब्रह्मरन्ध्र[२] म मानी गयी है। साधक कुण्डलिनी[३] शक्ति को जाग्रत कर उसे ब्रह्मरन्ध्र म लय करता है। यहीं वह शिव शक्ति के सम्मलन क उपरान्त आनन्द अनुभव करता है। सत एव सूफी कवियो ने परम आनन्द को प्राप्त करने के लिए यौगिक प्रक्रियाओं को अपनाया है।

योग की कायिक भूमिका मे तीन प्रमुख नाडिया—इडा पिंगला और सुषुम्ना का वर्णन सत कवियो ने शिवसहिता[४] एव हठयोग प्रदीपिका[५] आदि शवयोग ग्रन्थो के अनुरूप किया प्रतीत होता है। शवयोग की परम्परा का प्रभाव सत कवियो पर षटचक्र[६] क वर्णन पर भी प्रतीत होता है। सत कवियो ने कुडलिनी शक्ति के जाग्रत होने का और उसके ब्रह्मरन्ध्र मे लीन होने का

१ वही, पृ० १०५।

२ अत ऊर्ध्व दिव्यरूप सहस्रार सरोरुहम
ब्रह्माण्डाख्यस्य देहस्य बाह्ये तिष्ठति मुक्तिदम
कलासो नाम तस्यव महेशो यत्र तिष्ठति
अकुलाख्यो विनाशी च क्षयवृद्धिविवर्जित ।
—शिव सहिता ५।१८६, १८७।

३ अत्र कुण्डलिनी शक्तिर्लय याति कुलाभिधा
तदा चतुर्विधा सृष्टिर्लीयते परमात्मनि । —वही, ५।१९३।

४ गगायमुनयोमध्ये वहत्येषा सरस्वती
तासा तु सगमे स्नात्वा धन्यो याति परांगतिम । —वही, ५।१९४।

५ इडा भगवती गगा पिंगला यमुना नदी
इडापिंगल योमध्ये बालरडा च कुडली ।
—हठयोग प्रदीपिका ३।११०।

६ शिव सहिता ५।९५–१५२।

चित्रण नवीन नही किया है । उनका यह विवेचन हठयागप्रदीपिका[1] और शिव संहिता के वर्णन से मिलता है । सत कवियो का अजपाजप नाथो के सोऽहं जप का विकसित रूप है । अतएव यह कहा जा सकता है कि सत काव्य मे वर्णित योगधारा की कायिक भूमिका पर शवमत का प्रभाव रहा है । योग की मानसिक भूमिका म सत कवियो ने शून्य को ध्यान, धारणा का आधार माना है । उनका यह शून्य नाथो के शून्य से भिन्न नही है ।

सत कवियो न ब्रह्मरन्ध्र को शिवलोक कहा है जिसम शिव की स्थिति भी मानी गयी है । शिवलोक को उन्हान अपना घर भी माना है इसी म व आनन्द की अनुभूति करते हैं । उन्हाने शवो के पारिभाषिक शब्द त्रिकुटी वाराणसी सुन्न महल, कलाम आदि का अपन काव्य मे ज्यों का त्यो प्रयाग किया है ।

शवयोगियो क लिय भोली सेली अधारी रुद्राक्ष की माला, भस्म आदि वेशभूषा के अग माने गए हैं । सत कवि यद्यपि बाह्य आडम्बर को मान्यता नही दते हैं तथापि उन्होने शैवयोगी की वेशभूषा के सूक्ष्म रूप को मान्यता दकर शवमत का प्रदर्शन किया प्रतीत होता है । सूफी कवि चाहे शव योगी की वेश भूषा के हामी न हो वे उसम परिचित अवश्य थ जिसका अनुमान उनके काव्य के नायक की योगी की वेशभूषा से लगाया जा सकता है ।

सगुण भक्त कवियो न योगियो की वेशभूषा और योग साधना की अपेक्षा भक्ति का प्रधानता दी है । योग उनके काव्य का विषय नही रहा वे तो भक्ति को सवस्व मानकर उसी म तल्लीन रहना चाहते थे ।

(ग) भक्ति दर्शन का प्रभाव

उपासक—भगवान् मे अनुरक्त व्यक्ति भक्त है । भक्ति मनोभाव है जो परम शक्ति के अवलम्बन से रस रूप म निष्पन्न होता है । इसके दो प्रमुख अवयव हैं

---

१ वज्रासने स्थितो योगी चालयित्वा च कुण्डलीम
कुर्यादनतर भस्त्रां कुण्डलीमाशु बोधयेत ।
— हठयोग प्रदीपिका ३।११५ ।

२ 'सहज सुन्नि मन तन थिर रहै" —गोरखबानी, पृ० १६५ ।
तुलना करिये—
टारी न टर आगे न जाइ, सुन्न सहज महि रह्यो समाइ"
—कबीर ग्रन्थावली, पृ० २६६ ।

परमात्मा की ओर अनुराग की प्रबलता और उसी के लिए उसका समर्पण।[1] अतएव मन व अनुराग का निर्वाह भक्त की सफलता है।[2]

उपासक के गुण—उपास्य के प्रति अनन्य अनुराग के लिए उपासक में गुणों की आवश्यकता है। शिवपुराण में[3] ज्ञान, दया अहिंसा सत्य ईश्वर में विश्वास श्रद्धा इन्द्रियों का संयम, वेदशास्त्र अध्ययन उपासक के गुण माने गए हैं। उपासक के इन गुणों का सम्बन्ध सदाचार से है जिसे आचरण पक्ष भी कहा जा सकता है जो जीवन की प्रथम आवश्यता है।[4]

निर्गुण हो या सगुण उपासक के गुण सभी कवियों ने समान रूप से स्वीकार किए हैं। कहना अनुचित न होगा कि मध्ययुगीन कवियों पर शव और वष्णव भक्ति की दोनों परम्पराओं का प्रभाव रहा है क्योंकि उस समय पंच देवोपासना प्रतिष्ठित हो चुकी थी। अतएव उनके काव्य में उपासक के गुणों का वर्णन किसी एक सम्प्रदाय के प्रभाव विशेष का परिणाम नहीं है।

मध्यकालीन भक्त कवियों ने संत और साधु शब्द का प्रयोग प्राय भक्त के ही अर्थ में किया है। जिस प्रकार महात्मा तुलसीदास ने संतन के गुन ऐहा[5] कह कर भक्त की ओर संकेत किया है उसी प्रकार महात्मा कबीर ने भी साधु के निम्नलिखित लक्षणों द्वारा भक्त की ओर ही संकेत किया है। अतएव यह कहना अनुचित न होगा कि उपासक के गुणों की मीमांसा कबीर आदि संतों ने भारतीय भक्ति परम्परा के अनुरूप ही की है। शवमतावलम्बी परम योगी बाबा गोरखनाथ भी उससे असहमत नहीं हैं। वे भक्त के लक्षण इस प्रकार लिखते हैं—

---

१ डा० सरनामसिंह शर्मा, हिन्दी साहित्य पर संस्कृत साहित्य का प्रभाव, पृ० १८७

२, 'भक्ति अनवरत गत भेद माया

—विनयपत्रिका, पृ० १३।

३ शिवपुराण, वायवीय संहिता अ० १०

४ आचार परमो धर्म आचार परम धनम
आचार परमा विद्या आचार परमा गति
आचारहीन पुरुषो लोके भवति निन्दित
परत्र च सुखी न स्यात्तस्मादाचारवान भवेत।

—शिवपुराण, वा० सं० १४।५५-५६।

५ मानस—उत्तरकाण्ड ३७।

"ग्यान पारछ्या-निरलोभी, निहचल, निरवासीक निहिसवद ।
विचार पारछ्या-निरमोही निरबध, निसक, निरबान
बमेक पारछ्या-सरबगी, सावधान, सति, सारग्राही
सतोष पारछ्या-अजाचीक, अवाछीक, अमानीव, अस्थिर
निरबल पारछ्या निहितरग, निहपरपच, निरदुदी निरलोप
सहज पारछ्या-सुमती, सुद्धी, सीतल सुखदाई
सील पारछ्या-सुचि सजमन, सति, श्रोता
सुनि पारछ्या-ल्यो, लषि, घ्यान, समाधि
एती अष्टाग भोग पारछ्या, भगति का लछिन
सिधा पाई साधिका पाई वे जन ऊतरे पार [1]

कबीर उपासक के गुणा का वणन करत हुए कहत है—

उपकारी नि कामता, उपजे द्रोह न ताप
सदा रहे सतोष मे, धरम आप दृढ धार
सावधान औ सीलता, सदा प्रफुल्लित गात
निरबिकार गम्भीर मति धीरज दया बसात
निरवरी नि कामता, स्वामी सेती नेह
विषया से न्यारा रहे साधन का मत नेह
सीलवत दढ़ ज्ञान मत अति उदार चित होय
लज्यावान अति निछलता कोमल हिरदा सोय
दयावत धरमक ध्वजा, धीरजवान प्रमान
सतोषी सुखदायक रू, सेवक परम सुजान
ज्ञानी अभिमानी नहीं, सब काहू से हेत
सत्यवान परस्वारथी, आदर भाव सहेत
निश्चय मल अस दृढमता, ये सब लच्छन जान
साथ सोई है जगत मे, जो यह लच्छन वान [2]

भक्त के इन लक्षणों को गोरखनाथ द्वारा वर्णित लक्षणा की तुला म तोल कर देखा जा सकता है। अन्य सत कवियो ने भी साधु या 'सत श०' का प्रयाग तुलसी की भाति भक्त के लक्षण व्यक्त करने के लिए ही किया है। सत दादू

---

१ गोरखबानी-पृ० २४६
२ सतबानी सग्रह भाग १ पृ० २७

ने संत को 'सीतल चन्दन बास[1]' तथा 'निरवैरी सब जीव सा[2]' कहा है। संत चरणदास का कहना है—

> 'ऐसा हो जो साध हो लिए रहे वैराग
> चरन कमल में चित धरे, जग में रहे न पाग[3]'

दयाबाई ने संत के गुणों का वर्णन करते हुए कहा है —

> जगत-सनेही जीव है राम सनेही साध
> तन मन धन तजि हरि भजें, जिनका मत अगाध
> दया धान अरु दीनता दीनानाथ दयाल
> हिरद सीतल दृष्टि सम, निरखत करें निहाल
> काम क्रोध लोभ नहीं खट विकार करि हीन
> पथ कुपथ न जानहीं ब्रह्म भाव रस लीन[4]

संत गरीबदास का संत-साधु-वर्णन उसी परंपरा का पोषक है। उनका कहना है-

> 'ऐसे साधू संत जन, पारब्रह्म की जात
> सदा रत हरि नाम सू, अंतर नांही भात
> साध समुंदर कमल गति माहें साईं गध
> जिन मे दूजो भिन्न क्या सो साधू निरबंध
> नो नेजे जो जल चढ़े, कमल न भींजे गात
> माहें ज्ञान सुगंध सर, आदि अंत का साथ[5]'

मध्यकालीन हिन्दी भक्ति काव्य में कहा गया है कि क्रोध मद मान मोह लोभ, क्षोभ राग, द्रोह आदि अवगुणों से निवृत्ति पाने पर ही भक्त का हृदय भगवान का निवास स्थान बन सकता है—

> 'काम क्रोध मद मान न मोहा, लोभ न छोभ न राग न द्रोहा
> जिनके कपट दंभ नहिं माया, तिन्ह के हृदय बसहु रघुराया
> सब के प्रिय सबके हितकारी, दुख सुख सरिस प्रसंसा गारी
> कहहिं सत्य प्रिय बचन बिचारी जागत सोवत सरन तुम्हारी[6]'

---

१ सन्तबानी संग्रह-भाग १, पृ० २७
२ वही पृ० ६५
३ वही पृ० १४६
४ वही पृ० १७७
५ वही पृ० १६८
६ मानस-अरण्यकांड २९,२६,१३१ १३२।

> जप तप व्रत दम सजम नेमा गुरु गोविन्द विप्र पद प्रेमा
> श्रद्धा क्षमा मइत्री दाया, मुदिता मम पद प्रीति अमाया
> बिरति विवेक विनय विज्ञाना, बोध जथारथ बेद पुराना
> दभ मान मद करहिं न जाऊ, भूलि न देहिं कुमारग पाऊ
> गावहिं सुनहिं सदा मम लीला, हेतु रहित परहित रह सीला"[1]

मध्यकालीन भक्त कवियो ने भक्त के गुणो का अनेक प्रकार से वर्णन किया है। भक्त के गुण उसकी देवी सम्पदा है जिसका वर्णन प्राय सभी भक्तो ने समान रूप से किया है और जो गीता[2] और शिवपुराण[3] के देवी सम्पदा के वर्णनो के अनुरूप हैं।

भक्त भगवान् के अस्तित्व मे रहता है। उन्हे आत्म समर्पण करता है। समर्पणीय वस्तु उनके अनुकूल होनी चाहिए इसलिए उस सत्ता की सी रहन सहन का ढग और उन्ही का सा स्वाभाव प्राप्त करने की तीव्र अभिलाषा होती है।[4] भक्त अनुकूल गुणो का सकलन और प्रतिकूल गुणो का वर्जन करता है। जिन कारणो से भगवत्प्राप्ति मे बाधा आती है वह उन सब से दूर रहता है। भक्त की प्रवृति एक मात्र भगवान् मे लीन रहती है। वह एक मात्र भगवान् की शरण चाहता है—

उपासक की प्रवत्ति

> "नष्ट मति, दुष्ट अति, कष्ट रत खेद गत
> दास तुलसी सभु सरन आया।"[5]

---

१ मानस अरण्यकाण्ड, पृ० ७९।

२ सवतो मनसो सगमादो सग च साधुषु
दया मैत्री प्रश्रय च भूतेष्वद्धा यथोचितम
शौच तपस्तितिक्षा च मौन स्वाध्यायमार्जव
ब्रह्मचर्यमहिंसा च समत्व द्वन्द्वसज्ञयो।
—भागवत–११।३।२१।३१।

३ शिवपुराण, वायवीय सहिता, अध्याय ११।

४ डा० सरनामसिह शर्मा, हिन्दी साहित्य पर सस्कृत साहित्य का प्रभाव पृ० १८७।

५ 'नौमि करुणाकर गरल गगाधर" —विनय पत्रिका, पृ० १८।

भक्त एकमात्र भगवान् के गुणों[1] का श्रवण और कीर्तन करता है—

"तन सरवत जतेव अच्युत, विभो, विश्व भवदस सभव पुरारी
ब्रह्मेन्द्र चन्द्रार्क वरुणाग्नि वसु, मरुत जम अरविमवदधि सर्वाधिकारी"[2]

वह भगवान् के चरण कमल रज की सेवा कर उनकी प्रसन्नता[3] और कृपा[4] प्राप्त करना चाहता है। भक्त एक मात्र भगवान् से प्रेम करता है—

'पलटू ऐसी प्रीति कर ज्यो मजीठ को रग
टूक टूक कपड़ा उड़े रग न छोड़े सग'[5]

वह भक्ति में सहायक कर्म करता है और कर्म करते हुए भी ससार में जल में कमल के पत्ते के समान रहता है—

'जग माही ऐसे रहो ज्यो अम्बुज सर माहि
रहे नीर के आसरे, पै जल छूवत नाहि"[6]

भक्त की एक मात्र इच्छा भगवान् की अनपायिनी भक्ति प्राप्त करना है। यही उसका चरम लक्ष्य है—प्रेम भगति अनपायिनी देहु हमहि श्रीराम'[7] भक्त परमेश्वर से केवल उसके अनुराग में लीन रहने के अतिरिक्त और कुछ नहीं चाहता। हो सकता है प्रारम्भ में उसकी भक्ति सासारिक सुखों को प्राप्त करने के लिए हो और वह परमेश्वर से धन जन विद्या आदि की प्राप्ति के लिए प्रार्थना करे[8] परन्तु भक्ति की चरम अवस्था पर पहुँच कर वह ससार के सभी प्रलोभनो को छोड़ देता है यहा तक कि उसमें मोक्ष प्राप्ति की आकाक्षा भी नहीं रहती।

परो नरक फल चारि सिसु मीचु डाकिनी खाहु
तुलसी राम सनेह को जो फल सो जरि जाहु[9]

भक्त का लक्ष्य

---

१ विनय पत्रिका पृ० १२।
२ वही पृ० १५
३ 'सिर सिव होइ प्रसन्न कर दाया' —विनयपत्रिका पृ० ११।
४ बिनु सभु कृपा नहि भव-विवेक' —वही पृ० २०।
५ सतबानी सग्रह भाग १ पृ० २१५।
६ सतबानी सग्रह भाग १ पृ० १४८।
७ मानस-उत्तरकाण्ड पृ० ३४।
८ 'भोलानाथ भस्म भवन गत गिरवर डिम डिम डमरू बाजे
तानसेन सेवक को दीजे धन धन दूध पूत भरपूर"
नमदेश्वर चतुर्वेदी-हिन्दी के सगीतज्ञ कवि पृ० ८०।
९ तुलसी-दोहावली, दो० ६२।

कामना से भक्ति की शुद्धता बिगड़ती है भक्त का चित्त चचल बनता है। इसी स कामना और भगवत्प्रेम का निर्वाह साथ साथ नहीं हो सकता।

शिवपुराण म कहा गया है कि भक्त को मन वाणी और कर्म द्वारा कहीं भी किंचित मात्र फल की आशा न रख कर शिव की सेवा करनी चाहिए।[1] फल का उद्देश्य रखने से आश्रय लघु होता है क्योंकि भक्त फल शीघ्र न मिलने पर भक्ति छोड़ सकता है।[2] सकाम भक्ति को हेय माना गया है और न वह भक्त का चरम लक्ष्य है। संत कबीर ने सकाम भक्ति को निष्फल कहा कहा है—

जब लगि भगति सकामता तबलग निरफल सेव"[3]

निष्काम भक्ति को तुलसी परमेश्वर की शक्ति मानते हैं जिसमे भक्त अपने लक्ष्य तक पहुँच सकता है—

मानो निष्काम भक्ति शक्ति आपु आपुनीस
देह न धरि प्रेम न मरि भजन भेद गावै"[4]

भक्ति के चरम लक्ष्य पर पहुँच कर केवल प्रेमरस पीता है—

'प्रेमपियाला राम रस, हम को भावै येहि'[5]

भक्त की उपलब्धि—भक्त की श्रेयतम उपलब्धि भगवत्प्राप्ति है। जो उसके अनन्य प्रेम से सम्भव होती है। यह उपलब्धि ही उसका मोक्ष है, यही उसका परमानन्द है। वह इसके सिवा और कुछ नहीं चाहता। यही स्वर तुलसी की पंक्तियों म सुन सकते हैं—

"भक्ति देहु अनपावनी सदा न चहो निर्वान"[6]

और तो और कबीर भी भक्ति के सामने मुक्ति को ठुकरा कर कहते हैं—

"मुक्ति रहो घर आपण"[7]

भक्त तो केवल यही चाहता है कि उसका भगवत्प्रेम कभी भी कम न हो। दशरथ के भक्ति स्वर म यही आकांक्षा व्यक्त की है—

---

१ शिवपुराण वायवीय संहिता, अ० १० ।
२ वही, अ० १० ।
३ संतबानी संग्रह, भाग १, पृ० १४ ।
४ मानस उत्तरकाण्ड, १३६ ।
५ दादू साहब की बानी, पृ० ६६ ।
६ रामचरित मानस, उत्तरकाण्ड १४ ।
७ कबीर ग्रन्थावली, पद ।

'कामिय नारि पियारी जिमि लोभिय प्रिय जिमि दाम
तिमि रघुनाथ निरंतर प्रिय लागहु मोहि राम'[१]

कहने का तात्पर्य है कि भक्त परमात्मा का प्रेम ही चाहता है।

भगवत्प्रेम के सामने मुक्ति को वह कोई स्थान नहीं देता।
उसके प्रेम में प्रेम के सिवा और कोई कामना नहीं होती।

मध्यकाल के भक्त अधिकांशत वैष्णव ही थे यद्यपि पंचदेवोपासना में भी वे विश्वास करते थे, किन्तु उनके परमाराध्य शिव न होकर राम-कृष्ण आदि विष्णु अवतार ही थे। हिन्दी साहित्य के इतिहास में ऐसे किसी शैव भक्त का नाम दृष्टिगोचर नहीं होता जो शिव का अनन्य आराधक रहा हो फिर मध्यकालीन हिंदी काव्य में शिव की भक्ति से सम्बन्धित जो रचनाएं उपलब्ध हुई हैं उनसे उपासक की उपयुक्त योग्यता का अनुमान कर लेना दुष्कर नहीं है।

उपास्य

शैवों के उपास्य शिव हैं जिनकी उपासना निगुण और सगुण दोनों प्रकार के उपासकों ने की है। निगुण उपासकों के लिए निराकार अलख, शून्य एवं निरंजन हैं। सगुण उपासकों के लिए पार्वतीपति हैं[२] गणेश और स्कन्द के पिता हैं। कैलाश निवासी हैं[३] नन्दी उनका वाहन है[४] भूतप्रेत[५] उनके गण हैं। चन्द्रमा[६]

---

१ मानस-उत्तरकाण्ड-१३० (ख)

२ गौरी वल्लभ कामारे कालकूट विषादन
—श्री शरमेश्वर कवचम ६०।

३ 'अमुष्य त्वत्सेवा समधिगतसार भुजवनम
बलात्कलासेऽपित्वदधिवसतौ विक्रमयत ।
—शिवमहिम्नस्तोत्र १२।।

४ 'महोक्ष खट्वांग परशुरजिन भस्म फणिन
कपाल चतीयत्तव वरद तन्त्रोपकरणम।
सुरास्ता तामृद्धि विदधति तु भवदभ्रू प्रणिहितां
नहि स्वात्माराम विषयमृगतृष्णा भ्रमयति।'
—शिवमहिम्नस्तोत्र ८।

५ वही १२।

६ "किशोर चन्द्रशेखरे रति प्रतिक्षण मम
—शिव ताण्डव स्तोत्र २।

गंगा,[1] सर्प,[2] डमरू,[3] वाघम्बर,[4] भस्म[5] आदि उनके स्वरूप को व्यंजित करते हैं। वे श्मशान वासी हैं,[6] नटराज हैं[7] अर्धनारीश्वर[8] हैं। वे अपने भयानक स्वरूप से मुण्डमाला[9] भी धारण करते हैं।

मध्यकालीन हिन्दी कविता में अनेक स्थानों पर शिव के रूप के साथ उनकी वेशभूषा आभूषण आयुध तथा उनके परिवार वाहन, गण आदि का उल्लेख शिवपुराण के हरिपाश्व मे, बड़ी विशदता के साथ हुआ है।

मध्यकालीन निर्गुण काव्य में उपास्य शिव के रूप की खोज अधिक उपयुक्त नहीं है किन्तु सगुण काव्य में शिव का रूप सुलभ है।

रूप—गोस्वामी तुलसी की कविता मे शिव का वर्ण 'कम्बु (शंख) कुन्द चन्द्रमा, कपूर के समान और उसका तेज करोड़ो सूर्य के समान जगमगाता हुआ बतलाया गया है—

"कम्बु-कुन्देन्दु कपूर विग्रह रुचिर, तरुन रवि-कोटि तनुतेज भ्राजे"[10]

---

१ जटा कटाहसम्भ्रम भ्रमन्निलिम्पनिर्झरी
विलोल वीचिवल्लरी विराजमान मूर्द्ध नि। —शिव ताण्डव स्तोत्र २।।

२ जटा भुजगपिंगलस्फुरत्फणा मणिप्रभ –
कदम्ब कुंकुमद्रव प्रलिप्तदिग्वधू मुखे।। —वही ४।।

३ डमड्डमड्डमड्डमन्निनाद वड्ड मर्वय
चकार चण्डताण्डव तनो तु नः शिव शिवम। —वही १।।

४ महान्ध सिन्धुरा सुरत्वगुत्तरीमेदुरे
मनो विनोदमद्भुत बिभर्तु भूतभर्तरि।।
—शिवताण्डव स्तोत्र ४।

५ कामदेव कामपालो भस्मोद्धूलितविग्रह
भस्मप्रियो भस्मशायी कामी कान्त कृतागम
—शिवमहिम्न स्तोत्र २१।

६ श्मशान निलय सूक्ष्म श्मशानस्थो महेश्वर
—शिवमहिम्न स्तोत्र १३।

७ शिवपुराण रुद्रसहिता (पार्वती खण्ड) अ० ३०।

८ 'अर्धनारीश्वरो भूत्वा ययौ देव स्वय हर"
—शिवपुराण, वायवीयसहिता १५।६।

९ 'महः कपालिसम्पदे सरिज्जटालमस्तुनः'
—शिव ताण्डव स्तोत्र ५।

१० विनय पत्रिका, वियोगीहरि द्वारा सम्पादित, पद १०।

उनके मस्तक पर जटाजूट का मुकुट है— 'मौलि मकुल जटा मुकुट ।"[1] उनके बड़े बड़े नेत्र कमल के समान हैं— सुबिसाल लोचन कमल। [2] उनके गले में हलाहल (विष) झलक रहा है—'गरल कंठ।"[3] बाघ और हाथी का चम उनका वस्त्र है— व्याघ्र गज चम परिधान। [4] उनके शरीर पर भस्म अवलेपन है— 'भस्म सर्वांग [5] तुलसी शिव के स्वरूप से इतने प्रभावित हैं कि वे उसका वर्णन कवितावली [6] विनयपत्रिका तथा मानस के लंकाकाण्ड[7] और उत्तरकाण्ड[8] में भी नहीं भूले हैं। सेनापति के शब्दों में शिव का वर्ण घनसार से भी सुन्दर है—

'नीको घनसार हूँ तें वरन हैं तन को,'[9]

इनके भाल पर सम्व अग्नि विद्यमान हैं— आगि भाल सव ही ममै [10] और काल से भी कराल विष उनके गले में झलकता है— 'काल तें कराल कालकूट कंठ माझ तमे।'[11] वे दिगम्बर हैं—भेष धर धरत नगन को। [12]

---

१ विनय पत्रिका, वियोगी हरि द्वारा सम्पादित, पद १०।

२ वही पद १०।

३ वही पद १०।

४ वही पद १०।

५ वही, पद १०।

६ भस्म अंग, मदन अनंग सवत असंग हर
सीस गंग, गिरिजा अर्धंग, भूषन भुजंग वर
मुण्डमाल, विधु भाल डमरु कपाल कर
त्रिबुध वृंद नवकुमुद चंद सुख कंद सूलधर"
—कवितावली पृ० १६६।

७ शान्ते द्राभमतो व सुन्दरतनु शार्दूल चर्माम्बर
काल व्याल कराल भूषण धर गंगा शशांक प्रियतम
—मानस लंका काण्ड पृ० ८५६।

८ कुन्द इन्दुदरगौर सुन्दरं अम्बिका पतिमभीष्टसिद्धिदम।
कारुणीक कल कंज लोचन नौमि शंकर मनग मोचनम।
—मानस-उत्तर काण्ड पृ० १०१६।

९ सेनापति कवित्तरत्नाकर-पृ० १२।

१० वही पृ० ११५।

११ वही पृ० ११५।

१२ वही पृ० १२।

संगीतज्ञ कवि बजू बावरा ने भी शिव का रूप वर्णन करते समय उन्हें त्रिलोचन, नीलकंठ कहा है—

'महादेव महाजती ग्रमरामन रेया त्रिलोचन नीलकंठ ग्रधक रिपु रेया
शकर शभु त्रिपुरारि डिमरू डिमडिम बजया"[1]

केरल कवि राम श्रीमान् ने भी शिव के रूप वर्णन में उन्हें शरीर पर भस्म लगाए हुए— भस्म ग्रग[2] और हाथी का चर्म ओढे हुए—'ग्रोढे चम मतग'[3] चित्रित किया है। एक स्थल पर उनके काव्य में शिव के त्रिनेत्र का उल्लेख भी मिलता है— भस्म त्रिनेत्र गले रुण्ड माला।[4]

शिव के स्वरूप का यह वर्णन शिव पुराण[5] के वर्णन की तुला पर तोला जा सकता है। शिव के स्वरूप वर्णन की यह परम्परा वैदिक काल से आ रही है। मध्यकालीन हिन्दी भक्त कवि उस परम्परा से दूर नहीं गए दिखाई पडते हैं। अतएव उन पर शिव के स्वरूप वर्णन पर शैवों की परम्परा का प्रभाव स्पष्ट है।

आभूषण

शैव साहित्य में शिव के आभूषणों में उनकी जटा पर लिपटे सर्प, गंगा मस्तक पर शशि, कानों में कुण्डल और भुजाओं में लिपटे सर्प तथा गले में सर्प की माला व मुण्डमाला का उल्लेख है।[6] मध्यकालीन सगुण भक्तकवियों ने भी शिव के इन आभूषणों का चित्रण अपने काव्य में किया है। तुलसी के शब्दों में शिव के आभूषण देखिए— देवापगा मस्तके[7]। शिव के सिर पर जटाजूट में गंगा सुशोभित है—

---

१ नर्मदेश्वर चतुर्वेदी-संगीतज्ञ कवियों की हिन्दी रचनाएँ पृ० ६६।
२ नागरी प्रचारिणी पत्रिका भाग १८, अक ३ पृ० ३४४।
३ वही पृ० ३४४।
४ वही पृ० ३४३।
५ महादेव विरूपाक्ष चन्द्राधकृतशेखरम
गजकृत्तिपरीधान क्षुब्ध भुजगभूषणम
भस्माङ्ग जटिल शुद्ध भैरुण्डशतसेवितम
भूतेश्वर भूतनाथ पचभूताश्रित परम
अर्धनारीश्वर भानु भानुकोटिशतप्रभम।
— शिव पुराण रु० ख० यु० स० ४६।१५ १८।
६ देखिए, इसी अभिलेख का प्रथम अध्याय।
७ मानस-अयोध्याकाण्ड, पृ० ३७१।

"विद्युत छटा तटिनि वर धारि हरि चरन पूत"[१]

उनके भाल पर बालचन्द विराजमान हैं—

बिधु बाल भाल,[२] शिव के गल म सर्पो की तथा मुण्डा की माला की छटा निराली है—'व्याल नृकपाल माला विराज ।'[३] उनके हाथा म डमरू तथा कपाल है— डमरू कपाल कर ।'[४] तुलसी के उक्त वणन पर शवा के प्रभाव का अनुमान लगाया जा सकता है ।

सेनापति ने भी शिव के आभूषणो म सप की माला का उल्लेख किया है— व्याल उर माल,[५] सगीतज्ञ कवि बजू शिव के आभूषणो के वणन म कहते हैं— चदे भाल सीस गग[६] उनके गल म मुण्डमाला[७] है तथा शकर शभु त्रिपुरारि डिमरू डिम डिम बजया[८] हैं ।

तानसेन ने भी शिव के स्वरूप का वणन करत समय उक्त आभूषणा का उल्लेख किया है। कानन मुद्रा मु डमाला गर[९] तथा चन्द्रमा लिलाट ।[१०] केरल कवि गभ श्रीमान के शब्दो म सीस गग[११] उर म लस नागपाल'[१२] शिव के आभूषण हैं ।

शिव के उक्त आभूषण उनके स्वरूप का अभिन्न अग हैं। मध्ययुगीन हिन्दी काव्य में उनकी अवतारणा शवा क अनुरूप उत्तर वदिक तथा पौराणिक साहित्य स ज्यो की त्यो हुई है। शवेतर साहित्य म उनका वणन शवा क प्रभाव को परिलक्षित करता है ।

---

१ विनयपत्रिका, वियोगी हरि द्वारा सम्पादित पद १० ।
२ कवितावली पृ० १६६ ।
३ विनयपत्रिका वियोगीहरि द्वारा सम्पादित पद १० ।
४ कवितावली पृ० १६६ ।
५ सेनापति कवितरत्नाकर पृ० ११५ ।
६ नमदेश्वर चतुर्वेदी, सगीतज्ञ कवियों की हिन्दी रचनाए, पृ० ६६ ।
७ वही पृ० ६६ ।
८ वही पृ० ६६ ।
९ वही पृ० ९५ ।
१० वही, पृ० ९६ ।
११ नागरी प्रचारिणी पत्रिका, भाग १६ अक ३, पृ० ३४४ ।
१२ वही, पृ० ३४४ ।

आयुध—मध्ययुग के कवि शिव के आभूषणो के साथ उनके आयुधो का वरणन करना नही भूले हैं। तुलसी ने उनके शूल, बाण धनुष और तलवार आदि आयुध बतलाये हैं शूल-सायक पिनाकासि कर ।[1] सगीतज्ञ बैजू ने भी शिव के 'पिनाक नामक आयुध का अपनी कविता म उल्लेख किया है—

'कर पिनाक रया ।'[2]

इनके अतिरिक्त शिव के 'त्रिशूल का भी इस युग के काव्य म वरणन हुआ है। तानसेन के शब्दो म देखिए—'कर त्रिशूल' ।[3] केरल कवि राम श्रीमान भी त्रिशूल को शिव का आयुध मानते हैं— भुज त्रिशूल' ।[4]

शिव के आयुध भक्त के शत्रुओ का नाश करने के लिए हैं। इन आयुधो का उल्लेख वदिक[5] साहित्य म भी हुआ है। आलोच्य युग के कवियो ने शव मत के परिपाश्व मे पल्लवित, शिव के स्वरूप, आभूषण और आयुधो का वरणन किया है। शवेत्तर काव्य मे इनका युक्तियुक्त वरणन शव परम्परा का प्रभाव कहा जा सकता है।

मध्ययुग के कवियो ने शिव के स्वरूप का चित्रण करते हुए उनके परिवार एव गणो को भी स्मरण किया है। तुलसी के शब्दो परिवार व गण म कहा गया है— यस्याके च विभाति भूधर सुता[6] गिरिजा प्रथग[7] अम्बिका पतिमभीष्ट-सिद्धिदम ।[8] शिव के भीषण स्वरूप का वरणन करते हुए तुलसी उनके गणो का भी उल्लेख करते हैं—

'भीषमाकार भरव भयकर भूत प्रेत प्रमथाधिपति'[9]

बजू ने कहा है 'गोरी अरधग'[10] । तानसेन ने भी पावती को अरधग म सुशो

१ विनय पत्रिका-वियोगीहरि द्वारा सम्पादित, पद १० ।
२ नमदेश्वर चतुर्वेदी-सगीतज्ञ कवियो की हिन्दी रचनाए, पृ० ६६ ।
३ नमदेश्वर चतुर्वेदी सगीतज्ञ कवियों की हिन्दी रचनाए पृ० ६५ ।
४ नागरी प्रचारिणी पत्रिका-भाग १६ अक ३ पृ० ३४४ ।
५ देखिए-इसी अभिलेख का प्रथम अध्याय ।
६ मानस-अयोध्याकाण्ड पृ० ३७१ ।
७ कवितावली-पृ० १६६ ।
८ मानस-उत्तरकाण्ड, पृ० १०१६ ।
९ विनयपत्रिका-वियोगी हरि द्वारा सम्पादित, पद ११ ।
१० नमदेश्वर चतुर्वेदी, सगीतज्ञ कवियों की हिन्दी रचनाए पृ० ६६ ।

मित कहा है—"पारवती अरधग"[1]। केरल कवि गभ श्रीमान के काय म भी यही भाव व्यक्त हुआ है—'गिरिजा अरधग धरे त्रिभुवन जिन दासी।'[2] एक अ य स्थल पर शिव के गणा का उल्लेख करते हुए कहा गया है —भूतन के सग नाचत[3] मृगी।"

शिव पावती पति हैं। पावती उनके अरधग म सुशोभित रहती हैं। शिव क साथ पावती का वणन उत्तर वदिक साहित्य मे प्राप्त होता है। शिवपुराण तो शिव पावती महत्त्व स आप्लावित है। मध्ययुग के काव्य म शिव स्तुति म पावती के वणन की परम्परा शिवपुराण के आधार पर विकसित हुई प्रतीत होती है। शिवपुराण म पावती को[4] शिव क अरधग म सुशोभित कहा गया है।

इस युग के काय म शिव परिवार के अतिरिक्त उनक वाहन वृषभ का उल्लख बराबर मिलता है।

वाहन—तुलसी कहते है कि शिव का वाहन वृषभ' है— सीस बस वरदा, वरदानि चढयो वरदा धरया[5] वरना है। सनापति न भी नन्दी का उनका वाहन कहा है—

'सदा नदी जाको आसा कर है विराजमान"[6]

तानसेन न वृषभ का शिव का वाहन माना है—वृषभ वाहन।[7]

शिव का वाहन वृषभ शवो म पूज्य माना गया है। उन्होंने शिव के परिवार के साथ वृषभ का भी वणन किया है। मध्यकालीन हिन्दी काव्य म शिव, शिव के आभूषण आयुध परिवार और वाहन[8] का शिव स्तुति म चित्रण शव साहित्य के अनुरूप हुआ है। शवतर कविया की शिव स्तुति और शिव रूप वणन शव प्रभाव का परिलक्षित करती है। शिव का अधनारीश्वर स्वरूप भी काव्य का विषय रहा है। विद्यापति न शिव क अधनारीश्वर स्वरूप की स्तुति की है—

---

१ नमदेश्वर चतुर्वेदी सगीतज्ञ कवियों की हिन्दी रचनाए पृ० ६५।
२ नागरी प्रचारिणी पत्रिका-भाग १६ अक ३ पृ० ३४४।
३ वही पृ० ३४३।
४ शिव पुराण।
५ कवितावली पृ० १६६।
६ सेनापति कवित्तरत्नाकर-पृ० १२।
७ नमदेश्वर चतुर्वेदी सगीतज्ञ कवियों की हिन्दी रचना पृ० ६५।
८ महोक्ष खटवाङ्ग परशुरजिन भस्म फणिन

शिवमहिम्न स्तोत्र ८।

'जय शकर जय त्रिपुरारि, जय अध पुरुष जयति अधनारि ।
आध धवल तनु आधा गोरा, आध सहज कुच आध कटोरा ।
आध हड माल, आध गजमोती, आध चानन सोहे आध विभूति
आध चेतन मति आधा गोरा, आधा पटोर आध भुज डोरा
आध जोग आध भोग विलासा, आध विधान आध जग लोभा
कहे कवि रत्न विधाता जाने दुइ कए बाटल ऐक पराने ।।'[१]

मध्यकालीन कवि शिव के रूप से इतने अधिक प्रभावित रहे हैं कि व अपने आराध्य विष्णु और शिव म समानता मानते हैं । शिव के सहस्र नामो म विष्णु[२] जनादन जगदीश[३] आदि नाम शिव के लिए प्रयुक्त हुए हैं । विद्यापति शिव और विष्णु मे समानता बतलाते हुए कहते हैं—

'भल हर भल हरि भल तुम कला, खन पित बसन तनहि बघछला
खन पचानन खन भुजचारि, खन सकर खन देव मुरारी
खन गोकुलमय चराइज गाय, खन मिखि मागए डमरु बजाए
खन गोविन्द भए लिज महादान खनहि भसम अरु कारन बोकान
एक सरीर लेल दुइ बास, खन बैंकुठ खनहि कलास
भनई विद्यापति विपरीत बानि, ओ नारायन ओ सूलपानि'[४]

सगीतज्ञ कवि वजूबावरा हरि और हर मे समानता प्रतिष्ठित करते हुए उनके स्वरूप का चित्रण करते हैं—

'बशीधर पिनाकधर गिरिवरधर गगाधर चन्द्रमा लीलाधर
सुधाधर विषधर धरनीधर शेषधर चक्रधर
त्रिशूलधर नरहरि शिवशकर
रमाधर उमाधर मुकुटधर जटाधर कु कुमधर
पीताम्बरधर व्याघ्राबरधर
नदीधर तरु धर कलासधर बकु ठधर कहै

---

१ विद्यापति पदावली-पृ० ३६६ ।

२ ब्रह्मा विष्णु प्रजापालो हसो हसगतिवय
—शिवसहस्रनाम स्तोत्र १०६ ।

३ शुभागो लोकसारगो जगदीशो जनादन
भस्मशुद्धिकरो मेरुरोजस्वी शुद्धविग्रह । वही २८ ।

४ विद्यापति की पदावली पृ० ३६८ ।

'भजु बावरे गुनी जन निशदिन
हरिहर ध्यान उर धर रे ।।"[१]

मध्यकालीन भक्त कवियो ने शिव के स्वरूप का जो चित्रण किया है उससे अनुमान किया जा सकता है कि शिव भक्ति का उन पर प्रभाव रहा है। इस युग मे शव और वष्णव भक्ति की धारा समान रूप से प्रवाहित थी। शिव वष्णव भक्तो मे विष्णु के समान ही मान्य थे। शवेत्तर काव्य मे शिव का आराध्य स्वरूप उनके आभूषण और वाहन तथा परिवार का वर्णन शव भक्ति के प्रभाव का परिणाम है।

उपास्य की फलदता—शिवपुराण में शवो के उपास्य शिव को पापो का नाश करने वाला कहा गया है।[२] वह सब कर्मों का फल देन वाला है।[३] मुक्ति प्रदाता है[४] वरद है[५] और ससार के दुखो को काटने वाला है।[६] शिव की स्तुति फलद् मानी गई है।[७]

मध्यकालीन कवियो ने शव परम्परा के अनुसार शिव के फलद् स्वरूप का चित्रण किया है। विद्यापति शिव की कृपा की ही आकाक्षा रखत है—

---

१ नमदेश्वर चतुर्वेदी-सगीतज्ञ कवियों की हिंदी रचनाए पृ० ७६।

२ भवन्ति विविधा धर्मास्तेष सद्य फलोन्मुखा
येवाभवति विश्वास शिवनाम जपे मुने
पातकानि विनश्यन्ति यावन्ति शिवनामत
भुवि तावन्ति पापानि क्रियन्ते न नरेमु ने।
शि० पु० स० २३।२६ २७।

३ अतस्तवां सप्रेक्ष्य क्रतुषु फलदानप्रतिभुव।
श्रुतौ श्रद्धा बद्ध्वा दृढ़परिकर कमसु जन ।।
शिवमहिम्न स्तोत्र २०।

४ शिवनाम्नि महवभक्तिर्जाता येषां महात्मनाम
तद्विवानां तु सहसामुक्तिभवति सवथा।
शि० पु० २३।२६-३३।

५ यद्धि सुत्राम्णो वरद　　—शिवमहिम्न स्तोत्र २३।

६ भवच्छिद मखच्छिद'　　—शिव ताण्डव स्तोत्र ६।

७ ततो भक्ति श्रद्धा भरगुरुगृणद्भ्यां गिरिश
यत स्वय तस्थे ताभ्या तव किमनुवृत्तिनफलति
शिवमहिम्न स्तोत्र १०।

'नीच ऊंच सिव कछु नहिं गुनलन्हि हरथि देलन्हि रुण्डमाल
गुन अवगुन सिव एको नहिं बुझलन्हि रखलीन्ह रावनक नाम
मन विद्यापति सुकवि पुनित मति, कर जोरि विनवों महेस
गुन अवगुन हर मन नहिं आनथि सेवकक हरथि कलेस'[१]

शिव के समान कोई दानी नहीं है। वे दोना पर दया करते हैं। भिखमगे ही उन्हें सदा सुहाते हैं। तुलसी ने शकर की दीनदयालुता परमोदारता का भली भाति पुष्टीकरण किया है—

दानी सकर सम नाहो
दीन दयाल दिबोई भावे जाचक सदा सोहाहीं
मारि के मार थप्यो जग मे, जाकी प्रथम रेख भटमाहीं
ईस उदार उमापति परिहरि अनत जे जाचन जाहीं
तुलसीदास ते मूढ़ मागने कबहु न पेट अघाही"[२]

तुलसी तो शिव को सबसे बडा देव दाता और भोला मानते हैं—

'देव बडे दाता बडे सकर बडे भोले'[३]

वे राम का दास होने पर भी शिव की फलदृना से प्रभावित उनकी शरण चाहते हैं—

चरो राम राइको सुजस सुनि तेरो हर
पाइ तर आइ रह्यो सुरसरि तीर हों।"[४]

यही उपास्य की फलदृता है कि उपासक उसकी शक्ति म अनन्य विश्वास कर केवल उसी की शरण चाहता है। दयालनाथ न भी शिव की फलदृना का स्वीकार कर शिव को फल देने म बडा उदार माना है—

सुर मुनि पूजत गावत ढग ज्याकी कला नकल आई
दयालु देवनाथ शिव भोला वर देने कू बडा मोला'[५]

प० हरिहरनाथ राम जन्म के हर्षोल्लास का वणन करत हुए शिव की फलदृना का उल्लेख करना नही भूलते—

---

१ विद्यापति की पदावली पृ० ४३८।
२ विनयपत्रिका (वियोगी हरि द्वारा सम्पादित) पद ४ पृ० ५।
३ वही पृ० १०।
४ कवितावली पृ० २१०।
५ डा० विनय मोहन शर्मा–हिन्दी को मराठी सन्तो की देन पृ० ४३५।

'बहुत दिना शिव पूजल देवन मनावल हो
ललना एक सपन हम मांगल चौगुन पावल हो।''[1]

शिव बड़े उदार हैं। एक फल मांगने पर चार फल दान देते हैं।

शिव की उदारता का चित्रण शिव पुराण में अनेक स्थलों पर किया गया है। मध्यकालीन कवियों ने भी शिव की इसी परम्परा में उदारता माना है। दयानाथ ने शिव को भोला दानी, हरिहर नाथ ने औघड़ उदारदाता कहा है। मन कुनगी तो इतना प्रभावित हैं कि वे गंगा के किनारे शिव की शरण में आकर रहने लगे हैं। इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि उस युग के कवि शिव की महिमा से तो भलीभांति परिचित थे। साथ ही उनकी महिमा के प्रभाव को स्वीकार भी करते थे। अतएव यह कहा जा सकता है कि शिव के रूप और उनकी उदारता का प्रभाव मध्यकालीन भक्तिकाव्य पर रहा है।

उपासना

कहने की आवश्यकता नहीं कि पुराणों ने परमात्मा के दोई रूप प्रस्तुत किये हैं—एक निराकार स्वरूप है और दूसरा साकार स्वरूप। ये दोनों रूप सदैव उपस्थित रहे हैं। चाहे सगुणोपासना के व्यवहार पक्ष में निराकार के लिए कोई स्थान न रहा हो किन्तु सद्धान्तिक पक्ष में निराकार का स्थान अक्षुण्ण रहा है। रामचरितमानस में— अगुणसगुण दोउ ब्रह्म सरूपा[2] कह कर तुलसीदास ने पुराणों के मत का ही समर्थन किया है किन्तु व्यावहारिक सरलता के लिए सगुण ही ग्राह्य रहा है। मध्यकालीन संतों ने सगुण का मौलिक रूप निर्गुण मे देखा है। यद्यपि वे भी भक्ति भाव की तरंग में सगुण का एकदम भक्तिक्षेत्र मे परित्याग नहीं कर सके हैं फिर भी उनकी उपासना पद्धति निर्गुण पद्धति है। इस साधना में मानसिक पक्ष का ही विशेष महत्त्व है।

निर्गुण उपासना

सगुण भक्ति मे जो साकार होता है जिसके साथ सम्बन्ध की भावना का निर्वाह हो सकता है जिसकी लीला के दर्शन और श्रवण से आनन्द की प्राप्ति होती है उसी परमात्मा को निर्गुण कवि केवल मानस में देखता है। उसके प्रति वह सम्बन्धों का आरोप करता है—

---

१ श्री दुर्गाशंकर प्रसाद सिंह—भोजपुरी के कवि और काव्य, पृ० १६३।

२ मानस—बालकाण्ड २२।१।

"हरि मेरा पीव मै हरि की बहुरिया
राम बडे मै छुटक लहुरिया"[१]

यहा राम और कबीर क पतिपत्नी के आरोप को दख लेना कठिन नहीं है। निर्गुणोपासना मे सवक सख्य भाव माता पिता और पुत्र भाव के अतिरिक्त पति पत्नी भाव भी गहीत रहा है जिसम सम्बन्ध आरोपित होता है। सगुणोपासना मे लीला भाव के लिए जो अवकाश रहता है निर्गुणोपासना म कोई नही है।

शिव का सगुण रूप मध्यकालीन हिन्दी काव्य की केवल सगुण धारा म ही प्रतिष्ठित रहा। सूफियो की प्रेम पद्धति पर उसका कोई प्रभाव नही है। फिर भी कथा प्रसगवश वे अपनी कथाओ मे शिव का जो रूप चित्र प्रस्तुत करते हैं वह परम्परागत रूप से अभिन्न है। इसका भक्तिपरकप्रभाव के अन्तगत नही लिया जा सकता। इसे प्रासगिक या कथापरक प्रभाव की सज्ञा दी जा सकती है। सूफी कवि जायसी के प्रेमाख्यानक काव्य पद्मावत म शिव रत्नसेन को प्रत्यक्ष दशन देते है—

"ततखन पहुचे आइ महेसू, बाहन बल कुष्टि कर भेसु
काथरि कया हडावरि बाधे मुण्डमाल औ हत्या काध
सेस नाग जाके कठमाला, तनु भभूति हस्ती कर छाला
पहुची रुद्रकवल के गटा ससि माथें और सुरसरि जटा
चवर घट औ डमरू हाथा गौरा पारबती धनि साथ।"[२]

सूफी काव्य म शिव का प्रत्यक्ष रूप म दशन देना नवीन नही है। शिव पुराण म वर्णित अनेको स्थलो पर शिव न प्रत्यक्ष दशन देकर[३] अपने भक्तो पर अनुग्रह किया है। शिव का यह स्वरूप वणन भी जायसी ने शिव पुराण[४] के अनुरूप किया है।

यद्यपि सूफी धम के अन्तगत मन्दिरो और मूर्तियो की मान्यता नही है किन्तु जायसी ने पद्मावत की कथा म मन्दिर श्री पचमी और पूजा वणन किया है। वह लोकमान्यता के अनुरूप होता हुआ शव पूजा के भी अनुरूप ही है।

---

१ कबीर ग्रन्थावली–पृ० १२५।
२ जायसी ग्रन्थावली–पद्मावत–पृ० १६७।
३ शिवपुराण–रुद्र सहिता–अ० ४४–४६।
४ वही, ४६।५ १८।

'कंचन मेरु देखाव सो जहाँ महादेव कर मण्डप तहाँ
माघ मास पाछिल पछ लागे सिरि पचमी होइहि आगे
उपरिहि महादेव कर बारु, पूजिहि जाइ सकल संसारु'[१]

फिर पद्मावती के दर्शन की आशा से रत्नसेन मन्दिर की परिक्रमा करके पूर्व द्वार पर आकर प्रणत होता है—

'पदमावति के दरसन आसा दंडवत कीन्ह चहु पासा
पूरब बार होइ के सिर नावा नावत सीस देव पहं आवा।
तेहि विधि बिन न जानौं जेहि विधि अस्तुति तोर
करहु सुदिस्टि मोहीं पर हिछो पूज मोरि।'[२]

जायसी के अतिरिक्त सूफी कवि नूर मोहम्मद ने इन्द्रावती[३] में तथा उसमान ने चित्रावली[४] मे भी शिव मंदिर शिवरात्रि और पूजा का वर्णन कथा प्रसंगवश किया है। वह वर्णन भी शैवोपासना के अनुरूप ही है।

सगुण उपासना

भगवान् के साकार स्वरूप की उपासना सगुण भक्तों का आधार है। सगुण उपासना के दो साधन बहिरंग और अंतरंग माने गए हैं। भगवान् के नाम रूप और गुण का श्रवण कीर्तन और चरण सेवन सगुण भक्ति के बहिरंग साधन हैं। शिवपुराण[५] में भक्ति के इन साधनों का महत्त्व वर्णित है।

नाम—मध्यकालीन शैवेत्तर कवियों ने शिव के नाम गुण और रूप के श्रवण कीर्तन को मान्यता देकर शैवमत के प्रभाव का परिचय दिया है। कृष्ण भक्त नन्ददास शिव के नाम का गान करते हुए कहते हैं—

"गंगाधर, हर शूलधर, ससिधर, शंकर, वाम
शर्व संभु, शिव, भीम भव, मृग, कामरिपु नाम
त्रिनयन त्रिबक, त्रिपुर-अरि ईस उमापति होइ
जटा पिनाकी, धूर्जटी नीलकण्ठ मृडु सोई।"[६]

तानसेन शिव के नाम को एक मात्र आधार मान कर कहते हैं—

---

१ जायसी ग्रन्थावली पद्मावत पृ० ६६।
२ वही पृ० ७१।
३ गणेशप्रसाद द्विवेदी हिन्दी प्रेमगाथा काव्य (इन्द्रावती) पृ० २४८।
४ वही (चित्रावली) पृ० १६८।
५ शिवपुराण रुद्रसंहिता (सती खण्ड) अ० २१ २३।
६ नन्ददास ग्रन्थावली-पृ० ८०

"महादेव आदिदेव देवादेव, महेश्वर ईश्वर, हर
नीलकंठ, गिरिजापति, कैलासपति, शिवशंकर
भोलानाथ, गंगाधर"[1]

गोस्वामी तुलसी ने अपने आराध्य राम की भक्ति प्राप्त करने के लिए शिव की स्तुति की है। उन्होंने शिव का गुणगान करते समय उनके अनेक नामों का उल्लेख किया है—

"अहिभूषन, दूषन रिपु-सेवक देव देव त्रिपुरारी
मोह निहार दिवाकर संकर, सरन सोक भयहारी"[2]

मध्ययुगीन हिन्दी काव्य शिव वन्दनाओं से आप्लावित है। भक्त कवि हरिदास शिव भक्ति में विभोर हो शिव के नामों का गान करते हुए कहते हैं—

'सेवा सेवा करत सेवे तेंतीसों कोट महादेव तुव
नाम जप तप पावतीपत
पतित पावनि पाति गहर तेनु गन क्से सुमरत
अपलोक नाथ शभु शकर कर तरसूल परे तपोभूत
त्रिपुरारी मानों महेस देश देश के ।
नरेस को धावत जोइ जोइ मागत सोइ सोइ पावत है
हरिदास डागर होत सुरत'[3]

शिव के अनेक नामों की पृष्ठभूमि में उनके गुण और रूप की याद रखना आवश्यक है। भगवान के नाम, गुण लीला आदि का श्रवण, कीर्तन भक्ति के प्रमुख साधन माने गए हैं। शैवभक्ति[4] में भी श्रवण कीर्तन आदि भक्ति के अंगों का महत्त्व मान्य रहा है अतएव इस युग के भक्ति काव्य में शिव के अनेक नामों का उल्लेख चाहे शैव भक्ति का परिणाम कहा जाये फिर भी यह तो स्वीकार करना ही होगा कि शिव के ये नाम वैदिक, उत्तर वैदिक[5] साहित्य में प्रतिपादित शिव नामों की परम्परा से ज्यों के त्यों अपना लिए गए हैं। अतः शिव के नामों की स्तुति पर शैवमत के प्रभाव का अनुमान अनुचित न होगा।

---

१ नर्मदेश्वर चतुर्वेदी हिन्दी के संगीतज्ञ कवि पृ० ८७।
२ विनय पत्रिका पृ० ११।
३ नर्मदेश्वर चतुर्वेदी संगीतज्ञ कवियों की हिन्दी रचना, पृ० ५६।
४ शिवपुराण रुद्रसंहिता (सती खण्ड) २३।२२ १,२।
५ देखिए इसी प्रबन्ध का प्रथम अध्याय।

गुण—मध्यकालीन हिन्दी भक्ति-काव्य में शिव के अनेक नामों की पृष्ठ भूमि में उनके अनेक गुणों का वर्णन हुआ है। महाकवि तुलसी शिव के गुणों से अभिभूत हो सकते हैं—

सकर सप्रद सज्जनानदद, सैल कन्या वर परमरम्य
काम मद मोचन तामरस-लोचन वामदेव भजे भावगम्य
लोक नाथ, सोकसूल निर्मूलिनसूलिन, मोह-तम भूरि भानु
कालकाल कलातीतमजर हर कठिन कलिकाल काननकृसानु
तज्ञमज्ञान पायोधि घटसभव सवग सवसौभाग्यमूल
प्रचुर भव भजन प्रनत जन रजन दास तुलसी सरनानुकूल[1]

शिव को सब शक्ति-सम्पन्न त्रिगुणातीत विकाररहित अज्ञान रूपी समुद्र को पी जाने वाले अगस्त्य रूप वदिक और उत्तर वदिक साहित्य में भी कहा गया है। शिवपुराण तो शिव के अनेक गुणों से युक्त है ही।[2] मध्यकालीन हिन्दी काव्य में वदिक और उत्तर वैदिक साहित्य की परम्परा का ही पालन हुआ है। तुलसी[3] का साहित्य शिव के गुणों का गान मनोकामनाओं की पूर्ति के हेतु करते हैं।

'जाचिय गिरिजा पति कासी जासु भवन अनिमादिक दासी
औढरदानि द्रवत पुनि थोरे, सकत न देखि दीन कर जोरे
सुख सपति मति सुगति सुहाई सकल सुलभ सकर सेवकाई
गये सरन आरत के लीन्हें निरखि निहाल निमिष महं कीन्हे
तुलसीदास जाचक जस गावे, विमल भगति रघुपति की पावे'[4]

तानसेन शिव को अविगत अविनाशी मानकर उनके गुणों की स्तुति करते है—

तुम समान और नाहीं अविगत अविनासी ह वे रहे भवलोक अघअटट[5]

नाम और गुण का सम्बन्ध रूप से है। श्रवण कीर्तन मे भक्त भगवान् के नाम और गुण के श्रवण और कीर्तन के साथ उनके स्वरूप का भी ध्यान करता है। नाम और नामी का सम्बन्ध अभिन्न है। नाम के साथ नामी का स्वरूप भक्त के नेत्रों के

रूप

१ विनयपत्रिका (वि० ह० स०) पृ० १८।
२ देखिए इसी अभिलेख का प्रथम अध्याय।
३ विनय पत्रिका पद ३-१४, कवितावली
मानस बालकाण्ड, लकाकाण्ड, उत्तरकाण्ड
४ विनयपत्रिका, पृ० ८।
५ नमदेश्वर चतुर्वेदी-हिन्दी के सगीतज्ञ कवि-पृ० ८७।

सम्मुख, उसके हृदय मे अकित हो जाता है । भक्त तुलसी ने शिव के स्वरूप का सुदर वर्णन किया है—

' कम्बु कुन्देन्दु कर्पूर-विग्रह रुचिर तरुन रवि कोटि तनु तेज भ्राजे ।
भस्म सर्वांग अर्धांग सैलात्मजा, व्याल-नृकपाल माला विराजे
मौलि सकुल जटामुकुट, विद्युतछटा तटिनि वरवारि हरिचरन पूत
स्रवन कुण्डल गरल कठ करुनाकन्द, सच्चिदानन्द बन्दे ऽवधूत ।।'[1]

सगीतज्ञ तानसेन शिव से नाद विद्या मागते हुए उनके रूप का चित्रण करते हैं

"रूप बहुरूप भयानक बाघबर अबर खपर त्रिसल कर
तानसेन को प्रभु दीजे नाद विद्या सगत सो गाऊ
बजाऊ बीन कर घर[2]

रीतिकालीन भक्त कवि गुलाबराव महाराज शिव के रूप का वर्णन भी परम्परागत स्वर मे करते हैं—

' मेरे हिय तुरत बसो साब शूल पाणी
गगाधर नदी वाहन सद पवग दानी
जरतिइ मे चितानल पाई भवग्लानी '[3]

भिखारीदासजी जिस शिव की पूजा के आकाक्षी हैं उनके रूप का वर्णन भी इसी परम्परा का समर्थक है । जिसके भाल पर शशि, अग पर विभूति है और जो काम का दाहक है वही सिर पर गगा को भी ता धारण किये हुए है । सभी शवो ने शिव के इसी सगुण रूप को देखा है । यहा भी यही देखिये—

' भाल में जाके कलानिधि है वह साहब ताप हमारो हरेगो
अग में जाके विभूति भरो वहै भौन में सपति भूरि भरेगो
घातक है जू मनोभव को मन पातक वाही के जारे जरेगो
दास जो सोस पे गग धरे रह ताकी कृपा कहु कोन तरगो'[4]

विवेचनीय युग के शवेतर काव्य मे शिव के नाम गुण और रूप के वर्णन का अभाव नहीं है । वैष्णव भक्ति धारा मे भी विष्णु के नाम-गुण रूप के श्रवण कीर्तन को भक्ति का अग माना है किन्तु वैष्णव भक्तो द्वारा शिव के नाम गुण रूप के श्रवण कीर्तन की बात अनूठी है । वे शिव को मनोवाछित फल प्रदाता

१ विनयपत्रिका, पृ० ८ ।
२ नमदेश्वर चतुर्वेदी, सगीतज्ञ कवियों की हिन्दी रचनाए, पृ० ८३ ।
३ डा० विनय मोहन शर्मा, हिन्दी को मराठी कवियों की देन पृ० ४५१ ।
४ भा० भिखारीदास काव्यनिर्णय, पृ० १७० ।

मानते है और राम तथा कृष्ण की भक्ति मे रत रहने के लिए शिव से वरदान मागते हैं जिससे अनुमान लगाया जा सकता है कि वे शिव के नाम गुण रूप की महिमा से भली प्रकार परिचित थे और उन पर शवमत का प्रभाव था।

चरण सेवन बाह्योपासना का प्रमुख अग माना गया है। भगवान् के मनोहर चरणो का श्रद्धापूर्वक दशन पूजन और सेवन चरण सेवन कहलाता है। भागवत[1] म तो अतस से तीर्थों का आदर भी चरण-सेवन के क्षेत्र मे ही समाविष्ट किया गया है। अतएव मन्दिर दशन पूजन और तीर्थाटन आदि चरणसेवन के विभिन्न प्रकार हैं। शिव क साथ अम्बिका एव गणेश की पूजा का भी विधान है ऐसा उल्लेख अन्यत्र किया जा चुका है। महात्मा सूर ने शिव पूजन के उल्लेख म इसी विधान की ओर सकेत किया है—

चरण सेवन

नन्द सब गोपी ग्वाल समेत
गए सरस्वती के तट एक दिन
शिव अम्बिका पूजा हेत'[2]

शिव पूजा के सम्बन्ध म एक बात और भी बडे महत्त्व की है कि प्राय कन्याए गौरीपति की पूजा उपयुक्त वर की प्राप्ति के लिए करती हैं। इसी भाव को सूर के शब्दो म देखा जा सकता है—

"गौरीपति पूजत ब्रजनारि
नेम धरम ते रहत क्रियाजुत बहुत कर मनुहारी
इहै कहत पति देहु उमापति गिरधर नदकुमार[3]

यही भाव तुलसी के शब्दो म इस प्रकार व्यक्त हुआ है—

'गिरिजा पूजन जननि पठाई
सग सखी सब सुभग सयानी, गावहि गीत मनोहर बानी
सरसमीप गिरिजा गृह सोहा, बरनि न जाइ देख मन मोहा

---

१ यच्छौचनि सृतसरित्प्रवरोदकेन
तीर्थेन मूर्ध्न्यधिकृतेन शिव शिवो भूत
ध्यातुर्मन शमलशलनिसृष्टवज्र
ध्यायेच्चिर भगवतश्चरणारविन्दम। भागवत ३।२८।२१ २२।
२ सूरसागर-पद ६२।
३ वही पद १० २१ ३२।

मज्जनु करि सर सखिन्ह समेता, गई मुदित मन गौरि निकेता
पूजा कीन्ह अधिक अनुरागा निज अनुरूप सुभग वर मांगा"[1]

तुलसीदास ने शिव नाम के जाप का महत्त्व भी उसी प्रकार स्वीकार किया है जिस प्रकार वे राम नाम के जाप का महत्त्व स्वीकार करते हैं।

भक्त विष्णुदास के 'रुक्मणी मंगल' में महादेव की पूजा के वर्णन में पार्वती तथा गणेश पूजन का महत्त्व भी परम्परा के अनुरूप ही प्रतिपादित हुआ है—

'पूजत देवी अम्बिका पूजत और गणेश
चन्द्र सूर्य दोउ पूजक पूजन करत महेश'[2]

भक्त तुलसी ने तो पार्थिव शिव लिंग के महत्त्व को स्वीकार कर वन जाते समय राम से पार्थिव लिंग की पूजा कराई है—

तब मज्जनु करि रघुकुलनाथा
पूजि पारथिव नायउ माथा।'[3]

वैष्णव भक्त कवि मुंज केशी ने पूजा के लिए धूलि के शिवलिंग की स्थापना तक की बात कही है—

'आंगन में खेलत रघुराई
धूरि बटोरि लिंग शिव थापत अक्षत छींटत हरषाई
ले गडुआ सौमित्रि खड़े हैं सचिव सुवन हर हर गाई
बैठ भूप वशिष्ठ विहारत केशी' लाहु नयन पाई'[4]

ऐसी पूजा शैवों की पार्थिव पूजा[5] के अन्तर्गत मानी गयी है।

शैवेतर सगुण भक्त कवियों ने शिवपूजन के महत्त्व को स्पष्ट रूप से स्वीकार किया है। यद्यपि उनके आराध्य राम और कृष्ण हैं फिर भी वे शिव से राम और कृष्ण की भक्ति प्राप्त करने के लिए निवेदन करते हैं। इतना ही नहीं शिव के साथ साथ पार्वती गणेश आदि की पूजा को भी माना है।

---

१ मानस-बालकाण्ड-२२७।१,२ ३।
२ डा० शिवप्रसाद सिंह-सूरपूर्व ब्रजभाषा और उसका साहित्य (परिशिष्ट) पृ० ३६१।
३ मानस अयोध्याकाण्ड, १०२।१।
४ मुंजकेशी भजन संग्रह भाग ३, पृ० १३३।
५ शिवपुराण विद्येश्वर संहिता अ० १६ २०।

तीर्थाटन—पीछे कहा जा चुका है कि चरण सवन म मन्दिर पूजा का भी महत्त्व है। इस महत्त्व को तुलसी के मानस म राम के मुख म इन शब्दों म कहलाया गया है—

'जे रामेश्वर दरसनु करहिं, ते तनु तजि मम लोक सिधारहिं' [1]

सतुबन्ध रामेश्वरम् का महत्त्व वर्णन केशव के शब्दों म इस प्रकार हुआ है—

"सेतु मूल शिव शोभिजे, केशव परम प्रकाश
सागर जगत जहाज को करिया केशवदास' [2]

इतना ही नहीं केशव रामेश्वर तीर्थ का महत्त्व, अब तुलसी और स्पष्ट स भव सागर तरन की बात भी कहते हैं—

उरते शिव मूरति श्रीपति लीन्ही
शुभ सेतु के मूल अधिष्ठित कीन्ही
इनको दरस परस पग जोई
भवसागर को तरि पार सो होई' [3]

यह तो रहा रामेश्वर तीर्थ का महत्त्व, अब तुलसी की विनयपत्रिका म काशी के महत्त्व को भी देखिए—

सेइय सहित सनेह देहभरि, कामधेनु कलि कासी
समनि सोक सताप पाप रुज, सकल सुमगल रासी
मरजादा चहु ओर चरनवर, सेवत सुर पुर बासी
तीरथ सब सुभ अग रोम सिव लिंग अमित अविनासी' [4]

मध्यकालीन सत कवि भी शवो के तीर्थ स्थानो के महत्त्व से परिचित रहते रहे हैं। उन्होने तीर्थ के महत्त्व को तो माना है पर वे तीर्थों मे विश्वास न करके भी तीर्थों के तत्कालीन महत्त्व का प्रकाशन करते हैं। कबीर द्वारा वर्णित त्रिवेणी इसी उक्ति को प्रमाणित करती है—

त्रिवेणी मनहि न्हवाइये
सुरति मिल जो हाथि रे।' [5]

---

१ मानस, लकाकाण्ड, पृ० ८६२।
२ केशवदास, रामचन्द्रिका पृ० २७८।
३ वही, पृ० २७८।
४ विनयपत्रिका, (वियोगी हरि द्वारा सम्पादित काशी स्तुति), पद २२।
५ कबीर ग्रन्थावली—पृ० ८८।

कबीर की काशी भी तो ऐसी ही है—

काया कासी खोजे बास,
तहा जोति सरुप भयो परकास"[१]

हिन्दी कवियों ने शिवपूजा की सामग्री मे अनेक नामों का उल्लेख किया है। शैवमत में सामग्री के सम्बन्ध मे एक बड़ी फेहरिस्त पूजा के उपकरण मिलती है किन्तु हिन्दी कवियों ने ऐसी कोई फेहरिस्त तो तैयार नहीं की फिर भी इस फेहरिस्त की नामावली का अपनी स्तुतिप्राप्त रचनाओं में अन्य प्रसंगों में अवश्य किया है। संत लोग भी अपनी मानसी उपासना में इन उपकरणों को नहीं भुला सके। इस सम्बन्ध में उन पर केवल संस्कारों से पड़ने वाले प्रभाव को ही देख सकते हैं—जो ऐसे संस्कार जो या तो सामाजिक प्रथाओं को देखने से या दूसरों से सुनने से पड़ते हैं। शिव की पूजा में बिल्वपत्र के साथ जल का विशेष महत्त्व है। कबीर वाणी में इन उपकरणों को देखिए—

"देवल माहे देहुरी, तिल जेहे विस्तार
माहे पाती मांहि जल, माहे पूजण हार[२]

यहां शिव भक्ति पद्धति के अनुसार उपकरण वर्णन किया है।

बिल्वपत्र ही नहीं आक धतूर के फूल पत्ते[३] भी शिवोपासना के उपकरणों में सम्मिलित हैं। तुलसी कवितावली में आक के पत्तों के महत्त्व का इस प्रकार वर्णन है—

'देत न अघात रीझि जात पात आक ही के'[४]

धतूर के पत्तों के महत्त्व का तुलसी ने कवितावली में इस प्रकार वर्णन किया है

'पात द्वै धतूरे के मोरे के भवेसस।
सुरेसहु की सपदा सुभाय सो न लेत रे'[५]

शिव के अवढरदानी होने के प्रसंग में ही तुलसी बिल्व पत्र के महत्त्व को इस प्रकार स्वीकार करते हैं—

---

१ वही, पृ० २१३।
२ कबीर ग्रन्थावली पृ० १५।
३ सकाम शिवपूजन पृ० ६१०।
४ कवितावली—पृ० २०५।
५ वही, पृ० २०७।

'जाने बिनु जाने, के रिसाने, केलि कबहुंक
सिवहि चढाये ह्वै हैं बेल के पतेवा द्वै"[१]

पत्ता के साथ जल का महत्त्व भी तुलसी ने इस प्रकार बतलाया है—

'श्राक के पतोवा चारि, फूल के धतूरे द्वै
दीन्हे ह्वैहैं धारक पुरारि पर डारिके"[२]

रीतिकालीन कवियों की भक्ति धारा में भी प्राय परम्परागत उपकरणों का उल्लेख हुआ है। धतूरे और आक के फूलों के महत्त्व को सेनापति इस प्रकार प्रकाशित करते हैं—

'होउ तू दुखित, जोग जाग मे निपट के
चाहत धतूरे अरु आक के कुसुम द्वैक
जिन्हें लेत कोइ कहूं भूलि हू न हटक
सेनापति सेवक को चारि बरदानि
देव देत है समृद्धि जो पुरंदर के खटक"[३]

शिव 'अवढर दानी' हैं। अन्य देवताओं की अपेक्षा वे धतूरे और 'आक' के पुष्प से ही प्रसन्न हो जाते हैं। यही उनका गुरुत्व है। शिवपुराण में शिवपूजा के बहुत से उपकरणों का उल्लेख हुआ है फिर भी आक और धतूर के पुष्पों से शिव के प्रसन्न होने की बात भी कही गयी है। मध्यकालीन हिन्दी के कवियों ने शिवपूजन में आक और धतूरे के पुष्पों का महत्त्व बतलाकर शिव पुराण का अनुकरण किया है। अतएव कहा जा सकता है कि इस युग के कवि शिवपूजन सामग्री का वर्णन करने में शैव परम्परा से दूर नहीं गए हैं।

अंतरंग भक्ति

अंतरंग भक्ति का सम्बन्ध ज्ञानेतर विधान में है जिसमें भक्त और भगवान का सम्बन्ध पूजा के बाह्य विधान की सीमा पार कर उत्तरोत्तर रागानुगा और पराभक्ति की ओर अग्रसर होता है। अंतरंग भक्ति में भक्त भगवान् से दास्य अथवा सख्य सम्बन्ध स्थापित कर आत्मनिवेदन करता है। शिवपुराण में कहा गया है ईश्वर मान्य या अमान्य जो कुछ भी करता है वह सब मेरे मंगल के लिए

---

१ कवितावली पृ० २०८ ।
२ वही पृ० २०६ ।
३ सेनापति कवित्तरत्नाकर पृ० १११ ।

ही है।[1] ऐसा दृढ विश्वास रखना 'सत्य' भक्ति का लक्षण है। अपन निर्वाह की चिन्ता से भी रहित हो जाना आत्मसमपरण कहलाता है। भक्ति साधना का अन्तिम सोपान आत्मसमपरण है। मध्ययुगीन हिन्दी भक्ति काव्य म आत्म समपरण की भावना का विशद वरणन हुआ है। शवेतर भक्तो ने शिव क चरणा म भी उसी प्रकार आत्म निवेदन किया है जिस प्रकार अपने आराध्य भगवान विष्णु के चरणा म सत तुलसी शिव से आत्मनिवेदन करते हैं—

जलज नयन गुन अयन, मयन रिपु महिमा जान न कोई
बिनु तव कृपा राम पद पकज सपनेहु भगति न होई
अहि भूषन दूषन रिपु-सेवक, देव-देव त्रिपुरारी
मोह-निहार-दिवाकर सकर सरन सोक भयहारी"[2]

सगीतन कवि वजू ने शिव भक्ति म विश्वास कर उसी को प्राप्त करना चाहा है

वषभ वाहन ताके गोरी अरघग गहडगामी
गोपीनाथ हरिहर रट
बजू प्रभु हरिहर निशदिन ध्यान धर छाड दे
जग की सब खट पट रे"[3]

तानसन भी शिव चरणा म नम्र निवेदन करते हैं—

हों ओंकार महादेव शकर तुम सकल कला पूरन
करत आस।
निहचही धरत ध्यान सुमरन कर मनमान देखत
दरशन गयो त्रास।
हरिदुख दद सोहत जटा गग रुड माल सोहो
बाघबर वास।
तानसेन वाके ध्याव तन मन इच्छा फल पाय
होय कलास निवास।"[4]

---

१ मगलामगल यद यत करोतीतीश्वरो हि मे
सव तन्मगलायेति विश्वास सत्यलक्षणम।
शि० पु० रू० स० स० ख० २३।३२।

२ विनयपत्रिका, पृ० ११।

३ नमदेश्वर चतर्वेदा–सगीतज्ञ कवियों की हिन्दी रचनाए पृ० ६७।

रीतिकालीन कृष्ण भक्त कवि गुलाब राव ने भी शिव भक्ति से प्रेरित हो शिव चरणों म आत्मनिवेदन किया है—

> मेरी साह करो त्रिपुरारी ।
> गिरिजा बल्लभ भूतन के पत भुजग भूषण धारी
> डुबो जा रहो भव सागर मो करिये उपाय गजारी
> माया मगरो पाय पकरतो जातें शभु पुकारी
> ज्ञानेश्वर बालाको विनती होवे कांत मुरारी'[1]

आत्म निवदन भक्त को भगवान के समीपतर लाता है। भक्त इस स्थिति म केवल भगवान की भक्ति चाहता है। गुलाबराव शिव की अनन्य भक्ति की आकाक्षा रखते हुए कहते है—

> "मेरे हिय सुरत बसो सांब शूल पाणि
> गगाधर नदिवाहन सदपवग दानी
> जरतिहू मे चितानल मायो भवग्लानी
> दीन के दयाल तुमही सकल हृदय ज्ञानी
> हो विरागि नदपि कीन्हि अधतनु भवानी
> कहे कुमर छोर दियो वर बिनु भय खानी
> जय गिरिजा बल्लभ गुरु जाय करुणाखानी
> ज्ञानेश्वर रूपधरो राखो शिर पानी"[2]

मध्यकालीन सगुण भक्त कवियो को विष्णु भक्ति के साथ साथ शिव भक्ति भी प्रिय रही है। शिव से आत्म निवेदन कर उन्होने शव भक्ति क प्रभाव का स्वीकार किया है। जसा कि अन्यत्र कहा जा चुका है शव और वष्णव भक्ति क मूल तत्वा म भिन्नता नही है केवल उनके विस्तार मे ही अन्तर कहा जा सकता है अत मध्यकालीन भक्ति काव्य पर शव भक्ति का प्रभाव अपरोक्ष रूप म रहा है कहा जा सकता है।

निष्कर्ष भक्ति भक्त और भगवान् के बीच का सम्बन्ध है जिसे भक्त अपनी योग्यता के अनुसार दृढ़ बनाता है। भक्ति भक्त का सुनिश्चित लक्ष्य है। भक्ति म भक्त मोक्ष की भी कामना छोड कर यही चाहता है कि उसके हृदय म उमडती हुई प्रेम की लहर भगवान् के चरण रस निधि म मिलती रहे। इसी म उसका आनन्द है और

१ डा० विनयमोहन शर्मा-हिन्दी को मराठी कवियो की देन पृ० ४५१ ।
२ वही, पृ० ४५१ ।

यही उनकी मान्यता है। निर्गुण और सगुण काव्य में उपासकों के गुणों का जो वर्णन हुआ है वह किसी एक सम्प्रदाय के प्रभाव का परिणाम नहीं है उसमें शैव और वैष्णव दोनों परम्पराओं का योग रहा है।

इस युग के शैवेतर कवियों ने न केवल शिव के विभिन्न नामों का उल्लेख किया है अपितु शिव के विभिन्न नामों की भूमिका में स्वीकृत उनके गुण और रूप का जो चित्र प्रस्तुत किया है उसे शिव के पौराणिक स्वरूप की तुला पर तोला जा सकता है। इसके अतिरिक्त इस युग के काव्य में शिव की फलदता का विशद वर्णन शैवों की परम्परा में ही हुआ है। शैवेतर भक्त कवियों ने शिव के नाम रूप और गुण के श्रवण, कीर्तन और मनन को अपने उपास्य के नाम रूप और गुण के कीर्तन के समान ही महत्त्व दिया है। सगुण भक्त कवियों ने न केवल शिव के नाम गुण और रूप का श्रवण मनन किया है अपितु उनसे सम्बद्ध तीर्थ स्थानों के प्रति अपना अगाध विश्वास भी प्रकट किया है। वे शिव की फलदता से प्रभावित हैं तथा उनकी पूजा के उपकरणों का उल्लेख भी शैव प्रभाव के परिपार्श्व में करते हैं। जैसा कि अन्यत्र कहा जा चुका है शैव और वैष्णव भक्ति का मूल तत्त्व एकसा है। फिर भी शैवों ने शिव को आराध्य माना है सखा नहीं। मध्ययुग की कविता में भी शिव आराध्य रूप में ही दृष्टिगत होते हैं।

आलोच्ययुग के कवियों ने आराध्य शिव के चरणों में आत्मनिवेदन कर संतोष अनुभव किया है। शिव की फलदता से प्रेरणा पायी है उनकी शरण में आतंर सुख का अनुभव किया है। यह भी स्पष्ट ही है कि मध्यकालीन कवियों ने शिव के नाम, रूप और गुण का वर्णन परम्परानुभुक्त रूप में ही किया। अतएव यह कहना अनुचित न होगा कि आलोच्य युग के काव्य पर शैवभक्ति का अपरोक्ष प्रभाव है।

———

अध्याय ६

साहित्य का प्रभाव

मध्यकालीन हिंदी कविता को जो ठाकुर विद्यापति से लेकर भारतेंदु काल तक पहुँचती है प्रमुखत दो रूपो मे विभक्त किया जा सकता है—प्रबन्ध एव मुक्तक। प्रबन्ध के सम्बन्ध निर्वाह कथा के गम्भीर मार्मिक स्थलो की पहचान और दृश्यो की स्थानगत विशेषता का होना अनिवार्य है। उसमे एक उद्देश्य सम्मिलित रहता है तथा प्रमुख रस का सचार उसी की ओर होता है। उसमे प्रमुख कथा के सम्बन्ध से अन्य प्रसगो का भी उल्लेख रहता है किन्तु मुक्तक छन्दो म पूर्वापर सम्बन्ध की आवश्यकता नही क्योकि उसमे कोई कथा सूत्र नही रहता। मध्यकाल म हिन्दी मे बहुत अधिक प्रबन्ध नही लिखे गये और जो लिखे गये उनम भी महाकाव्य बहुत थोडे है। यो तो सूफी कवियो ने भी प्रबन्ध काव्य लिखे हैं किन्तु उनका स्वरूप भारतीय प्रबन्ध परम्परा के अतगत नही लिया जा सकता। वे मसनवी ढग की रचनाए है और उनम लोक प्रचलित कथाओ को ही अपनाया गया है उनम शिव कथाओ के लिए कोइ अवकाश नही रहा है। हा सूफी प्रबन्ध काव्यो की कथाए भारतीय जन जीवन होन स लोक प्रचलित प्रसगो स सम्पृक्त अवश्य हो गयी हैं। जिस प्रकार प्राय दादी नानी की कहानियो म असहाय की सहायता करने के लिए शिव और पार्वती के वर्णन का उपयोग किया जाता है उसी प्रकार का उपयोग सूफी कवियो न अपने काव्य म अनेक स्थानो पर किया है। सूफी प्रेमाख्यानक काव्यो म शिव पार्वती अलौकिक पात्र रूप म विद्यमान हैं। इनका प्रयोग लेखको ने तीन प्रयोजन स किया प्रतीत होता है—वरदान देकर सतान देना अन्य पात्रो की परीक्षा लेना प्रेम पथ के पथिको की सहायता करना। जायसी के पद्मावत म मठ अथवा समुद्र के प्रसग म शिव के ऐसे ही प्रसग आए हैं। इनके अतिरिक्त कहा कही योग-परक रहस्यवाद की प्रतीकात्मक शब्दावली म भी शिव-पार्वती या शिव शक्ति मिलन आदि प्रसगो का समावेश हुआ है।

समस्त मुक्तक काव्य मुक्तक रूप म है उसमे दार्शनिक और भावात्मक उक्तियो के अतिरिक्त कुछ समाज सुधारात्मक उक्तिया भी हैं। इनकी स्फुट

रचनाओं में कथा प्रसंगों के समावेश के लिए कोई गुंजाइश नहीं थी किन्तु योग की रहस्यमयी भाषा में सन्त कवियों ने भी प्रतीकों के रूप में शिव शक्ति के मिलन की, शिव की नगरी वाराणसी की अथवा शिव के स्थान कैलास की बात की है। इसके अतिरिक्त अवधूत आदि शब्दों को शैवमत की परम्परा में लेकर उन्होंने अपनी उक्तियों में टांक लिया है। फिर भी इनका अवधूत परम्परागत अवधूत से भिन्न हो गया है।

मध्यकालीन सगुणधारा के कवियों की रचनाएं प्रबन्ध और मुक्तक दो रूपों में ही मिलती हैं। यह तो ऊपर कहा जा चुका है कि मध्यकालीन प्रबन्ध रचनाएं जिनमें शिवकथाएं आई हैं बहुत थोड़ी हैं। फिर भी प्रमुखता और प्रासंगिकता की दृष्टि से शिवकथाओं के दो भेद किए जा सकते हैं—एक तो प्रमुख दूसरी प्रासंगिक। इसके अतिरिक्त मुक्तकों में शिव से सम्बन्धित कथाएं स्तोत्रों में और दूसरे सामान्य मुक्तकों में भी आई हैं। इन स्थलों पर प्रसंग संकेत भी लिखते हैं।

प्रमुख कथाएं

अन्यत्र कहा जा चुका है कि शिव और उनके परिवार से सम्बन्ध प्रमुख कथाएं सती और पार्वती की कथाएं हैं। सतीकथा में सती का मोह, सती का मानसिक त्याग और दक्ष-यज्ञ विध्वंस तथा सती का योगाग्नि में भस्म होना आदि प्रसंग उल्लेखनीय हैं। पार्वती कथा में पार्वती जन्म, पार्वती तपस्या, तारकासुरवध, मदन-दहन और पार्वती परिणय आदि कथाओं को सम्मिलित किया जाता है। शिवपुराण गत नारद मोह कथा भी मध्यकालीन हिन्दी काव्य का विषय बनी है। इस युग के काव्य में उक्त कथाएं प्रायः प्रसंग रूप में तथा प्रासंगिक संकेत के रूप में ही आई हैं प्रमुख कथा के रूप में तो इनका विनिवेश बहुत कम हुआ है।

प्रमुख कथा

आलोच्य काल में शिव से सम्बद्ध अनेक कथा काव्यों का सृजन हुआ जिनका प्रमुख विषय पार्वती परिणय है। इनमें शिव को नायक का पद मिला है। तुलसी कृत पार्वती मंगल, गोरधन दास कृत शिव ब्यावलो और कवि किसनउ कृत महादेव पारवती री वेलि काव्य इसी परम्परा के अन्तर्गत आते हैं।

पार्वती मंगल और शिव ब्यावलो की कथा पार्वती अवतार, उसकी तपस्या और विवाह तक सीमित है। हां महादेव पारवती री वेलि में सती प्रकरण और संगर कथा का भी समावेश हुआ है। इन काव्यों की कथावस्तु में शैव कथाओं से कुछ मौलिक भेद भी दिखलाई पड़ता है परन्तु उन पर शिव पुराण एवं कुमार सम्भव का प्रभाव भी स्पष्ट है।

शिवपुराण[1] के अनुकरण पर पार्वतीमंगल में पार्वती के उत्पन्न होने पर उनके अद्भुत प्रभाव का वर्णन हुआ है। पर्वतों में हिमवान् का प्रमुख स्थान है। वे गुणाकार हैं। उनकी पत्नी मेना भी तीनों लोकों की स्त्रियों में सर्वश्रेष्ठ हैं। जब से पार्वती उत्पन्न हुई, उनके यहा ऋद्धि सिद्धियां और अभिनव सम्पत्तियों का निवास है। पार्वती की अलौकिक महिमा का वर्णन करते हुए तुलसी ने लिखा है—

पार्वती मंगल

> 'मंगल खानि भवानि प्रकट जब ते भइ
> तब त रिधि सिधि संपति गिरि गृह नित नइ"[2]

उनके प्रभाव से न केवल माता पिता के सौभाग्य में वृद्धि हो रही थी अपितु सारा वातावरण ही मंगलमय और मोदमय बना हुआ था। तुलसी कृत 'उमा-जन्म प्रभाव' का वर्णन कालिदास के कुमार सम्भव के अनुरूप है।[3] पार्वती मंगल मे तुलसी कहते हैं—

> नित नव सकल कल्यान, मंगल मोदमय मुनि मानहीं
> ब्रह्मादि सुर नर नाग अति अनुराग भाग बखानहीं
> पितु मातु प्रिय परिवारु हरषहिं निरखि पालहीं लालहीं
> सित पाख बाढ़ति चंद्रिका जनु चंद्रभूषन मालहीं"[4]

शिवपुराण[5] के अनुरूप ही 'पार्वती मंगल' मे नारद राजा हिमवान् के घर आते हैं। वहा उनका खूब आदर सत्कार होता है—

---

१ शिव पुराण-रुद्र संहिता-पार्वती खंड अ० ७।

२ पार्वती मंगल-१।८ पृ० ६।

३ प्रभामहत्या शिखयेव दीपस्त्रिमार्गयेव त्रिदिवस्य मार्ग
संस्कारवत्येव गिरा मनीषी तया स पूतश्च विभूषितश्च।

कुमार सम्भव सर्ग १।२८।

४ पार्वती मंगल-१। पृ० ६।

५ एक समय की बात है नारद राजा हिमाचल के घर गए। गिरिराज हिमालय ने उनकी पूजा की और अपनी पुत्री को बुलाकर नारद के चरणों में प्रणाम करवाया।

शिवपुराण रु० सं० पा० ख० अ० ७।

"एक समय हिमवान भवन नारद गए
गिरि वर मैना मुदित मुनिहि पूजत भए'[1]

राजा ने पावती को बुलवा कर, ऋषि के चरणो म सादर अभिवादन[2] करवाया तथा पावती के मावी पति के लिए पूछा। शिवपुराण[3] मे भी इसी प्रकार का वणन मिलता है—

"अति सनेह सति भाँय पाय परि पुनि पुनि
कह मना मृदु वचन सुनिय बिनती मुनि
तुम त्रिभुवन तिहु काल विचार विसारद
पारवती अनुरूप कहिए वर नारद।"[4]

नारद का उत्तर शिवपुराण[5] का शब्दानुवाद कहा जा सकता है। मगल म नारद का उत्तर इस प्रकार है—

'मोरेहू मन अस आव मिलिहि वर बाउर
लखि नारद नारदी उमहि सुख मा उर'[6]

नारद की भविष्यवाणी को सुनकर दम्पति के दुख का चित्रण जिस प्रकार पावती मगल मे हुआ है उसी प्रकार शिवपुराण[7] मे भी मिलता है।

'सुनि सहमे परि पाइ कहत भए दपति
गिरिजहि लगे हमार जिवनु सुख सपति'[8]

---

१ पावती मगल १।१०, पृ० ७।

२ 'उमहि बोलि रिषि पगन मातु मेलत भई'
पावती मगल १।११ पृ० ७।

३ हिमाचल ने नारद से पूछा कि 'हे ब्रह्मपुत्रों में सवश्रेष्ठ ज्ञानवान प्रभो मेरी पुत्री की ज मकुण्डली जो मे गुण दोष हो उसे बतलाइये। मेरी बेटी किसकी सौभाग्यवती प्रिय पत्नी होगी ?
शिवपुराण रु० स० पा० ख० अ० ७।

४ पावतीमगल १।१४, पृ० ८

५ शिवपुराण रु० स० पा० ख० अ० ७।

६ पावतीमगल २।१८ पृ० ६।

७ नारद की बात सुन और सत्य मानकर मेना तथा हिमाचल दोनो बहुत दुखित हुए। हिमवान ने मुनि से पुत्री के कष्ट निवारण का उपाय पूछा।
शिवपुराण रु० स० पा० ख० अ० ७।

८ पावतीमगल २।१८, पृ० ६।

इसके अनन्तर नारद के आदेशानुसार राजा हिमवान् और मनका ने पार्वती को तपस्या का आदेश देकर तपस्या के लिए समस्त सामग्री सजा कर दी —

> 'सजि समाज गिरिराज दीन्ह सबु गिरिजहि
> बदति जननि जगदीस जुवति जनि सिरजहि
> जननी जनक उपदेश महेसहि सेवहि
> अति आदर अनुराग भगति मनु मेवहि '[1]

मगल का यह वर्णन भी शिवपुराण के प्रभाव में लिखा है ।

पार्वती माता पिता की आज्ञा से शिव चरणों के सेवन के लिए उनके पास विद्यमान थी ।[2] देवताओं ने अनुकूल अवसर देखकर कामदेव[3] को बुलाया । पार्वती मंगल का उक्त वर्णन भी शिवपुराण[4] के वर्णन की तुला पर तोला जा सकता है । कवि ने काम दहन और रति विलाप का वर्णन क्रमश और एक पंक्ति में कर दिया है जब कि शिवपुराण में इसका विस्तृत वर्णन है तथापि पार्वती मंगल पर उसके प्रभाव को भुलाया नहीं जा सकता ।

पार्वती मंगल में शिवपुराण[5] के अनुकरण पर कामदहन के उपरान्त शिव अन्यत्र चले जाते हैं—

> 'आसुतोष परितोष कीन्ह वर दीन्हेउ
> सिव उदास तजि बास अनत गम कीन्हेउ '[6]

शिव के अन्यत्र चले जाने पर पार्वती प्रेमवश व्याकुल हो गयी । सखियों ने घर

---

१ पार्वतीमंगल—२।२३ २४।

२ सेवहि भगति मन वचन करम अनन्य गति हर चरन की
गौरव सनेह सकोच सेवा जाइ केहि विधि वरन की ।
वही ३। पृ० १० ।

३ वही, ३।२५ ।

४ शंभुश्चगिरिराजे वतप परममास्थित ।
तत्समीपे च सेवाय पार्वती सखिसंयुता
तिष्ठतिचमहाराज पित्राज्ञयाभयाश्रुतम ।
शि० पु० पा० स० १०।४६ ।

५ शिवोऽपितत्क्षणादेव विहाया श्रममन्यत
शिवपुराण ज्ञा० स० १२।८ ।

६ पार्वतीमंगल ३।२८ पृ० ११ ।

घर जाकर उनकी व्याकुलता का सन्देश[1] सुनाया, जिसे सुनकर पार्वती के माता पिता बहुत दुखी हुए। शिव के अन्यत्र चले जाने पर पार्वती कठिन तपस्या करने लगी।

'तजेउ भोग जिमि रोग लोग अहिगन जनु
मुनि मनसहु ते अगम तपहिं लायो मनु'[2]

पार्वती मंगल का उक्त वर्णन शिवपुराण[3] और कुमारसम्भव[4] की छाया में लिखा गया है। वहाँ भी कामदहन के उपरान्त, शिव के अन्यत्र चले जाने पर पार्वती कठिन तपस्या में संलग्न हो जाती है। कुमारसम्भव[5] के अनुरूप पार्वती मंगल में शिव बटु वेश धारण कर 'उमा' की परीक्षा लेते हैं—

'बटु वेष पेखन पेम पनु व्रत नेम ससि सेखर गए
मनसहि समरपेउ आपु गिरिजहि बचन मृदु बोलत भए'[6]

पार्वती की दशा लखकर शिव बहुत दुखी हुए। बटु वेशधारी शिव ने पार्वती से कहा—

'मोरें जान कलेस करिय बिनु काजहि
सुधा कि रोगिहि चाहइ रतन कि राजहि
लखि न परेउ तप कारन बटु हिम हारेउ'[7]

---

१ उमा नेह बस बिकल देह सुधि बुधि गई
कलप बेलि बन बढ़त बिषम हिम जनु दई
समाचार सब सखिन्ह जाइ घर घर कहे
सुनत मातु पितु परिजन दारुन दुख दहे।"
—पार्वतीमंगल ३।२९ ३०।

२ पार्वतीमंगल ४।३४, पृ० १३।

३ शिवपुराण—रुद्रसंहिता—पार्वती खंड, अ० २० २१।

४ इयेष सा कर्तुमवन्ध्यरूपतां समाधिमास्थाय तपोभिरात्मनः।
अवाप्यते वा कथमन्यथा द्वयं तथा विधं प्रेम पतिश्च तादृशः॥
—कुमारसम्भव—पंचम सर्ग २६।

५ निवार्यतामालि किमप्ययं बटुः पुनर्विवक्षुः स्फुरितोत्तराधरः।
न केवलं यो महतोपभाषते शृणोति तस्मादपि यः स पापभाक्॥
—वही ५।८६।

६ पार्वतीमंगल ५। पृ० १५।

७ वही, ५।४८ पृ० १६।

पावती मगल के उक्त प्रसग की तुलना शिवपुराणगत[1] प्रसग म का जा सकता है। वहा भी शिव 'बटु वेश धारण कर तपस्या म लीन पावती क पास जात है। उनम वार्तालाप भी हाता है। इस प्रसग म तुलसी ने कालिदास क कुमारसम्भव[2] का भी अनुकरण किया है। कुमारसम्भव म पावती क अविचल प्रेम से मुग्ध हो शिव प्रगट हात हैं और विवश हा कहते हैं—तवास्मि दास क्रीतस्तपोभि[3] पावतीमगल म शिव का कथन पावती। तप प्रेम मोल मोहि ली हउ[4] पूर्वोक्त कथन का अनुवाद मात्र प्रतीत हाता है। सखिया शिव स पावती की स्थिति का वणन करती हैं—

'परि पाय सखि मुख कहि जनायो आपु आप अधीनता'[5]

इसके अनन्तर विवाह निश्चित करन के लिए शिव का सप्त ऋषिया को बुला कर[6] हिमवान् के पास भेजना हिमवान् द्वारा उनका स्वागत[7] तथा विवाह[8] की तिथि निश्चित करके लौटना प्रकरण शिवपुराण[9] के अनुकरण पर लिख गय है।

---

१ शिवपुराण—रु० स० पा० ख० अ० २६।
२ कुमारसम्भव—पचसग—श्लोक ८३।
३ वही, ५।८६।
४ पावतीमगल—८।७३ पृ० २३।
५ वही—६ पृ० २३।
६ सिव सुमिरे मुनि सात आइ सिर नाइहि
 कीन्ह सभु सनमानु जन्म फल पाइन्हि। —वही ६।७५, पृ० २३।
७ गिरि गेह गे अति नेह आदर पूजि पहुनाई करी
 घरवात घरनि समेत कन्या आनि सब आगे धरी।
 —वही १० पृ० २५।
८ सुखपाइ बात चलाइ सुदिन सोधाइ गिरिहि सिखाइ के
 रिषि सात प्रातहि चले प्रमुदित ललित लगन लिखाइके।
 —वही १० पृ० २५।
९ तस्माद्भवतोगच्छतु हिमाचल गृह ध्रुवम्।
 तत्रगत्वा हिमवेततत्पपरनीतुपुनस्तथा। शि० पु० ज्ञा० स० १५।४१।
 ततश्चते चतुर्थे हि ननिर्धा येलग्नमुत्तमम।
 परस्परचसहृतस्यजग्मुस्ते शिवसन्निधिम। —वही १५।८७।

पार्वती मंगल में शिव की बारात,[1] वर का वर्णन,[2] मेना का मोह[3] शिव का दिव्य रूप[4] में प्रकट होकर मेना का मोह निवारण द्वार पर मेनका[5] द्वारा नीराजन शिव पार्वती का पाणिग्रहण[6] प्रसंग भी शिवपुराण[7] के आधार पर लिखे गये हैं।

---

१ प्रमुदित गे अगवान विलोकि बरातहि
भभरे बनइ न रहत, न बनइ परातहि
चले भाजि गज बाजि फिरहिं नहिं फेरत
बालक भभरि भुलान फिरहि घर हेरत
—पार्वती मंगल १२। १०३, १०४ पृ० ३०।

२ प्रेत बेताल बराती भूत भयानक
बरद चढा कर बाउर सबइ सुबानक। —वही १२।१०६।

३ उर लाइ उमहि अनेक विधि जलपति, जननि दुख मानई।
—वही १३।–पृ० ३१।

४ हिमवान कहेउ इसान महिमा अगम निगम न जानहिं

सुनि मैना भइ सुभन सखी देखन चली। —वही १३।१०९ पृ० ३१।

५ सुख सिंधु मगन उतारि आरति करि निछावर निरखि के
युग अरघ जसन प्रसून भरि लेइ चलीं मडप हरषि क
हिमवान दीन्हे उचित आसन सकल सुर सनमानि के
तेहि समय साज समाज सब राखे सुमडप आनि क।
—वही १४ पृ० ३४।

६ वर दुलहिनिहि विलोकि सकल मन रहसहि
साखोच्चार समय सब सुर मुनि बिहसहि
लोक वेद विधि कीन्ह लीन्ह जल कुस कर
कन्यादान सकल्प कीन्ह धरनीधर —वही १४।१२९,१३० पृ० ३५।

७ तान दृष्ट्वाहृदयतस्या शीणमासीत्समाकुलम।
तन्मध्येशकर देव निगुणगुणवत्तरम।
वपभस्यपचवक्त्र त्रिनेत्र भूति भूषितम।
—शिवपुराण ज्ञा० स० १९।७४।
सापपाततदाभूमौ मेनादुःख भरासती।
किमिदच–कृतदष्टेधिक्त्वामाच दुराग्रहे। —वही १५।७८।
तस्यास्तु कोमल किंचि मनोविप्लवप्रबोधितम। —वही १८।१६।

पार्वती मंगल के उक्त प्रसंग की तुलना शिवपुराणगत[1] प्रसंग से की जा सकती है। वहां भी शिव 'बटु' वेश धारण कर तपस्या में लीन पार्वती के पास जाते हैं। उनमें वार्तालाप भी होता है। इस प्रसंग में तुलसी ने कालिदास के कुमारसम्भव[2] का भी अनुकरण किया है। कुमारसम्भव में पार्वती के अविचल प्रेम से मुग्ध हो शिव प्रगट होते हैं और विवश हो कहते हैं—तवास्मि दास क्रीतस्तपोभि[3] पार्वतीमंगल में शिव का कथन पार्वती। 'तप प्रेम मोल मोहि ली हउं[4] पूर्वोक्त कथन का अनुवाद मात्र प्रतीत होता है। सखियां शिव से पार्वती की स्थिति का वर्णन करती हैं—

'परि पायं सखि मुख कहि जनायो आपु आप अधीनता '[5]

इसके अनन्तर विवाह निश्चित करने के लिए शिव का सप्त ऋषियों को बुलाकर[6] हिमवान् के पास भेजना हिमवान् द्वारा उनका स्वागत[7] तथा विवाह[8] की तिथि निश्चित करके लौटना प्रकरण शिवपुराण[9] के अनुकरण पर लिखे गये हैं।

---

१ शिवपुराण-रु० सं० पा० ख० अ० २६।

२ कुमारसम्भव-पंचसर्ग-श्लोक ८३।

३ वही, ५।८६।

४ पार्वतीमंगल-८।७३ पृ० २३।

५ वही-६ पृ० २३।

६ सिव सुमिरे मुनि सात आइ सिर नाइन्हि
कीन्ह संभु सनमानु जन्म फल पाइन्हि। —वही ६।७५ पृ० २३।

७ गिरि गेह गे अति नेह आदर पूजि पहुनाई करी
घरवात घरनि समेत कन्या आनि सब आगे धरी।
—वही १० पृ० २५।

८ सुखपाइ बात चलाइ सुदिन सोधाइ गिरिहि सिखाइ कै
रिषि सात प्रातहिं चले प्रमुदित ललित लगन लिखाइ कै।
—वही, १० पृ० २५।

९ तस्मादभवतोगच्छन्तु हिमाचल गृह ध्रुवम्।
तत्रगत्वा हिमवेतत्परनीं तुपुनस्तथा। शि० पु० ज्ञा० सं० १५।४१।
ततश्चते चतुर्थे हि नर्निर्धा र्येलग्नमुत्तमम्।
परस्परचसहृतम्यजग्मुस्ते शिवसन्निधिम। —वही १५।८७।

पार्वती मंगल में शिव की बारात[1] वर का वर्णन,[2] मेना का मोह[3] शिव का दिव्य रूप[4] में प्रकट होकर मेना का मोह निवारण द्वार पर मेनका[5] द्वारा नीराजन शिव पार्वती का पाणिग्रहण[6] प्रसंग भी शिवपुराण[7] के आधार पर लिखे गये हैं।

---

१ प्रमुदित गे अगलान विलोकि बरातहिं
भभरे बनइ न रहत, न बनइ परातहिं
चले भाजि गज बाजि फिरहिं नहिं फेरत
बालक भभरि भुलान फिरहिं घर हेरत
—पार्वती मंगल १२। १०३, १०४ पृ० ३०।

२ प्रेत बेताल बराती भूत भयानक
बरद चढ़ा वर बाउर सबइ सुबानक। —वही १२।१०६।

३ उर लाइ उमहि अनेक विधि जलपति, जननि दुख मानई।
—वही १३।-पृ० ३१।

४ हिमवान कहेउ इसान महिमा अगम निगम न जानहिं

सुनि मैना भइ सुमन सखी देखन चली। —वही १३।१०९ पृ० ३१।

५ सुख सिंधु मगन उतारि आरति करि निछावर निरखि के
युग अरध जसन प्रसून भरि लेइ चलीं मंडप हरषि के
हिमवान दीन्हे उचित आसन सकल सुर सनमानि के
तेहि समय साज समाज सब राखे सुमंडप आनि के।
—वही १४ पृ० ३४।

६ वर दुलहिनिहि विलोकि सकल मन रहसहिं
साखोच्चार समय सब सुर मुनि बिहसहिं
लोक वेद विधि कीन्ह लीन्ह जल कुस कर
कन्यादान सकल्प कीन्ह धरनीधर —वही १४।१२९,१३०, पृ० ३५।

७ तान दृष्ट्वाहृदयतस्या शीर्णमासीत्समाकुलम।
त मध्येशकर देव निर्गुणगुणवत्तरम।
वृषभस्थपञ्चवक्त्र त्रिनेत्र भूति भूषितम।
—शिवपुराण ज्ञा० स० १५।७४।
सापपाततदाभूमौ मेनादुःख भरासती।
विभिदच-कृतवृष्टेधिक्त्वामांच दुराग्रहे। —वही १५।७८।
तस्यास्तु कोमल किंचिन्मनोविध्नप्रबोधितम। —वही १८।१६।

पावती मगल म शिवपुराण तथा कुमारसम्भव का अनुकरण किया गया है फिर भी कवि की मौलिक देन की उपेक्षा नही की जा सकती। इस काव्य म पावती अथवा राजा हिमाचल के स्वप्न की कोई बात नही आई है।

यहा कवि न 'तारकासुर' प्रसग की ओर सकेत नही किया है। आधार ग्रथा म सत्रस्त देव ब्रह्म से विनय करते हैं और ब्रह्मा उन्ह युक्ति बतलाते हैं जिसे कार्यान्वित करने के लिए इन्द्र कामदेव को बुलाकर समाधिस्थ शिव के मन को क्षुब्ध करने के लिए भेजता है। पावती मगल म सब देव मिलकर मनोज को बुलाते हैं—

"देव देखि भल समय मनोज बुलायउ
कहेउ करिउ सुर काज साजु सजि आयउ"[1]

पावतीमगल म यद्यपि कथा का आधार कुमारसम्भव भी है तथापि तुलसी और कालिदास के आदर्शों[2] म भिन्नता भी स्पष्ट है। पावती मगल की कथा भक्ति भावना से प्रेरित है। श्रद्धा और भक्ति का प्रसार काव्य म पग पग पर हुआ है। तुलसी की उमा का आता हुआ देखकर देवता भी पूज्य भाव से प्रणाम करते है तथा अपने जन्म का सफल समझ कर सुखी होते हैं—

"आवत उमहि बिलोकि सीस सुर नावहि
भए कृतारथ जनम जानि सुख पावहि"[3]

निष्कष क रूप म यह कहा जा सकता है कि तुलसीकृत पावतीमगल का मूल आधार शिवपुराण है किन्तु कहीं कहीं कालिदास के कुमार सम्भव का प्रभाव भी स्पष्ट है।

शिव ब्यावलो—प्रमुख कथा पर आधारित ग्रन्थ काव्य शिव ब्यावलो है जिसम कवि न शिव-पावती विवाह के प्रसिद्ध आख्यान को लिया है। इस काव्य की कथा पर यद्यपि लोक व्यवहार का प्रभाव कम नही है तथापि उसका आधार शिवपुराण ही है।

कवि पावती क जन्म का वणन लोक व्यवहार के अनुरूप करता है—

'हेमाजल घर कन्या जाई, दान मान सा दीजे दाई
लावो बाटां लाग बधाई, मोत्यां आखा मोर मीठाई'[4]

---

१ पावतीमगल-३।२५-पृ० ११।
२ देखिए डा० सरनामसिंह शर्मा-हिन्दी साहित्य का सस्कृत साहित्य पर प्रभाव, पृ० ५८।
३ पावतीमगल-१४।१२७ पृ० ३५।
४ शिवब्यावलो-पद ६।

एक अन्य स्थल पर कवि ने गौरी अवतार के प्रभाव का वर्णन किया है जो शिवपुराण के प्रभाव में लिखा गया है—

> 'हेम नगर हरिया हुआ, गोर लिया ओतार
> गरि लिया अवतार, सहर पिए वस्या सवाया
> बालक खेले चिलत तमासा, महल मिंदर बिच भया उजासा।
> पलट्या वीर पड्या वासगा जे उजास बाई गोरा ऊगा [1]

पार्वती के जन्म और उनके अलौकिक प्रभाव के वर्णन की तुलना कुमारसम्भव[2] में वर्णित अलौकिक प्रभाव से की जा सकती है। पार्वती बड़ी होने पर केवल शिव का ध्यान करती है—

> "दावा देव न माने दूजा, परमेसर तरण करहे पूजा
> हिड्दे राखे हर विसवास, अलघण्या का करे उपास
> ईसर वर की राख आस"[3]

शिव ब्यावला' काव्य में नारद का आगमन, पार्वती की तपस्या काम दहन सप्तऋषियों द्वारा पार्वती के शिव के प्रति प्रेम की परीक्षा आदि प्रसंगों को नहीं अपनाया गया है।

लोक व्यवहारों को प्रशस्त करने की प्रवृत्ति शिव ब्यावलो' में कहीं दीख पड़ती है। कवि ने शिव-पार्वती की कथा को जन जीवन की कथा के रूप में अभिव्यक्त किया है। पार्वती के उत्पन्न होने पर ब्राह्मण बुलाया जाता है—

> बिपर पूछण धाय पठाई तेड़ी जाय बिपर ने ल्याई
> बिपर वेद वांच यो भाई किसा नखतरा कन्या जाई
> बिपर बाच्या वेद सवाई सरवर धार सभूरत जाई
> सती सावतरी लिछमी आई गग प र(व)ती था घर आई[4]

सम्भवतः यहां पण्डित से कवि का लक्ष्य शिवपुराण प्रथित नारद से रहा हो लेकिन 'धाय' द्वारा पण्डित का बुलवाना कवि की मौलिकता ही कही जा सकती है।

---

१ वही पद ८।
२ शिव ब्यावलो–पद १२।
३ कुमार सम्भव–प्रथमसर्ग–श्लोक २३ २८।
४ गोरधन–शिव ब्यावलो–पद ६।

पार्वती बड़ी होती है। उसकी शिक्षा का प्रबन्ध किया जाता है—

"आवो पिंडत, पोतासा बेसो, गोरी ग्यान भणावो
राजा वचन इमरत पु भणि मायरो भलो मणावो
वेद व्याकरण पढ़ हे गवरा कथे अगोचर ग्यान
पिंडत विचारो क्या करे, (बाई) चवद विद्यानिधान"[1]

इसका उल्लेख शिवपुराण अथवा कुमार सम्भव में कहीं नहीं मिलता है। यह कवि की मौलिक सूझ है। शिव ब्यावला में मैना के स्वप्न का उल्लेख है—

"सखा हे ! हम सपनो आई, जाए ईसर गोर परणाई
बड़ा बड़ा रथ मह रचाई सुरपत सुरपत हम पर आई
बाधल बेतो मे सजवाई, मुलटे साड मुरस दिपाई
जटा मुकुट में सरप रमाई चितल जोगी सरपण अ्याई
जटाधारी सो वेस जवाई अग बाघम्बर भसम रमाई"[2]

स्वप्न का उल्लेख शिव पुराण में अवश्य हुआ है किन्तु वहाँ राजा हिमवान् स्वप्न देखते हैं और स्वप्न के पश्चात् पार्वती को शिवाराधना के लिए भेजा जाता है। अतएव यह कहा जा सकता है कि शिव ब्यावलो में रानी मैना का स्वप्न मौलिक है। स्वप्न के आधार पर यहां राजा हिमवान् पंडित को शिव के पास भेजते हैं। गौरा शिव के स्वरूप एवं निवास स्थान का वर्णन करती हुई ब्राह्मण से कहती हैं—

'गवरां कह सांभलो हो ! बिरामण, मं आखू जे नाणा
उतरा खण्ड मे अटकस परवत जहाँ पर मेर मडाणा
आसण साय अडिग हर बठा, विरचक परण्या थाणा
जा दरवाजे देव बिराज सेव करे ससि भाणा
माण करण सी देही भलके सूरत नाथ सुजाना
हिवड हार हलावस बासग रुण्डमाल रलियाणा
नाथ साथ नादियो साथ, जे सिभू सहनाणा"[3]

इस वर्णन में भी शिवपुराण की छाया दृष्टिगत होती है किन्तु विस्तारों में कवि की मौलिक प्रतिभा भी स्फुरित हुई है। राजा हिमवान का आदेश प्राप्त कर पंडित शिव के पास जाता है और शिव प्रसन्नता के साथ विवाह के लिए जाने को तत्पर होते हैं—

---

१ गोरधन-शिव ब्यावलो-पद १२।
२ वही पद ६।
३ गोरधनदास-शिव ब्यावलो-पद २१।

'सकर भया सकोड, ईसर उदमाद उपन्ना
के सो करे किलोल रग राग मे मिन्ना
दालद कियो दूर दान बिपर न दीना
पचमुख हाल्या परणावा ग री गाजे गग'[1]

'परणए कारण नाथ पधारया आवध हाथ समाया
चवदे चकर जटा बिच पहरया मोहनि मुकट बणाया
बटवा घोटा मदन मेखली, भग भसमी अरचाया
बोला अमल अलावल घोल्या आक धतूरा खाया'[2]

विवाह के लिए शिव अकेले ही वृषभ पर आरूढ हो चल दिए। हिमवान् क नगर म पहुँच कर वे तालाब के पास बठ गए। कवि न यहा शिवपुराण के समान शिव की बारात उसके स्वागत आदि का वरान नही किया है। पार्वती की सखिया तालाब के किनारे बठे जोगी मे ईसर की बारात के लिए पूछती हैं। शिव क उत्तर म भी कवि की मौलिकता का निवाह हुआ है। सखिया पूछती है—

'ईसर जी री जान बतायो, म्है भोत करा मनवारी
खीर खाड सू पतर पूरा मनस्या भोजन त्यारो"

शिव क उत्तर म कवि की नवीनता दिखलाई पडती है—

'हमही लाडा हम ही जानी जावो जोवणहारी
हेमाजल घर रोप्यो, मैंडो(मे)परणू गौर तमारी'[3]

शिव क आगमन की सूचना राजा हिमवान् क घर पहुँचती है। मैना पार्वती का शिव स विवाह करने का तयार नही है। पार्वती मैना को समझाती है। कवि न इसी प्रसग म पार्वती और शिव का वार्तालाप भी दिखलाया है—

'सेस सया के साथ गवरजा, ओलबो बोलए हाली
था आया सू भया दूमना कोप न होयो राजो
मिल मिल सुदर मोसा बोलें सर्या आगल लाजी
माता बिलखी पिता ज बिलखा बिलखा सोर बिनूरा

---

१ गोरधनदास—शिवब्यालो—पद २८।
२ वही—पद २६।
३ वही—पद ३५, ३६।

हुँ थारो सब मत ने जाणु सब बाता सिव पूरा
जोगी जगम जान न लाया, लाया साथ सन्यासी
एकलडा काहे सू आया, जाय विराजो कासीं' [1]

गौरी के उपालम पर शिव ने सब देवताओं को विवाह के लिए निमन्त्रण भेजा। निमन्त्रण मे कवि की मौलिक सूझ देखिए—

' सकर कियो सुर ध्यान, सहज सू सूवो उपायो
सुवो चतर सुजाण माथ कर भलो भणायो
उड रे सूवा वहा यह जहा विष्णु विराजे
कर जोडी कर बीनती, सतरा सबद सुणाय
कसे(सू)हर ऐसें कहो, आवे सबे नगर को राह' [2]

इस काव्य म अभियक्त शिव का महत्त्व पावती की अलौकिकता और शिव के स्वरूप का वणन शिवपुराण की कथा के अनुरूप है। उक्त काव्य म कथा पक्ष की ओर से शिव के यहा ब्राह्मण का आगमन योगी वेश म शिव का राजा हमाचल के नगर म तालाब के किनारे पावती की सखियों से वार्तालाप पावती का उपालम, शिव की अलौकिक शक्ति द्वारा तोत का आविर्भाव तथा शिव का उसके द्वारा सब दवताओं को बारात म सम्मिलित हाने का निमन्त्रण भेजना प्रमग कवि की मौलिक सूझ है।

शिव यावलो की कथा म उक्त प्रसग मौलिक अवश्य है तथापि उम शव साहित्य की कथा से भिन्न कहना उचित न हागा।

महादेव-पावती रो वेलि — पावती परिणय सम्बन्धी अन्य काव्यों स कवि किसनउ कृत 'महादेव पावती री वलि भिन्न है। इसम कवि न शिव विवाह के दा दृश्य उपस्थित किए हैं। किन्तु वणना म विवाह सस्कार विवाह के उत्सव और दम्पति के भावो के चित्रण की ओर कवि का ध्यान नहीं गया है। उनका ध्यान किसी बात की ओर गया है तो वरी और दहेज वणन की ओर।

कवि न पावती के जन्म और उसके अलौकिक प्रभाव का सुदर वणन किया है। उनका कथन है—

---

१ वही, पद ५८, ५६।
२ वही—पद ८०।

भुजच्यारे रूप विराजइ भारी
घरहरतो घुलती घरा घाव
हेमाचल गिरवर चा सेहर
वसत तरणी रति एक वरणाव"[1]

कवि नायिका के नखशिख और आभरण सौन्दय के वरणन म रमता नात होता है। उसन उनके दीघ वरणन प्रस्तुत किए हैं। या तो इन अवसरो पर भी वह रूढ वरणन से भिन्न अपना माग नही निकाल सका है। कवि के शब्दो म पावती के नखशिख का वरणन कीजिय—

'पींडीया तणी ओपमा पुणता,
अतिभालो जोवता अनूप ।
मछि ताइ खिम्हे महोदधि माहे
रहीया थरक पकवा रूप ।
जघस्थल युग केलिग्रम जिसडा
नति जोवतां जिसा गजखभ
चितसालीव तइ चोतारह
कुनरण तरणा माडीया कुभ ।"[2]

कवि ने शिवपुराण की कथा के अनुरूप सती कथा का वरणन किया है। सती अपने पिता के यहा यन मे आती है। वहा वे शिव का अनादर न सह सकन के कारण प्राण त्यागती हैं—

"अण जाण करइ निंदा ईसर री
गह दाखइ देले गढ गाम
उ अपनउ शरीर ईय थी
किसउ सरीर तोये सू काम ।
तामस कोपउ सती तन त्यागण
आपरा गण चाढीयउ कच
हठकर पडी हुतासण माहे
बीजउ ही ज जगन कीपउ बज बध'[3]

---

१ महादेव पावती री वेलि–पद ६३ ।
२ वही–पद ५७ ५८ ।
३ वही, पद १८८, १८६ ।

कवि ने दक्ष यज्ञ विध्वंस का चित्रण शवसाहित्य के अनुरूप किया है जिसमें वीर रस के साथ रौद्र रस से काम लिया गया है। यह वर्णन शिव के रुद्र रूप में सम्वर्धित होने के कारण रसात्मक चित्रात्मक तथा गतिमय भी है।

'साते ही ब्रह्म ड सकीया
पुड साते सकीया पयाल।
बाजीयो लोहर हूक सिर वाजइ
लागा युग्र करिवा लकाल।'[1]

धकचाल हुवइ उतरग पडइ धड
नड नाचइ ग्रपछर निरथल।
मारय तणउ पहाउ महाभड,
जुडतां ग्रणी करइ वड जग।"[2]

कवि ने पार्वती जन्म और उनके नख शिख वर्णन के अतिरिक्त उनकी तपस्या का चित्रण भी शव साहित्य के अनुरूप किया है। 'महादेव पार्वती री वलि' में पार्वती तपस्या के समय जया विजया नाम की, उनकी दो सखियों की कल्पना शिवपुराण[3] के अनुकरण पर की गयी है तथा विप्र रूप में शिव का आगमन और पार्वती की सखियों से उनका वार्तालाप भी शव साहित्य[4] का छायानुवाद कहा जा सकता है।

पार्वती तो यहां मौन हैं सखियों का शिव से वार्तालाप भी दूर तक नहीं चलता। इस प्रसंग में न कहीं विरोध होता है न भाव दशाओं के प्रदर्शन का अवसर आता है। कवि ने कथा के नायक शिव का परम्परागत प्रसिद्ध स्वरूप वर्णन किया है। शिव रूप वर्णन के प्रसंग सागर कथा में पूर्व सागर कथा में गंगा के आगमन पर तथा गौरी की कथा में विवाह के प्रस्ताव से पूर्व विवाह के लिए आगमन के अवसर पर आगए हैं। शिव के स्वरूप का वर्णन करते हुए कवि कहता है—

---

१ किसनउ-महादेव पार्वती री वेलि-पद १६०।
२ वही-पद १६१।
३ शिवपुराण-रु० सं० पा० खं० अ० २६।
४ तुमता कोचित—प्रथ विश्वात्मने गौरी संदिदेश मिथः सखीम
दाता मे भूभृतां नाथ प्रमाणीक्रियतामिति।
—कुमारसम्भव षष्ठसर्ग।

"मरिया चा सूर भयकर भारथ,
करता पुरुख प्रणाम कहइ
उर ईश्वर तणइ ताइ ऊपर
रु डमाल झिलती रहइ ।
वासिगरउ कांठलउ विराजइ
सहम करइ फुण गिलण सति
जगवारा ग्रावीता जिसडो
तेज तपइ मुणि सावरति"[1]

उक्त काव्य की कथा शिवपुराण की कथा पर आधारित है जिसम कवि ने दृश्य विधान नवीन प्रसगोद्भावन, अलकार और शब्दशक्ति प्रयाग म नवीनता लाने की चेप्टा की है । रस ससार के प्रयत्नो के अतिरिक्त इस काव्य मे वन पवतादि का वणन किया गया है । इसके अतिरिक्त काव्य सौदय के विधायक अनेक उपकरणो का प्रयाग भी इस काव्य म हुआ है जा मौलिक है ।

महादेव पावती री वलि की कथा म सगर कथा, सती और पावनी विवाह तीन कथाए समाविष्ट हैं जिनका आधार भी शिवपुराण[2] है । कवि ने नायक-नायिका के नखशिख वणन, विवाह की तयारी और दायजे की तयारी का दृश्य उपस्थित कर उसे सौन्दय प्रदान करन का प्रयास किया है ।

विवेच्य युग के काव्य मे शिव से सम्बद्ध प्रमुख कथा के अतिरिक्त उन कथाओ का प्रासगिक कथा के रूप म भी स्थान प्राप्त हुआ है ।

मध्यकालीन हिन्दी प्रबन्ध काव्या म रामकथा प्रमुख है जिसम प्रसग वश शिवपुराण की कथाओ का भी उल्लेख हुआ है । ये

प्रासगिक कथाए कथाए प्रबन्ध काव्य की मूल कथा से सम्बद्ध हैं ।[3] गोस्वामी जी क अनुसार राम कथा का प्रथम वणन शिवजी के मुख से पावती[4] के प्रति हुआ, जिसका मूल कारण सती माह है ।

---

१ किसनउ-महादेव पावती री वेलि-पृ० १६, १७ ।

२ शिवपुराण ।

३ मानस मूल मिली सुरसरिहि सुनत सुजन मन पावन करिहि
बिच बिच कथा विचित्र विभागा जनु सरि तीर तीर बन बागा
उमा महेस विवाह बराती ते जलचर अगनित बहु भांति ।
—मानस-बालकाण्ड ३६ ।

४ "सभु कीन्ह यह चरित सुहावा, बहुरि कृपा करि उमहि सुनावा'
—वही-२६।२ ।

मानसगत सती कथा

मानस म सती कथा के अन्तगत सती का मोह उनका शिव द्वारा मानसिक त्याग दक्ष यज्ञ विध्वंस और सती का यागाग्नि द्वारा भस्म होना प्रसग आए हैं। सती कथा मे कहा गया है कि शिव और सती एक बार घूमते घूमत दण्डकारण्य म आए। वहा उन्होंने लक्ष्मण सहित राम को देखा जो व्याकुलता से सीता की खोज कर रहे थे—

"बिरह बिकल नर इव रघुराई खोजत बिपिन फिरत दोउ भाई"[1]

'संभु समय तेहि रामहि देखा, उपजा हिये अति हरष बिसेषा"[2]

मानस का यह वर्णन शिवपुराण[3] के अनुकरण पर लिखा गया है। शिव के हृदय की स्थिति को देख कर सती के हृदय म सन्देह उत्पन्न हुआ—

'सती सो दसा संभु के देखी, उर उपजा सदेहु बिसेषी'[4]

तुलसी के शिव सती के हृदय की अवस्था को देख कर उन्हें राम की परीक्षा[5] का आदेश देते हैं। सती राम की परीक्षा के लिए सीता का वेश धारण करती हैं—

'पुनि पुनि हृदय बिचारु करि धरि सीता कर रूप
आगे होइ चलि पथ, तेहिं तेहिं आवत नर भूप'[6]

---

१ मानस-बालकाण्ड ४८।४।

२ वही-४६।४।

३ एक समय की बात है, तीनो लोकों मे विचरने वाले लीला विशारद रुद्र सती के साथ बल पर आरूढ़ होकर भूतल पर विचर रहे थे। घूमते घूमते वे दण्डकारण्य मे आए। वहा उन्होंने लक्ष्मण सहित भगवान श्री राम को देखा, जो रावण द्वारा छलपूर्वक हरी गयी अपनी पत्नी सीता को खोज रहे थे।

—शिवपुराण रुद्रसहिता (सती खण्ड) अ० २४।

४ मानस बालकाण्ड-४६।

५ जो तुम्हरे मन अति सन्देहू तो किन जाइ परीछा लेहू

—मानस-बालकाण्ड ५१।६।

६ वही ५२।

शिवपुराण[1] मे भी सती सीता का वेश धारण कर राम के समीप जाती है। राम न सीता रूप मे सती का पहचान लिया और उनम पूछा—

कहेउ बहोरि कहां वृषकेतु विपिन अकलि फिरहु कहि हेतु"[2]

सती क हृदय मे राम के मृदु गूढ और कोमल वचनो को सुन कर बडा सकोच उत्पन्न हुआ वे भयभीत होकर शिव क पास चलीं—

"राम वचन मृदु गूढ़ सुनि उपजा अति सकोचु
सती भयभीत महेस पहिं चलीं हृदय बड सोचु"[3]

सती के हृदय म बडी ग्लानि थी। शिव की शिक्षा न मानने के कारण उनका हृदय क्षुब्ध था। उनकी इस अवस्था का देख महेश न हस कर पूछा—

'गई समीप महेस तब हसि पूछी कुसलात
कीन्ह परीक्षा कवन विधि कहहु सत्य सब बात' [4]

मानस का यह वर्णन शिवपुराण[5] के वर्णन स प्रभावित दीख पडता है। सर्वज्ञ शिव न सती क आचरण का पहचान लिया और उनका मानसिक त्याग कर दिया—

'तब सकर देखउ धरि ध्याना सती जो कीन्ह चरित सब जाना
हरि इच्छा भावी बलवाना, हृदय विचारत सभु सुजाना
सती कीन्ह सीता कर वेषा, सिव उर भयउ विषाद विसेषा
एहि तन सतिहि भेंट मोहि नाहीं, सिव सकल्प कीन्ह मनमाहीं "

१ सती सोचने लगीं कि मैं बनचारी राम की परीक्षा कसे करूं। अच्छा मैं सीता का रूप धारण करके राम के पास चलूं। यदि राम साक्षात विष्णु हैं तब तो सब कुछ जान लेंगे अन्यथा वे मुझे नहीं पहिचानेंगे।' ऐसा विचार कर सती सीता बन कर श्रीराम के पास उनकी परीक्षा लेने गयीं।

—शिवपुराण-रुद्रसहिता (सती खण्ड) अ० २४।

२ मानस-बालकाण्ड-५२।

३ वही ५३।

४ वही ५५।

५ शिव के समीप जाकर सती ने उन्हें मन ही मन प्रणाम किया। उनके मुख पर विशाद छा रहा था। सती को दुखी देख शिव ने उनका कुशल समाचार पूछा और प्रेम पूर्वक कहा—तुमने किस प्रकार परीक्षा ली।

—शिवपुराण रु० स० स० ख० अ० २५।

तुलसीकृत यह वर्णन शिवपुराण की कथा का अनुवाद मात्र है। उक्त पुराण में कहा गया है कि महेश्वर ने ध्यान लगा कर सती का सारा चरित्र जान लिया और उन्हें मन से त्याग दिया।[1] अतएव यह कहना अनुचित न होगा कि तुलसी ने मानस में सती मोह कथा को शिवपुराण के परिपार्श्व में ही लिखा है। तुलसी पर शैव साहित्य का प्रभाव स्पष्ट है। सती मोह की कथा यहीं समाप्त नहीं होती। इस कथा के अन्तर्गत दक्ष यज्ञ विध्वंस और योगाग्नि द्वारा सती का भस्म होना आदि प्रसंग भी महत्त्वपूर्ण हैं। तुलसी ने इन प्रसंगों को भी शिवपुराण से लिया है। शिवपुराण और रामायण की इन कथाओं में इतना साम्य है कि अनेक छोटे छोटे विस्तार तक मिलते हैं।

सती के मानसिक त्याग के उपरान्त शिव कैलास पर जा कर अखण्ड तप करने लगते हैं—

सकर सहज सरूपु सम्हारा, लागि समाधि अखंड अपारा[2]

किन्तु सती चिन्तातुर हो दिन व्यतीत कर रही थी। बहुत समय बाद शिव ने समाधि का त्याग किया—

"बीते सवत सहस सतासी, तजी समाधि संभु अविनासी"[3]

मानस में इस प्रसंग का विस्तार शिवपुराण[4] के अनुरूप हुआ है।

प्रजापति दक्ष ने यज्ञ का संयोजन किया। उसने शिव को छोड़ कर सभी देवताओं को यज्ञ में आमन्त्रित किया।[5] एक दिवस आकाश मार्ग से देव

---

१ शिवपुराण–रुद्र संहिता सती खण्ड अ० २५।

२ मानस बालकाण्ड ५७। ख।

३ वही, ५०।

४ शिव सती के साथ कैलास पर जा पहुँचे और श्रेष्ठ आसन पर स्थित हो चित्तवृत्तियों के निरोध पूर्वक समाधि लगा अपने स्वरूप का ध्यान करने लगे।

—शिवपुराण रु० सं० स० ख० अ० २५।

५ तुलना कीजिए—

एक समय दक्ष ने एक बहुत बड़े यज्ञ का आरम्भ किया। उन्होंने समस्त देवर्षियों महर्षियों, तथा देवताओं को बुलाया।

—शिवपुराण रुद्रसंहिता स० ख० अ० २७।

ताओं को जाते देख सती ने[1] शिव से उसका कारण पूछा। सती ने शिव से पिता के यहां यज्ञ की बात सुन कर वहाँ अनामन्त्रित ही जाने की इच्छा प्रगट की। शिव ने उन्हें बहुत समझाया पर वे न मानी और दक्ष यज्ञ में पहुँची। मानस में शिव सती को इस प्रकार समझाते हैं—

'जो बिनु बोले जाहु भवानी रहइ न सीलु सनेहु न कानी
जदपि मित्र प्रभु पितु गुर गेहा जाइअ बिनु बोले हु न संदेहा
तदपि बिरोध मान जहां कोई तहां गए कल्यानु न होई"[2]

मानसगत यह उपदेश शिवपुराण का छायानुवाद मात्र है। इस पुराण में कहा गया है कि सती को समझाते हुए शिव ने कहा जो लोग बिना बुलाये दूसरे के घर जाते हैं, वे वहां अनादर पाते हैं, जो मृत्यु से भी बढ़ कर है अतः तुमको उस यज्ञ में[3] नहीं जाना चाहिए। शिव के मना करने पर भी सती दक्ष यज्ञ में गयी और वहां शिव की निन्दा तथा अपमान देख कर वे यागाग्नि में भस्म हो गयी।

सती जाइ देखेउ सब जागा, कतहुं न दीख संभु कर भागा
प्रभु अपमान समुझि उर दहेउ
अस कहि जोग अगिनि तनु जारा, भयउ सकल मख हाहाकारा[4]

मानस के उक्त वर्णन की तुलना शिवपुराण के वर्णन से की जा सकती है।[5] वस्तुतः यह वर्णन उसका भावानुवाद मात्र है। सती की मृत्यु का समाचार सुनकर शिव ने वीरभद्र को भेजा उसने दक्ष यज्ञ का विध्वंस कर सब को यथोचित फल दिया—

---

१ सती बिलोके ब्योम बिमाना जात चले सुंदर बिधि नाना
सुर सुंदरी करहिं कल गाना सुनत श्रवन छूटहिं मुनि ध्याना
पूछेउ तब सिव कहेउ बखानी पिता जग्य सुनि कछु हरषानी
—मानस बालकाण्ड ६०।

२ वही ६१।

३ शिवपुराण-रुद्रसंहिता—सतीखण्ड अ० २८।

४ मानस-बालकाण्ड—६३।

५ 'सती का निष्पाप शरीर तत्काल गिरा और उनकी इच्छा के अनुसार योगाग्नि से जलकर तुरन्त भस्म हो गया।'
—शिवपुराण रु० सं० स० ख० अ० ३०।

'सनाचार तब सकर पाए बीरभद्र करि कोप पठाए
जाय विध्वस जाइ तिन्ह कीन्हा सकल सुरन्ह विधिवत फलु दीन्हा'[१]

सनी माह शिव द्वारा उनका मानस त्याग, दग यज्ञ विध्वस तथा सती का यागाग्नि द्वारा प्राण त्याग आदि प्रसग शिवपुराण से अवतरित कहे जा सकते हैं। किन्तु दोना का सूक्ष्म अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि कवि ने उक्त पुराण गत कथा के कुछ प्रसगा का छाट दिया है। इतना ही नही कवि ने कथा मौलिकता लाकर उस सौन्दर्य प्रदान किया है।

शिवपुराण[२] म कहा गया है कि शिव न दण्डकारण्य म सीता को खाजते हुए राम को दूर स प्रणाम किया और दूसरी ओर चल दिए। भगवान शिव की मोह म डालन वाली एसी लीला का देख सती को बडा विस्मय हुआ और उन्हाने शिव स इसका कारण पूछा लेकिन तुलसी की सती' अपन हृदय के सन्देह को प्रगट नहीं कर पाती। शिव सवज्ञ है। उन्हाने सती के हृदय की स्थिति को पहचान लिया—

जदपि न प्रगट कहेउ भवानी हर अन्तर जामी सब जानी"[३]

तुलसी न सती क हृदय क अन्तद्वन्द्व का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण कर कथा क साहित्यिक सौन्दर्य का ता बढाया ही है साथ ही कथा का मौलिकता भी प्रदान की है। शिवपुराण म सती का सीता के वेश म देख कर राम उनस नूतन रूप धारण करने का कारण[४] पूछते हैं। यहाँ सती और राम के बीच मे विस्तृत वार्तालाप भी दिखलाया गया है। मर्यादा क रक्षक तुलसी ने इस प्रसग को भी अपन अनुकूल परिवर्तित कर लिया है। तुलसी के राम पार्वती का सादर प्रणाम करते हैं—

'जोरि पानि प्रभु कीन्ह प्रनामु पिता समेत लीन्ह निज नामु'[५]

तुलसी न राम द्वारा सती को प्रणाम करा कर नारी क गौरव की रक्षा की है साथ ही जिस प्रकार शिव राम क पूज्य हैं उसी प्रकार पार्वती भी उनक लिए

१ मानस-बालकाण्ड ६४।

२ शिवपुराण-रुद्र स०-अ० २४।

३ मानस-बालकाण्ड ५०।३।

४ राम ने सती को प्रणाम कर पूछा— आप पति क बिना अकेली ही इस वन म क्यों कर आयी हैं। देवि! आपन अपना रूप त्याग कर यह नूतन रूप किसलिए धारण किया है।'

—शिवपुराण रु० स० स० ख० अ० २४।

५ मानस-बालकाण्ड ५२।४।

पूज्य हैं—कवि ने उक्त तथ्य की ओर भी सकेत किया है। सती का गर्व तो राम के प्रणत होने पर ही चूर चूर हो गया था अत तुलसी ने उक्त अवसर पर राम से और कुछ न कहला कर 'सती' के गौरव की रक्षा की है। यही तुलसी की मौलिकता है।

इसी प्रसग म जब तुलसी की 'सती शिव के पास जा रही थी वे जिधर देखती उधर ही राम लक्ष्मण और सीता दिखलाई देते थे—

"फिरि चितवा पाछें प्रभु देखा सहित बधु सिय सुन्दरवेशा
जह चितवहिं तह प्रभु आसीना सेवहिं सिद्ध मुनीस प्रवीना'[1]
"हृदय कप तन सुधि कुछ नाहीं, नयन मूदि बैठि मग माहीं
बहुरि बिलोकेउ नयन उघारी, कछु न दीख तह दच्छकुमारी'[2]

यह प्रसग शिवपुराण मे नही है। कवि ने राम के प्रभाव को व्यक्त करने के लिए, शिवपुराण की कथा मे इस नवीन प्रसग को जोडा है। सती शिव के पास पहुँचती हैं। शिव ने पूछा कि परीक्षा कैसे ली। सती ने उत्तर दिया—

कछु न परीक्षा लीन्हि गोसाईं कीन्ह प्रनामु तुम्हारिहि नाईं'[3]

सती का उत्तर भी तुलसी की मौलिक सूझ का परिणाम है। शिवपुराण म सती कुछ उत्तर नही दे पाती। वे शिव के पास शोक और विषाद सिक्त हृदय म खडी[4] रह जाती हैं।

तुलसी ने दक्ष यज्ञ की कथा को अत्यन्त सक्षेप म कहा है। कवि का कथन है कि यह इतिहास ससार जानता है इसलिए उन्होंने सक्षेप म वर्णन किया है—

मैं जग विदित दच्छ गति सोई जासि कछु सभु विमुख के होइ।
यह इतिहास सकल जग जानी ताते मैं सक्षेप बखानी'[5]

---

१ मानस-बालकाण्ड-५३।३।

२ वही ५४।

३ वही ५५।

४ शिव ने पूछा तुमने किस प्रकार परीक्षा ली। उनको यह बात सुनकर सती मस्तक झुकाये उनके पास खडी हो गयी। उनका मन शोक और विषाद में डूबा हुआ था।"

—शिवपुराण स० रु० स० ख० अ० २५।

५ मानस-बालकाण्ड-५५।

रामायण म दश यन कथा यद्यपि बहुत सक्षेप म कही गयी है तथापि शिवपुराण से भिन्न नही है। सतीमोह, शिव द्वारा उनका मानसिक त्याग और दश यन विध्वस शिवपुराण की छाया म ही लिखे गय है। कथा के विस्तार म कही कहीं मूल अशा का विसजन और मौलिक प्रदान होन पर भी वह मूल कथा का अनुवाद मात्र ही है। राम कथा मे शव कथाओ के प्रसग और उनका महत्ता मे वष्णव साहित्य पर शव साहित्य क प्रभाव की दिशा भी व्यक्त हो जाती है।

सती कथा क अतिरिक्त शव साहित्य की अन्य प्रमुख कथा शिव पावती की कथा है जिसके अतगत पावती जन्म तपस्या तारकासुर

पावती कथा वध मदन दहन और पावती परिणय प्रसग आते हैं। आलोच्य काल के शवेत्तर काव्य म इसका विकास शव साहित्य के परिपाश्व मे हुआ है। पावती कथा से सम्बद्ध उक्त प्रसगो का कालिदास न कुमार सम्भव' म शिवपुराण के अनुरूप चित्रित किया है।

मानस म उमाजन्म के प्रभाव का तुलसीदास इन शब्दा म व्यक्त करत है—

' जब तें उमा सेल गह जाई, सकल सिद्धि सपति तह छाई

सदा सुमन फल सहित सब द्रुम नव नाना जाति
प्रगटीं सुन्दर सेल पर मनि आकर बहु भाति"[१]

कवि कालिदास[२] न भी ऐसा ही वणन किया है।

पावती-कथा का दूसरा चरण देवर्षि नारद क आगमन क बाद आरम्भ होता है। कवि का कथन है कि नारद पावती क अवतीण होन क समाचार पाकर राजा हमाचल के घर आए—

नारद समाचार सब पाए कौतुकहीं गिरि गेह सिधारा [3]

---

१ मानस-बालकाण्ड ६४ ६५।

२ "उमा के जन्म के दिन दिशाए प्रसन्न हो गयीं, बिना धूल क वायु बहने लगी शखध्वनि के बाद पुष्प वृष्टि हुई जिस प्रकार महती प्रभाव वाली शिखा से दीपक पवित्र और विभूषित होता है उसी प्रकार हिमालय भी उमा के द्वारा पूत और पवित्र हो गया।"

—कुमार सम्भवसग १ श्लोक २३ २८।

३ मानस-बालकाण्ड-६५।

वहा उनका आदर सत्कार हुआ और राजा हेमाचल[1] ने पार्वती को बुलाकर नारद के चरणो मे प्रणाम करवाया। रामचरित मानस मे नारद का आगमन और पार्वती के हाथ की रेखाओ को देख कर उनके दिव्य गुणो का वर्णन तथा पार्वती के भावी पति का सकेत भी शिवपुराण से ज्यो का त्यो[1] अपनाया गया है। तुलसी नारद के शब्दो मे पार्वती की पवित्रता और उनके दिव्य गुणो को अभिव्यक्त करते हुए कहते हैं—

'कह मुनि बिहसि गूढ मृदु बानी, सुता तुम्हारी सकल गुन खानी
सु दर सहज सुसील सयानी, नाम उमा अम्बिका भवानी
सब लच्छन सम्पन्न कुमारी होइहि सतत पियहि पिआरी
सदा अचल एहि कर अहिवाता, एहि तें जसु पइहहिं पितु माता
होइहि पूज्य सकल जग माहीं, एहि सेवत कछु दुर्लभ नाहीं
एहि कर नामु सुमिरि ससारा, त्रिय चढिहहि पतिव्रत असिधारा"[2]

नारद के उक्त कथन की तुलना शिवपुराण[3] से की जा सकती है। तुलसी के नारद पार्वती के भावी पति की ओर सकेत करते हैं—

सभु सहज समरथ भगवाना एहिविवाह सब विधि कल्याना
दुराराध्य पे अहहि महेसू आसुतोष पुनि किए कलेसू

---

१ एक समय की बात है कि शिव की प्रेरणा से नारद राजा हेमाचल के घर गए। राजा ने नारद का उचित सत्कार किया पुत्री को बुलाकर उनके चरणों में प्रणाम करवाया। नारद ने पार्वती का हाथ देखा।
—शिवपुराण–रुद्रसहिता पा० स० अ० ७।

२ मानस–बालकाण्ड ६६।

३ शिवपुराण मे नारद पार्वती का हाथ देख कर बतलाते हैं—
यह अपने पति के लिए अत्यन्त सुखदायिनी होगी और माता पिता की कीर्ति बढ़ायगी। ससार की समस्त नारियों मे यह परम साध्वी और स्वजनों को सदा महान् आनन्द देने वाली होगी।
—शिवपुराण-रुद्र सहिता-पा० स० अ० ७।

जो तपु करे कुमारि तुम्हारी भाविउ मेटि सकहिं त्रिपुरारी
जदपि वर अनेक जग माहीं एहि कह सिव तज दूसर नाहीं"[१]

मानस म यह प्रसग शिवपुराण का श ानुवाद ही है। तुलसी की पावती पवित्रता और अलौकिक गुणो मे इस पुराण की पावती से पीछे नही है। तुलसी के काव्य म शिवपुराण की कथागत अलौकिकता का निर्वाह हुआ है। अतएव तुलसी क काव्य पर शव साहित्य के प्रभाव की उपेक्षा नही की जा सकती।

रामायण मे नारद की भविष्यवाणी से मेनका चिन्तित हो गयी। उनकी चिन्ता का वणन तुलसी के शब्दो म देखिए—

जों घरू बरू कुलु होइ अनूपा करिअ विवाहु सुतर अनुरूपा
न त कन्या बरु रहउ कुआरी, कत उमा मम प्रान पिआरी'

मानसगत यह वणन शिवपुराण का शब्दानुवाद ही है। शिवपुराण म मेनका राजा हिमाचल से कहती हैं—

'गिरिजा का वर शुभ लक्षणो से सम्पन्न और कुलीन होना चाहिए। मेरी बेटी मुझे प्राणों से भी अधिक प्रिय है"[२]

मानस मे राजा हिमाचल अपनी पत्नी को समझाते हुए कहते हैं—

"अब जो तुम्हहिं सुत पर नेहू तो अस जाइ सिखावन देहू
करे तपु जेहिं मिलहि महेसू आन उपाय न मिटिहि कलेसू'[३]

पर मैना के हृदय म इतनी दृढता नही थी कि अपनी कोमलागी पुत्री को तप करने की सलाह दे सके—

"बारहि बार लेति उर लाई गदगद कठ न कछु कहि जाई'[४]

---

१ मानस-बालकाण्ड ६६।
तुलना कीजिए—
नारद कहते हैं "मैंने जसे वर का निरूपण किया है, वसे ही भगवान शकर हैं। वे सवसमथ हैं वे जल्दी ही प्रसन्न हो जाते हैं विशेषत वे तपस्या से वश में हो जाते हैं। शिवा यदि तप करे तो सब काम ठीक हो जायेगा। पावती भगवान शकर की प्यारी पत्नी होगी। वे भगवान भी इसके सिवा दूसरी स्त्री से विवाह नहीं करेंगे।
—शि० पु० रु० स० पा० ख० अ० ७।
२ शिवपुराण-रुद्र स०-पा० ख० अ० ६।
३ मानस-बालकाण्ड ७१।
४ वही ७१।

माता के हृदय की व्याकुलता का पार्वती ने पहचान लिया और वे माता से बोनी

"सुनहि मातु मे दीख प्रस सपन सुनावउ तोहि
सु दर गौर सुविप्रवर प्रस उपदेसेउ मोहि
करिहु जाइ तपु सेलु कुमारी नारद कहा सो सत्य विचारी'[1]

उक्त कथन शिवपुराण की कथा की छाया प्रतीत होती है। शिवपुराण में कहा गया है कि 'राजा हेमवान न मेनका को समझाया और कहा कि तुम पुत्री पार्वती को शिव प्राप्ति के लिए तपस्या करने की शिक्षा दो। रानी पुत्री का उपदेश देने के निमित्त उसके पास गया परन्तु बेटी के सुकुमार अग पर दृष्टि पात करके मेनका के मन में बडी व्यथा हुई। उनमें पुत्री को उपदेश देन की शक्ति न रह गयी। माता की चेष्टा को पार्वती शीघ्र पहचान गयी। तब उन्होंने माता से कहा कि ह माता स्वप्न म एक दयालु एव तपस्वी ब्राह्मण ने मुझ शिव की प्रसन्नता के लिए उत्तम तपस्या करन का उपदेश दिया है।[2]

उक्त कथन की तुलना करने पर स्पष्ट हा जाता कि तुलसी क मानस का वर्णन इसका अनुवाद ही है। वस्तुत तुलसी शिव स सम्बद्ध प्रासगिक कथाओं का वर्णन करन म शैव साहित्य स दूर नही गए हैं। उन पर शैव साहित्य का प्रभाव स्पष्ट है।

पार्वती कथा के साथ ही रामायण म तारकासुरवध सकत और मदन दहन का वर्णन है। इन दोनों का सम्बन्ध शिव से है। शिव पुराण म[3] तारकासुर के उत्पातो से घबराकर देवजन ब्रह्मा से प्रार्थना करत हैं फिर वे बतलाते हैं कि तारकासुर का वध केवल शिव का पुत्र ही कर सकता है। अत एव तपस्या म लीन शिव को पार्वती स विवाह के लिए प्रेरित करना आवश्यक था। ब्रह्मा के निवेदन पर कामदेव न इस कार्य को करना स्वीकार किया। रामायण म भी यह प्रसग इसी रूप म वर्णित है। तुलसी के शब्दों म उक्त कथा का वर्णन देखिए—

'तारकु असुर भयउ तेहि काला भुज प्रताप बल तेजविसाला
तेंहि सब लोक लोकपति जीते भए देव सुख संपति रीते
सब बिरंचि सन जाइ पुकारे, देखे बिधि सब देव दुखारे
सब सन कहा बुझाइ विधि दनुज निधन तब होइ
सभु सुक्र संभूत सुत एहि जीतइ रन सोइ"[4]

---

१ मानस-बालकाण्ड ७२।
२ शिवपुराण-रुद्र सहिता-पा० ख० अ० ६।
३ वही अ० १६ १७।
४ मानस-बालकाण्ड-८२।

तुलसी ने भी कामदेव को इस कार्य के लिए उपयुक्त पात्र समझा है—

'पठवहु काम जाइ सिव पाहीं करै छोभु संकर मन माहीं
तब हम जाइ सिवहि सिर नाई, करवाउब बिबाहु बरिआई
अस्तुति सुरन्ह कीन्ह अति हेतु प्रगटेउ बिषम बान झषकेतु"[१]

तारकासुर वध ही मदन दहन का हेतु है। यहाँ भी तुलसी ने शिवपुराण[२] का अनुकरण किया प्रतीत होता है।

कामदेव यह भलीभांति जानता था कि शिव द्रोह करने पर 'मरण निश्चय है फिर भी देवताओं के कार्य के लिए उसने दुस्साहस किया—

'चलत मार अस हृदय विचारा सिव विरोध ध्रुव मरन हमारा"[३]

काम के प्रभाव से सारा वातावरण बदल गया। तुलसी के शब्दों में काम के प्रभाव को देखिए—

मदन अंध व्याकुल सब लोका निसि दिनु नहिं अवलोकहिं कोका
देव दनुज नर किंनर व्याला प्रेत पिसाच भूत बेताला
इन्ह के दसा न कहेउ बखानी सदा काम के चेरे जानी
सिद्ध विरक्त महामुनि जोगी तेपि कामबस भए वियोगी"[४]

कामदेव बड़े साहस के साथ शिव के पास पहुँचा—

'उभय घरी अस कौतुक भयऊ जौ लगि कामु संभु पहिं गयउ
सिवहि बिलोकि ससकेऊ मारू भयउ जथाथिति सबु संसारू"[५]

कामदेव के बाण से शिव की समाधि छूट गई—

'छाडे बिषम बिसिख उर लागे, छूटि समाधि संभु तब जागे
भयउ ईस मन छोभु बिसेषी, नयन उघारि सकल दिसि देखी

---

१ मानस-बालकाण्ड ८२।

२ तस्मात्त्वमन्त्रवरस्त्वच कार्यकर्तु मिहार्हसि।
ममदु ग्वसमुत्पन्न मसाध्यबहुकालिकम्।
कनापि नवतस्तद्वयदूरीकर्तु त्वया विना।
दातुरचवपरीक्षावर्धुभिक्षमायनेनृभि।
—शिवपुराण भा० सं० १०।३१।

३ मानस-बालकाण्ड ८३।

४ वही ८४।

५ मानस-बालकाण्ड ८६।

सौरभ पल्लव मदनु बिलोका भयउ कोपु कपेउ त्रैलोका
तब सिव तीसर नयन उघारा चितवत कामु भयउ जरि छारा"[1]

रामायण की कथा पर शिवपुराण का कितना प्रभाव है यह अनुमान गम्य है। हम यदि शिवपुराण का छायानुवाद कह तो अनुचित न होगा। तुलसी के शिव रति को आश्वासन देते हुए कहते हैं—

जब जदुबस कृष्ण अवतारा, होइहि हरन महामहि भारा
कृष्ण तनय होइहि पति तोरा, बचनु अन्यथा होइ न मोरा"[2]

मानस में काम दहन के प्रसग के उपरान्त पार्वती परिणय का प्रसग आता है। ब्रह्मा विष्णु सहित सब देवताओं ने, शिव के चरणों में उपस्थित हो निवेदन किया—

'सकल सुरन्ह के हृदय अस सकर परम उछाहु
निज नयनन्हि देखा चहहिं नाथ तुम्हार बिबाहु[3]

शिव ने देवताओं की विनय को स्वीकार कर लिया। तब सप्त ऋषि गिरिराज के गए और शिव के आदेशानुसार पार्वती के प्रेम की परीक्षा ली। पार्वती कहती है—

---

१ सखीभ्यासयुतातत्रयत्रातिष्ठद्धर
स्वयम जगामशिव पूजाथ नीत्वा–
पुष्पाण्यनेकश यदाशिव समीपेतु–
गतासापवतात्मजा तदवाकथयच्चापरु–
च्यभशूलपाणिन । त्यागतपोबला द्ब
ददष्ट शभु स्वयतदा ।
वामभागे स्थित काम ददशवाणकर्षिणम ।
तदष्ट्वा क्रोधसयुक्त सजातस्तत्क्षणादपि ।
अहो दुष्टेन कामेनन मुक्तोऽहदुरासद ।
इत्येवमनसा क्रुद्ध शिव परमकोपन ।
ततोयालस्यनेत्राद्व नि ससाराग्निरुच्छिन ।
भस्मसात्कृतवो स्तेन मदनतावदेवहि।
—शिवपुराण ज्ञा० स० अ० १०, ११।

२ मानस बालकाण्ड ८७।

३ वही ८८।

'देखहु मुनि अविवेकु हमारा, चाहिअ सदा सिवहि भरतारा"[1]

पार्वती को अपने प्रण म दृढ देख कर सप्त ऋषियो ने उनके पिता राजा हिमाचल को सब प्रसग बतलाया—

'सबु प्रसगु गिरिपतिहि सुनावा मदन दहन मुनि अति दुख पावा
बहुरि कहेउ रति कर बरदाना, सुनि हेमवत बहुत सुखु माना
हृदय विचारि सभु प्रभुताई, सादर मुनिवर लिए बोलाई
पत्री सप्तरिषिन्ह सोइ दीन्ही गहि पद विनय हिमाचल कीन्ही"[2]

शिव पुराण म[3] भी ऋषि पार्वती की परीक्षा लेते हैं। शिव से सम्बन्धित मानसगत प्रासगिक शिव कथाओ पर शव साहित्य के प्रभाव को अस्वीकार नही किया जा सकता।

शवसाहित्य मे शिव विवाह का वर्णन बडी विशदता के साथ हुआ है। मानस की शिव–विवाह कथा भी उसी आधार पर लिखी गयी है। यद्यपि प्रासगिक कथा होने के कारण उसम स कुछ विस्तार अवश्य कम कर दिए गए हैं फिर भी वर रूप म शिव की वश भूषा का बारात मनका विलाप आदि का वर्णन शिवपुराण[4] के अनुकरण पर हुआ है। तुलसी वर रूप म सुसज्जित शिव की वेशभूषा का वर्णन करते है—

सिवहि सभुगन करहिं सिगारा जटा मुकुट अहि मौरु सिगारा'[5]

वर के अनुरूप ही बारात है—

जस दूलह तसि बनी बराता कौतुक विविध होहिं मग जाता[6]

---

१ मानस–बालकाण्ड ७७।

२ वही ६०।

३ शिवपुराण–रुद्र सहिता–पा० ख० अ० २५।

४ तान दृष्ट्वाहृदयतस्या शीलमासीरसमाकुलम।
त मध्येशङ्कर देव निगु ण गुणवत्तरम।
वृषभस्थपञ्चवक्त्र त्रिनेत्र भूतिभूषितम्।
सापतन्तराभूमी मेना दुःखपरासनी।
किमिदवञ्चनदुष्टेपितरवांमांचकुराग्रहे।
—शिवपुराण पा० ख० १५।३४, ७८।

५ मानस–बालकाण्ड ६१।

६ वही, ६३।

बारात को देखकर मेनका के हृदय पर क्या बीती तुलसी के शब्दों में देखिए—

"भई विकल अबला सकल दुखित देखि गिरिनारि
करि बिलापु रोदति बदति सुता सनेहु सभारि
नारद कर मैं काह बिगारा, भवनु मोर जिन्ह बसत उजारा"[1]

मेनका के विलाप की तुलना शिवपुराण मे वर्णित मेनका विलाप से की जा सकती है।[2]

शिवपुराण[3] के समान ही मानस म मेनका के विलाप का समाचार जानकर राजा हिमाचल सप्तऋषियो और नारद सहित उनके पास गए। नारद के समझाने पर मेनका के[4] हृदय का द्वन्द्व दूर हुआ। इसके अनन्तर शिव-पार्वती विवाह सम्पन्न हुआ।

मानस मे पार्वती कथा से सम्बद्ध पार्वती-जन्म उनकी तपस्या तारकासुर प्रसग मदनदहन और शिव पार्वती विवाह आदि प्रसगो का विकास शैव परम्परा के परिपार्श्व म हुआ है। कवि ने मूलकथा के कुछ प्रसगो को जोडा है तथा कुछ मौलिक प्रसगो के सयोग से कथा का सौन्दर्य प्रदान किया है फिर भी उनकी कथा शिवपुराण की कथा का शब्दानुवाद तथा भावानुवाद मात्र है।

शिवपुराण म नारद की भविष्य वाणी के उपरान्त पार्वती के स्वप्न के साथ राजा हिमाचल के स्वप्न का भी उल्लेख है। तपस्या के लिए वन जाने को तत्पर पार्वती को उनके पिता अपने स्वप्न के फल की प्रतीक्षा[5] तक न

---

१ मानस बालकाण्ड ९३।

२ सज्ञांलब्ध्वापुन साचतिरस्कारमपा करोत।
नारदस्यापुत्रयाश्चनिनिंदचरिततथा।
धिक्त्वा चतव बुद्धिधिक चर्याचिश्च्रषिसतमा।
—शिवपुराण ज्ञा० स० १६।१ १४।

३ श्रोतव्यचत्वयामेनेमदीयवचन शुभम्।
शकरोलोककर्ताचहर्ता पालयितास्वयम।
—शिवपुराण ज्ञा० स० १६।२३।

४ तेहि अवसर नारद सहित अरु रिषि सप्त समेत।
समाचार सुनि तुहिनगिरि गवने तुरत निकेत।
—मानस बा० का० ९७।

सुनि नारद के बचन तब सब कर मिटा बिषाद
छन महु ब्यापेउ सकल पुर घर घर यह सवाद। —वही ९८।

५ शिवपुराण-रुद्रसंहिता-पा० ख० अ० १२।

लिए रोक लेते हैं। इस काव्य में कहा गया है कि हिमवान् ने स्वप्न में नारद के बतलाये लक्षणों से युक्त तपस्वी को देखा। वे स्वप्न में ही अपनी पुत्री पार्वती को तपस्वी के पास ले गए और तपस्वी की आज्ञा लेकर, अपनी पुत्री को उनकी सेवा में वहीं छोड़ आए। शिवपुराण[1] के अनुसार कुछ समय पश्चात् राजा का स्वप्न फलीभूत हुआ। राजा हिमाचल स्वयं पार्वती को तपस्वी शिव की सेवा में छोड़ आए। शिवपुराण और कुमारसम्भव, दोनों में कथा का विकास समान रूप से हुआ है। अन्तर इतना है कि कालिदास की पार्वती अपनी सखियों के साथ शिव की सेवा के लिए जाती है[2] तुलसी न तो राजा हिमाचल के स्वप्न की बात कहते हैं और न उनकी पार्वती विवाह से पूर्व शिव की सेवा में उपस्थित होती है।

तुलसीकृत पार्वती कथा में मौलिकता दिखाई देती है। तुलसी की पार्वती नारद के आदेशानुसार माता पिता से आज्ञा लेकर तप करने चली जाती है। दक्ष के यज्ञ में आत्म विसर्जन कर देने वाली सती के शील का पूर्ण विकसित रूप गोस्वामीजी ने अपनी पार्वती' में बाल्यावस्था के प्रारम्भ से ही देखा है। मर्यादा की परमोच्च सीमा के साधक तुलसी ने पार्वती को पहले ही तपस्या[3] के लिए भेज कर कथा के विकास में मौलिकता का समावेश तो किया ही है साथ ही नारी की पवित्रता की भी रक्षा की है। तुलसी के शब्दों में पार्वती की तपस्या के प्रभाव को देखिए—

> "देखि उमहि तप खीन सरीरा ब्रह्मगिरा भै गगन गभीरा
> भयउ मनोरथ सुफल तव सुनु गिरिराज कुमारी
> परिहरु दुसह कलेस सब अब मिलिहहिं त्रिपुरारी"[4]

पार्वती की तपस्या से प्रभावित विष्णु शिव के पास जाकर उनके तप की बात कहते हैं तथा शिव से पार्वती के साथ विवाह का वचन भी ले लेते हैं—

---

१ शिवपुराण—

२ अनर्घ्यमर्घ्येण तमद्रिनाथः स्वर्गौकसामर्चितमर्चयित्वा
आराधनायास्य सखीसमेतां समादिदेश प्रयतां तनूजाम्'

—कुमारसम्भव-प्रथम सर्ग-५८।

३ उर धरि उमा प्रानपति चरना जाइ बिपिन लागीं तपु करना
अति सुकुमार न तनु तप जोगू पति पद सुमिरि तजेउ सबु भोगू

—मानस-बालकाण्ड ७४।

४ वही ७४।

'अब विनति मम सुनहु सिव जों मो पर निज नेहू
जाइ बिवाहहु सलजहि यह मोहिमांगे देहु"[1]

सप्त ऋषि भी पावती की तपस्या से प्रभावित होते हैं—

'तुम्ह माया भगवान सिव सकल जगत पितु मातु
नाइ चरन सिर मुनि चले पुनि पुनि हरषत गातु'[2]

शिव पुराण म काम-दहन के उपरान्त पावती की तपस्या का उल्लेख है। तभी सप्तऋषि भी शिव के आदेश स पावती के पास आते हैं। उक्त पुराण म पावती शिव क वियाग म विह्वाल हो तप करने जाती हैं। अतएव मानस की पावती शील और त्याग म शिवपुराण की पावती स बढकर दिखलाइ पडती हैं।

सप्तऋषि पावती की परीक्षा लेकर उनके पिता क पास गए तथा पावती के पिता उनके आदेश पर पावती का घर लाए—

"जाइ मुनिन्ह हिमवतु पठाए, करि बिनती गिरजहि गह लाए [3]

नारी के गौरव की यही पराकाष्ठा है जिसे गोस्वामी न पावती के चरित्र द्वारा व्यक्त किया है। तपस्या के उपरान्त, पावती का स्वय, घर लौट कर आना इतना शोभनीय न होता जितना, पिता के द्वारा ससम्मान घर लौटा कर लाना। शिवपुराण[4] मे पावती स्वय सखियो के साथ घर लौट कर आती है।

काम दहन प्रसग म तुलसी न कतिपय प्रसगो का विसजन किया है। शिवपुराण मे कामदहन के समय पावती[5] शिव की सेवा म प्रस्तुत थी। मदन दहन की घटना से उनका सारा शरीर सफेद पड गया। उधर काम दहन क शब्द से उनके पिता भी विस्मित हुए और अपनी पुत्री का स्मरण कर उन्ह बडा खेद हुआ। कामदेव को भस्मकर महान्व अदृश्य हो गए। अतएव उनके विरह स पावती अत्यधिक दुखी हुई। उन्हें घर लौटने पर भी किसी प्रकार

---

१ मानस—बालकाण्ड ७६।
२ वही ८१।
३ वही ८१ १।
४ 'समादायसखी युक्ता जगाममदिरस्वयम
—शिवपुराण श्रा० स० ११।९।
५ 'तत्समीपेचसेवाय पावतीसखिसयुता
तिष्ठतिचमहाराजपित्राज्ञयाश्रुतम —शिवपुराण श्रा० स० १०।४६।

शान्ति न मिली। वे सदा 'शिव शिव' का जप किया करती थी।[1] कालिदास ने भी शिवपुराण के अनुसरण पर, अपने काव्य कुमारसम्भव म काम दहन का वर्णन किया है।[2]

कामदहन के चित्र म तुलसी उमा को नही लाए हैं। उन्होंने पुरुष शिव पर तो काम का आक्रमण सह लिया है पर वे अपनी उमा म वासना का उद्गम किसी प्रकार नहीं सह सकते थे। उमा म प्रेम का जो प्रथम उद्गम गोस्वामी जी ने दिखलाया है वह वासनात्मक नहीं श्रद्धात्मक है। उन्होंने कहा है—"उपजेउ शिव पद कमल सनेहू।"[3] तपस्विनी उमा को अपने सत्य प्रेम पर पवित्र अभिमान पूर्ण विश्वास था। उनका विश्वास सप्तऋषियो को दिए गए उत्तर से अभिव्यक्त होता है—

'जनम कोटि लगि रगरि हमारी बरउ सभु न तु रहउकुमारी
तजउ न नारद कर उपदेसू, आपु कहहि सतबार महेसू'[4]

तुलसी की वस्तु योजना म शिव काम का भस्म कर देते हैं पर देवताओं की प्रार्थना पर पार्वती से विवाह करना स्वीकार कर लेते हैं। ब्रह्मा[5]

---

१ इतिसाद्रु खिताताऽस्मरतीहरचेष्टितम
सुखेंतलेभेंकिंचिद्व शिवशिवेतिसा ब्रवीत्।
—शिवपुराण रुद्रसंहिता पा० ख० अ० २० २१।

२ कुमार सम्भव मे कहा गया है कि पार्वती अपने भावी पति का दर्शन करने शकर के आश्रम पर पहुची ठीक उसी समय महादेव ने भी परमात्मनाम की परम ज्योति का दर्शन करके समाधि तोड़ी। पार्वती ने प्रणाम कर समाधि से जगे हुए शकर के गले मे, मन्दाकिनी के कमल के बीजों की माला अपने हाथो से पहिना दी। शिव ने माला ली ही थी कि कामदेव ने सम्मोहन का अचूक बाण अपने धनुष पर चढा लिया। तप में बाधा डालने वाले कामदेव पर महादेव को बडा क्रोध आया और उन्होंने अपने नेत्र से निकलने वाली आग से उसे जला कर राख कर डाला।
—कालिदास ग्रन्थावली-कुमार सम्भव पृ० २२६।

३ मानस–बालकाण्ड–६७।

४ वही–८१।

५ पारवतीं तपु कीन्ह अपारा करहु तासु अब अगीकारा
सुनि विधि विनय समुझि प्रभु बानी, ऐसइ होउ कहा सुखमानी
अवसर जानि सप्तरिषि आए, तुरतहिं बिधि गिरि भवन पठाए
प्रथम गए जहां रहीं भवानी बोले मधुर वचन छल सानी —वही ८८।

इस स्वीकृति का सन्देश सप्त ऋषियों के द्वारा हिमालय के पास भेजते हैं। सप्त ऋषि पहले उमा को सन्देश सुनाते हैं—

कहा हमार न सुनेहु तब नारद के उपदेस
अब भा झूठ तुम्हार पन जारेउ काम महेस"[1]

तुलसी की उमा के उत्तर में मौलिकता देखिए—

'सुनि बोलीं मुसुकाइ भवानी, उचित कहेउ मुनिवर बिग्यानी
तुम्हरे जान कामु अब जारा, अब लगि संभु रहे सविकारा
हमरे जान सदा सिव जोगी, अज अनवद्य अकाम अभोगी[2]

तुलसी ने पार्वती की कथा में मौलिकता लाकर विमल प्रेम का प्रचार तो किया ही है साथ ही उन्होंने भवानी के जगन्मातृत्व स्वरूप को भी देखा है। यही तुलसी की मौलिकता है। तुलसी ने पार्वती कथा में मौलिकता लाकर नारीत्व की चेतना के विकास के साथ उसमें सुशीलता और विवेक की पराकाष्ठा को भी देखा है।

शिवपुराण में 'रति' को आश्वासन देते हुए सब देवताओं ने कहा तुम काम के शरीर की थोड़ी सी भस्म लेकर उसे यत्नपूर्वक रखो और भय छोड़ो। शिव कामदेव को पुनः जीवित कर देंगे और तुम अपने स्वामी को प्राप्त कर लोगी।[3] कुमार सम्भव में भी रति के हृदयद्रावक विलाप का विस्तृत वर्णन है। कवि ने आकाशवाणी द्वारा रति पर कृपा की वाणी बरसायी है। आकाश वाणी के अनुसार धर्म ने ब्रह्मा से सृष्टि की रक्षा के लिए कामदेव को जिलाने की प्रार्थना की तब ब्रह्मा ने कहा कि पार्वती की तपस्या से प्रसन्न होकर महादेव उनके साथ विवाह कर लेंगे और कामदेव को अपना सहायक समझ कर उसे पहले जैसा शरीर दे देंगे।' आकाशवाणी पर विश्वास कर रति ने प्राण त्यागने का विचार छोड़ दिया।[4] गोस्वामी ने इन प्रसंगों को छोड़ दिया है।

---

१ मानस—बालकाण्ड ८६।
२ वही ८६।
३ शिवपुराण—रुद्रसंहिता पा० ख० अ० १८ १६।
४ परिणेष्यति पार्वतीं यदा तपसा तत्प्रवणीकृतो हरः।
उपलब्धसुखस्तदास्मरं वपुषा स्वेन नियोजयिष्यति।
इति चाह स धर्मयाचितः स्मरशापावधिदां सरस्वतीम्
अशनेरमृतस्य चोभयोर्वशिनश्चाम्बुधराश्च योनयः।
—कुमार सम्भव ४।४२ ४३ ४४।

नारद कथा

से देवराज इन्द्र काँप उठे। वे मानसिक संताप से विह्वल हो गए। अतः उस समय देवराज कामदेव का स्मरण किया। कामदेव के अथक प्रयत्न करने पर भी नारद मुनि के चित्त में विकार नहीं उत्पन्न हुआ। महादेव के अनुग्रह से कामदेव का गर्व चूर हो गया। रामायण में भी नारद की कथा इसी रूप में अवतरित है। शिव पुराण के अनुरूप नारद कथा का वर्णन करते हुए तुलसी कहते हैं—

'हिमगिरि गुहा एक अति पावनि वह समीप सुरसरी सुहावनि
आश्रम परम पुनीत सुहावा, देखि देवरिषि मन अति भावा"[1]

* * * *

मुनि गति देखि डराना कामहि बोलि कीन्ह सनमाना
काम कला कछु मुनिहि न व्यापी, निज भय डरेउ मनोभव पापी'[2]
भयउ न नारद मन कछु रोषा कहि प्रिय वचन काम परितोषा
नाइ चरन सिरु आयसु पाई गयउ मदन तब सहित सहाई।[3]

कामदेव पर विजय प्राप्त कर नारद बड़े प्रसन्न थे।[4] वे काम विजय सम्बन्धी वृत्तान्त बताने के लिए तुरन्त ही कैलास पर्वत पर शिव के पास पहुँचे—

"तब नारद गवने सिव पाहीं, जिता काम अहमिति मन माहीं'[5]

नारद ने शिव से सारा वृत्तान्त कहा। शिव ने नारद को अपना परम प्रिय मान कर कामविजय की कथा विष्णु तक से न कहने की सलाह दी—

मार चरित संकरहि सुनाए, अति प्रिय जानि महेस सिखाए
बार बार बिनवउ मुनि तोही जिमि यह कथा सुनायहु मोही
तिमि जनि हरिहि सुनवहु कबहू, चलेहु प्रसंग दुराएहु तबहू"[6]

रामायण में वर्णित उक्त प्रसंग शिवपुराण[7] की कथा का अनुवाद मात्र हैं। तुलसी ने नारद कथा को शिवपुराण के समान ही विकसित किया है।

प्रभु की माया से मोहित नारद को शिव का उपदेश अच्छा नहीं लगा। वे तुरन्त अपनी विजय का समाचार देने के लिए विष्णु के पास पहुँचे, प्रभु

१ मानस–बालकाण्ड १२४ ख।
२ वही १२४ ख।
३ मानस–बालकाण्ड १२५।
४ वही १२६।
५ वही १२६।
६ वही, १२६।
७ शिवपुराण रुद्रसंहिता–सृष्टिखण्ड–अ० १ २।

वचन मुनि मन नहिं भाए तब विरचि के लोक सिधाए ।'[1] और बड़े गर्व के साथ अपनी विजय की कथा विष्णु को सुनायी—

'नारद कहेउ सहित अभिमाना कृपा तुम्हारि सकल भगवाना
करुनानिधि मन दीख बिचारी उर अंकुरेउ गरब तरु भारी
बेगि सो मैं डारिहऊं उखारी पन हमार सेवक हितकारी"[2]

शिवपुराण[3] में भी कहा गया है कि नारद के गर्व को दूर करने के लिए विष्णु ने अपनी माया से एक नगर का निर्माण किया। वहां के राजा शीलनिधि ने अपनी रूपवती कन्या का स्वयंवर रचा। उनकी कन्या का वरण करने के लिए चारों दिशाओं से बहुत से राजकुमार पधारे। नारद भी काम विमोहित हो उस सुंदरी कन्या को प्राप्त करने के लिए व्याकुल थे। अतः नारद विष्णु के पास, उनका स्वरूप मांगने गए। रामायण में यह प्रसंग इसी रूप में लिया गया है। तुलसी के शब्दों में नारद के मोह का वर्णन देखिए—

'हरि सन मांगौं सुंदरताई, होइहि जात गहरु अति भाई

'अति आरति कहि कथा सुनाई, करहु कृपा करि होहु सहाई
आपन रूप देहु प्रभु मोही, आन भांति नहिं पावौं ओही'[4]

नारद स्वयंवर स्थल पर पहुंचे और इसी कल्पना में बहुत प्रसन्न थे कि अब तो राजकुमारी उनका ही वरण करेगी। वे बार बार उचक रहे थे—

पुनि पुनि मुनि उकसहिं अकुलाहीं देखि दसा हर गन मुसुकाहीं'[5]

नारद के इस कौतुक को देख कर शिव के गण हंस रहे थे। मुनि तो काम से विह्वल हो रहे थे। शिव के गणों को हंसते देख नारद ने उन्हें शाप दिया—

तब हर गन बोले मुसुकाई निज मुख मुकुर बिलोकहु जाई
अस कहि दोउ भागे भय भारी, बदन दीख मुनि बारि निहारि
बेषु बिलोकि क्रोध अति बाढ़ा तिन्हहि सराप दीन्ह अतिगाढ़ा[6]

---

१ मानस-बालकाण्ड २२१।
२ वही १२८।
३ शिवपुराण रुद्रसंहिता-सृष्टिखण्ड अ० ३।
४ मानस बालकाण्ड-१३१।
५ वही १३४।
६ वही १३६।

नारद ने जल म पुन अपना स्वरूप देखा और आधिन हो विष्णु के पास चल। किन्तु माग मे ही विष्णु के मिलने पर नारद ने उन्हें बहुत बुरा भला कहा और उन्होने श्राप भी दे डाला—

"सुनत वचन उपजा अति क्रोधा, माया बस न रहा मन बोधा

बचेहु मोहि जवनि धरि देहा, सोइ तनु धरहु श्राप मम एहा
कपि आकृति तुम कीन्ह हमारी, करिहहि कीस सहाय तुम्हारी
मम अपकार कीन्ह तुम भारी नारि विरह तुम होव दुखारी"[1]

रामायण के उक्त प्रसग की तुलना शिवपुराण से की जा सकती है।[2] प्रभु की माया के प्रभाव के दूर होन पर नारद पूववत् शुद्ध बुद्धि होगए। वे अधिकाधिक पश्चाताप करते हुए बारम्बार अपनी निंदा करने लगे। तदनन्तर नारद भगवान विष्णु के चरणों म गिर पडे। रामायण का वह वणन भी शिवपुराण[3] का शब्दानुवाद मात्र है।

नारद का माया जय मोह दूर होने पर विष्णु ने उन्ह शिव के सहस्र नाम जप का आदेश दिया—

'जपहु जाइ सकर सतनामा होइहि हृदय तुरत विश्रामा'[4]

तुलसी ने शिवपुराण की नारद कथा का उसी रूप म अपनाया है। अन्तर केवल इतना है कि जो पद शिवपुराण म शिव का प्राप्त हुआ है मानस म वही हरि को।

मुक्तक पदों में शिव कथा—विवेच्य युग के प्रबन्ध काव्य मे तो शिव कथा प्रासगिक कथाओं के रूप म भव साहित्य से अवतरित है ही साथ ही वे मुक्तक काव्य का भी विषय बनी हैं। ठाकुर विद्यापति वर रूप म सुशोभित शिव के स्वरूप का वणन करते हैं—

---

१ मानस-बालकाण्ड १३६।

२ तुमने जिन वानरों के समान मेरा मुह बनाया था वे ही तुम्हारे सहायक हों, तुम दूसरों को दुख देने वाले हो अत स्वय भी तुम्हें स्त्री के वियोग का दुख प्राप्त हो।'

- शिवपुराण—रुद्रसहिता-(सृष्टि खड), अ० ४।

३ वही-अध्याय ४।

४ मानस-बालकाण्ड, १३७।

"दूर दूर छीग्रा, एहन के सग कोना रहति छीग्रा
दूर दूर छीग्रा पांच मुख शोभछेन, तीन ग्रखिया
दिगम्बर वेश देखि फाटे मोरा हिया—
काखतर झोरी शोभेन, मुछरक बोग्रा
सह–सह कर छन साप सखिया—"[१]

एक ग्रन्य पद म विद्यापति शिवपुराण मे वर्णित मैना की मानसिक वेदना की ग्रोर सकेत करते हैं—

'हम नहि ग्राजु रहब एहि ग्रागन
जा बुढ़ होयता जमाय
एक ते वेरि भेल विघ विधाता
दोसर धिग्रा केर बाप
तेसर वेरि भेल नारद ब्राह्मण
जेहि लायल बूढ जमाय
धोती लोटा पोथी पतरा
से हो सब लेवे ह छिनाय"[२]

भोजपुरी कवि विश्वनाथ ने पावती विवाह का वणन करते हुए कहा है—

बसहा चढल शिव के ग्रइले बरिग्रतिया राम
डेराला जिग्ररा ग्रगवा लपेटले बाडे साप
ग्रगवा भभूत शोभे गले मुण्डमाला राम
डेराला जिग्ररा नागवा छोडले फुफकार
मन मे विचारे मैना गउरा ग्रति सुन्दर राम
डेराला जिग्ररा, बरवा मिलले बउराह
नारद बाबा क हम कहारे बिगडला राम
डराला जिग्ररा बरवा, खोजले बउराह
ग्रसहन बउरहवा से हम गउरा ना विग्रहवो राम
डेराला जिग्ररा, ग्रलु गउरा रहि हैं कुग्रार
कहत विश्वनाथ तनि मेलवा बदलि दउ राम
डराला जिग्ररा नइहरा के लोग पतिग्रास'[३]

---

१ राम इकबालसिंह राकेश मैथिली लोकगीत पृ० १६० ।
२ विद्यापति की पदावली–स० बसन्तकुमार माथुर–पृ० ४०६ ।
३ दुर्गाशकर प्रसाद सिंह–भोजपुरी के कवि ग्रौर काव्य, पृ० १५८ ।

पद्माकर शिव-पार्वती क्रीडा का वर्णन करते हुए कहते हैं—

'चोस गुनगोर के सु गिरिजा गोसाइन को
आवत यहाँई प्रति आनन्द इते रहै
कहे पद्माकर प्रतापसिंह महाराज
देखो देखिबे को दिव्य देवता तितेरहे
खेल तजि, बल तजि फल तजि गलन मे
हेरत उमा को यों उमापति हिते रहे
गोरिन मे कौन घो हमारी गुनगोर यहै
संभु घरी चारिक लौं चकित चिते रहे।'[1]

प्रमुख शैव कथा पर आधारित काव्य प्रबन्धकाव्य की प्रासंगिक कथा तथा मुक्तक पद्यों में शिव से सम्बद्ध कथाओं का चित्रण शैव साहित्य के अनुरूप हुआ है जिसमें कहीं तो शैवसाहित्य[2] का शब्दानुवाद और कहीं भावानुवाद दिखलाई पड़ता है। ये *शैव कथाएं* जितनी शैवों में प्रिय रही हैं उतनी शैवेतर भक्त कवियों में भी। शैवेतर काव्य मे शैव कथाओं की अभिव्यक्ति शैवसाहित्य के प्रत्यक्ष प्रभाव का परिणाम है।

प्रासंगिक संकेत—मध्यकालीन हिन्दी काव्य में प्रासंगिक शिव कथाओं के अतिरिक्त इन कथाओं के प्रासंगिक संकेतों का भी अभाव नहीं है। इनमें काव्य का विषय एवं कथानक दूसरा होते हुए भी शिव प्रसंगों की ओर यत्र तत्र संकेत मिलते हैं।

संकेतों का आधार शैव कथाएं हैं, जिनका विस्तृत चित्रण प्रमुखतः शिवपुराण में मिलता है। वैसे तो अन्य पुराणों में भी उन कथाओं का अभाव नहीं है। शिवपुराण मे महादेव पुत्र गणेश सर्व प्रथम पूज्य माने गए हैं। इसके अतिरिक्त तारकासुर वध के लिए षडानन जन्म, शिव द्वारा मदन दहन, त्रिपुरासुर-वध तथा समुद्र मंथन के समय विषपान आदि प्रसंग भी शिवपुराण में आए हैं जिनके संकेत इस युग के काव्य में प्राप्त होते हैं।

---

१ पदमाकर—सं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र पृ० २००।
२ देखिये शिवपुराण रुद्रसंहिता पा० ख० अ० ३६ ४०, ४१ ४३।

प्राय सभी कवियो ने प्रारम्भ मे गणेश वन्दना की है। शिवपुराण[1] मे इसका कारण बतलाया गया है। तुलसी ने मानस मे गणेश पूजन की सर्वश्रेष्ठता बतलाते हुए कहा है—

> महिमा जासु जान गनराऊ
> प्रथम पूजियत नाम प्रभाऊ'[2]

ऐसी कथा है कि पार्वती, स्नान के पूर्व अपने शरीर के मैल से एक चेतन पुरुष का निर्माण किया। वह पुतला सम्पूर्ण शुभ लक्षणों से युक्त, दोष रहित और सुन्दर था। उसको पार्वती ने अपना पुत्र माना तथा अपना द्वारपाल नियुक्त किया। पार्वती ने उनको आज्ञा दी कि उनकी आज्ञा के बिना कोई भी अन्दर घुस न पावे। आज्ञा देकर पार्वती सखियों के साथ स्नान करने लगीं।

इसके अनन्तर शिव वहा आए। द्वारपाल गणेश ने उन्हे अन्दर जाने से रोका। शिव को बडा क्रोध आया। शिव के गणों और गणेश मे खूब युद्ध हुआ लेकिन गणेश को कोई पराजित न कर सका। अन्त मे शिव ने त्रिशूल से उनका सिर काट दिया। पार्वती उक्त समाचार प्राप्त कर बडी क्रुद्ध हुईं और बिना विचारे उन्होने बहुत सी शक्तियों को उत्पन्न कर प्रलय करने की आज्ञा दे दी। शक्तियो का तेज सभी दिशाओ को दग्ध सा किए डालता था। उसे देख कर शिव के गण भयभीत होकर दूर जा खडे हुए।

इस स्थिति से देवलोक भी भयभीत हो उठा। तब नारद आदि ऋषि पार्वती के पास गए और उनकी स्तुति की और विनत भाव से उनसे शान्त होने के लिए निवेदन किया। तब देवी ने कहा कि उनका पुत्र जीवित हो जाय, देवताओं मे पूजनीय माना जाय तथा उसे सर्वाध्यक्ष पद प्राप्त हो तभी लोक मे शान्ति हो सकती है। ऋषियो ने देवताओं को उक्त सम्वाद सुनाया। देवता विह्वल हो शिव के पास गए और उनसे सारा समाचार निवेदन किया। शकर ने पार्वती की इच्छा को स्वीकार कर उनके पुत्र को जीवित किया। इसके अनन्तर ब्रह्मा विष्णु और महेश ने उन्हें आशीश प्रदान करते हुए कहा कि अब से वे सर्वप्रथम पूजे जावेंगे। शर्वों के अनुसार गणेश इसी कारण सर्वप्रथम पूज्य माने जाते हैं।

—शिवपुराण—रुद्रसंहिता कुमार खंड अ० १३-१८।

२ मानस—बालकाण्ड १०२।

स्वय शिव और पावती भी सवप्रथम गणेश की पूजा करते हैं—

मुनि अनुशासन तनपतिहि पूजेउ सभु भवानि"[1]

तुलसी सीता विवाह म भी सवप्रथम गणेश पूजन कराना नही भूले हैं—

आचारु करि गुर गौर-गनपति मुदित बिप्र पूजावहीं"[2]

तुलसी की रचनाओं मे गणेश वन्दना देख कर उसके साकेतिक कथाधार का अनुमान सरलता से किया जा सकता है।

गणेश का आदिदेवत्व आचाय भिखारीदास के शब्दों म भी माना गया है —

"जो त्रिदस बन्द वन्दित चरन चौदह आदि गुर,

तेहि दास पचदसहू तिथिन्ह धरिय घोडसो ध्यानउर'[3]

योगीराज शिव के दो बालक कार्तिकेय और गणपति हैं। कार्तिकेय[4] का जन्म तारकासुर के वध के लिए हुआ। गोस्वामी तुलसी ने इस प्रसग की ओर सकेत किया है—

'जब जनमेउ षटबदन कुमारा तारकु असुरु समर जेहिं मारा।

आगम निगम प्रसिद्ध पुराना षन्मुख जन्मु सकल जग जाना।'[5]

मध्यकालीन हिन्दी काव्य म शिव से सम्बद्ध मदन-दहन कथा के प्रासगिक सकेत अनेक स्थलो पर मिलते हैं। मदन को शिव का रिपु बतलाया जाता है। यह मान्यता जिस प्रकार सस्कृत साहित्य म पैठ गई थी वैसे ही हिन्दी

१ मानस-बालकाण्ड, १००।

२ वही ३२२।१।

३ आ० भिखारीदास-काव्य निणय-पृ० १।

४ देखिये—

(क) शिवपुराण-रु० स० पा० ख० अ० १४ १६।

(ख) वराहपुराण-२५।३२,३३,३४।

(ग) तत कतिपये काले तारकाद भयमागते

मनुष्यत्वे कार्तिकेये चिरकालरहोगते।

महेश्वरे भवान्यां च त्रस्ता देवा समागता।

विश्वस्य जगतो धाता विश्वमुर्निनिरजन

मादिकर्ता स्वयभूश्च सनमापि जगत्पतिम्।

—ब्रह्मपुराण १२८।७ ८,४४।

(घ) कुमारसभव-द्वितीय सग-५१ ५२,६१।

५ मानस-बालकाण्ड-१०२।

साहित्य म भी पठी हुई है। मध्यकालीन हिंदी कविता मे इस सम्बन्ध के अनेक स्थल मिल सकते हैं।

विद्यापति न मदन दहन प्रसग की ग्रार सकेत किया है। उनकी नायिका कहती है कि हे मदन तू मुझे क्या वेदना दे रहा है? मैं शिव नही हू। मेरा एक ही दोष है जिससे तुम भ्रम म पड गये हो और मुझे शकर समझ कर दुख देने लगे हो। वह दोष यही है कि मेरा नाम भी वामा है जो शकर का भी नाम है।

"कत न वेदन मोहि देसि मदना, हर नहीं बला मोहि जुबती जना।
विभुति भूषन नहिं चानन क रेनु, बघछाल नहिं मोरा नेतक बसनू
नहिं मोरा जटा भार चिकुर क बेनी, सुरसरि नहिं मोरा कुसुम क सेनी।
चांद क बि दु मोरा नहि इन्दु छोटा ललाट पावक नहि सिन्दुर क फोटा।
नहिं मोरा कालकूट मृगमद चारु फनपति नहिं मोरा मुकुता हारु
भनइ विद्यापति सुन देव कामा, एक दए दूखन मोर नाम बामा।'[1]

शिव रिपु मदन की कथा सकेत सूर काव्य म भी मिलता है। गोपिया कहती हैं—

वाही प्राननाथ प्यारे बिनु शिव रिपु बाण नूतन जोजरे'[2]

शिव का रिपु कामदेव गोपियो को सता रहा है। सूरदास न एक अन्य स्थल पर शिव रिपु कामदेव की ओर सकेत किया है—

'अब ता बिनु उर भवन भयो है शिव रिपु को सचार"[3]

तुलसी ने शिव को काम मद मोचन[4] कह कर अप्रत्यक्ष रूप से काम दहन की ओर सकेत किया है। नददास भी तुलसी के स्वर म स्वर मिलाकर कहते है—कामरिपु नाम'[5]

भूषण कवि ने मदन दहन की ओर सकेत करते हुए कहा है—

'हरयो रूप इन मदन को याते भो शिव नाम
लियो बिरद सरजा सबल, अरि गज दलि सग्राम'[6]

१ विद्यापति की पदावली-स० बसन्त कुमार, पृ० ७३।
२ भ्रमरगीत सार-पृ० १२०।
३ वही पृ० १२८।
४ विनयपत्रिका-स० वियोगी हरि, पद १२।
५ नददास ग्र थावली, पृ० ८०।
६ भूषण ग्र थावली, पृ० २६०।

कवि के अनुसार मन्मथ के रूप को नष्ट करने के कारण 'शिव' नाम पड़ा।

डा० भिखारीदास के शब्दों में मदन दहन कथा के संकेत का अनुमान सरलता से लगाया जा सकता है।

'काम के दस्य भए निगरे जग यातें भई मनो सभु रिसाई
जारि के फेरि सवारन कों छिति के हित पावक ज्वाल बढाई"[1]

उन्होंने इसी प्रसंग की ओर संकेत करते हुए अन्यत्र कहा है—

शिव साहब अचरज भरो सकल रावरो अंग
क्यो कामहि जारयो, कियो क्यो कामिनि अरधंग"[2]

कवि पद्माकर इसी ओर संकेत करते हैं—

'काम-वाम को खसम की भसम लगावत अंग
त्रिनयन के नैननि जग्यो कछु करुना को रंग"[3]

भूषण ने शिव से सम्बद्ध त्रिपुरासुर वध की कथा की ओर संकेत किया है। त्रिपुरासुर वध की कथा इस प्रकार है। त्रिपुर नामक राक्षस राजा बलि का पुत्र था। उसने तीनों लोकों को अपना निवास स्थान बनाया हुआ था। किसी को पता न लगता था कि वह किस समय किस लोक में है। अतः शिव ने एक साथ तीन बाण छोड़ कर त्रिपुरासुर का वध किया। इसी कथा की ओर संकेत करते हुए भूषण कहते हैं—

'तीन पुर के मारे सिव तीन बान
तीन पातसाही हनी एक किरवान सो'[4]

सनातन कवि वज्र शंकर को 'त्रिपुरारि' संज्ञा से सम्बोधित करते हैं जो प्रत्यक्षतः त्रिपुरासुर वध की ओर संकेत है।

'शंकर शंभु त्रिपुरारि डिमरू डिमडिम बजाया'[5]

भूषण और वज्र के काव्य में त्रिपुरासुर वध की कथा का संकेत नया नहीं है। उनसे पूर्व तुलसी और नन्ददास आदि ने भी अपने काव्य में उक्त कथा की ओर संकेत किया है। तुलसी का कथन है कि शिव त्रिपुरासुर को चूर-चूर करने वाले हैं।

---

१ भिखारीदास–सं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, द्वितीयखण्ड, पृ० १११।
२ भिखारीदास–सं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र द्वितीय खण्ड पृ० १२५।
३ पद्माकर–सं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र पृ० २०२।
४ भूषण ग्रन्थावली–पृ० ७१।
५ नर्मदेश्वर चतुर्वेदी–संगीतज्ञ कवियों की हिन्दी रचनाएं पृ० ६६।

त्रिपुर-मदन भीम कम भारी"[1]

नददास ने भी शिव को 'त्रिपुर ग्ररि'[2] कहा है जो प्रत्यक्षत शिव की त्रिपुरासुर वध कथा की ओर सकेत है। उपयु क्त उदाहरणो से स्पष्ट है कि मध्यकालीन हिन्दी कविता म शिव कथा के प्रासगिक सकेत ग्राए हैं जो शवसाहित्य के प्रभाव का परिणाम है।

डा० भिखारीदास ने शिव के दो विवाह की ग्रार सकेत करते हुए कहा है—

सभु सो क्यो कहिये जिहि ब्याहो है,
पारवती ग्रो सती तिय दोऊ'[3]

शव कथाग्रो के प्रासगिक सकेत कम महत्त्वपूर्ण नही है। उनम ग्रभिव्यक्त कथा के सकेत साहित्य की ग्रनुपम निधि है। रसखान शिव द्वारा विषपान की ग्रोर सकेत करते हैं—

'प्रेमहि तें विषपान करि पूजे जात गिरीस'[4]

इस विवेचन से यह ग्रनुमान स्पष्ट हो जाता है कि शिव स सम्बधित ग्रनेक कथोपकथाग्रो का उपयुग धममाग से साहित्य म हुग्रा। सस्कृत साहित्य म ऐसी कथाग्रा का नही प्रसगा का प्राचुय है। इनकी व्यावहारिक उपयोगिता न केवल सस्कृत साहित्य की निधि बनी रही वरन् ग्राधुनिक भारतीय ग्राय भाषाग्रा म भी इसको स्वीकार किया गया। इसलिए मध्यकालीन हिन्दी कविता म शिव कथा प्रसग ग्रोतप्रोत मिलत हैं।

रस

रसास्वादन काव्याध्ययन का परम ध्यय है। वाग्वैदग्ध्य, वाक चातुयय तथा ग्रभिव्यजना कौशल की प्रधानता रहने पर भी रस काव्य का जीवन है। रस की ग्रनुभूति सहृदय को द्रवित करके उसक मन का तन्मय शरीर का पुलकित ग्रौर वचन रचना को गद्गद् रमन की क्षमता रखती है। काव्य म प्रस्फुटित हो रस ग्रन्तर म प्रवेश कर ग्रात्मा को सब ग्रोर स ग्रपन म ग्राबद्ध कर लेता है। रस का ग्रास्वाद मिलन पर विषयान्तर का ग्रनुभव ग्रात्मा क पास तक नहीं फटकता।

---

१ विनयपत्रिका-प० वियोगीहरि, पद
२ नददास ग्र थावली-पृ० ८० ।
३ भिखारीदास-स० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, प्रथम खण्ड, पृ० ६ ।
४ पुरातन काव्य लहरी-स० सत साधुराम, पृ० ८३ ।

मानसिक स्थान के विचार के रसा के तीन भाग होते हैं— ज्ञान भाव और क्रिया सम्बद्ध।[1] ज्ञान से सम्बंधित रसो की श्रेणी मे शात, अद्भुत और हास्य रस आते हैं। शृगार बीभत्स और रौद्र रस भाव सम्बद्ध हैं तथा क्रिया से सम्बद्ध वीर और भयानक रस हैं।

शिव एक विचित्र देव हैं। वेदों से लेकर आज तक न जाने कितनी विकास सरणिया उनके व्यक्तित्व म उपलब्ध होती हैं। शिव या शकर प्राय शान्त रस के देव हैं किन्तु प्रलयकर रुद्रताण्डवकारी रुद्र (या शिव) भयानक या रौद्र के ही आलबन बनते हैं। रौद्र या भयानक के पश्चात् ही काव्य म शिव या रुद्र के सम्बन्ध से एक ऐसी स्थिति पैदा की जाती है जिसस पाठक या श्रोता के लोचनो म वे बीभत्स के आलबन हो जाते हैं। भक्तो की व शात मूर्ति के रूप म ही अधिक प्रिय हैं किन्तु उनके अन्य रूप भी उन्हें त्याज्य नहीं हैं क्योकि वे शिव के अविकल व्यक्तित्व के ही अभिन्न अग हैं। शिवपुराण म शिव की अनेक कथाओ मे शात शृगार हास्य करुण, रौद्र, वीर, भयानक और बीभत्स रसो की अभिव्यक्ति हुई है। उनमे से शात हास्य बीभत्स रौद्र भयानक और वीर रसो की अवतारणा उत्तरवर्ती साहित्य मे शिवपुराण के अनुरूप ही हुई है। यो तो प्रमुख अथवा प्रासगिक शिव कथाओ मे शृगार तथा करुण रस का अवसर भी आया है परन्तु प्रधानता शात, भक्ति हास्य, बीभत्स और रौद्र तथा भयानक रस की रही है।

शात रस

मध्यकालीन भक्ति साहित्य म शात रस का प्रमुख स्थान है। शातरस का स्थायी भावनिर्वेद माना गया है। अभिनवगुप्त ने तत्त्व ज्ञान को शान्त रस का स्थायी भाव माना है। तत्त्वज्ञान से उनका अभिप्राय आत्मज्ञान से है। वही मोक्ष का साधन है। भरत मुनि ने शात रस का विश्लेषण करते हुए कहा है—जहा न दुख है न सुख, द्वेष न मात्सर्य और जहा समभाव का प्राधान्य है वहा शान्त रस होता है।[2] ससार म अत्यन्त निर्वेद होने पर या तत्त्वज्ञान द्वारा वैराग्य का उत्कर्ष होने पर शात रस की प्रतीति होती है। भक्त तत्त्वज्ञान द्वारा निर्वेद अवस्था में एक मात्र भगवद्भक्ति मे तल्लीन हो शात रस का अनुभव करता है। शान्तरस म मिथ्या प्रतीत होने वाला जगत् आलम्बन वैराग्य और ससार से भीरुता उसके विभाव हैं। मोक्ष शास्त्र मनन आदि अनुभाव हैं। धृति मति

१ रामदहिन मिश्र-काव्य-प्रकाश की टीका, पृ० ४३।
२ रामदहिन मिश्र-काव्य-दर्पण की टीका पृ० ४५।

और हर्षादि व्यभिचारिभाव तथा सम स्थायी भाव से शान्तरस की[1] अभिव्यक्ति होती है।

मध्यकालीन हिन्दी के भक्ति काव्य में शान्त-पर भक्ति रस प्राप्त होता है जिसमें संसार से विरक्त हो एकमात्र भगवान् के आराधन में शान्त रस का आनन्द प्राप्त करता है। तुलसी के काव्य में शान्त-पर भक्ति रस के अनेक उदाहरण देखे जा सकते हैं –

'भवानीशंकरौ वन्दे श्रद्धा विश्वास रूपिणौ
याभ्यां विना न पश्यन्ति सिद्धा स्वान्त स्थमीश्वरम
वन्दे बोधमय नित्य गुरु शंकर रूपिणम्
यमाश्रितो हि वक्रोऽपि चन्द्रः सर्वत्र वन्दते ।"[2]

भक्ति को कभी शान्त रस के अन्तर्गत ही माना जाता है। उसके स्थायी भाव, विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी सब अलौकिक होते हैं। इसमें भगवान् आलम्बन भक्तों का समागम उद्दीपन तीर्थ सेवन भगवान् के नाम तथा लीला का कीर्तन आदि व्यभिचारी है तथा ईश्वर रति स्थायी भाव है।

भक्ति रस

शवभक्ति की अनेक भूमिकाएं मिलती हैं। गुण कीर्तन, दैन्य प्रकाशन शरणागति भाव आत्मसमर्पण—ये प्रमुख भाव मध्यकालीन कविता में अवश्य रहे हैं। गुण कीर्तन के भाव को देखिये—

'देव,
मोह तम तरणि, हर रुद्र शंकर, शरण हरण, मम शोक लोकाभिराम।
अकल, निरूपाधि, निर्गुण निरंजन, ब्रह्म, कर्म-पथमेकमज निर्विकार
अखिल विग्रह, उग्ररूप, शिवभूपसुर, सर्वगत सर्व सर्वोपकार ।
ज्ञान वैराग्य, धन धर्म, कैवल्य सुख, सुभग सौभाग्य शिव सानुकूल"[3]

आचार्य भिखारीदास के शब्दों में भी उक्त गुण कीर्तन भाव देखा जा सकता है–

' भाल मे जाके कलानिधि है, वह साहिब ताप हमारो हरेगो
अग मे जाके विभूति भरी वहे भौन म सपति भूरि भरेगो
घातक है जो मनोभव को मम पातक वाही के जारे जरेगो
दास जू सीस पे गग धरे रहे ताकी कृपा कहो को न तरेगो'[4]

---

१ आ० विश्वेश्वर–काव्य प्रकाश पृ० १३६ ।
२ मानस–बालकाण्ड २ ३ (मगलाचरण श्लोक) ।
३ विनयपत्रिका–स० वियोगीहरि, पद १० ।
४ भिखारीदास–स० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, प्र० ख० पृ० १५७ ।

इसी प्रकार भक्ति-रस परक कविता म दैन्य प्रकाशन का भी महत्त्व रहा है। तुलसी शिव के सम्मुख अपनी दीनता प्रकट करते हैं—

देव बडे दाता ईडे, सकर बडे भोरे
किये दूर दुख सबनिके जिन्ह कर जोरे
नाव बसत वामदेव मैं कबहु न निहोरे
आधिभौतिक बाधा भई ते किंकर तोरे
वेगि बोलि बलि बरजिये, करतूति कठोरे
तुलसी दलि रूंध्यो चहें सठ साखि सिहोरे"[1]

भक्ति रस की भूमिका म शरणागति भाव को निम्न पद मे देखा जा सकता है–

नाद महत गिरिजा कत दीनन के दयावत
तिहारी कृपा तें निसिदिन गाऊँ हरिगाथा
जसे गाय आए सत
वरद राज सब काज सवारन मगल मूरति
अनद अनत
आन दघन को ब्रजजीवन त्यों सरस राखिये
जानि आपनो जत'[2]

शरणागति का ऐसा ही भाव तुलसी के काव्य म प्रस्फुटित हुआ है—

'तदपि नेरमूढ आरूढ ससार पथ, भ्रमत भव–
विमुख तव पाद मूल।
नष्टमति, दुष्ट अति कष्ट-रत सेव गत, दास तुलसी
शभु शरण आया"[3]

कवियों ने शिव के प्रति आत्म समपण का भाव भी बडे विभोर होकर व्यक्त किया है। विद्यापति के एक पद म उसे देखिये—

'करबन हरब दुख मोर हे भोलानाथ
दुखहि जनम मेल दुखहि गमाएब
सुख सपनहु नहीं मेल हे भोलानाथ
आछत चानन अवर गगाजल

१ विनयपत्रिका-स० वियोगीहरि, पद ८।
२ घनआनन्द और आनन्दघन-स० विश्वनाथ मिश्र पृ० ११०।
३ विनयपत्रिका-स० वियोगी हरि–पद १०।

और हर्षादि व्यभिचारिभाव तथा सम स्थायी भाव म शान्तरस की[1] अभिव्यक्ति होती है।

मध्यकालीन हिन्दी के भक्ति काव्य में शान्त-पर भक्ति रस प्राप्त होता है जिसम ससार से विरक्त हो एकमात्र भगवान के आराधन म शान्त रस का आनन्द प्राप्त करता है। तुलसी के काव्य म शान्त-पर भक्ति रस के अनेक उदाहरण देखे जा सकते हैं —

'भवानीशकरो वन्दे श्रद्धा विश्वास रूपिणो
याभ्यां विना न पश्यन्ति सिद्धा स्वान्त स्थमीश्वरम
वन्दे बोधमय नित्य गुरु शकर रूपिणम्
यमाश्रितो हि वक्रोऽपि चन्द्र सर्वत्र वन्द्यते।"[2]

भक्ति को कभी शान्त रस के अन्तगत ही माना जाता है। उसके स्थायी भाव विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी सम अलौकिक होते हैं। इसम भगवान् आलम्बन भक्तो का समागम उद्दीपन, तीर्थ सेवन, भगवान् के नाम तथा लीला का कीतन आदि व्यभिचारी है तथा ईश्वर रति स्थायी भाव है।

भक्ति रस

शवभक्ति की अनेक भूमिकाए मिलती है। गुण कीतन, दैन्य प्रकाशन शरणागति भाव आत्मसमपण—य प्रमुख भाव मध्यकालीन कविता म अवश्य रहे हैं। गुण कीतन के भाव को देखिये—

'देव,
मोह तम तरणि, हर रुद्र, शकर, शरण हरण, मम शोक लोकाभिराम।
अकल, निरुपाधि, निगु ण निरजन, ब्रह्म, कम-पथमेकभज निर्विकार
अखिल विग्रह उग्ररूप शिवभूपसुर, सवगत सव सर्वोपकार।
ज्ञान वराग्य, धन धम, कैवल्य सुख, सुभग सौभाग्य शिव सानुकूल"[3]

आचाय भिखारीदस के शब्दो मे भी उक्त गुण कीतन भाव देखा जा सकता है—

'भाल म जाके कलानिधि है, वह साहिब ताप हमारो हरेगो
अग मे जाके विभूति भरी वहे भौन मे सपति भूरि भरेगो
धातक है जो मनोभव को मम पातक वाही के जारे जरेगो
दास जू सीस पे गग धरे रहे ताकी कृपा कहौ को न तरेगो'[4]

१ आ० विश्वेश्वर–काव्य प्रकाश, पृ० १३६।
२ मानस–बालकाण्ड २ ३ (मगलाचरण श्लोक)।
३ विनयपत्रिका–स० वियोगीहरि, पद १०।
४ भिखारीदास–स० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, प्र० ख० पृ० १५७।

इसी प्रकार भक्ति रस परक कविता मे दैन्य प्रकाशन का भी महत्त्व रहा है। तुलसी शिव के सम्मुख अपनी दीनता प्रकट करते हैं—

> देव बडे, दाता बडे, सकर बडे भोरे
> किये दूर दुख सबनिके, जिन्ह कर जोरे
> नाव बसत बामदेव, मैं कबहु न निहोरे
> अधिभौतिक बाधा भई, ते किंकर तोरे
> बेगि बोलि बलि बरजिये, करतूति कठोरे
> तुलसी बलि रूध्यो चहें सठ साखि सिहोरे"[1]

भक्ति रस की भूमिका म शरणागति भाव को निम्न पद मे देखा जा सकता है–

> नाद महल गिरिजा कत दीनन के दयावत
> तिहारी कृपा तें निसिदिन गाऊँ हरिगाथा
> जसे गाय आए सत
> बरद राज सब काज सवारन मगल मूरति
> अनघ अनत
> आनन्दघन को व्रजजीवन त्यों सरस राखिये
> जानि आपनो जत'[2]

शरणागति का ऐसा ही भाव तुलसी के काव्य म प्रस्फुटित हुआ है—

> "तदपि नरमूढ आरुढ ससार पथ, भ्रमत भव–
> विमुख तव पाद मूल ।
> नष्टमति दुष्ट अति कष्ट-रत सेव गत, दास तुलसी
> शभु शरण आया"[3]

कवियो ने शिव के प्रति आत्म समर्पण का भाव भी बडे विभोर होकर व्यक्त किया है। विद्यापति के एक पद म उसे देखिये—

> 'करवन हरब दुख मोर हे भोलानाथ
> दुखहि जनम मेल दुखहि गमाएब
> सुख सपनहु नहीं मेल हे भोलानाथ
> आछत चानन अवर गगाजल

---

१ विनयपत्रिका-स० वियोगीहरि, पद ८ ।

२ घनआनन्द और आनन्दघन-स० विश्वनाथ मिश्र पृ० ११० ।

३ विनयपत्रिका-स० वियोगी हरि–पद १० ।

बेलपात तोहि देव, हे भोलानाथ
यहि भवसागर थाह कतहु नहि
भरव धए कर प्राए, हे भोलानाथ
मन विद्यापति मोर भोलानाथ पति
देहु ग्रभय वर मोहि हे भोलानाथ'[१]

मक्त केवल भगवान् की अनुरक्ति मे लीन रहना चाहता है। वह भगवान् को आत्मसमपण कर निश्चित हो जाता है। यही भक्ति रस की पराकाष्ठा है। मध्यकालीन हिदी कविता म शिव को आलम्बन मान, भक्ति रस की अभि व्यक्ति शवमत के प्रभाव मे अ तगत हुई है।

हास्य रस—हास्य रस मे विशेषता या विचित्रता रूप या उक्ति क सम्ब घ से प्रमुख होती है। उसमे आश्रय की प्रतीति नही होती केवल आलम्बन के वणन से रसाभिव्यक्ति हो जाती है।

हास्य रस चित्त का विकास है जो प्रीति का एक विशेष रूप है। कलाकार मानव जीवन की असगति या विषमता अथवा विपरीतता आदि स हास्य रस की सृष्टि कर जीवन को आन द प्रदान करने का प्रयास करता है। मध्यकालीन हिदी काव्य म शिव के पारिवारिक जीवन की असगति या विप रीतता को हास्यरस द्वारा अभिव्यक्त किया गया है। शिव के पारिवारिक जीवन तथा अ य प्रसगो का हास्यप्रद वणन शिवपुराण म भी मिलता है। इस युग क काव्य मे शिव से सम्बद्ध हास्य रस की अभिव्यक्ति उक्त पुराण के अनुरप हुई है। तुलसी के श दो मे शिव की बारात का वणन देखिये—

देखि सिवहि सुरत्रिय मुसुकाहीं वर लायक दुलहिनि जग नाहीं।
सुर समाज सब भांति अनूपा, नहि बरात दूलह अनुरूपा

बर अनुहारि बरात न भाई, हसी करैहहु पर पुर जाई
विष्णु वचन सुनि सुर मुसुकाने, निज निज सेन सहित बिलगाने।
मन ही मन महेसु मुसुकाही हरि क व्यग्य वचन नहि जाहीं"[२]

तुलसीकृत उक्त रस वणन की तुलना शिवपुराणगत[३] रस म की जा सकती है। वहा भी शिव क बारातियो की विषमता अथवा विपरीतता हास्य का अवसर

---

१ विद्यापति की पदावली-बसन्तकुमार–पृ० ४२५।
२ मानस-बालकाण्ड ६२।
३ शिवपुराण-रु० स० पा० ख० अ० ३९, ४०।

प्रशान करती है। एक अन्य स्थल पर तुलसीकृत शिव बारात वर्णन में हास्य रस की छटा दर्शन योग्य है—

नाना वाहन नाना वेषा, बिहसे शिव समाज निज देखा
कोउ मुख हीन विपुल मुख काहू बिनु पद कर कोउ बहु पद बाहू
विपुल नयन कोउ नयन विहीना रिष्ट पुष्ट कोउ अति तनखीना
तन छीन कोउ अति पीन पावन कोउ अपावन गति धरे
भूषन कराल कपाल कर सब सब सोनित भरे
खर स्वान सुअर सुकाल मुख गन बेष अगनित को गने
बहु जिनस प्रेत पिसाच जमात बरनत नहिं बने
जस दूलह तसि बनी बराता, कौतुक विविध होहिं मग जाता"[१]

तुलसी की बारात का उक्त वर्णन शिवपुराण के प्रभाव में किया गया है।

कवि किसनउ कृत महादेव पारवती री-वेलि काव्य में भी शिव बारात के प्रसंग में हास्य रस का सुंदर उदाहरण देखा जा सकता है।

'आडम्बर इतन जान ताइ आई
किता मरम री बात कहि
देखइ बींद तालीया दद
साला हेली हसइ सहि
बूढउ बींद नइ बींदणी बालक
भेद आभावइ नेत्र भरइ
सासु ही बतकाव सामली
केतरउ ही अण दोह करइ [२]

कवि कृत बारात-वर्णन में हास्य की सृष्टि शवों की परम्परा के अनुरूप ही हुई है। कवि पद्माकर ने भी शिव की बारात का ऐसा ही हास्यप्रद वर्णन किया है—

"हँसि हँसि भागें देखि दूलहे दिगंबर को
पाहुनी जे आवें हिमाचल के उछाह में
कहै पदमाकर स काहू सों कहै को कहा
जोई जहां देखे सो हँसेई तहां राह मे

---

१ मानस—बालकाण्ड, ९३।

२ महादेव पारवती री-वेलि पद १२६, १२७।

मगन भई हसैं नगन महेस ठाढ़े
ग्रौरो हसैं येहू हसाहस के उमाह मैं
सीस पर गगा हसे भुजनि भुजगा हसे
हास ही को दगा भो सु गगा के विवाह में"[1]

हास्य का ग्रवसर शकर की बारात के अतिरिक्त उनके विवाह सस्कार के समय भी प्राप्त हुग्रा है। शिव पार्वती गठ-बन्धन का चित्रण करते हुए कवि भिखारी दास कहते हैं—

गौरी ग्रचर-छोर ग्रह हरगर विषधर पूछि
गठिजोरा को तिय गहै तजे हसे कहि छूछि"[2]

शिवपुराण[3] मे भी गठबन्धन खोलने का वर्णन है किन्तु उक्त वर्णन मे हास्य रस का समावेश कवि की मौलिकता है।

बीभत्स — घृणित वस्तु के देखने या सुनने से जहाँ घृणा या जुगुप्सा का भाव परिपुष्ट हो वहाँ वीभत्स रस होता है। इसका स्थायी भाव घृणा है। कवितावली मे तुलसी ने जुगुप्सा के सम्बन्ध से वीभत्स के लिए वातावरण प्रस्तुत किया है। वातावरण पर दृक्पात कीजिये —

ग्रोझरी की झोरी कांध ग्रातनि की सेल्ही बांध
मूडके कमडल खपर किए कोरि के
जोगिनी झुटुग झुड झुड बनी तापसी सी
तीर तीर बैठीं सो समर सरि खोरि के
श्रोनित सों सानि सानि गूदा खात सतुग्रा से
प्रेत एक पिग्रत बहोरि घोरि घोरि के
तुलसी बेताल भूत साथ लिए भूतनाथ
हेरि हेरि हसत हैं हाथ हाथ जोरि के'[4]

शिव के सम्बन्ध से वीभत्स के वातावरण को भूषण की वाणी मे भी देखिये—

प्रेतिनी पिसाचरु निसाचर निसाचरिहू
मिलि मिलि ग्रापुस मे गावत बधाई है
भरू भूत प्रेत भूर भूधर भयकर से

---

१ पदमाकर—स० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र पृ० २०१।
२ भिखारीदास—स० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र प्रथम खण्ड पृ० ६५।
३ शिवपुराण—रु० स० पा० ख० ग्र० ४६ ५।
४ कवितावली पृ० ६८।

जुत्थ जुत्थ जोगिनी जमात जुरि आई हैं
किलकि किलकि के कुतूहल करति काली
डिम डिम डमरू दिगम्बर बजाई है
शिवा पूछैं सिव सों समाज आजु कहा चली
काहू पै शिवा नरेश भृकुटी चढ़ाई है।"[1]

गणों के साथ शिव का ऐसा वर्णन शिव पुराण स्कन्दपुराण आदि अनेक शैव ग्रंथों में मिलता है। एक अन्य पद में भूषण ने आतों की तांत खाल की मृदंग और खोपड़ी की ताल का वर्णन कर वीभत्स दृश्य प्रस्तुत किया है—

भूषन भनत चन उपजे सिवा के चित्त
चौंसठ नचाई जबे रेवा के किनारे मे
श्रोतन की तांत बाजी खाल की मृदंग बाजी
खोपरी की ताल पसुपाल के अखारे मे [2]

कवि पद्माकर भी ऐसे ही दृश्य की ओर संकेत करते हुए वीभत्स रस की व्यवस्था करते हैं—

'रिपु रुंड धरा को अरपत ताको हरहि हरा को मुंडदियो
लहि अर्जुन मत्या गिरिजा नत्या अमित अकत्या नचत भयो
डम डमरू बजावे बिरदनि गावे भूत नचावे छबिन छयो [3]

मध्यकालीन हिन्दी काव्य में युद्ध वर्णन के प्रसंग में भूतनाथ का वर्णन हुआ है। उनके गुण भूतप्रेतादि श्रोनित पान तथा मांस भक्षण करते हुए चित्रित किये गये हैं। इस युग के कवियों ने वीभत्स दृश्य चित्रण कर वीभत्स रस की सृष्टि की है। उसमें शिव और उनके गण प्रमुख आलम्बन रहे हैं। इस युग के काव्य में वीभत्स रस का वर्णन शैव साहित्य के प्रभाव में हुआ है।

रौद्र रस — रौद्र रस का स्थायी भाव क्रोध है। इसका आविर्भाव विग्रह में माना जाता है। इसका लक्षण शरीर की उग्रता है। कवि किसनउ ने दक्ष यज्ञ में सती के क्रोध का जो चित्रण किया है उसे शिवपुराण का छायानुवाद कहा जा सकता है। उसमें रौद्र की मनोहर झलक देखी जा सकती है। सती क्रोध के कारण अपने शरीर का त्याग करती है। कवि द्वारा प्रस्तुत उक्त वर्णन में रौद्ररस का आभास मिलता है।

१ भूषण ग्रंथावली—पृ० २६।
२ वही पृ० ३६८।
३ पद्माकर—सं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र पृ० २६।

'ग्रण जण करइ निंदा ईसर री
गइ दाखइ देख गढ गाम
उ ग्रपनउ शरीर छय थी
किसउ सरीर तीये सू कांम
तामस कीयउ सती तन त्यागण
ग्रापरा गढा चाढीयउ कथ
हठ कर पडी हुतासन माह
बाजउ ही ज जगन कीयउ घज वध '[1]

कवि का उक्त वर्णन नया नही है। शिवपुराण मे सती कथा के ग्रन्तगत इसी प्रकार रौद्र रस का वर्णन हुआ है। उक्त पुराण म शिव के रौद्र रूप के वर्णन का अभाव नही है। उत्तरकालीन कवियो ने शिव के रौद्र रूप का वर्णन उसी प्रभाव के ग्रन्तगत किया है। शिव के रौद्र रूप का वर्णन करते हुए कवि कहता है—

रउद्राल कीयउ तिण वार रूप रुद्र
घणइ सती जइ नेत्र वियाग
कोट ग्रनह ब्रह्मड कांपीता
जडा हुती काढीयउ ज्याग
चढीया जाइ पन्नग कोप चढि
रोस सरोस थरकीया रोम
पावक धू वइ परवउ परजलीयउ
थिकटी जटा विलागी वोम '[2]

विवेच्य युग के कवि शिव को ग्रालम्बन मानकर, रौद्ररस वर्णन म शिवपुराण से दूर नहीं गये हैं।

भयानक रस

भयदायक वस्तु को देखने या सुनने से ग्रथवा प्रबल शत्रु के विद्रोह ग्रादि करने से, जब हृदय म वर्तमान भय परिपुष्ट होता है तब भयानक रस उत्पन्न होता है। उसका स्थायी भाव भय है। *शिवपुराणगत*[3] *वर्णन के ग्रनुसार राजा हिमाचल के* नगर के निवासी, शिव की बारात का दल कर भयभीत होते हैं। ऐसा ही

---

१ महादेव पारवती री वेलि–पद ८८, ८६।
२ महादेव पारवती री वेलि, पद २००, २०।
३ शिवपुराण रु० सं० पा० ख० ग्र० ४-४३।

वर्णन प्राय मध्यकालीन हिन्दी काव्य से मिलता है। तुलसी भयभीत पुर-वासियों के हृदय की दशा का वर्णन करते हैं—

"तिय समाज जब देखन लागे, बिडरि चले वाहन सब भागे
धरि धीरजु तह रहे सयाने, बालक सब ले जीव पराने
गए भवन पूर्छहि पितु माता, कर्हाह वचन भयकंपित माता
कहिय काह कहि जाइ न बाता, जम कर धार किधौं बरिआता"[1]

पार्वतीमंगल में भी तुलसी ने ऐसे ही भय का वर्णन किया है। शिव की बारात को देखकर बालकों के हृदय भयभीत हो जाते हैं—

'प्रमुदित गे अगवान विलोकि बरातहि
भभरे बनइ न रहत न बनइ परातहि
चले भाजि गज बाजि फिरहि नहि फेरत
बालक भभरि भुलान फिरहि घर हेरत'[2]

कवि भिखारीदास हिमाचल नगर की युवतियों की भयभीत अवस्था का वर्णन करते हैं —

जुवति गिरिराज की, लखन को गई दूलहे
विकल डरि के भजीं निरखि संभु को थूल है
उरग तन भूषनो, बदन आक-पने भरे
बसन गज खाल को, मनुज मुंडमाल धरे'[3]

शिव की बारात को देखकर बाल वृद्ध और युवतियाँ भयभीत हैं। उनके भय का ऐसा ही चित्रण शिवपुराण में हुआ है। मध्यकालीन हिन्दी-काव्यगत शैव कथाओं में अभिव्यक्त रसों में शिवपुराण का प्रभाव अनुमानगम्य है।

वीर रस उत्साह का संचार उत्साह भाव का परितोष वीर रस का लक्ष्य है। उसके प्रदर्शन की कोई सीमा नहीं बाँधी जा सकती। इसी कारण इसके अनेक भेद किये गये हैं। मनुष्य के धृति क्षमा दया अस्तेय शौच इन्द्रिय निग्रह आदि जितने गुण हैं तथा परोपकार दान तथा, धर्म आदि जितने सुकर्म हैं सभी में वीरता दिखलाई जा सकती है। किसी को किसी विषय में असाधारण योग्यता उस विषय में उसका वीर होना प्रमाणित करती है। शिवपुराण में शिव के गुण तथा सुकर्म के

१ मानस—बालकाण्ड ९४।
२ पार्वती मंगल—१२।१०३ १०४।
३ भिखारीदास—स० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, प्रथम खण्ड, पृ०

अनेक उदाहरण मिलते हैं। मध्यकालीन हिन्दी कविता म उसी अनुकरण पर शिव कथाओं म वीर रस का वर्णन हुआ है। शिव ब्यावलो म कवि ने वीर रस का वर्णन बडे सुन्दर ढंग स किया है—

> धमके सती घूघर बाग्रें, धडके धरत सवाई
> चोसठ जोगण लगर पूरे, हाले सागर भाई
> वीर भवानी छडिया, पडया नगर मे सोर
> पाखरिया प्रभु तणा, जोधा चाले जोर
> गहरिया ज्यू गॅगदा, फागण खेले फाग'[1]

प्रस्तुत रस की तुलना शिवपुराणगत सती कथा म दक्ष-यज्ञ विध्वंस के समय होने वाले रस से की जा सकती है। इसी प्रसग म वीर रस स आप्लावित वर्णन करते हुए—'महादेव पारवती री वेलि' म कहा गया है—

> ' आठें गण तिके महामड आवा,
> एका हेक चडता हाय।
> लक तणइ तोरण जाइ लागा
> मड आछटइ तिके मारत्य।
> सादूलउ एक अनेक सिंहलि
> घूमर कोयइ फेरवउ धस
> बधा हुता ऊवडे बगतर
> हाक समाती उडीयइ हस [2]

शिवपुराण मे वीर तथा वीभत्स रस का अवसर सती के पिता के यज्ञ के युद्ध के कारण उपस्थित हुआ है। मध्यकालीन हिन्दी साहित्यगत शिव कथाओं मे उक्त प्रसगो पर वीर तथा वीभत्स रस का वर्णन उक्त पुराण के अनुकरण पर हुआ है।

इन प्रसगो के अतिरिक्त शिव के दानवीर स्वरूप का वर्णन भी हुआ है। कवि पद्माकर के शब्दो म शिव के दानवीर स्वरूप का वर्णन देखिए—

> "सम्पति सुमेर की, कुबेर की जु पावे ताहि
> तुरत लुटावत विलम्ब उर धारे नाहीं
> कहे पदमाकर सु हेम हय हाथिन क
> हलके हजारन के बितर बिचारे ना

---

१ शिव ब्यावलो-पद ६५।

२ महादेव पारवती री वेलि-पद ६५ ६६।

गज गज बकस महीप रघुनाथ राव
पाय गज धोखे कहूँ काहू देइ डारे ना
याही डर गिरिजा गजानन को गोइ रही
गिरि तें गरे तें निज गोद तें उतारे ना"[1]

शिव की दानवीरता का उल्लेख तो अवश्य अनेक कथाओं में प्राप्त होता है परन्तु उपरोक्त वर्णन कवि की मौलिकता है।

पौराणिक कृतियों मे शिव का एक प्रशस्त रूप वीर का भी रहा है। उसके भी अनेक भेद हैं। उनमें दानवीर अवढर दानी शिव की व्याजोस्तुतिया तो अनेक स्थलों पर मिल जाती हैं। तुलसी के काव्य मे शिव की व्याजा स्तुतिपरक दानवीरता का वर्णन देखिए—

"बावरो रावरो नाह भवानी
दानी बडो दिन देत दए बिनु वेद बडाई मानी
निज घर की बरबात विलोकहु, हो तुम परम सयानी
सिव की दई सपदा देखत, श्री सारदा सिहानी
जिनके भाल लिखी लिपि मेरी, सुख की नहीं निसानी
तिन रकन को नाक सवारत, हौं आयो नकबानी
दुख–दीनता दुखी इनके दुख, जाचकता अकुलानी
यह अधिकार सौंपिये औरहिं भीख भली मैं जानी"[2]

मध्ययुग के हिन्दी काव्य मे उपरोक्त वीर रस का वर्णन शिवपुराण के अनुरूप हुआ है।

आलोच्य युग की शिव कथाओ म शिवपुराण के अनुरूप शान्त भक्ति हास्य रौद्र, वीभत्स भयानक तथा वीर रस का चित्रण हुआ है। अन्य प्रसगो म भी जहाँ प्रसगवश शिव कथाओ के सकेत प्राप्त होते हैं वहा भी शिवपुराण के अनुकरण पर रससृष्टि हुई है जिससे शव-साहित्य के प्रभाव का अनुमान लगाया जा सकता है।

अलकार

अलकरोति इति अलकार[3] अर्थात् विभूषित करने वाले अग या तत्व का नाम 'अलकार' है। भावो को सजाना उन्हें रमणीयता प्रदान करना अल

---

१ प्राचीन पद्य प्रभाकर-स० श्रीकृष्ण शुक्ल परिशिष्ट, पृ० १०६।
२ विनयपत्रिका-स० वियोगीहरि पद ५।
३ आ० विश्वेश्वर–काव्य प्रकाश टीका ११६।

कारो का कार्य है। वे भावा की अभिव्यक्ति को प्रांजल एव प्रभावशाली भी बनाते हैं। अलकार अलकाय का उत्कर्षाधायक[1] तत्त्व होता है। काव्य म शब्द और अथ के उत्कर्षाधायक तत्त्व का नाम अलकार है। अत रस भाव आदि के तात्पय का आश्रय ग्रहण कर अलकारा का सन्निवश आवश्यक है।

अलकारो के शब्दालकार अर्थालकार और उभयालकार नाम से तीन भद किय गय हैं। किसी विशष शब्दा के रहने पर ही जो अलकार रहते हैं, वे अलकार उन विशेष शब्दा के आश्रित होने से शब्दालकार कहलाते हैं। जो अलकार 'शब्द परिवृत्तिसह'[2] होते हैं, अर्थात् यदि उन शब्दा का परिवतन करके उनके समानाथक दूसरे शब्द प्रयुक्त कर दिय जाय तो भी अलकार की कोई हानि नही होती, वे अलकार शब्दाश्रित न होकर अर्थाश्रित होते हैं। इसलिए अर्थालकार कहलाते हैं।

अर्थालकारो म उपमान उपमेय साधारण धम तथा उपमावाचक शब्द इन चार का उपयोग होता है। दो सदृश पदार्थों म प्राय अधिक गुण वाला पदाथ उपमान'[3] और न्यून गुण वाला पदाथ उपमय होता है। उपमेय तथा उपमान के समान धम पर अलकारो के दो वग किये गये है।[4] साहश्य मूलक और साहश्यतिरिक्त मूलक अलकार।

साहश्य मूलक अलकार मे उपमेय और उपमान के समान धम का प्रतिपादन हुआ है। साहश्य मूलक अलकारो का आधार भूत उपमा अलकार है। उसमे वस्तु के रूप शील और गुण की समता किसी अन्य वस्तु के रूप शील और गुण स की जाती है।

शवकाव्य परम्परा मे अलकार

वदिक एव उत्तर वदिक साहित्य म शिव के स्वरूप का वणन करते समय कुछ विशिष्ट उपमानो का प्रयोग हुआ है। उनके शरीर की कान्ति का शख, कुद चन्द्रमा और कपूर के समान शुभवण माना गया है। वे मोह रूप अधकार को दूर करने म समथ दिवाकर है। मध्ययुग के काव्य म शिव के स्वरूप का वणन करते समय उक्त उपमाना का प्रयोग हुआ है। इसके अतिरिक्त स्वय को भी उपमान' मान कर 'उपमेय का वणन किया गया है। इस युग के काव्य म शिव के रूप-वणन म रूपक अलकार द्रष्टव्य है।

---

१ वही, पृ० ३६६।
२ वही पृ० ४४०।
३ वही, पृ० ४४३।
४ वही पृ० ४११।

उपमेय म उपमान का आरोप रूपक अलकार है। उसम उपमान और उपमेय के भेद होने पर भी अत्यन्त सादृश्य के कारण उनका

रूपक अभेद रूप म वरणन किया जाता है। मध्यकालीन हिन्दी कविता म शिव के स्वरूप का वरणन करने समय रूपक अल कार का प्रयोग हुआ है। तुलसी उन्हें दिवाकर के गुणा स सम्पन्न मानते हैं— मोह-तम-तरणि[1] 'मोह निहार दिवाकर।[2] शिव जलजनयन[3] हैं तथा क्वुनु देंदु-कपूर गौर।[4] शिव के स्वरूप वरणन म उक्त उपमानो का प्रयोग शवों के अनुकरण पर हुआ है। इनके अतिरिक्त उपमान रूप मे शिव का प्रयोग भी द्रष्टव्य है।

केशव 'पचवटी' को शिव के गुणो से युक्त मानत हैं—

"सब जाति फटी दुख की दुपटी कपटी न रहे जह एक घटी
निघटी रुचि मीचु घटी हू घटी जगजीव जतीन की छूटि तटी
अघ ओघ की बेरी कटी विकटी निकटी प्रकटी गुरु ज्ञान गटी
चहु ओर नाचति मुक्ति नटी गन धूरजटी वन पचवटी"[5]

कवि न उपमेय म उपमान के गुणा का आरोप किया है। पद्माकर भी उपमेय म उपमान क गुण। का आरोप करत हुए कहते हैं— रिस म सिव।'[6]

शिव की स्तुति फलद है उनकी भक्ति मुक्ति प्रदाता है। शिव की कृपा से भक्त क दुख दूर होन हैं। वे अपने ओघ क लिए भी प्रसिद्ध हैं। अत एव शिव के उक्त गुणा के आधार पर उपमान रूप म उनका वरणन वस्तुत शिवपुराण की छाया मे ही हुआ है।

उत्प्रेक्षा—उपमेय मे उपमान की सम्भावना उत्प्रेक्षा अलकार कहलाता है। मध्ययुग के हिन्दी कवियो न वण्य वस्तु म उपमान रूप शिव की सम्भावना की है। केशवदास समुद्र वरणन म एसी ही सम्भावना करत हैं—

'भूति विभूति पियूषहि को विष ईश शरीर पाय कि दियो है'[7]

---

१ विनय पत्रिका-स० वियोगीहरि पद १०।
२ वही पद ५।
३ वही, पद ६।
४ वही पद १२।
५ केशवदास-रामचन्द्रिका पृ० १७७।
६ पद्माकर-स० विश्वनाथ मिश्र, पृ० ३७।
७ केशवदास-रामचन्द्रिका पृ० २६६।

'बावरो रावरो नाह भवानी ।
दानि बडो दिन देत दये बिनु बेद बडाई मानो ।
निज घर की घरबात विलोकहु, हो तुम परम सयानो
सिव की दई सपदा देखत-श्री शारदा सिहानी
जिनके भाल लिखी लिपि मेरी सुख की नहीं निसानी
तिन रकन को नाक सवारत, हों आयो नकबानो
दुख दीनता दुखी इनके दुख जाचकता अकुलानो
यह अधिकार सौंपिये औरहि भीख भली मैं जानो"[1]

उक्त उदाहरणो म प्रारम्भ म तो शिव की निंदा प्रतीत होती है परन्तु उसका पयवसान स्तुति म हुआ है । अतएव व्याजस्तुति कहना उपयुक्त है । शिव की व्याजस्तुति इस युग का प्रिय विषय रही है ।

विरोधाभास—वास्तव मे विरोध न होने पर भी विरुद्ध रूप से वणन करना विरोधाभास अलकार होता है । शिव दूसरो को तो शाल दुशाले तथा मूल्यवान वस्त्राभूषण दान कर देते हैं परन्तु स्वय मृगछाला ही धारण करते हैं

सब के ओढावे भोला साल दुसलवा
आप ओढय मृगछलवा ।
सबके खिलावे भोला पाँच पकवनमा
आप खाए भांग धतुरवा । '[2]

कवि भिखारीदास भी शिव के आचरण मे ऐसे विरोध का आभास पाते हैं—

'राखत हैं जग को परदा कह आपु सजे दिगबर राखे' [3]

एक अन्य पद म उन्होने शिव की वेशभूषा और आचरण के चित्रण मे विरोधाभास अलकार का प्रयोग किया है—

सदाशिव नाम मेष असिव हरत विसेषिये
मांगत है भीख औ कहावे भीख-प्रभु "[4]

इसी प्रकार मध्यकालीन हिन्दी काव्य म ऐसे और भी कितने ही अलकार देखे जा सकते हैं जिनके उपमान शव-साहित्य की परपरा के द्योतक मात्र हैं । यहा हमारा अभिप्राय अलकार के सबध मे कुछ कहना नहीं है

---

१ विनयपत्रिका-स० वियोगीहरि-पद ५ ।
२ विद्यापति की पदावली-बसतकुमार, पृ० ४३० ।
३ भिखारीदास-स० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र द्वितीय खण्ड, पृ० १२६ ।
४ भिखारीदास-स० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र प्रथम खण्ड, पृ० ६७ ।

अपितु उस परम्परा को प्रकाशित करना है जो अलकार के क्षेत्र म शिव के सम्बन्ध स शव काव्य म बनी रही है। रस विवेचना भी इसी प्रकार की प्रवृति की प्रेरणा है।

निष्कष—'शब्दार्थो सहितो काव्य' अर्थात् वाचक और वाच्य दोनो मिलकर काव्य सज्ञा प्राप्त करत हैं। शब्द और दोना मे काव्यत्व होता है। श्रथ गौरव कविता का प्राण है। इसके लिए कवि का वण्य विषय से तादात्म्य अनिवाय है।

मध्यकालीन भक्त कवियो ने मानवीय सम्बन्ध के सभी भावो के आश्रय मे अपने प्रेम की धारा बहायी है। भावो का आलम्बन शिव अथवा राम और कृष्ण रहे हैं। भगवान् की अप्रकट नित्य लीला के मधुर गान से हिन्दी साहित्य रससिक्त रहा है। भगवान् के नाम रूप और गुण के अतिरिक्त उनकी लीला अथवा उनम सम्बद्ध कथाए भक्तो का प्रिय होने के कारण काव्य का विषय बनी हैं।

मध्ययुग म वष्णव भक्ति का एक महान् आन्दोलन हमारे सामन आता है किन्तु उसमे भक्ति उदार रूप को लेकर प्रकट होती है। राम और कृष्ण के साथ उनकी शक्तिया तो उपास्यता ग्रहण करती ही हैं, शिव, पावती गणेश आदि देव देविया भी वष्णव उपासना के क्षेत्र में प्रविष्ट हो जाते हैं। हिन्दी भाषी क्षेत्र म शिव भक्ति आई अवश्य किन्तु वष्णव भक्ति के योग मे ही शव भक्ति का समादर हुआ। अतएव वष्णव काव्य की प्रचुरता म ही शवकाव्य विलीन रहा।

हिन्दी साहित्य म शिव कथाए प्रमुख कथा प्रासगिक कथा और प्रास गिक सकेत रूप के विद्यमान हैं। शिव की प्रमुख कथाओ म सती और पावती की कथा से सम्बद्ध अनक प्रसग प्राप्त होते हैं उनम पावती परिणय को लेकर स्वतन्त्र काव्यों का भी सृजन हुआ। इन काव्यो म पावती जन्म, उनकी तपस्या, सप्तऋषियो द्वारा पावती परीक्षा तथा शिव का ब्राह्मण वेश धारण कर पावती के पास आना व उनकी तपस्या और प्रेम की एकाग्रता से प्रभावित हो विवाह का वचन दना आदि प्रसगो के साथ शिव-पावती विवाह का विस्तृत वणन भी प्राप्त होता है। विवाह की लौकिक रीतियों का सुरुचिपूर्ण चित्रण इन काव्य कारो का स य प्रतीत होता है।

प्रमुख कथा पर आधारित काव्यो की कथाए यद्यपि शिवपुराण तथा कुमारसम्भव क अनुकरण पर लिखी गयी हैं, तथापि उनम मौलिकता का भी अभाव नहीं है। शिव व्यावलो जसी रचनाओ म शिव पुराण क कुछ प्रसग

का विसजन हुआ है साथ ही कवि ने लोक व्यवहार का आश्रय लेकर काव्य को मौलिकता प्रदान की है फिर भी उसम शिव और पावती की पौराणिक अलौकिकता सुरक्षित है। इसी प्रकार महादेव पारवती री वेलि आदि म कवि ने शिव और पावती के नारद शिव वणन, सगर कथा और पावती क पूव जम की कथा का वणन किया है। इन काव्या म आराध्य शिव के स्वरूप और उनके पारिवारिक जीवन का सरस चित्र प्रस्तुत किया गया है।

शवेत्तर कवियो के काव्य म अधिकाश शवकथाए प्रसग रूप से आई हैं जिनमे प्रभाव के साथ मौलिकता भी दिखलाई पडती है। इस युग के काव्य म शव कथाओ क प्रासगिक सकत भी मिलते हैं।

मध्ययुगीन साहित्य म अधिकाशत भक्ति या शृगार रस की ही प्रमुखता रही है किन्तु भक्ति के परिवेश म ही शिव कथाए शिवप्रसग या प्रासगिक सकत आये हैं, अतएव शृगार की प्रमुखता नहीं मिल पाई। भक्ति के वातावरण म वीर रौद्र, वीभत्स के अतिरिक्त हास्य रस की परिस्थितिया भी मिलती है जो शिव के स्वरूप और कम के अतिरिक्त उनके साथियो एव अनुगामिया से भी सम्बोधित हैं। शव साहित्य म अलकारो की प्रतिष्ठित परम्परा चली आई है उसी का आग्रह प्रभावित हिन्दी कविता मे भी दृष्टिगाचर होता है। उपमाना की विशेषता ने अलकार की विशिष्टता का निर्माण किया है। इस प्रकार दशन भक्ति साहित्य सभी क्षेत्रो मे मध्यकालीन हिन्दी कविता पर शवमत का कुछ न कुछ आभार दृष्टिगोचर होता है।

उपसहार

शवमत हिन्दू धम का प्रमुख अग है जिसके उद्गम और विकास का मूल स्रोत है। भगवान शिव का चिन्तन मनन और आराधना इस मत की विशेषता है। वदिक ग्रथा का अनुशीलन करने से रुद्र अथवा शकर के वदिक देवता होन में तनिक स देह नही रहता। रुद्र की प्रशसा म प्रत्येक सहिता मे अनेक मत्र उपलब्ध होते हैं। यजुर्वेद मे तो रुद्राध्याय नामक एक महत्त्वपूर्ण तथा स्वतन्त्र अध्याय ही उपलब्ध होता है। ऋग्वेद म रुद्र के लिए शिव शब्द का प्रयोग एक स्थान पर हुआ है तथा विशेषण के रूप म उसका प्रयोग अनेक स्थलो पर मिलता है। वदिक रुद्र ही शिव नाम से अभिहित किये गये हैं पौराणिक काल मे तो स्पष्ट रूप से रुद्र की परिणति शिव म हो गयी है।

शिव के दो स्वरूप—सौम्य और रौद्र वदिक काल से ही मिलते हैं। रौद्र रूप म वे मनुष्यो और पशुआ का सहार करते हैं। सौम्य रूप म वे भिषक

और औषधीप भी कहे गये हैं। इस रूप मे वे कल्याणकारी हैं, जिसमे प्राणी सतान और समृद्धि के लिय प्रायना करते हैं। शिव मे दो आदि शक्तियो का मेल माना गया है—जीवन-दायिनी और जीवन हारिणी। वे अपने सोम्य रूप म जीवनदायिनी शक्ति से सम्पन्न रहते हैं तथा भयावह और विध्वसक रूप म जावनहारिणी शक्ति से युक्त होते हैं। अन्य वदिक देवताओ के सदृश रुद्र की कल्पना भी प्राकृतिक तत्वा के मानवीकरण से की गयी। वे विद्युत के प्रतीक थे रुद्र और अग्नि के तादात्म्य का आधार भी यही था। भगवान् शकर को केन्द्र मान कर अनक आध्यात्मिक सिद्धान्ता का आविर्भाव हुआ है। दाशनिक विचारधाराओ के विकसित हान से शैवमत विभिन्न शाखा प्रशाखाओ मे विभक्त हुआ। उनम पाशुपत, वारशव शव सिद्धान्त और प्रत्यभिनादशन प्रसिद्ध हैं। इनक अतिरिक्त कापालिक, कालमुख और रसेश्वर शव सम्प्रदाय हैं। कुछ साधना पद्धतियो का विकास इनके समन्वय से भी हुआ जिनमे नाथ सम्प्रदाय उल्लेखनीय है।

दाशनिक विचारो से परिपुष्ट शवमत ने स्वतत्र दशन का रूप धारण किया जो शव सिद्धान्त के नाम स प्रसिद्ध हुआ जिसका विशद निरूपण आगम ग्रन्थो मे हुआ। आगम ग्रन्थो म वर्णित 'शव सिद्धान्त' के विभिन्न पहलू शवमत के प्रामाणिक आधार हैं। आगम ग्रन्थो मे शवमत के चिन्तन-पक्ष क विश्लेषण क साथ आत्म सयम अथवा योग एव भक्ति तत्त्व का निरूपण भी हुआ है। शवमत के सम्यक विश्लेषण के लिये दशन योग एव भक्ति तीनो तत्त्वो का विश्लेपण अपेक्षित है।

शवमत मे शिव और जीवात्मा शिव और जगत् तथा जीवात्मा और जगत् के सम्बन्ध का निरूपण अद्वैत विशिष्टाद्वैत द्वैताद्वैत और द्वैत आदि भिन्न दाशनिक प्रणालियों के द्वारा हुआ है तथापि इन सब की तात्विक पृष्ट भूमि म मौलिक एकता विद्यमान है।

श्वेताश्वतर उपनिषद् म शिव का जो दार्शनिक स्वरूप है वही अपर कालीन समस्त शव दशन का बीज है। शवमत म शिव को परम सत्य और सृष्टा माना गया है जो अपनी माया के द्वारा सृष्टि का काय सम्पन्न करता है। सृष्टि की अभिव्यक्ति म माया ही सक्रिय काय करती है पुरुष केवल उसका प्रेरक रहता है। दाशनिक दृष्टि स शिव अपरिवतनशील चेतन है और शक्ति उसका परिवतनशील रूप है।

शवमत मे जीव और शिव म केवल औपाधिक भेद माना गया है। उपाधि और उपाधि के वशीभूत जीवो का नियमन ईश्वर का धम है। जीव

स्वरूपतः शिव विभु, भाव एवं अपाय नियम से मुक्त होने पर भी संसारावस्था में इन सब का अनुभव नहीं कर पाता। शैवमत में जीवात्मा को विश्वातीत, सर्वानुग्रहकारी एवं आनन्द माना गया है। ज्ञान और क्रिया उसके लिए समान है। मध्ययुगीन हिन्दी काव्य में आत्मा को स्वतन्त्र माना गया है। संत सुन्दरदास आत्मा को स्वतन्त्र मानते हुए कहते हैं—

"सुन्दर कहत तातें आतमा स्वतन्त्र रूप
आप को भजन सो तो अपनी करतु है।"[१]

काश्मीरी शैवमत में आत्मा और परमात्मा में अद्वैत सम्बन्ध का प्रतिपादन हुआ है। उनके अनुसार यह विश्व और इसमें बसने वाले समस्त प्राणी शरीर हैं जिसकी आत्मा शिव है विश्व शिव से भिन्न नहीं है। काश्मीरी शैवमत के प्रमुख आचार्य अभिनवगुप्त ने परमेश्वर और जगत् का परस्पर सम्बन्ध दर्पण बिम्बवद् माना है। उनके अनुसार परमेश्वर में प्रतिबिम्बित विश्व शिव से अभिन्न होने पर भी घटपटादि रूप से भिन्न अवभासित होता है। मध्ययुगीन हिन्दी कविता में काव्य की आड़ में ही सिद्धान्तों की खोज हो सकी है क्योंकि कविता में सिद्धान्त बुलाने पर ही आते हैं और किसी प्रसंग का आश्रय लेकर ठहरते हैं। जब कभी वे मुक्तक रचनाओं में प्रविष्ट होते हैं तो अपनी अति स्वतन्त्रता से वे दर्शन के वेश को छिपा नहीं सकते। कबीर की साखी में अद्वैतरूप एवं द्वैताभास का निरूपण साहित्य कोटि से दूर भाग गया प्रतीत होता है।

ज्यू बिंबहि प्रतिबिंब समाना, उदकि कुम्भ बिगराना
कहै कबीर जानि भ्रम भागा जीवहि जीव समाना'

वीरशैव मत के अनुसार जीवात्मा और परमात्मा में अद्वैत सम्बन्ध है तो अवश्य परन्तु जीवात्मा और परमात्मा से सर्वथा अभिन्न नहीं। यह शिव से भिन्न नहीं है। जीव शिव का अंश और शक्ति विशिष्ट माना गया है। वीरशैव मत के अनुसार विश्व, शिव की इच्छा शक्ति के उद्वेलित होने पर, समुद्र में लहर और बुदबुदों के समान अभिव्यक्त होता है। यह जगत् शिव का *अविकृत परिणाम* है।

'जैसे ईख रस की मिठाई भांति भांति भई
फेरि करि गारे ईख रस ही लहतु है।
जैसे घत थीज के डरा सो बाधि जात पुनि

---

१ परशुराम चतुर्वेदी-हिन्दी संत काव्य संग्रह पृ० १७०।

फेर पिघलें तें वह घत ही रहतु है
तसे ही सु दर यह जगत है ब्रह्म मे
ब्रह्म सु जगतमय वेद सु कहत है।"[1]

शव सिद्धान्ती एव पाशुपत शव द्व तवादी हैं। इनके अनुसार शिव जीव को ब न्धन से मुक्त करने के लिय जगत् की सृष्टि करते हैं। शिव अशी हैं पशु उनका सनातन अश है। जीव अनन्त हैं और शिव से भिन्न हैं। प्रत्यक जीव अपना अलग अस्तित्व रखता है। द्व त अवस्था समाप्त होने पर दोनो एक हो जाते हैं।

जीव अनत मसाल चिराग सु दीप पतग अनेक दिखाहीं
सुन्दर द्वैत उपाधि मिटे जब इसुर जीव जुदे कछु नाहीं'[2]

शवमत के दाशनिक अन्वेषण म जीव के पाश और मोक्ष सम्बन्धी दृष्टिकोण का विवेचन भी अपेक्षित है। पाश का अथ बन्धन जिसके कारण जीव शिवरूप होन पर भी पशुत्व को प्राप्त करता है। वे पाश अविद्या कम और माया हैं। इनको कचुक भी कहा गया है। शवमत म कम का सम्बन्ध अविद्या से जोडा जाता है। इनके अनुसार कम जीव का बन्धन है यही जीव के सुख दुख और आवागमन का कारण है। जीव कम बन्धन से मुक्त होने पर मोक्ष प्राप्त करता है। कचुक या मलापसरण जीव का लक्ष्य है। पाश अथवा मल की निवति होने पर जीव का पशुत्व दूर हो जाता है। मल शक्तिया राध और अपसरण मे ईश्वराधीन है। परमेश्वर की अनुग्रह शक्ति से जिसे शक्ति पात कहा गया है मलापसरण सम्भव है।

ईश्वर के अनुग्रह से जीव के अज्ञान की निवृत्ति होती है। वह ईश्वर के अनन्त ऐश्वय का भोग करता है। यही उसकी मुक्तावस्था है। शवदशन म आधिदविक, आधिभौतिक दुखा की निवृत्ति तथा अज्ञान भेदन करने वली स्वशक्ति और क्रियाशक्ति के उन्मेष को मोक्ष कहा गया है। यह अवस्था द्व त प्रपच की शान्ति से उपलब्ध होती है। यही आत्मबोध रूप दशा है जिस आत्मजागरण कहा गया है। इस अवस्था को प्राप्त कर जीव अविद्याजन्य दुख सुख अनुभव नही करता। वह जल म कमल के पत्ते के समान निवास करता है। मध्यकालीन हिन्दी काव्य जीवन्मुक्त अवस्था का वणन करते हुए कहते हैं–

---

१ परशुराम चतुर्वेदी–हिन्दी सतकाव्य सग्रह पृ० १७०।
२ वही, पृ० १७०।

'मेरी तपति मिटी तुम देखता, सीतल भयो भारी
भव बन्धन मुक्ता भया "१

दुख की आत्यंतिक निवृत्ति के अतिरिक्त शैवो ने चिदानन्द एव सामरस्य अवस्था को भी मोक्ष माना है। साधना के उपरान्त प्राप्त आनन्द को समरस तथा उस अवस्था को सामरस्यावस्था कहा जाता है वही शिवोऽहम् की स्थिति है जिसे प्राप्त कर लेने पर जीव अशिव अथवा अमगलकारी दुखो का अनुभव नही करता। वह अखण्ड आनन्दरस मे लीन हो जाता है। जीव की सकुचित अवस्था म सुख और दुख दोनो रहते है लेकिन समरसता की अवस्था म केवल आनन्द ही आनन्द रहता है। वेदान्त मे भी समरसता के सिद्धान्त को अपनाया गया है, परन्तु शैव दर्शन म ही समरसता के प्राप्त होने पर आनन्द की बात कही गयी है। आलोच्य युग के कवियो पर शैवो की उक्त धारणा का प्रभाव स्पष्ट देखा जा सकता है—

आदिहु आनद अतहु आनन्द मध्यहु आनद ऐसे हि जानो
बधहु आनन्द मुक्ति हु आनन्द आनद ज्ञान अज्ञान पिछानो
लेटेहु आनन्द बैठेहु आनन्द डोलत आनन्द आनन्द जानो
चरनदास विचारि सब कछु आनन्द आनन्द छाडिकै दुख न ठानो"२

शैवमत म आध्यात्मिक चिंतन के अतिरिक्त साधना पक्ष म योग का भी प्राधान्य रहा है। शैवयोग साधना हठयोग से प्रारम्भ होकर क्रमश मत्रयोग, लययोग द्वारा राजयोग अथवा शैवयोग की आध्यात्मिक भूमिका को प्राप्त करती है। जीव योगाभ्यास के बल से उपाधि का लय कर शिवपद प्राप्त करता है। उस प्राप्त करने के लिये आत्मनिग्रह नादानुसन्धान और सोह मत्र के जाप की आवश्यकता है जिनको साधक और साधना की विभिन्न भूमिकाओ पर प्राप्त करता है।

योग साधना की तीन भूमिकाए हैं—कायिक मानसिक और आध्यात्मिक। कायिक भूमिका पर साधक यम नियम, आसन और प्राणायाम तथा प्रत्याहार द्वारा चित्तवृत्ति का निरोध करता है। शैवयोग साधना म चित्त वृत्ति निरोध पर विशेष बल दिया गया है। उसके द्वारा साधक मानसिक भूमिका पर चित्त की शुद्धता तथा धारणा और ध्यान द्वारा समाधि अवस्था को प्राप्त करता है। ध्यान के तीन प्रकार माने गए हैं—स्थूल ध्यान, ज्योतिर

१ दादू दयाल की बानी—पृ० ४३।
२ परशुराम चतुर्वेदी—हिन्दी सतकाव्य सग्रह पृ० २६६।

ध्यान और सूक्ष्म ध्यान। शवयोग म अन्तिम दो ही मान्य हैं। मध्ययुगीन काव्य म शवमत के अनुरूप ही ज्योतिरध्यान और सूक्ष्म ध्यान का वर्णन हुआ है। कबीर दास का कथन है— 'सुनि मडल मे पुरिप एक ताहि रह ल्यो लाइ'[1] एक अन्य स्थल पर भी आप गगन मडल म ध्यान लगाने की बात कहते हैं—

'जुरा मरण व्यापे कुछ नाहीं गगन मडल ले लेगो'[2]

ध्यान के बाद समाधि का स्थान है। यही योग मार्ग की अन्तिम सीमा है। यही ज्ञाता और ज्ञेय तथा ध्याता और ध्येय की एकात्मकता है। सामान्यत समाधि के दो भेद मान गय है— सम्प्रज्ञात और असम्प्रज्ञात। सम्प्रज्ञात समाधि के दो भेद सविकल्प और निर्विकल्प हैं। विकल्प के नष्ट होने पर सविकल्प समाधि ही निर्विकल्प कहलाती है। उसमे केवल ध्येय पदार्थ का अनुभव होता है। इससे ऊपर की अवस्था असम्प्रज्ञात अवस्था कहलाती है। इस अवस्था म साधक अपने ध्येय के अनुभव म एकाग्र हो जाता है। यही जीव की जीव मुक्त दशा है जिसे प्राप्त कर योगी अपने स्वरूप म स्थित हो जाता है। शवयोग मे इस अवस्था का बहुत महत्त्व है। कबीर मुक्तावस्था के आनन्द का वर्णन करते हैं—

अवधू मेरा मन मतिवारा
उन्मनि चढया मगन रस पीवे त्रिभावन भया उजियारा
गुड करि ग्यान कर महुवा भव भाठी करि मारा
सुषमन नारी सहजि समानीं पीवे पीवन हारा
दोइ पुड जोडि चिगाई भाठी, चुया महारस भारी
काम क्रोध किया मनौता, छूटि गई ससारी
सु नि मडल मे मदला बाजे, तहा मेरा मन नाचे
गुर प्रसादि अमृत फल पाया, सहजि सुषमना काछ"[3]

शवयोग की तीन प्रमुख विशेषताएं हैं—शिव की स्थिति प्रक्रिया और अनुभूति। शवो के अनुसार शिव की स्थिति ब्रह्मरन्ध्र मे मानी गयी है जिसे शिवलोक[4] कहा गया है। शवयो ी योगाभ्यास से हृदय म स्थित परमात्मा

---

१ कबीर ग्रन्थावली–पृ० ५६।
२ (क) वही पृ० ८५।
(ख) सु नि मडल मे सोधि ले, परम जोति परकास',–वही, पृ० ११०।
३ कबीर ग्रन्थावली–पृ० ६७।
४ 'शिव की पुरी बसे बधि साठ" —वही पृ० २८१।

शिव का अनुसन्धान करता है। उसका साम्य शिवशक्ति सम्मिलन है। उसके लिए साधक कुण्डलिनी शक्ति को जाग्रत कर, उसे ब्रह्मरन्ध्र मे लय करता है। वही शिव और शक्ति के सम्मिलन के उपरान्त योगी आनन्द अनुभव करता है। शैवयोग मे कुण्डलिनी को उद्बुद्ध करने की प्रक्रिया भी विशिष्ट है, जिसमे आसन प्राणायाम, मुद्रा, प्रत्याहार नाडी विचार, षटचक्र वेधन आदि यौगिक प्रक्रियाओ का भी महत्त्व है। योग की विभिन्न भूमिकाओ पर आधारित शैव योग की परम्परा निर्बाध रूप से प्रवाहित रही है। मध्ययुगीन हिन्दी सन्त काव्यधारा मे अभिव्यक्त योग की विभिन्न भूमिकाओ पर उसका प्रभाव स्पष्ट है।

शैवयोगियो मे झोली अधारी रुद्राक्ष की माला और भस्म वेशभूषा के अग माने गये हैं। साधना की प्रथम भूमिका मे इनकी आवश्यकता स्थूल रूप से स्वीकार की गयी है। तदनन्तर इनका सांकेतिक अथवा सूक्ष्म महत्त्व प्रमुखता प्राप्त करता है अर्थात् ससार से वैराग्य प्राप्त करने के लिये तो इनका महत्त्व मान्य रहा ही है उसके पश्चात् योगी की आध्यात्मिक भूमिका पर भी उनका महत्त्व कम नही है। मध्ययुगीन हिन्दी काव्यधारा मे शैवो की वेशभूषा का चित्रण हुआ है। वहा वेशभूषा के स्थूल एव सांकेतिक वर्णन के अतिरिक्त प्रतिक्रियात्मक चित्रण इस बात का प्रमाण है कि इस युग के कवि शैवयोगियो की वेशभूषा के पक्ष मे रहे हो अथवा वे उससे नही परिचित अवश्य थे। शैवो की विभूति अधारी जटा आदि का सकेत निम्न कविता मे देखिये—

'गोरख सुठोरी लिए सभु ताको मत दिये
आपुन अकतो सग गौरी तिहि लोग ना
वरनि विभूति बार बार लै लै मुख लावे
उरहू लगावे पुनि भावे कछु भोग ना
अधारी लै घोरी धरी सपति धतूरा भरी
वचन लै चल जाय कोऊ ताको लागे ना
जटा छिन्काय छबि छोनी मे बिछाये छाल
आसुरी विरागी वाकी टेक बठो जोग ना'[1]

इस युग के काव्य मे शैवयोगी की वेशभूषा का प्रतिक्रियात्मक वर्णन भी दर्शनीय है—

---

१ पुरातन काव्य लहरी-स० स० साधुराम पृ० १३३।

"चाहती सिंगार तिन्हें सिंगी सो सगाई कहा
औधि को है आस तो अधारी क्से गहिये
बिरह अगाध तहा सुन्नि समाधि कौन
जोग काहि भावे जु वियोग दाह दहिये।"[1]

शवमत मे चिन्तन और योग के समान भक्ति दशन का महत्त्व रहा है। भक्ति दशन का सम्यक विवेचन उसके तीनो पक्ष—उपासक उपास्य और उपासना पर निभर है।

भगवान् शिव मे अनुरक्त व्यक्ति शव भक्त अथवा शवोपासक हैं। साधना के भेद से उपासको के विभिन्न वग बने। शिव की योगपरक उपासना करने वाले उपासक साधु और शिव के साकार रूप के उपासक भक्त कहलाये। किन्तु सत, साधु और भक्त शब्द का प्रयोग उपासक मात्र के लिए हुआ है। मध्यकालीन हिन्दी कवियो ने सत और साधु शब्द का प्रयोग भक्त अथवा उपासक के लिए ही किया है।

उपासक अपने उपास्य देव की उपासना मे तल्लीन होकर परमानन्द की अनुभूति के लिए सचेष्ट रहता है। वह अपने उपास्य के अनन्य प्रेम मे, उन्हीं के अनुरूप वेशभूपा धारण करता है, आचार विचार से उनके प्रति अपनी निष्ठा बनाता है। उपास्य के प्रति अनन्य अनुराग के लिए उपासक मे गुणो की आवश्यकता है। निगुण हो चाहे सगुण उपासक के गुण सभी ने समान रूप स स्वीकार किये हैं। आलोच्य युग के कवियो ने भक्त के गुणो का अनेक प्रकार से वणन किया है जो शिवपुराण मे कथित देवी सम्पदा के अनुरूप हैं। सत जगजीवन साहब साध के गुणो का वणन करत हुए कहते हैं—

"भयो सीतल महा कोमल नाहिं भावे आन

ऐसे निमल ह्वे रहे हैं जसे निमल मान"[2]

पलटू साहब भी परम्परा के अनुरूप साध' के गुणो का वणन करते हैं—

'सीतल चन्दन चद्रमा तसे सीतल सत
तसे सीतल सत जगत की ताप बुझावें"[3]

---

१ वही-(आलम), पृ० १३०।
२ परशुराम चतुर्वेदी-हिन्दी सत काव्य सग्रह, पृ० २३०।
३ वही पृ० २०७।

कायिक भूमिका उपासकों की वेशभूषा के साथ उनके आचार विचार भी विवेचनीय हैं। सामान्यत आचार के दो भाग हैं—साधारण आचार और शिष्टाचार। साधारण आचार मे दैनिक कर्म व्यावहारिक नियम एव आश्रमिक कर्तव्यो को सुव्यवस्थित करने वाला आचरण सम्मिलित है। शिष्टाचार इसके आगे की वस्तु है। शैव सम्प्रदायो म आचार की महत्ता के साथ उसकी विशिष्टता विद्यमान है। वीर शैवो मे कुछ विशेष आचरण की मान्यता है। उनमे लिंग धारण, शिव भक्ति पर विशेष बल सामाजिक जीवन म शारीरिक परिश्रम की महत्ता तथा अहिंसा और एकेश्वरवाद को महत्त्व दिया गया है। वीर शैवो के आचार क्षेत्र म जीवात्मा की शुद्धि के लिए अष्टावरण और पचाचार का भी महत्त्व है। गोरखपथी शैवों म आचार को 'रहनी' शब्द से द्योतित किया गया है तथा बाह्य आचार सम्बन्धी समस्त विश्वासो और पूजा विधानो का खण्डन किया गया है।

उपासक कायिक भूमिका पर विचरण करता हुआ अनेक प्रकार से भगवद्भक्ति का आनन्द प्राप्त करता है। वह क्रमश मानसिक और भावात्मक विकास की ओर उन्मुख होता है। मानसिक भूमिका पर विचरण करता हुआ साधक हृदय को भगवद्धाम बनाने के लिये विषयासक्ति और विषय दोनो का त्याग करता है तथा ब्रह्म स भिन्न ससार की सत्ता का नितान्त अभाव अनुभव करता है। जिन कारणो स भगवत्प्राप्ति म बाधा आती है वह उन सब से दूर रहता है। वह एक मात्र परमेश्वर की शरण चाहता है।

न जानामि योग जप नैव पूजां नतोऽह सदा सर्वदा शम्भुतुभ्य
जरा जन्म दु खोघ तातप्यमान प्रभो पाहि आपन्नमामीश शभो'[1]

भक्त की एक मात्र इच्छा भगवान की अनपायिनी भक्ति प्राप्त करना है। वह भक्ति के चरम लक्ष्य पर पहुँच कर केवल प्रेम रस पीता है। उसका ध्यान एक मात्र भगवान् के चरण कमलो म लगा रहता है। श्रद्धेय के नाम–रूप–गुण का स्मरण चिन्तन मनन उसके जीवन का धर्म बन जाता है।

उपास्य के नामकरण का श्रेय उपासक को है। शैवोपासकों ने अपने उपास्य शिव को उनके गुण और कर्म के आधार पर अनेक नामो से अभिहित किया है। ऋग्वेद मे रुद्र के अनेक पर्यायी शब्द मिलते हैं जिनमे दिवावराह कल्पलीकिन, मेघपति औषधीश प्रचेतस ईशान प्रमुख हैं। यजुर्वेद मे इनको पिनाकी नीलग्रीव, त्र्यम्बक नामो से तथा अथर्ववेद म महादेव शर्व भव मन्त्र दाता सहस्राक्ष, व्युप्तकेश नामो से अभिहित किया गया है। उपनिषदों म भी

---

१ मानस–उत्तर काण्ड १०७।८।

दादू साहब के शब्दों 'साध' के गुण इस प्रकार हैं—

'साध सबद सुख बरसि है सीतल होइ सरीर'[1]

भक्त कवियों के काव्य में उपासक के गुणों का अभाव नहीं। उनके अनुसार क्रोध, मद, मान, मोह और लोभ आदि अवगुणों से निवृत्त होने पर भक्त हृदय भगवान् का निवास स्थान बन सकता है—

'काम क्रोध मद मान न मोहा,
लोभ न छोभ न राग न द्रोहा'[2]

भक्त के उक्त गुणों का वर्णन गोरखनाथ द्वारा वर्णित गुणों के अनुरूप है जिससे इस युग के काव्य पर शैव प्रभाव की कल्पना की जा सकती है।

उपासक कायिक शुद्धता और नैतिक आचरण के पुष्ट होने पर मानसिक भूमिका पर ज्ञान के विकास से आत्मोन्नति करता हुआ, आत्मा और विश्वात्मा की अभेदानुभूति प्राप्त करता है। इस प्रकार काया, मन और अध्यात्म के आधार से उपासक को तीन भूमिकाओं पर प्रतिष्ठित किया जा सकता है।

कायिक भूमिका में शैवोपासक की वेशभूषा, आभूषण और अन्य चिह्न विवेचनीय हैं। शैवोपासकों को उनकी विशिष्ट वेशभूषा से शीघ्र पहचाना जा सकता है। प्रत्येक शैव सम्प्रदाय की वेशभूषा, आभूषण और सज्जा में अपनी विशेषता है फिर भी उनमें समानता के कारण भिन्नता ज्ञात कर लेना आसान नहीं। शैवयोगी कमर के चारों तरफ अरबंध लंगोट नाग अथवा हाल मतंग बाँधते हैं। गेरुआ चोला पहनते हैं। शैवयोगी (सुखरास) टोपी और घाघरे के समान एक वस्त्र पहनते हैं तथा सतनाथी शैव नाना रंग के कपड़ों से बनी टोपी, कोट और गुदड़ी पहनते हैं। शैव नागा साधु वस्त्र के नाम पर कुछ भी धारण नहीं करते।

मेखला, शृंगी, अधारी, कर्णमुद्रा, जनेऊ, भस्म, रुद्राक्ष, खप्पर, दण्ड और तिलक शैवयोगियों की सज्जा के विशेष उपकरण और आभूषण हैं। दशनामी शैव संन्यासी केवल गेरुआ वस्त्र धारण करते हैं और दूसरे वाह्याडम्बरों से दूर रहते हैं। शुद्ध शैवों और काश्मीर शैवोपासकों में वाह्य आडम्बर नहीं मिलते। इसी प्रकार गृहस्थ योगी अथवा भक्त की न कोई वेशभूषा है और न नियत आभूषण।

---

१ परशुराम चतुर्वेदी—हिन्दी सन्त काव्य संग्रह पृ० १४६।
२ मानस—बालकाण्ड

कायिक भूमिका उपासकों की वेशभूषा के साथ उनके आचार विचार भी विवेचनीय हैं। सामान्यत आचार के दो भाग हैं—साधारण आचार और शिष्टाचार। साधारण आचार म दनिक कम, व्यावहारिक नियम एव आश्रमिक कतव्यो को सुव्यवस्थित करन वाला आचरण सम्मिलित है। शिष्टाचार इसके आगे की वस्तु है। शव सम्प्रदायो म आचार की महत्ता के साथ उसकी विशिष्टता विद्यमान है। वीर शवो म कुछ विशेष आचरण की मान्यता है। उनम लिंग धारण शिव भक्ति पर विशेष बल, सामाजिक जीवन म शारीरिक परिश्रम की महत्ता, तथा अहिंसा और एकेश्वरवाद को महत्त्व दिया गया है। वीर शवो के आचार क्षेत्र म जीवात्मा की शुद्धि के लिए अष्टावरण और पचाचार का भी महत्त्व है। गोरखपथी शवो मे आचार को रहनी शब्द से द्योतित किया गया है तथा बाह्य आचार सम्बन्धी समस्त विश्वासो और पूजा विधानो का खण्डन किया गया है।

उपासक कायिक भूमिका पर विचरण करता हुआ अनक प्रकार से भगवद्भक्ति का आनन्द प्राप्त करता है। वह क्रमश मानसिक और भावात्मक विकास की ओर उन्मुख होता है। मानसिक भूमिका पर विचरण करता हुआ साधक हृदय को भगवद्धाम बनाने के लिये विषयासक्ति और विषय दोनो का त्याग करता है तथा ब्रह्म से भिन्न ससार की सत्ता का नितान्त अभाव अनुभव करता है। जिन कारणो से भगवत्प्राप्ति म बाधा आती है वह उन सब से दूर रहता है। वह एक मात्र परमेश्वर की शरण चाहता है।

न जानामि योग जप नैव पूजा नतोऽह सदा सवदा शभुतुभ्य
जरा जन्म दु खोघ तातप्यमान प्रभो पाहि आपन्नमामीश शभो ''[1]

भक्त की एक मात्र इच्छा भगवान की अनपायिनी भक्ति प्राप्त करना है। वह भक्ति के चरम लक्ष्य पर पहुँच कर केवल प्रेम रस पीता है। उसका ध्यान एक मात्र भगवान के चरण कमलो म लगा रहता है। श्रद्धेय के नाम-रूप-गुण का स्मरण चिन्तन मनन उसके जीवन का धम बन जाता है।

उपास्य के नामकरण का श्रेय उपासक को है। शवोपासको ने अपने उपास्य शिव को उनके गुण और कम के आधार पर अनेक नामो से अभिहित किया है। ऋग्वेद मे रुद्र के अनेक पर्यायी शब्द मिलत हैं, जिनमें दिवोवराह कल्पलीकिन् मेघपति औषधाश प्रचेतस् इशान् प्रमुख हैं। यजुर्वेद म इनको पिनाकी नीलग्रीव त्र्यम्बक नामो से तथा अथववेद मे महादेव शव भव मन्त्र दाता सहस्राक्ष, व्युप्तकेश नामो से अभिहित किया गया है। उपनिषदों में भी

---

१ मानस-उत्तर काण्ड १०७।८।

शिव के नामो के विकास क्रम को देखा जा सकता है। यहा इनको गिरिशन्त गिरित्र महेश्वर कहा गया है। उत्तर वदिक साहित्य म वर्णित शिव के नाम और रूप का विकास हुआ। शिव को मृत्युजय गगाधर हर त्रिनेत्र, उमापति शम्भु, पिनाकधारी धूजटि भावुक, भविक नामो से भी अभिहित किया है। मध्यकालीन हिन्दी काव्य म शिव के अनेक नामो का प्रयोग हुआ है। नन्ददास के शब्दो म शिव के विभिन्न नामो का वणन देखिए—

> 'गगाधर, हर, शूलधर, ससिधर शकर, वाम
> शव, सभु शिव, भीम भय मग कामरिपु नाम
> त्रिनयन, त्रिबक त्रिपुर-अरि, ईस उमापति होइ
> जटा पिनाकी धूजटी, नीलकठ, मह सोई'[1]

तानसेन शिव की स्तुति करते हुए उनके अनेक नामो का उल्लेख हैं—

> "महादेव, आदि देव देवादेव, महेश्वर, ईश्वर, हर
> नीलकठ, गिरिजापति, कलासपति शिवशकर भोलानाथ
> गगाधर"[2]

नाम के समान ही शिव के रूप का वरणन भी वदिक और उत्तरवदिक साहित्य मे मिलता है। शिव धर्माध्यक्ष हैं उपासको के श्रद्धेय हैं। उपासको ने उनके निगुण और सगुण दोनो रूपो की उपासना की है। तुलसी के शब्दो मे शिव के निगुण स्वरूप की स्तुति द्रष्टव्य हैं—

> 'नमामीशमीशान निर्वाण रूपम, विभुव्यापक ब्रह्म देव स्वरूपम
> निज निगुण निर्विकल्प निरीह, चिदाकाशमाकाशवास भजेऽह।
> निराकारमोंकारमूलतुरीय, गिराग्यान गोतीतमीश गिरीश
> कराल महाकाल काल कृपाल गुणागार ससारपार नतोऽह"[3]

जोधपुर नरेश मानसिंह की रचनाओ मे भी शिव के निराकार स्वरूप की अभिव्यजना हुई है—

> "उन हर की बलिहारी, साधो मे तो उन हर की बलिहारी
> सब के हृदय बीच जो व्यापक, बेद रटे नित चारी
> तीन गुणों पर मन को मारयो सो महेश त्रिपुरारी

---

१ नददास ग्रन्थावली पृ० ८०।
२ नमदेश्वर चतुर्वेदी–हिन्दी के सगीतज्ञ कवि, पृ० १२१।
३ मानस–उत्तरकाण्ड, १०७ ख।

महौं भगपीवे न होय बावरो, चतुर भजब खिलारी
जगत रच्यो और रहत भकर्ता, इनको शोभा न्यारी
मानसिंह परस्यो निज शङ्कर, गिरिजा सुरत हमारा"[१]

सगुण साकार रूप म भी शिव पार्वतीपति हैं गणेश और स्कन्द क पिता हैं। वे नटराज और अर्धनारीश्वर भी हैं। साकार रूप म उनके दो स्वरूप—साम्य और रौद्र का वर्णन मिलता है। मध्ययुगीन हिन्दी काव्य म उक्त दोनो स्वरूपो का चित्रण हुआ है। विद्यापति उनके अर्धनारीश्वर रूप की स्तुति करते हैं—

'जय जय सकर जय त्रिपुरारि
जय अध पुरुष जयति अधनारि'[२]

सेनापति के काव्य म भी शिव के उक्त स्वरूप की छटा देखी जा सकती है—

"सोहति उतग उत्तमग ससि सग गग
गोरि अरधग जो अनग प्रतिकूल है'[३]

तुलसी के काव्य मे तो उनकी अलौकिक आभा का वर्णन अनेक प्रकार म हुआ है—

'कुन्दइन्दुदरगौरसुन्दर अम्बिकापतिमभीष्टसिद्धिदम
कारुणीककराकजलोचन नौमि शकरमनगमोचनम"[४]

आलोच्य युग के काव्य म शिव के स्वरूप का वर्णन शिवपुराण का अनुकरण मात्र है। इस युग के कवियो ने शिव के स्वरूप वर्णन म प्राचीन परम्परा का निर्वाह किया प्रतीत होता है।

शिव के सौम्य रूप के अतिरिक्त इस युग के काव्य मे उनके रौद्र रूप का चित्रण भी हुआ है। इस रूप म वे भयकर हैं। उनके गले म मुण्डमाला है वे भूत पिशाच और अपने अन्य गणो के साथ विहार करते हैं। आ० भिखारीदास के शब्दो म उनका भयकर रूप दर्शनीय है—

लोचन लाल सुधाधर भाल हुतासन ज्वाल सुमाल भरे हैं
मुड की माल गयद की खाल हलाहल काल कराल गरे है
हाथ कपाल त्रिशूल जू हाल भुजानि मे ब्याल विसाल जरे हैं
दीन दयाल अधीन को पाल अधग मे बाल रसाल धरे हैं'[५]

---

१ मान पद्य सग्रह–भाग २, पृ० ४।
२ विद्यापति की पदावली–स० बसन्तकुमार, पृ० ३६६।
३ सेनापति–कवित्तरत्नाकर।
४ मानस–उत्तरकाण्ड, ३।
५ आ० भिखारीदास–स० विश्वनाथ मिश्र, द्वितीय खण्ड, पृ० १५८।

भगवान शिव की मानवाकार, लिंग, अर्धनारीश्वर और नटराज मूर्तियां भारत में सर्वत्र प्राप्त होती हैं। उपरोक्त मूर्तियों के अतिरिक्त वे मूर्तियां भी हैं जिनमें शिव के दोनों ओर ब्रह्म और विष्णु का चित्रित किया गया है। शिव की मूर्तियों में उनके पौराणिक स्वरूप का आभास मिलता है। आलोच्य युग के काव्य में शिव के नाम और रूप व गुण गान के अतिरिक्त उनके आभूषण आयुध और वाहन का भी उल्लेख हुआ है। शिव का वाहन वृषभ शिवा का सिंह और स्कन्द का वाहन मयूर तथा गणेश का वाहन मूषक है। भा० भिखारीदास शिव और उनके परिवार के वाहनों का उल्लेख करते हुए शिव के आभूषणों की ओर भी संकेत करते हैं—

मूसो सिंहो मयूरो डमरू वृषभ औ व्याल है सब माहीं
ताके है एक एक असन करन को पावते घात नाहीं
माथे पीयूषधारी सुभट सिरनि को आधरे हैं गरे मे'[1]

शिव और शिवा के वाहनों का उल्लेख पद्माकर ने भी किया है—

काली चढ़ सिंह पे कपाली चढ़ वल पे'[2]

शैवमत में शिव और उनके परिवार पार्वती, गणेश स्कन्द और नन्दी की उपासना भी मान्य रही है। शिव की मूर्तियों के सदृश उनके परिवार की मूर्तियां भी मिलती हैं। शिव मन्दिरों में भी उनकी प्रतिष्ठा की जाती है। मध्यकालीन हिन्दी काव्य में शैव परम्परा के अनुरूप पार्वती और गणेश के स्वरूप का विशद वर्णन है तथा शिव के साथ उनकी स्तुति भी की गयी है।

मंगला के मंगल तें मंगल अनेक भयो
हिंगलाज राखी लाज याहि काज नयो हो
दुर्गा देवी तेरे द्वार ध्याते दुख नाधि आयो
पारबती तुम्हे सुमिरत पार भयो हो"[3]

देवी की स्तुति विद्यापति और तुलसी के काव्य में भी मिलती है जिसे शैवमत के प्रभाव के अन्तर्गत देखा जा सकता है।

शैवों के उपास्य शिव भक्तों के पापों को नाश करने वाले कर्मों का फल देने वाले, मुक्ति प्रदाता हैं। इसी से उनकी स्तुति फलद् मानी गयी है। आलोच्य युग के काव्य में उनके फलद् स्वरूप का चित्रण हुआ है। उनको

---

१ वही प्रथमखण्ड, पृ० २६५।
२ पद्माकर—सं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, पृ० ३१०।
३ पुरातन काव्य लहरी—सं० सं० साधुराम, पृ० १३३।

अवढर-दानी माना गया है। शवेतर कवियों के काव्य में उनकी स्तुति से अनेक फलों को प्राप्त करने की आकांक्षा व्यक्त की गयी है।

'कहा भटकत ! अटकत क्यों न तासों मन ?
जातें आठ सिद्ध नव निद्ध रिद्ध तू लहै
लेत ही चढाइवे को जाके एक बेल पात
चढत जगाऊ हाथ चारि फल-फल हैं'[1]

शिव के दाता स्वरूप का वर्णन भिखारीदास के शब्दों में देखिये—

'राखत हैं जग को परदा वह, आपुस ने दिगम्बर राखे
मांग विभूति भंडार भरो पै मर गह दास को जो अभिलाखे
छाह करै सब को हरजू निज छांह को चाहत है बट साखें
वाहन हैं वरदायक पै, वरदायक बाजि औ बारन लाखें'[2]

भक्ति भगवान् को प्राप्त करने का उत्कृष्ट साधन है। उसकी उत्कृष्टता सवत्र स्वीकार की गयी है। भक्ति भगवान की एक मात्र प्रेमासक्ति है जिसमें भक्त अपना सवस्व भगवान को अर्पित कर निर्द्वन्द्व हो केवल उनके ध्यानामृत में लीन रहना चाहता है। उत्तर वैदिक साहित्य में परमेश्वर के दो स्वरूप—निराकार और साकार—प्राप्त होते हैं। ये दोनों स्वरूप सन्त मान्य रहे हैं। मध्यकालीन सन्तों ने सगुण शिव का मौलिक स्वरूप निर्गुण में देखा है। यद्यपि वे भक्ति भाव की तरंग में सगुण का एक दम परित्याग नहीं कर सके हैं फिर भी उनकी उपासना पद्धति में मानसिक पक्ष को प्रधानता मिली है। कहने का तात्पर्य यह है कि निर्गुण साधना में निराकार शिव स्तुत्य रहे हैं। वहां उनको अनन्त निरंजन शब्द और शून्य आदि अनेक नामों से सम्बोधित किया गया है। योगियों ने उनको आत्मस्थ मान कर, यौगिक प्रक्रियाओं द्वारा उनसे ऐक्य स्थापित करने का प्रयास किया है। दार्शनिकों ने अद्वैत विशिष्टाद्वैत द्वैताद्वैत दार्शनिक विचारधाराओं द्वारा अनन्त शिव जीव और जगत् तथा कर्म और कर्म संन्यास का विवेचन किया है।

भगवान का साकार रूप ही सगुणोपासना का मूलाधार है। सगुण उपासना के दो साधन बहिरंग और अतरंग माने गये हैं। भगवान के नाम-रूप-गुण का श्रवण कीर्तन तथा भगवान का चरण सेवन सगुण भक्ति के बहिरंग साधन हैं। शैव और वैष्णव भक्ति के मूल तत्त्व एकसा है। उपासना

१ सेनापति—कवितरत्नाकर।
२ आ० भिखारीदास—स० विश्वनाथ मिश्र द्वितीय खण्ड पृ० १२६।

के विस्तार मे कुछ भिन्नता अवश्य मिलती है। शवो ने शिव को आराध्य माना है सखा नहा। मध्ययुग की कविता मे शिव का आराध्य स्वरूप मान्य रहा है। इस युग के वष्णव कवियो ने शिव के नाम, रूप और गुण का श्रवण, मनन और कीतन आदि भक्ति बाह्य साधनो का महत्व मान्य रहा है। इस युग के भक्ति काव्य मे शिव के अनेक नाम वदिक और उत्तर वदिक साहित्य मे प्रतिपादित शिव नामो की परम्परा से ज्यो का त्यो अपना लिये गये हैं। इस युग के काव्य म शिव के नाम रूप और गुण की स्तुति शव मत के परिपाश्व म प्रतिपादित हुई है। आ० भिखारीदास शिव के रूप और उनके गुणो का गान करते हुए कहते हैं—

'दरखा दासनि को दोष दुख दूरि करे
भाल पर रेखा बाल दोषाकर रेखिये
चाहे न विभूति पे विभूति सरबग पर
बाह बिन गग पर बाह सिर पे खिए
सदाशिव नाम मेष अशिव रहत सदा
कर धरे सूल सूल रहत बिसेषिये
मांगत है भीख भो कहावे भीख प्रभु हम
घरे याको आसा याको आसा घरे देखिय' [१]

आलोच्य युग क काव्य म शिव के मन्दिर दशन, पूजन, पूजन सामग्री और तीर्थों का उल्लेख शवमत क प्रभाव की ओर सकेत है। शिव मन्दिर का महत्व इस युग क प्राय सभी कवियो का मान्य रहा है। कवि जोधराज क काव्य म भी शिव मन्दिर का महत्त्व प्रतिपादित हुआ है—

"कियो बहु हय कुमार अपार, गए हर मदिर सो तिहि बार
गनेसुर शकर पुजि सुभाय, करे बहु घ्यान गहे जब पाय" [२]

पद्माकर न भी शिवपूजन का महत्त्व स्वीकार किया है —

"नवस बाल नवसाल सग निज विवाह के ताहि
आगम की विधि सौं उमहि पूजत मदिर माँहि' [३]

हिन्दी के कवियो न शिव पूजा की सामग्री म अनेक उपकरणो का शव परम्परा के अनुरूप अपनाया है। शिव पूजन म बिल्वपत्र क साथ जल

---

१ आ० भिखारीदास–स० विश्वनाथ मिश्र, प्र० ख० पृ० ६७।
२ पुरातन काव्य लहरी–स० सांपुराम, पृ० १४७।
३ पद्माकर—स विश्वनाथ मिश्र पृ० ७२।

का भी महत्त्व है। विद्यापति उक्त उपकरणा का अपने काव्य मे उल्लेख करते हैं—

सिव हो उतरब पार कओन विधि
लोढ़ब कुसुम तोरब बेलपात
पुजब सदासिव गोरिक सात'[1]

शिवपुराण म शिव पूजा के बहुत से उपकरणो का उल्लेख हुआ है। वहा आक और धतूरे' तथा बिल्व पत्र से शिव के प्रसन्न होने की बात भी कही गयी है। मध्यकालीन हिन्दी काव्य म शिव पूजन मे प्रयुक्त उपकरणा का उल्लेख उक्त पुराण के प्रभाव म लिखा गया प्रतीत होता है। इस युग के कविया ने शव तीर्थों के प्रति भी अपनी श्रद्धा अभियक्त की है। हिंगलाज शवो का तीथ स्थान है। उसकी महिमा का गान कवि न शव प्रभाव के अन्त गत किया है—

हिंगलाज राखो लाज, याहि काज नयो हों"[2]

शवा म अतरग भक्ति का भी महत्त्व रहा है। उसमे भक्त भगवान् के चरणा म आत्म निवेदन कर क्रमश रागानुगा और पराभक्ति को प्राप्त करता है। साधनावस्था म भक्त का विरक्ति भाव दृढ होता है। वह क्रमिक अभ्यास से आत्मसमपण करने योग्य बनता है। मध्ययुगीन हिन्दी काव्य म आत्मसमपण की भावना का विशद वणन मिलता है। विद्यापति के शब्दो मे आत्मसमपण जय आनन्दानुभूति देखिए—

हर जनि बिसरब मो ममिता
हम नर अधम परम पतिता
तुम्र सन अधम उधर न दोसर
हम सन जग नहि पतिता
जग के द्वार जबाब कओन देव
जरइत बुझत, निज गुन कर बतिया
जब जम किंकर कोपि पठाएत
सरवन के होत परहरिया।

---

१ विद्यापति की पदावली—पृ० ४१२।
२ पुरातन काव्य लहरी–सत साधुराम, पृ० १३३।

गन विद्यापति सुकवि पुनीत मति
शंकर विपरीत बानी
असरन सरन चरन सिर नाओल
दया करु दिअ सूलपानी[1]

शिवमत में प्रचलित कीर्तन, भजन, पूजन, व्रत और आगम निदेशन के अतिरिक्त उपासना की विशिष्ट पद्धति नमक चमक तथा पार्थिव पूजा पद्धति मान्य है। हिन्दी के भक्ति काव्य में उपासना पद्धति का सैद्धान्तिक विवेचन नहीं हुआ है हाँ इस युग के काव्य में शैवों की पार्थिव पूजा पद्धति का वर्णन अवश्य मिलता है जिसपर शैवों का प्रभाव ही मानना होगा।

शैवों की अंतरंग साधना में पंचाक्षर मंत्र (ॐ शिवाय नमः) के जाप का अनन्य महत्त्व है। उनके अनुसार बाह्य पूजा आभ्यान्तरिक या मानसी पूजा के लिए सोपान का काम करती है। तुलसी ने अपने काव्य में शिव की मानसी पूजा की ओर भी संकेत किया है—

'रुद्राष्टकमिदं प्रोक्तं विप्रेण हरतोषये
ये पठन्ति नरा भक्त्या तेषां शम्भु प्रसीदति'[2]

शैव तान्त्रिकों ने आत्मा के सभी कर्म शिव की अर्चना माने हैं। उनमें मानसिक उपासना को बाह्य उपासना से श्रेष्ठ माना गया है। आलोच्य युग के कवियों ने मानसी उपासना का महत्त्व दिया है। सम्भवतः उन पर तान्त्रिक शैवों की मानसिक उपासना का भी प्रभाव रहा है।

मध्यकालीन हिन्दी काव्य में शिव उनके विभिन्न नाम रूप गुण आयुध, वाहन और परिवार का वर्णन तो परम्परागत रूप में हुआ ही है इसके अतिरिक्त इस युग के भक्त कवियों की उपासना भी शैवोपासना से अपरिलक्षित रूप में प्रभावित रही है। आलोच्य युग के काव्य पर शैवमत का प्रभाव अनुमानगम्य है।

शिव-कथाओं के उद्भव का श्रेय पौराणिक काव्य को है। शिव की अनेक कथाओं में सती और पार्वती कथा प्रसिद्ध है। सती कथा में सती मोह शिव द्वारा उनका मानसिक त्याग, दक्ष-यज्ञ विध्वंस तथा पार्वती कथा में पार्वती अवतार पार्वती तपस्या, तारकासुरवध मदन दहन शिव पार्वती विवाह प्रसंग प्रसिद्ध हैं जिनको संस्कृत और हिन्दी काव्य ने उसी रूप में अपना लिया

---

१ विद्यापति की पदावली–पृ० ४१७।
२ मानस–उत्तरकाण्ड, १०७।६।

है। मध्ययुगीन हिन्दी कविता म सती और पार्वती की कथा प्रमुख कथा प्रासगिक कथा और प्रासगिक सकेत रूप म विद्यमान है। प्रमुख शिव-कथाए सख्या म कम अवश्य हैं तथापि उन पर शव प्रभाव स्पष्ट है। इस युग के काव्य मे प्रासगिक कथाओ एव उनके प्रासगिक सकेता का बाहुल्य है

तुलसी शिव से सम्बद्ध गुणनिधि[1] कथा की ओर सकेत करते हुए कहते हैं—

> कवनि भगति कीन्ही गुननिधि द्विज
> होइ प्रसन्न दी हेहु सिव पद निज।"[2]

इसक सदृश ही त्रिपुर वध एव मदन दहन कथा के सकेत भी दृष्टव्य हैं। काल अतिकाल कलि काल, व्यालादि खग, त्रिपुरमदन भीम कम भारी'[3]। तुलसी मदन-दहन की ओर सकेत करत हुए कहते हैं—'त्रयनयन मदन मदन महेस।"[4] आलोच्य काल म शवेतर कवियो के काव्य म शिव सम्बद्ध कथाओ के प्रासगिक सकेत, शवमत के परोक्ष प्रभाव को द्योतित करत हैं।

मध्ययुगीन हिन्दी कविता ने शवमत के प्रभाव को साहित्य के अनेक क्षेत्रो म ग्रहण कर लिया है। जो कही अनुवाद रूप म है तो कही कथा प्रभाव रूप म कही भाव छाया है तो कहीं साकेतिक सदर्भ। इस युग क काव्य मे शव कथाओ के साथ उनम प्रयुक्त रसो को भी अपनाया गया है। रसोपकरणो म भिन्नता होने पर भी विभावादि की प्रक्रिया पर मूल का प्रभाव स्पष्ट है।

हिन्दी साहित्य का मध्यकाल अपनी अनेक विशेषताओ के कारण अन्य कालो म सर्वोपरि है। हिन्दी ससार क कवि एव महाकवि जिनसे हिन्दी भाषा का मुख उज्ज्वल हुआ इसी काल मे हुए। इस युग की काव्य धारा म एक ओर सुधा का माधुर्य है तो दूसरी ओर हृदय को रससिक्त करने वाली अलौकिक रस धारा है। उसम ज्ञान का प्रकाश है तो भक्ति की स्निग्धता भी है। वस्तुत यह युग भक्ति आन्दोलन का युग है जिसम सगुण साकार और निर्गुण निराकार दोना ही भक्ति का केन्द्र बन थ। वष्णवो के आलम्बन राम और कृष्ण के अतिरिक्त शवो क आराध्य शिव भी भक्ति केन्द्र थे। शवमत इस

---

१ देखिये—इसी अभिलेख का प्रथम अध्याय,।
२ विनय पत्रिका-स० वियोगी हरि पद ८।
३ वही पद ११।
४ विनय पत्रिका-स० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, पद १३।

युग का प्रमुख मत था। उसके चिंतन योग एव भक्ति सिद्धान्तो का तत्कालीन कविता पर परोक्ष एव अपरोक्ष दोनो रूप से प्रभाव परिलक्षित होता है। इस युग की दार्शनिक पृष्ठभूमि का विश्लेषण करते समय शवमत के योग को भुलाया नही जा सकता।

मध्यकालीन हिन्दी कविता पर शवमत का प्रचुर प्रभाव है जिसको दशन योग और भक्ति तथा साहित्यिक विधा के अन्तगत देखा जा सकता है। दशन क्षेत्र म शवो के अद्व तवाद म प्रतिपादित प्रतिबिम्बवाद तथा अविकृत परिणामवाद तथा उनकी मोक्ष सम्बन्धी धारणा दुख की आत्यतिक निवृत्ति एव आनन्दवाद का आलोच्य युग की कविता मे अनेक प्रकार स उल्लेख हुआ है। इस युग के सगुण एव सत तथा प्रेमाश्रयी कवियो ने प्रतिबिबवाद एव अविकृत परिणामवाद के द्वारा जीव और जगत् जीव और परमेश्वर तथा जीव और मोक्ष सम्बन्धी दृष्टिकोण को अभिव्यक्त किया है।

मध्ययुगीन हिन्दी कविता की योग धारा वस्तुत शवो की ही योग धारा है जो इस युग के कवियो को नाथो स प्राप्त हुई है। इस युग के कवियो ने भले ही इसमे मौलिकता प्रदान की फिर भी वे मूल शवयोग धारा से दूर नही गय हैं। भक्ति क्षेत्र म शिव भक्ति प्रधान रही है जिसमे विष्णु की भक्ति भी समाविष्ट हुई आगे चल पचदेवोपासना का मूल बनी।

शव साहित्य न भी इस युग के काव्य को शिव कथाए कथा सकेत और पात्र तो प्रदान किये ही है साथ ही शव साहित्य की अनेक रस भी उसमे आए हैं। साराशत कहा जा सकता है कि शवमत और उसके साहित्य ने इस युग के काव्य को चितन साधना और आराधना तथा साहित्य सभी क्षेत्रो म प्रभावित किया है।

परिशिष्ट

मूल ग्रन्थ सूची

१ अनुराग बासुरी	नूर मोहम्मद
२ अखरावट	मलिक मोहम्मद जायसी
३ आनन्द भण्डार	आनन्द
४ इन्द्रावती	नूर मोहम्मद
५ कबीर ग्रन्थावली	स० श्याम सुन्दरदास चतुर्थ सस्करण २००८ वि०
६ कबीर	हजारीप्रसाद द्विवेदी
७ कवरावन	अलीमुराद
८ कवितावली	तुलसी
९ कवितरत्नाकर	सेनापति
१० काव्य निर्णय	भिखारीदास—नागरी प्रचारिणी सभा
११ गोरखबानी	डा० पीताम्बरदत्त बड़थवाल द्वारा सम्पादित।
१२ गुलाल साहब की बानी	वेलवडियर प्रेस प्रयाग
१३ घनानद और आनन्द घन	स० विश्वनाथ प्रसाद
१४ चरणदास की बानी	वेलवेडियर प्रेस, प्रयाग
१५ चित्रावली	उसमान
१६ जगजीवन की साहब का बानी	वेलवेडियर प्रेस प्रयाग।
१७ जायसी ग्रन्थावली	स० रामचन्द्र शुक्ल
१८ तुलसी ग्रन्थावली	स० रामचन्द्र शुक्ल
१९ तश्यलाते आनन्द	आनन्द
२० नन्ददास ग्रन्थावली	नन्ददास
२१ निपक्ष वेदान्त राग सागर	भलखानन्द
२२ नानक बानी	वेलवेडियर प्रेस, प्रयाग

५३	रामचरित मानस	गीताप्रेस गोरखपुर
५४	राम गीता	सत क्निाराम
५५	रामचद्रिका	क्शवदास
५६	रूप मजरी	
५७	रदास की बानी	वेलवडियर प्रेस प्रयाग
५८	विवकसार	कीनाराम
५९	विद्यापति की पदावली	स० रामवृक्ष वेनी पुरी
६०	विनयपत्रिका	स० वियोगी हरि
६१	शिव ब्यावलो	गोरधन दास–हस्तलिखित ग्र थ विद्यामदिर बीक्ानेर म उपलब्ध
६२	सतमाल	मिशन प्रेस इलाहाबाद
६३	सत दरिया	स० धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी
६४	स्वरूप प्रकाश	भिनकराम
६५	सिद्ध चरित	मूयशकर पारीक
६६	सुन्दर ग्र थावली भाग १ २	स० हरिनारायण शर्मा
६७	सुन्दर दशन	डा० दीक्षित
६८	सुन्दर विलास	वेलवेडियर प्रेस प्रयाग।
६९	सतबानी सग्रह भाग १ २	वेलवडियर प्रेस इलाहाबाद
७०	सत विलास	हस्तलिखित ग्र थ
७१	हिन्दी सतकाव्य सग्रह	परशुराम चतुर्वेदी
७२	सत सुधासार	वियोगी हरि
७३	सूर विनयपत्रिका	सूरदास
७४	सूर सागर	सूरदास
७५	सहजोबाई की बानी	वेलवेडियर प्रेस प्रयाग
७६	नानस्वरोदय	सत दरिया
७७	हिन्दी प्रेमगाथा काव्य सग्रह	स० गणेश प्रसाद द्विवेदी
७८	सूफी काव्य सग्रह	परशुराम चतुर्वेदी

सहायक ग्रन्थ सूची (क)

१	अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय	दीन दयाल गुप्त
२	अपभ्र श साहित्य	हरिवश कोचर

क्रम	ग्रंथ	लेखक
३	अग्निपुराण का काव्य-शास्त्रीय भाग	रामलाल शर्मा
४	आर्य संस्कृति के मूल तत्त्व	सत्यव्रत विद्यालंकार
५	आर्य संस्कृति के मूलाधार	बलदेव उपाध्याय
६	आचार्य सायण और माधव	बलदेव उपाध्याय
७	उत्तरी भारत की संत परंपरा	परशुराम चतुर्वेदी
८	कामायनी सौंदर्य	डा० फतह सिंह
९	कामायनी काव्य में संस्कृति और दर्शन	डा० द्वारिका प्रसाद
१०	कामायनी दर्शन	कन्हैयालाल सहल तथा विजयेन्द्र स्नातक
११	कबीर का रहस्यवाद	डा० रामकुमार वर्मा
१२	कबीर का विवेचन	डा० सरनामसिंह शर्मा
१३	कबीर की विचारधारा	डा० गोविन्द त्रिगुणायत
१४,	कबीर साहित्य अध्ययन	पुरुषोत्तम एम० ए० बनारस
१५	कबीर पंथ	मिशन प्रेस इलाहाबाद
१६	कबीर साहित्य की परख	परशुराम चतुर्वेदी
१७	कबीर दर्शन	राजेन्द्र सिंह गौड़
१८	काव्य दर्पण (टीका)	रामदहिन मिश्र
१९	काव्य प्रकाश	डा० नगेन्द्र
२०	काव्य प्रकाश (टीका)	आचार्य विश्वेश्वर
२१	गीता हृदय	स्वामी सत्यानन्द
२२	तुलसीदास	डा० माता प्रसाद गुप्त
२३	तुलसीदास और उनका युग	डा० राजपति दीक्षित
२४	तुलसीदास और उनका साहित्य	विमल कुमार जैन
२५	तुलसी दर्शन	बलदेव प्रसाद
२६	तसव्वुफ और सूफीमत	चन्द्रबली पांडेय
२७	नाथ सम्प्रदाय	हजारी प्रसाद द्विवेदी
२८	नाथ सिद्ध एक विवेचन	नरेन्द्र सिंह
२९	ब्रजलोक साहित्य एक अध्ययन	डा० सत्येन्द्र
३०	प्रबोध चन्द्रोदय	ट्रेलर द्वारा अनुदित
३१	बौद्ध दर्शन	बलदेव उपाध्याय

३२	बौद्ध साहित्य की देन सास्कृतिक झलक	परशुराम चतुर्वेदी
३३	बौद्ध साहित्य की सास्कृतिक झलक	परशुराम चतुर्वेदी
३४	बौद्ध घम दशन	श्रा० नरेन्द्र देव
३५	ब्रह्मसूत्रो म वष्णव काव्यो का तुलनात्मक श्रध्ययन	रामकृष्ण श्राचाय
३६	वष्णव घम	परशुराम चतुर्वेदी
३७	व्यावहारिक जीवन मे वेदान्त	स्वामी विवेकानन्द
३८	भक्ति का निवास	मु शीराम शर्मा
३९	भागवत सम्प्रदाय	बलदेव उपाध्याय
४०	भारतीय दशन	बलदेव उपाध्यय
४१	भारतीय साहित्य की सास्कृतिक रेखाए	परशुराम चतुर्वेदी
४२	भारतीय दशन शास्त्र का का इतिहास	देवराज तथा रामानन्द तिवारी द्वितीय सस्करण
४३	भारतीय साधना श्रौर सूर साहित्य	डा० मु शीराम शर्मा
४४	भारतीय सस्कृति श्रौर उसका साहित्य	सत्यकेतु विद्यालकार
४५	भारतीय चिन्तन	रागेय राघव
४६	भोजपुरी के कवि श्रौर काव्य	दुर्गाशकर सिंह
४७	भोजपुरी श्रौर उसका साहित्य	किशन देव
४८	मध्यकालीन घम साधना	हजारी प्रसाद द्विवेदी
४९	मध्यकालीन भारतीय सस्कृति	गोरीशकर हीराचन्द श्रोभा
५०	मध्यकालीन प्रेम साधना	परशुराम चतुर्वेदी
५१	मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य का लोक तात्विक श्रध्ययन	डा० सत्येन्द्र
५२	मिश्र बन्धु विनोद	मिश्र बन्धु
५३	मुक्तक काव्य परम्परा श्रौर बिहारी	राम सागर त्रिपाठी
५४	राम भक्ति शाखा	राम निरजन पाडेय

५५ राम भक्ति म रसिक सम्प्रदाय भगवती प्रसाद
५६ राजस्थान का पिंगल साहित्य मोतीलाल मेनारिया
५७ राजर्षि पुरषोत्तमदास टडन
अभिनन्दन ग्र थ
५८ शवमत डा० यदुवशी
५९ शक्ति पात रहस्य गोपीनाथ कविराज
६० शकराचाय बलदेव उपाध्याय
६१ शकराचाय का आचार दशन डा० रामानन्द तिवारी
६२ षडदशन रगनाथ
६३ सिद्ध साहित्य धमवीर भारती
६४ सस्कृति के चार अध्याय दिनकर
६५ सतमत का सरभग सम्प्रदाय धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी
६६ सूफीमत और साहित्य डा० विमल कुमार जन
६७ सूरदास रामचन्द्र शुक्ल
६८ सूर और उनका युग डा० हरवश लाल शर्मा
६९ सिद्ध साहित्य सूय शकर पारीक
७० सस्कृत साहित्य का इतिहास बलदेव उपाध्याय
७१ सस्कृत साहित्य का इतिहास कन्हैयालाल पोद्दार
७२ सूर मीमासा ब्रजेश्वर वर्मा
७३ सूरपव ब्रजभाषा और उसका
साहित्य शिवप्रसाद सिंह
७४ सस्कृति सगम शक्ति मोहन सेन
७५ हिन्दुत्व रामदास गोड
७६ हिन्दी साहित्य का वृहद
इतिहास प्रथम भाग राजबली पाडेय
७७ हिन्दी साहित्य का वृहद
इतिहास, भाग ६ राहुल
७८ हिन्दी साहित्य का इतिहास आचाय चतुरसेन शास्त्री
७९ हिन्दी साहित्य का इतिहास डा० रसाल
८० हिन्दी साहित्य मे निगुण
सम्प्रदाय डा० बडथवाल

८१	हिन्दी की निर्गुण काव्य धारा और उसकी दार्शनिक पृष्ठभूमि	डा० गोविन्द त्रिगुणायत
८२	हिन्दी और कन्नड मे भक्ति आन्दोलन	डा० हिरण्मय
८३	हिन्दी साहित्य युग और प्रवृतियाँ	प्रो० शिवकुमार
८४	हिन्दी साहित्य पर सस्कृत साहित्य का प्रभाव	डा० सरनामसिंह शर्मा
८५	हिन्दी साहित्य का इतिहास	रामचन्द्र शुक्ल
८६	हिन्दी को मराठी सतो की देन	विनय मोहन शर्मा
८७	हिन्दी के सगीतज्ञ कवि	नमदेश्वर चतुर्वेदी
८८	हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास	डा० रामकुमार वर्मा
८९	हिन्दी साहित्य की भूमिका	हजारीप्रसाद द्विवेदी
९०	हिन्दी साहित्य की दार्शनिक पृष्ठभूमि	विश्वम्भर नाथ उपाध्याय
९१	हिन्दुस्तान की पुरानी सभ्यता	डा० वेनी प्रसाद
९२	हिन्दी और प्रादेशिक भाषाओ का वैज्ञानिक इतिहास	शमशेर सिंह
९३	हिन्दी के सूफी कवि और काव्य	डा० सरला शुक्ल
९४	हिन्दी और मलयालम मे कृष्ण भक्ति काव्य	
९५	हिन्दी नीति काव्य	भोलानाथ तिवारी
९६	देव और उनकी कविता	डा० नगेन्द्र
९७	दरबारी सस्कृति और हिन्दी मुक्तक	त्रिभुवन सिंह
९८	दर्शन दिग्दर्शन	राहुल साकृत्यायन
९९	१६ वीं शती के हिन्दी और बगाली वैष्णव कवि	रतन कुमारी
१००	श्रीराधा का क्रमिक विकास	

१०१ धर्मेंद्र ब्रह्मचारी अभिनन्दन ग्रंथ — स० नलिन विलोचन शर्मा, प्रो० रामखेलावन राय
१०२ सत दरिया एक अनुशीलन — धर्मेंद्र ब्रह्मचारी

सहायक ग्रंथ सूची (ख)

१ अथर्व वद — सायण भाष्य
२ अग्निपुराण — आनन्द आश्रम सस्कृत सिरीज
३ अमर कोश — अमरसिंह वेंक्टेश्वर प्रेस बबई
४ ईश्वर प्रत्यभिना — अभिनवगुप्त रिसच डिपाटमट जम्मू काश्मीर स्टेट
५ ईश्वर प्रत्यभिज्ञा विमर्शिनी — अभिनवगुप्त
६ ऋग्वद — सायण भाष्य
७ कृष्ण यजुर्वेद सहिता
८ कठ उपनिषद् — गोरखपुर प्रेस
९ काली तत्र — कन्हैयालाल मिश्र का सस्करण
१० कुमार सम्भव — कालिदास निणय सागर प्रेस बबई
११ कुञ्जिका तत्र
१२ कौशीतकी ब्राह्मण — आनन्दाश्रम सस्कृत सिरीज
१३ गीता — गीता प्रेस गोरखपुर
१४ गोरक्षपद्धति — गोरखनाथ
१५ गापाल पूव तापनी उपनिषद्
१६ घेरण्ड सहिता — घेरण्ड
१७ छान्दोग्य उपनिषद् — लक्ष्मण शास्त्री का सस्करण
१८ तत्व वशारदी
१९ तत्रसार — अभिनवगुप्त
२० तत्रालोक — अभिनवगुप्त
२१ तैत्तिरीय ब्राह्मण — आनन्दाश्रम सस्कृत सिरीज
२२ तत्तिरीय आरण्यक — आनन्दाश्रम सस्कृत सिरीज
२३ तैत्तिरीय सहिता — आनन्दाश्रम सस्कृत सिरीज
२४ दशनोपनिषद्
२५ ध्वन्यालोक — निणय सागर प्रेस बबई
२६ नारद भक्ति सूत्र — गीता प्रेस, गोरखपुर

२७ पाणिनी सूत्र — पाणिनी
२८ प्राण तोषिणी
२९ प्रत्यभिज्ञाहृदयम् — ग्राडयार लायब्रेरी, मद्रास
३० पातजल योग दशन — पातजलि—लखनऊ विश्वविद्यालय
३१ , — गीता प्रेस गोरखपुर
३२ प्रश्नोपनिषद् — गीता प्रेस, गोखरपुर
३३ ब्रह्म पुराण — ग्रानन्द ग्राश्रम सस्कृत सिरीज
३४ ब्रह्माण्ड पुराण — ग्रानन्द ग्राश्रम सस्कृत सिरीज
३५ बोधायन धमसूत्र
३६ वाल्मिकी रामायण — निणय सागर प्रेस बबई
३७ भागवत् — गीताप्रेस, गोरखपुर
३८ महाभारत — गीताप्रेस गोरखपुर
३९ मत्स्य पुराण — ग्रानन्द ग्राश्रम, सस्कृत सिरीज
४० मगेन्द्र तत्र
४१ मालिनी विजयात्तर तत्र
४२ मानव गृह्य सूत्र — गायक्वाड ग्रोरियटल सिरीज
४३ मेरू तत्र
४४ मैत्रायणी उपनिषद् — लक्ष्मण शास्त्री
४५ मुण्डकोपनिषद् — गीताप्रेस, गोरखपुर
४६ योग सूत्र
४७ याग उपनिषद्
४८ योग शिखोपनिषद्
४९ रुद्राष्टाध्यायी
५० लाटायन श्रौत सूत्र
५१ लिंग धारण चद्रिका — एम० ग्रार सखरी बबई
५२ लिंग पुराण — वेंकटेश्वर प्रेस, बबई
५३ वराहपुराण — बिब्लियोथिका इंडिका
५४ वृहदारण्यक उपनिषद् — निणय सागर प्रेस बम्बई
५५ वाजसनेयि सहिता — वेबर
५६ ब्रह्म पुराण — ग्रानन्द ग्राश्रम सस्कृत सिरीज
५७ वायु पुराण — ग्रानन्द ग्राश्रम सस्कृत सिरीज
५८ वामन पुराण — ग्रानन्द ग्राश्रम सस्कृत सिरीज

५९ विनान भरव	
६० शतपथ ब्राह्मण	वेबर का संस्करण
६१ शंकर दिग्विजय	आनन्दगिरि
६२ श्वेताश्वतर उपनिषद्	गीता प्रेस गोरखपुर
६३ शाण्डिल्य भक्ति सूत्र	गीता प्रेस गोरखपुर
६४ शाखायन श्रौत सूत्र	
६५ शिवनान बोधम्	मयकण्ड देवर
६६ शिवमहिम्नस्तोत्र	प्रकाशक ठाकुरदास बुकसेलर, बनारस
६७ *शिव ताण्डव स्तोत्र*	*प्रकाशक ठाकुरदास बुकसेलर, बनारस*
६८ शिवपुराण	वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई
६९ शिव सूत्र वार्तिक	भास्कर
७० शिव दृष्टि	उत्पलदेव
७१ शिव सहिता	वेंक्टेश्वर प्रेस बम्बई
७२ शिव सूत्र विमर्शिनी	प्रो० रिसच डिपाटमट जम्मूकाश्मीर
७३ शिव सहस्र नाम स्तोत्र	गीता प्रेस, गोरखपुर
७४ *शुक्ल यजुर्वेद*	*स० ज्वालाप्रसाद मिश्र*
७५ षटचक्र निरूपण	
७६ षडदशन	
७७ सवदशन सग्रह	मायण माधव, प्रो० आनन्दाश्रम संस्कृत सिरीज पूना
७८ सकाम शिव पूजन	गगा विष्णु श्रीकृष्ण
७९ स्वच्छन्द तत्र	
८० सिद्ध सिद्धान्त पद्धति	
८१ सौर पुराण	आनन्दाश्रम संस्कृत सिरीज पूना
८२ *स्कन्द पुराण*	*वेंक्टेश्वर प्रेस, बम्बई*
८३ हठयोग प्रदीपिका	वेंक्टेश्वर प्रेस बम्बई

सहायक ग्रन्थ सूची (ग)

१ एनालिसिस ग्र जम्नन आफ दी शव सिद्धान्त चिन्तामणि	कोहन एच० पिट
२ सास्करी	डा० क सी पाण्डे
३ कल्चरल हेरिटेज आफ इण्डिया	रामकृष्ण मिशन

४	डाक्टाइन ग्राफ शक्ति इन इडियन लिटरेचर	डा० ग्रार सी चक्रवर्ती
५	इवोलूशन ग्राफ तत्राज	पी सी वागची
६	गोरखनाथ एण्ड दी कनफटा योगीज	जाज डब्लू ब्रिग्स
७	हिस्ट्री एण्ट फिलासफी ग्राफ लिंगायत रिलिजन	एम ग्रार सखोरी
८	ग्राउट लाइन्स ग्राफ रिलिजियस लिटरेचर ग्राफ इडिया	डा० फरक्यूहर
९	रिलिजन ग्राफ हिन्दूज	एच एच विल्सन
१०	शक्ती एण्ड शक्ता	ग्रारथोर ग्रवोलन
११	श्रीकर भास्य	
१२	वदिक माइथोलाजी	डा० मेकडोनल
१३	वष्णविजम सवीजम एण्ड माइनर रिलीजस सिस्टम्स	डा० ग्रार जी भण्डारकर
१४	ए हेंड बुक ग्राफ वीर शेविजम	डा० नन्दी नाथ
१५	ग्राब्सक्यूयर रिलिजस कल्टस	शशी भूषण दास गुप्ता
१६	काश्मीर शविजम	जे० सी० चटर्जी
१७	ग्रभिनवगुप्त—ए स्टडी ग्राफ हिस्ट्री एण्ड फिलासफी	डा० के० सी० पाण्डे
१८	सव-दशन-सगह	कावेल
१९	इन्ट्रोडक्शन टू तन्त्राज	ए० एवालोन
२०	प्रिंसिपल्स ग्राफ तन्त्रास	ए० एवालान
२१	दी ग्रेट लिबरशन (महा निर्वान तन्त्र)	ए० एवालोन
२२	हिस्ट्री ग्राफ सस्कृत लिटरेचर	कीथ
२३	डास ग्राफ शिवा	कुमार स्वामी
२४	तन्त्र राज तन्त्र	ए० एवालोन

सहायक पत्र पत्रिकाए (घ)

१ जनरल ग्राफ दी ग्रमेरिकन ग्रोरियन्टल सोसायटी

२ नागरी प्रचारिणी पत्रिका

३ मरु भारती
४ सत बानी
५ कल्याण
६ कल्याण विशेषाक—
(१) सक्षिप्त शिवपुराण अक-१६६२ ई०
(२) शिवाक १६३३ ई०
(३) शक्ति अक
(४) भक्ति अक
(५) योगाक
(६) वेदान्त अक १६३६ ई०
(७) सतवाणी अक
(८) स्कन्दपुराण अक १६५१ ई०
(९) हिन्दू सस्कृति अक १६५० ई०
(१०) उपनिषद् अक १६४६ ई०